इकाई – 2
मुद्राराक्षसम् (विशाखदत्त)

विशाखदत्त - व्यक्तिगत परिचय

विशाखदत्त मुद्राराक्षस नामक नाटक के रचयिता है। विशाखदत्त के व्यक्तिगत जीवन के विषय में संक्षिप्त सा परिचय मुद्राराक्षस की प्रस्तावना में मिलता है जहां इन्हें सामन्त बटेश्वरदत्त का पौत्र तथा महाराज भास्करदत्त का पुत्र बतलाया गया है- 'अद्य सामन्तबटेश्वरदत्त पौत्रस्य महाराजभास्करदत्तसूनोः कवेर्विशाखदत्तस्य क तिः मुद्राराक्षसं नाम नाटकं नाटयितव्यम्'। कुछ संस्करणों में इनके पिता का नाम 'प थु भी दिया गया है। मुद्राराक्षस के भरतवाक्य के आधार पर विद्वानों ने विशाखदत्त का समय निर्धारित करने का प्रयत्न किया है। भरतवाक्य की अन्तिम दो पंक्तियां इस प्रकार है-

म्लेच्छैरुद्विज्यमाना भुजयुगमधुना संश्रिता राजमूर्तेः।
श्रीमद्बन्धुभ त्यश्चिरमवतु मही पार्थिवश्चन्द्रगुप्तः।।

कुछ संस्करणों में चन्द्रगुप्त के स्थान पर रन्तिवर्मा, दन्तिवर्मा तथा अवन्तिवर्मा पाठ भी मिलते हैं।

जहाँ तक रन्तिवर्मा का प्रश्न है, इतिहास में इस नाम के किसी भी राजा का कहीं भी उल्लेख नहीं मिलता। अतः तैलंग महोदय का कहना है कि यह रन्तिवर्मा अवन्तिवर्मा ही है।

दन्तिवर्मा दक्षिण में पल्लवनरेश थे जिनका समय ७२० ई० के लगभग है परन्तु इनके समय में म्लेच्छों का आक्रमण हुआ ही नहीं और दूसरे यह पल्लवनरेश शैव थे जबकि उक्त श्लोक में विष्णु की वराहावतार में स्तुति की गई है। अतः विशाखदत्त दन्तिवर्मा के भी समकालीन नहीं हो सकते। तैलंग महोदय ने राजा अवन्तिवर्मा को विशाखदत्त का आश्रयदाता माना है। परन्तु इतिहास में दो अवन्तिवर्मा हुए। एक अवन्तिवर्मा ने कश्मीर में ८५५ - ८८३ ई० तक शासन किया। प्रो० जेकोबी ने विशाखदत्त को इन्हीं का समकालीन माना है। इनके अनुसार २ दिसम्बर, ८६० ई० में जो चन्द्रग्रहण हुआ था उसी का उल्लेख मुद्राराक्षस की प्रस्तावना में हुआ है **"रक्षत्येनं तु बुधयोग"**। इसी ग्रहण के अवसर पर अवन्तिवर्मा के मन्त्री शूर ने इस नाटक का अभिनय कराया था। इस प्रकार जेकोबी ने मुद्राराक्षस की रचना नवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में मानी है।

परन्तु काश्मीर राजा अवन्तिवर्मा के राज्य में विशाखदत्त की स्थिति का कोई पुष्ट प्रमाण नही मिलता। इसके अतिरिक्त काश्मीर के राजा पुष्कराक्ष को विशाखदत्त ने अपने मुद्राराक्षस में 'म्लेच्छ' कहा है। यदि विशाखदत्त काश्मीर के राजा अवन्तिवर्मा के आश्रय में रहे होते तो काश्मीर के राजा को 'म्लेच्छ' न कहते। इसके अतिरिक्त इतिहास में कहीं भी ऐसा उल्लेख नहीं है कि काश्मीर नरेश अवन्तिवर्मा ने किसी विदेशी राजा को अपने शासन काल में परास्त किया हो।

कवि ने नाटक की प्रस्तावना में कहा है- **'न शालेः स्तम्बकरिता वप्तुर्गुणमपेक्षते'**। इससे यह स्पष्ट है कि कवि ऐसे प्रान्त का निवासी था जहाँ धान की क षि बहुलता से की जाती थी और जनसाधारण को भी उसकी खेती के विषय में पूर्ण ज्ञान था। ऐसी अवस्था में कवि सम्भवतः बंगाल

अथवा बिहार का निवासी होगा, काश्मीर का नही। इतना ही नहीं कवि ने गौड़ देश की स्त्रियों के गालों की प्रशंसा की है-

"गौडीनां लोध्रधूलीपरिमलबहुलान्धूम्रयन्तः कपोलान्
क्लिश्नन्तः क ष्णिमानं भ्रमरकुलरुचः कु चितस्यालकस्य।
पांशुस्तम्बा बलानां तुरगखुरपुटक्षोभलब्धात्मलाभाः
शत्रूणामुत्तमांगे गजमदसलिलच्छिन्नमूलाः पतन्तु।।

तथा 'खस' जो उत्तर पूर्वी भारत की अमहत्त्वपूर्ण जाति है, उसे मलयकेतु की सेना में महत्त्वपूर्ण स्थान प्रदान किया है-

प्रस्थातव्यं पुरस्तात्खसमगधगणैर्मामुनव्यूह्य सैन्यैर्
गान्धारैर्मध्ययाने सयवनपतिभिः संविधेयः प्रयत्नः।
पश्चाद् गच्छन्तु वीराः शकनरपतयः संभ ताश्चीणहूणैः
कौलूताद्यश्च शिष्टः पथि परिव णुयाद्राजलोकः कुमारम्।।

इसके अतिरिक्त-

"वहति जलमियं पिनष्टि गन्धान्
इयमियमुद्ग्रथते स्रजो विचित्राः।
मुसलमिदमियं च पातकाले
मुहुरनुयाति कलेन हुंक तेन।।

मूंसल द्वारा ओखली में किसी स्त्री द्वारा कुछ कूटे जाने का संकेत है। इससे प्रो० राय ने यह निष्कर्ष निकाला है कि ओखली में चावल कूटे जा रहे होंगे और इससे बंगाल के पूर्वी भाग में दूरस्थित किसी गांव की तरफ संकेत है जहाँ अतिथि के आने पर स्त्रियों को कोई मिष्ठान्न तैयार करने के लिए चावल कूटने पड़ते हैं।

उपरिलिखित विवेचन के आधार पर यह निष्कर्ष बहुत आसानी से निकाला जा सकता है कि विशाखदत्त काश्मीर के राजा अवन्तिवर्मा के आश्रित कवि नहीं थे।

दूसरे राजा अवन्तिवर्मा कन्नौज के मौखरी वंशीय राजा थे। इन्हीं के पुत्र ग हवर्मा के साथ हर्षवर्धन की बहिन राज्यश्री का विवाह हुआ था और इन्होंने ही हर्षवर्धन के पिता प्रभाकरवर्धन की सहायता से हूणों को ५८२ ई० में पराजित किया था। प्रो० तैलंग, प्रो० ध्रुव, प्रो० मैक्डानल इत्यादि के अनुसार कवि ने इन्हीं अवन्तिवर्मा का उल्लेख अपने नाटक के भारतवाक्य में किया है। प्रो० ध्रुव का कहना है कि चन्द्रगुप्त तो नाटक का पात्र मात्र ही है। नाट्य परम्परा के अनुसार भरतवाक्य में कवि का अभिप्राय किसी पात्र विशेष से न होकर तत्कालीन राजा से ही होता है। अतः अवन्तिवर्मा पाठ ही शुद्ध है। तदनुसार विशाखदत्त का समय ६०० ई० पश्चात् का है।

प्रो० विन्टरनिट्ज का भी यह मत है कि देवी चन्द्रगुप्त नाटक के उपलब्ध अंशों से पता चलता है इसमें चन्द्रगुप्त द्वितीय की कथा है। जिसने शकों का नाश किया तथा अपने बड़े भाई कायर रामगुप्त को मार कर उसके राज्य पर अधिकार किया और उसकी पत्नी ध्रुवस्वामिनी से विवाह किया। उसका अभिनय चन्द्रगुप्त द्वितीय के समय में सम्भव नहीं था अतः विशाखदत्त का स्थितिकाल मौखरी राजा अवन्तिवर्मा के समय में ही ठीक जान पड़ता है। परन्तु देवी चन्द्रगुप्त के

कर्त्तव्य के विषय में प्रामाणिक रूप से कुछ भी कह पाना असम्भव है अतः इस आधार पर विशाखदत्त का स्थितिकाल निर्धारित करना उचित नही है।

परन्तु यदि अधिकांश संस्करणों में दिए गए **'पार्थिवश्चन्द्रगुप्तः'** पाठ को ही प्रामाणिक मान लिया जाए तो एक कठिनाई यह उपस्थित होती है कि भारत में तीन चन्द्रगुप्त हुए और उक्त श्लोक में किस चन्द्रगुप्त की तरफ सङ्केत है। प्रथम चन्द्रगुप्त, मौर्यसाम्राज्य की स्थापना करने वाला चन्द्रगुप्त मौर्य है, द्वितीय मगध में गुप्त साम्राज्य की स्थापना से सम्बन्ध रखने वाला चन्द्रगुप्त प्रथम है और त तीय चन्द्रगुप्त द्वितीय है जिसने अपनी अतुलित शक्ति से विक्रमादित्य की उपाधि ग्रहण की। इन तीन चन्द्रगुप्त में से सबसे पहला चन्द्रगुप्त मौर्य नही हो सकता क्योंकि कवि ने नाटक में न तो उसके प्रति आदरभाव प्रकट किया और न ही उसे विजेता के रूप में चित्रित किया है। कवि का अभिप्राय गुप्तवंश की स्थापना से सम्बन्धित चन्द्रगुप्त प्रथम से भी नहीं हो सकता क्योंकि यद्यपि यह एक शक्तिशाली सम्राट् था तथापि समस्त साहित्य में उसके द्वारा म्लेच्छ आक्रमणकारियों को परास्त किए जाने का उल्लेख कहीं भी प्राप्त नहीं होता। अतः कवि को यहाँ चन्द्रगुप्त द्वितीय ही अभिप्रेत होगा।

प्रो० काशीप्रसाद जायसवाल, प्रो० क ष्णामचारी, प्रो० कोनो, प्रो० सी० आर० देवधर इत्यादि ने भी इस पाठ को 'पार्थिवश्चन्द्रगुप्तः' ही मानकर इसमें वर्णित चन्द्रगुप्त को चन्द्रगुप्त द्वितीय माना है जिसका शासन ३७५-४१३ ई० था। म्लेच्छ शब्द से चन्द्रगुप्त द्वारा हूणों को पराजित करने का संकेत है। इसके अतिरिक्त पाटलिपुत्र की जिस सम द्ध अवस्था का वर्णन नाटक में किया गया है वह चन्द्रगुप्त द्वितीय के समय में ही थी। चीनी यात्री फाह्यान के विवरणों से भी इसकी पुष्टि होती है। इसके अतिरिक्त चन्दनदास के सुचरितों के कारण उसे बोधिसत्व से भी अधिक कहना गुप्तकाल में बौद्धधर्म के अभ्युदय को सूचित करता है।

विशाखदत्त की भाषा शैली से भी नाटक का चौथी पांचवी शताब्दी में लिखा जाना ही सूचित होता है।

कवि विशाखदत्त निस्सन्देह चन्द्रगुप्त द्वितीय के समकालीन ही नहीं अपितु उसकी राज्यसभा में भी रहे होंगे। मुद्राराक्षस के भरतवाक्य में उसके द्वारा ही प थ्वी की रक्षा की जाने की प्रार्थना कवि ने प्रशंसात्मक शब्दों में की है।

इस प्रकार अधिकांश विद्वानों ने विशाखदत्त का समय चतुर्थ शताब्दी के लगभग माना है।

परन्तु विशाखदत्त का समय ४०० ई० पश्चात् का अधिक समीचीन व तर्कसंगत प्रतीत नहीं होता क्योंकि मुद्राराक्षस के सभी पात्र-चन्द्रगुप्त मौर्य, चाणक्य, राजा नन्द, राक्षस इत्यादि ऐतिहाासिक पात्र है जिनका समय ३२० ई० पूर्व का है। अतः सात आठ सौ वर्ष पश्चात् किसी कवि द्वारा इन पात्रों पर आधारित मौलिक रूप से नाटक की रचना किया जाना अधिक युक्तिसंगत नहीं है। विशाखदत्त को चन्द्रगुप्त प्रथम का समकालीन अथवा उससे भी पूर्व का मानना ही अधिक युक्तिसंगत होगा। विद्वानों द्वारा दिए गए अन्य तथ्य भी जैसे पाटलिपुत्र की सम द्ध अवस्था, बौद्धधर्म का प्रचार एवं प्रसार तथा म्लेच्छों अर्थात् यवनों द्वारा भारत पर आक्रमण किया जाना व चन्द्रगुप्त मौर्य द्वारा उनको पराजित किया जाना आदि भी इस कथन की पुष्टि करते हैं।

सम्भवतः प्रो० आर० एस० पण्डित के मन में यही ऊहापोह था जिसका समाधान उन्होंने यह कहकर करने का प्रयत्न किया है- इस नाटक के अन्दर लेखक ने अपने श्रोताओं के सम्मुख कल्पना के द्वारा चतुर्थ शताब्दी पूर्व के अन्तिम चरण के समय की पाटलिपुत्र की झाँकी प्रस्तुत की है। नाटक

के अन्दर इस पर प्रकाश डाला गया है कि ग्रीक सेना के विजेता, चन्द्रगुप्त के द्वारा मौर्य साम्राज्य की स्थापना किस प्रकार हुई।

विशाखदत्त की रचनाएं

मुद्राराक्षस के अतिरिक्त विशाखदत्त को **देवी चन्द्रगुप्त** तथा अभिसारिकावचितक का रचयिता भी बताया गया है परन्तु इनमें से दूसरा ग्रन्थ तो प्राप्त ही नही है। इसका उल्लेख **अभिनवभारती** एवं **श्रंगार प्रकाश** में मिलता है। **देवी चन्द्रगुप्त** भी आंशिक रूप से ही प्राप्त हुआ है। इसमें चन्द्रगुप्त द्वितीय के पराक्रम व उसके भाई रामगुप्त की दुर्बलता का चित्रण है। रामगुप्त अपनी कायरता के कारण अपनी पत्नी ध्रुवस्वामिनी को शक्तिशाली शत्रु एक शक राजा को देने के लिए तत्पर हो जाता है परन्तु चन्द्रगुष्त रामगुप्त तथा शक राजा को मारकर ध्रुवस्वामिनी से विवाह कर लेता है। इसका उल्लेख बाण के हर्षचरित तथा राजशेखर की काव्यर्मीमासा से हुआ है। परन्तु इन दोनों ग्रन्थों के कर्त्तव्य की प्रामणिकता आज तक निश्चित नहीं हो पाई कि ये विशाखदत्त द्वारा लिखे भी गए है अथवा नहीं।

इस प्रकार मुद्राराक्षस कवि की एकमात्र रचना है जिसने उसे लब्धप्रतिष्ठ करवाया। मुद्राराक्षस ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर तैयार किया गया राजनैतिक दांवपेचों से भरपूर नाटक है।

विशाखदत्त ने शिव की स्तुति की है।

"धन्या केयं स्थिता ते शिरसि शशिकला किं नु नामैतदस्या
नामैवास्यास्तदेतत्परिचितमपि ते विस्मृतं कस्य हेतोः।
नारीं पृच्छामि नेन्दुं कथयतु विजया न प्रमाणं यदीन्दुर्
देव्या निह्नोतुमिच्छोरिति सुरसरितं शाठ्यमव्याद्विभोर्वः।

विष्णु की स्तुति करते हुए कहता है।

पीत्वा निरवशेषं कुसुमरसमात्मनः कुशलतया।
यदुद्गिरति भ्रमरः अन्येषां करोति तत्कार्यम्।

सूर्य की स्तुति मुक्त कण्ठ से की है। हिन्दूधर्म में आस्था रखने पर भी उनका अन्य धर्मों के प्रति भी उदार दृष्टिकोण था।

"शासनमर्हतां प्रतिपद्यध्वं मोहव्याधिवैद्यानाम्।
ये मुहूर्तमात्रकटुकं पश्चात्पथ्यमुपदिशन्ति।।

चतुर्थ अंक में क्षपणक जीव सिद्धि का आगमन कवि ने अपशकुन माना है परन्तु सम्भवतः दिगम्बर जैन मतानुयायी कवि की दृष्टि में आदरणीय न हों। 'अबीभत्सदर्शनं कृत्वा प्रवेशय'।

विशाखदत्त को विविध शास्त्रों का ज्ञान था। उनका राजनीति विषयक ज्ञान तो पग-पग पर परिलक्षित होता ही है। इसके अतिरिक्त अर्थशास्त्र के विभिन्न पारिभाषिक शब्दों जैसे द्रव्य, अद्रव्य, राजायत्त, सचिवायत्त तथा उभयायत्त त्रिविध सिद्धि षड्गुण, कृत्य, उपजाप, उपाय, बाह्यकोप, अन्तःकोप, अनुग्रह, निग्रह, स्वपक्ष, परपक्ष इत्यादि का प्रयोग कवि के अर्थशास्त्र सम्बन्धी ज्ञान का परिचायक है। अमात्यों व गुप्तचरों के गुण व दोषों का भी कवि को समुचित ज्ञान था। नाट्यशास्त्र का भी विशाखदत्त को पर्याप्त ज्ञान था

"कार्योपक्षेपमादौ तनुमपि रचयंस्तस्य विस्तारमिच्छन्
बीजानां गर्भितानां फलमतिगहनं गूढमुद्भेदयंश्च।
कुर्वन्बुद्धयाविमर्शं प्रस तमपि पुनः संहरन्कार्यजातं
कर्ता व वानाटकानामिममनुभवति क्लेशमस्मद्विधो वा।।

उनका न्याय दर्शन सम्बन्धी ज्ञान–

"साध्यं निश्चितमन्वयेन घटिते बिभ्रत्सपक्षे स्थितिं
व्याव त्तं च विपक्षतो भवति यत्तत्साधनं सिद्धये।
यत्साध्यं स्वयमेव तुल्यमभयोः पक्षे विरुद्धं च यत्
तस्यांगीकरणेन वादिन इव स्यात्स्वामिनो निग्रहः।।

वे ज्योतिषशास्त्र तथा गणितशास्त्र के पूर्ण पण्डित थे। जैसा कि १.६, ४.११, २०, २१ इत्यादि श्लोकों से अवगत होता है जैसे "रक्षत्येनं तु बुधयोगः"। 'दैवमविद्वांसः प्रमाणयन्ति' यह कहकर तथा कर्मठ चाणक्य को विजयी दिखलाकर कवि ने कर्मसिद्धान्त में अपनी आस्था प्रकट की है।

इस प्रकार विशाखदत्त का ज्ञान निर्विवाद बहुमुखी था।

मुद्राराक्षस का मूल स्रोत

धन जय का दशरूपक में दो पद्य प्राप्त होते है जिनमें मुद्राराक्षस का स्रोत ब हत्कथा से बतलाया गया है-

तत्र ब हत्तकथामूलं मुद्राराक्षसम् -
चाणक्यनाम्ना तेनाथ शकटालग हे रहः
क त्यां विधाय सहसा सपुत्रो निहतो न पः।
योगानन्दे यशः शेषे पूर्वनन्दसुतस्ततः
चन्द्रगुप्तः क तो राज्ये चाणक्येण महौजसा।।

इति ब हत्कथायां सूचितम् - दशरूपक

इसमें चन्द्रगुप्त को नन्द का पुत्र कहा गया है जो उसकी मुरा नामक शूद्र पत्नी से उत्पन्न हुआ।

परन्तु ब हत्कथा पैशाची भाषा में लिखी गई है जबकि उक्त दोनों श्लोक संस्क त भाषा में है। अतः ये ब हत्कथा के अंश नहीं हो सकते। प्रो० ध्रुव के अनुसार ये श्लोक वास्तव में क्षेमेन्द्र की ब हत्कथाम जरी से सम्बन्धित है। परन्तु वहां भी अमात्य राक्षस के नाम तथा उसके कार्यो का कहीं भी उल्लेख नहीं है। अतः इसे मुद्राराक्षस का स्रोत नहीं माना जा सकता।

विष्णु, वायु, मत्स्य, भागवत और अन्य पुराणों में राजा नन्द और चाणक्य की कथा का स्पष्ट निर्देश है।

शिशुनागवंश के दश राजाओं ने ३६२ वर्षो तक मगध पर राज्य किया। इस वंश के अन्तिम शासक महानन्द के शूद्र स्त्री से उत्पन्न एक पुत्र था जिसका नाम महापद्म था। महापद्म अत्यन्त शक्तिशाली था। इसने समस्त क्षत्रिय राजाओं का नाश किया। इसके बाद आने वाले सभी शूद्र राजा थे। इसने समस्त प थ्वी को अपने आधीन कर लिया। इसके सुमाल्य आदि आठ पुत्र थे जिन्होंने १०० वर्ष तक प थ्वी पर राज्य किया। तत्पश्चात् कौटिल्य नामक ब्राह्मण ने नन्दवंश का समूल नाश करके चन्द्रगुप्त को राज्य पर प्रतिष्ठित किया।

बौद्ध और जैन ग्रन्थों के अनुसार चन्द्रगुप्त शाक्य था। जिस जाति से यह सम्बन्ध रखता था वह डंतपलें कहलाती थी। क्योंकि जिस स्थान पर यह जाति बसी थी वह मयूरों से परिपूर्ण था। वह स्थान मयूर-पोषक कहलाता था। जब चन्द्रगुप्त अपनी माता के गर्भ में था तब पड़ौसी राजा के आक्रमण कर दिया जिसमें चन्द्रगुप्त का पिता मारा गया। गर्भवती रानी ने पुष्पपुर में आश्रय लिया जहाँ पशुओं के चरागाह में एक पुत्र उत्पन्न हुआ। चन्द्र नाम के बैल द्वारा उसकी रक्षा किए जाने के कारण वह चन्द्रगुप्त कहलाया। चाणक्य ने महापद्म को मारकर इसी को पाटलिपुत्र के सिंहासन पर बिठाया (मुद्राराक्षस द्वारा निरूपण विद्यालड्.कार, भूमिका, प ष्ठ ७५)

मुद्राराक्षस का स्रोत कुछ भी रहा हो परन्तु विशाखदत्त ने उसे अपनी काव्य प्रतिभा एवं काव्य कौशल से इस प्रकार सजा संवारकर प्रस्तुत किया है कि वह संस्क त साहित्य का अद्वितीय नाटक बन गया है। यह कहना सर्वथा उचित प्रतीत होता है कि नाटक की कथावस्तु की कल्पना विशाखदत्त की निजी है।

मुद्राराक्षस की पूर्व कथा

मुद्राराक्षस का अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि चन्द्रगुप्त मौर्य के सिंहासन पर अधिष्ठित होने से पूर्व पाटलिपुत्र अथवा कुसुमपुर पर नन्द नाम का

"क तागाः कौटिल्यो भुजग इव निर्याय नगराद्
यथा नन्दान्हत्वा न पतिमकरोन्मौर्यव षलम्।
तथाहं मौर्यन्दोः श्रियमपहरामीति क तधीः
प्रकर्ष मद्बुद्धेरतिशयितुमेष व्यवसित्ः।।

शक्तिशाली परन्तु घमण्डी (उत्सिक्तः - नन्दो सौ) तथा लालची (नन्दस्यैवार्थरुचेः) राजा राज्य करता था। उसने कालक्रम से अनेक राजाओं को पराजित कर प्रभूत धन एकत्रित कर लिया (नवनवतिशतद्रव्यकोटीश्वरास्ते) अपने सेवकों के प्रति वह अत्यन्त स्नेह भाव रखता था।

'मुद्रा तस्य, करांगुलिप्रणयिनी सिद्धार्थकस्तत्सुहृद्
तस्यैवापरलेख्यसूचितमिदं लेख्यं प्रयोगाश्रयम्।
सुव्यक्तं शकटेन भेदपटुभिः साधय सार्धं परैर
भर्त स्नेहपराड्.मुखेन क पणं प्राणार्थिना चेष्टितम्।।

राक्षस नाम ब्राह्मण उनका परम विश्वसनीय, नीतिपटु एवं स्वामिभक्त अमात्य था। जन्म से ब्राह्मण होने पर भी वह अत्यन्त पराक्रमी था।

राजा नन्द के आठ पुत्र थे। पिता और आठ पुत्र नवनन्द कहे जाते थे। तुलनीय -

"समुत्खाता नन्दा नव हृदयशल्या इव भुवः'
क त्ता मौर्ये लक्ष्मीः सरसि नलिनीव स्थिरपदा।
द्वयोः सारं तुल्यं द्वितयमभियुक्तेन मनसा
फलं कोपप्रीत्योर्द्विषति च विभक्तं सुहृदि च।।

मुरा नामक शूद्र पत्नी से उत्पन्न राजा नन्द के चन्द्रगुप्त नामक एक अन्य पुत्र भी था। सम्भवतः चन्द्रगुप्त राजा नन्द की अवैध सन्तान थी। इसी कारण नाटक में उसे पौनः पुन्येन कुलहीन कहा गया है

'प थिव्यां किं दग्धाः प्रथितकुलजा भूमिपतयः
पतिं पापे मौर्यं यदसि कुलहीनं व तवती।
प्रक त्या वा काशप्रभवकुसुमप्रान्तचपला
पुरन्ध्रीणां प्रज्ञा पुरुषगुणविज्ञानविमुखी।।

और राक्षस की उससे विमुखता का यही कारण था। यह स्पष्ट है कि चन्द्रगुप्त को शूद्र स्त्री का सन्तान होने के कारण कुलहीन नहीं कहा गया है प्रत्युत राजा नन्द द्वारा उससे विधिवत् विवाह न किए जाने के कारण अविवाहित उससे चन्द्रगुप्त का जन्म हो जाने के कारण उसे कुलहीन कहा गया है। अन्यथा राजा नन्द स्वयं ही शूद्र स्त्री से ही उत्पन्न हुआ था - शूद्रगर्भोद्भवो तिलुब्धो महापद्मनन्दः परशुराम इवापरो खिलक्षत्रान्तकारी भविता (विष्णुपुराण)। तब भी उसे उच्च कुल में उत्पन्न हुआ माना गया है-

'पतिं त्यक्त्वा देवं भुवनपतिमुच्चैरभिजनं
गता छिद्रेण श्रीवर्षलमविनीतेव व षली।
स्थिरीभूता चास्मिन्किमिह करवाम स्थिरमपि
प्रयत्नं नो येषां विफलयति दैवं द्विषदिव।।

इसके अतिरिक्त यदि चन्द्रगुप्त विवाहित स्त्री से उत्पन्न हुआ होता तो उसे भी नन्दवंश में सम्मिलित किया जाता और उसके जीवित रहते हुए राक्षस यह नहीं करता कि समस्त स्वामिकुल भाग्य के द्वारा नष्ट कर दिया गया।

"व ष्णीनामिव नीतिविक्रमगुणव्यापारशान्तद्विषां
नन्दानां विपुले कुले करूणया नीते नियत्या क्षयम्।
चिन्तावेशसमाकुलेन मनसा रात्रिंदिवं जाग्रतः
सैवेयं मम चित्रकर्मरचना भित्तिं विना वर्तते।

तथा—

"येन स्वामिकुलं रिपोरिव कुलं द ष्टं विनश्यत्पुरा
मित्राणां व्यसने महोत्सव इव स्वस्थेन येन स्थितम्।
आत्मा यस्य वधाय वः परिभवक्षेत्रीक तोपि प्रियस्
तस्येयं मम म त्युलोकपदवी वध्यस्रगाबध्यताम्।।

इतना ही नहीं सकल नन्द वंश के नाश की प्रतिज्ञा करते समय चाणक्य भी चन्द्रगुप्त को नन्द वंश में शामिल करता।

इसी बीच किसी अवसर पर राजनीतिपटु परन्तु आक ति से अभद्र दिखाई देने वाला चाणक्य नाम का ब्राह्मण नन्दों के भवन में उच्चासन पर बैठ गया। उसकी बदसूरती को देखकर नन्दों ने अपमानपूर्वक उसे आदर के आसन से हटा दिया। चाणक्य क्रोधावेश में वहीं अपनी शिखा खोलकर समस्त नन्द वंश को समूल नष्ट करने की प्रतिज्ञा लेता है।

"आरुह्यारूढकोपस्फुरणविषमिताग्रांगुलिमुक्तचूडां
लोकप्रत्यक्षमुग्रां सकलरिपुकुलोत्सादवीर्घां प्रतिज्ञाम्।

केनान्योनावलिप्ता नवनवतिशतद्रव्यकोटीश्वरास्ते
नन्दाः पर्यायभूताः पशव इव हताः पश्यतो राक्षसस्य।।

और कुसुमपुर से बाहर चला जाता है।

चाणक्य अपने सहाध्यायि इन्दुशर्मा नामक ब्राह्मण से मिलता है तथा जीवसिद्धि नाम क्षपणक का वेष धारण करवाकर उसे कुसुमपुर भेज देता है। वहाँ वह नन्दों के अमात्यों का विशेष रूप से राक्षस का अत्यन्त विश्वसनीय बन जाता है- 'विशेषतश्च तस्मिन् राक्षसः समुत्पन्नविश्रम्भः' चाणक्य स्वयं अभिचार (जादू टोने का मन्त्र) का अभ्यास करता है ताकि नन्दों को अस्वाभाविक म त्यु द्वारा मार दिया जाए।

"आविर्भूतानुरागः क्षणमुदयगिरेरुज्जिहानस्य भानोः
पर्णच्छायैः पुरस्तादुपवनतरवों दूरमाश्वेव गत्वा।
एते तस्मिन्निव त्ताः पुनरपरगिरिप्रान्तपर्यस्तबिम्बे
प्रायो भ त्यास्त्यजन्ति प्रचलितविभवं स्वामिनं सेवमानाः।।

परन्तु यहां अभिचार का अर्थ जादू टोने के मन्त्रों से न होकर प्रतिज्ञा पूर्ति के अर्थ में भी हो सकता है।

चाणक्य चन्द्रगुप्त से मिलता है। राजा नन्द के कुछ उच्चाधिकारी भद्रभट, पुरुषदत्त इत्यादि चन्द्रगुप्त की सहायता करने के लिए तत्पर हो जाते है। नन्द के आधे राज्य का लालच देकर पर्वतीय राजा पर्वतक को चाणक्य अपने पक्ष में कर लेता है। नन्दों के विरुद्ध आक्रमण कर दिया जाता है। राक्षस तथा अन्य सैनिकों द्वारा अद्‌भुत पराक्रम का प्रदर्शन किए जाने पर भी सब नन्द एक-एक करके मार दिए जाते हैं। सम्भवतः यह चाणक्य की अभिचार क्रियाओं का ही परिणाम हो।

देवे गते दिवमतद्विधम त्युयोग्ये
शैलेश्वरं तमधिक त्य क तः प्रयत्नः।
तस्मिन्नहते तनयमस्य तथाप्यसिद्धिर्
दैवं हि नन्दकुलशत्रुरसौ न विप्रः।।

अब नन्द वंश का केवल सर्वार्थसिद्धि ही बचा है। राक्षस उसे राजा बनाकर युद्ध करता रहना चाहता है परन्तु युद्ध के कारण नगरवासियों के कष्ट को सहन न करने के कारण सर्वार्थसिद्धि तपोवन चला जाता है- 'अपक्रान्ते तपोवनाय देवे सर्वार्थसिद्धे'। राक्षस तब भी नन्द राज्य को वापस लेने के प्रयत्न करता रहता है। उसकी प्रज्ञा, विक्रम व भक्ति से चाणक्य अत्यधिक प्रभावित होता है। वह अनुभव करता है कि उसके द्वारा चन्द्रगुप्त का अमात्य पद स्वीकार कर लिए जाने पर चन्द्रगुप्त का राज्य चिरस्थायी हो सकता है। वह अपना कार्यभार राक्षस को सौंप देना चाहता है। परन्तु नन्दवंश का कोई भी व्यक्ति जीवित है तब तक राक्षस को चन्द्रगुप्त का अमात्य पद स्वीकार नहीं करवाया जा सकता। इसी कारण वह तपोवन गए हुए सर्वार्थसिद्धि का भी वध करवा देता है।

इससे नन्द वंश की राज्यलक्ष्मी शत्रुओं से वापस लेने का राक्षस का निश्चय और भी अधिक द ढ़ हो जाता है। वह ऐसा करके स्वर्गगत अपने स्वामी नन्दों को प्रसन्न करना चाहता है- 'देवः स्वर्गगतो पि शात्रववधेनाराधितः स्यादिति'। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए वह कुसुमपुर से बाहर चला जाना ही उचित समझता है।

तभी चन्द्रगुप्त का वध करवाने के लिए राक्षस एक विषकन्या का प्रयोग करता है परन्तु चाणक्य की कुटिलता से वह पर्वतक के सम्पर्क में आती है और वह मार दिया जाता है। अपने पिता के वध से दुःखी मलयकेतु चाणक्य के गुप्तचर परन्तु अपने क त्रिम मित्र भागुरायण के कहने पर राक्षस की शरण में चला जाता है। इतनी पूर्वकथा का संकेत कर अब राक्षस और मलयकेतु मिलकर चन्द्रगुप्त पर आक्रमण करने की योजना बना रहे है यहाँ से मुद्राराक्षस नाटक का प्रारम्भ होता है।

मुद्राराक्षस का नामकरण

संस्क त साहित्य में काव्यों का नामकरण प्रायः या तो नायक नायिका के नाम पर किया जाता है यथा भवभूति का मालतीमाधव, कालिदास का विक्रमोर्वशीयम् आदि अथवा कथा की किसी महत्वपूर्ण घटना के आधार पर किया जाता है यथा कालिदास का अभिज्ञान शाकुन्तलम्। इसमें अभिज्ञान का महत्व है।

इसी प्रकार मुद्राराक्षस का नामकरण भी इसके कथानक की एक महत्त्वपूर्ण घटना के आधार पर किया गया है और वह है राक्षस की मुद्रा प्राप्ति। जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है कि चाणक्य चन्द्रगुप्त के राज्य को चिरस्थायी बनाने के लिए राक्षस को उसका अमात्यपद ग्रहण करवाना चाहता है। अचानक ही अपने गुप्तचर निपुणक द्वारा चाणक्य को राक्षस के नाम से अंकित अगूँठी प्राप्त हो जाती है। उसे प्राप्त करते ही चाणक्य को विश्वास हो जाता है कि अब तो राक्षस अवश्य ही वश में कर लिया जाएगा 'ननु राक्षस एवास्मदङ्.गुलीप्रणयी संव त इति'। प्रारम्भ से अन्त तक इस अँगूठी का महत्व रहा है। इसी की सहायता से चाणक्य कपट पत्र के द्वारा राक्षस और मलयकेतु में भेद उत्पन्न करके राक्षस का निग्रह करने में सफल हो पाया है क्योंकि समस्त चालों की जड़ कपट पत्र पर राक्षस की यही मुद्रा अङि्.कत थी।

'लेखो यं न ममेति नोत्तरमिदं मुद्रा मदीया यतः
सौहार्दं शकटेन खण्डितमिति श्रद्धेयमेतत्कथम्।
मौर्ये भूषणविक्रयं नरपतौ को नाम संभावयेत्
तस्मात्संप्रतिपत्तिरेव हि वरं न ग्राम्यमत्रोत्तरम्।।

इस मुद्रा के आधार पर ही इस नाटक का 'मुद्राराक्षस' नामकरण किया गया है। अपनी ही मुद्रा को अपने ही विरुद्ध प्रयुक्त होते देखकर राक्षस विवश हो जाता है।

इसके अतिरिक्त किसी नाटक के नामकरण से ही उसके कथानक की तरफ भी संकेत मिलना चाहिए। मुद्राराक्षस के नामकरण में यह विशेषता भी पाई जाती है। इस नाटक के कथानक से यह स्पष्ट ही है कि इसमें राक्षस मुद्रा के द्वारा ही जीता गया है और इसका नामकरण भी प्रारम्भ से इस बात को स्पष्ट कर देता है- 'मुद्रया जितः राक्षसः यस्मिन् इति मुद्राराक्षसः। तदधिक त्य क तो ग्रन्थः इति मुद्राराक्षसम्'। यहां मध्यमपदलोपी बहुव्रीहि समास है।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि मुद्राराक्षस नाटक का नामकरण सर्वथा सार्थक है।

मुद्राराक्षस की समीक्षात्मक आलोचना

सात अङ्.कों में निबद्ध मुद्राराक्षस संस्क त साहित्य का अद्वितीय नाटक है। इसका कथानक ऐतिहासिक है। अतः प्रख्यात है। इसमें कवि ने प्रणयकथा को अपनी कथावस्तु का आधार नही बनाया। यह नाटक पूर्णतया ऐतिहासिक होने के साथ - साथ कूटनीति पर भी आश्रित है। इस नाटक की सबसे प्रमुख विशेषता यह है कि इसमें नायिका का ही नहीं अपितु स्त्री पात्रों तथा

विदूषक दोनों का ही सर्वथा अभाव है। चन्द्रगुप्त और मलयकेतु की प्रतीहारी शोणोत्तरा और विजया को छोड़कर सम्पूर्ण नाटक में केवल एक स्त्री पात्र है और वह है चन्दनदास की पत्नी। वह अन्तिम अड्.क में क्षणभर के लिए रड्.गम च पर आती है परन्तु कथानक के विकास में उसका तनिक भी योगदान नहीं है। स्त्री पात्र न होने के कारण प्रेम के लिए इस नाटक में वातावरण ही नहीं है। इसी प्रकार विदूषक के न होने से इस नाटक का वातावरण आद्योपान्त गम्भीर ही रहा है परन्तु यह कवि की श्रेष्ठता ही है कि गम्भीरता होने के बाद भी नाटक की रोचकता में जरा भी कमी नहीं आई है।

(क) नाटक की कथावस्तु

नन्दवंश का अन्त हो जाने पर चन्द्रगुप्त मौर्य के पाटलिपुत्र के राजा बन जाने के पश्चात् से मुद्राराक्षस का कथानक प्रारम्भ होता है। चन्द्रगुप्त का अमात्य चाणक्य नन्दवंश के अमात्य राक्षस को चन्द्रगुप्त का अमात्यपद् स्वीकार करवाना चाहता है क्योंकि प्रज्ञा, विक्रम और भक्ति जैसे दुर्लभ गुणों से युक्त अमात्य को पाकर चन्द्रगुप्त का राज्य निष्कंटक, सम द्ध एवं चिरस्थायी हो सकता है। परन्तु दूसरी तरफ राक्षस नन्दवंश में प्रगाढ़ भक्ति होने के कारण चन्द्रगुप्त से राजलक्ष्मी छीनकर स्वर्गगत अपने स्वामी नन्दों को प्रसन्न करना चाहता है। दोनों अमात्य अपने-२ प्रयोजन की सिद्धि के लिए अनेकानेक योजनाएँ बनाते है। सौभाग्यवश चाणक्य को अपने दूत निपुणक द्वारा राक्षस की अगूँठी प्राप्त हो जाती है। इसी के कारण अन्ततोगत्वा चाणक्य राक्षस को अमात्यपद स्वीकार करवाने में सफल हो जाता है। अतः इसी के आधार पर नाटक का 'मुद्राराक्षस' नामकरण हुआ।

प्रथम अंक

नान्दी श्लोकों के पश्चात् सूत्रधार प्रवेश करता है व मुद्राराक्षस नाटक का संक्षिप्त परिचय देता है जिसका अभिनय किया जाने वाला है। सूत्रधार को नटी से पता चलता है कि चन्द्रग्रहण के कारणनटी के द्वारा ब्राह्मणों को भोज के लिए आमन्त्रित किया गया है। सूत्रधार इसका खण्डन करते हुए कहता है कि चन्द्रग्रहण हो ही नहीं सकता। चाणक्य नेपथ्य में केवल 'चन्द्रग्रहण' ये शब्द ही सुन पाया। नाम की समानता के कारण वह समझता है कि राक्षस मलयकेतु के साथ मिल कर चन्द्रगुप्त पर आक्रमण करने जा रहा है। चाणक्य अत्यधिक क्रोधित हो जाता है। और यह कहते हुए रंगमंच पर प्रवेश करता है कि 'मेरे रहते हुए कौन चन्द्रगुप्त पर आक्रमण कर सकता है।' इस प्रकार नाटककार अत्यन्त स्वाभाविक ढंग से नाटक के मुख्य पात्र को रंगमंच पर ले आता है।

इसी अंक में चाणक्य यह उद्घोषणा करता है कि वह प्रज्ञा, विक्रम और भक्ति जैसे दुर्लभ गुणों से युक्त राक्षस को चन्द्रगुप्त का आमात्य पद स्वीकार करवा कर चन्द्रगुप्त की राज्यलक्ष्मी को चिरस्थायी बनाना चाहता है। वह उन सब योजनाओं का भी उल्लेख करता है जिनका सूत्रपात उसने इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए किया है।

सर्वप्रथम तो चाणक्य ने नन्दवंशीय सर्वार्थसिद्धि को तपोवन चले जाने पर भी मरवा दिया ताकि नन्दवंश का कोई भी व्यक्ति जीवित न रहे। उसने यह लोकापवाद फैला दिया कि राक्षस के द्वारा विषकन्या का प्रयोग करके उनका अत्यन्त उपकारी मित्र पर्वतक मरवा दिया गया। पर्वतक के पुत्र मलयकेतु को भागुरायण द्वारा एकान्त में यह कह कर डरा दिया गया कि 'तेरा पिता चाणक्य द्वारा मारा गया है' और उसे भागुरायण द्वारा ही कुसुमपुर से राक्षस के पास भेज दिया। कुसुमपुर में रहने वाले नन्दों के मित्रों का पता लगाने के लिए नाना वेष में अनेक गुप्तचर नियुक्त कर दिए। चन्द्रगुप्त का साथ देने वाले भद्रभट इत्यादि प्रधान पुरुषों को पूर्णरूप से सन्तुष्ट कर दिया। चन्द्रगुप्त के जीवन की रक्षा के लिए उसके समीप अनेक विश्वस्त सेवकों को नियुक्त कर दिया। अपने

बाल्यकाल के सहपाठी इन्दु शर्मा नामक ब्राह्मण को जीवसिद्धि क्षपणक का रूप धारण करवाकर नन्द के अमात्यों के साथ नन्दों के नाश से पूर्व ही उसकी मित्रता करवा दी। राक्षस का उस पर विशेष रूप से विश्वास है।

राक्षस के मित्र शकटदास से एक पत्र लिखवाकर निपुणक द्वारा प्राप्त राक्षस की अँगूठी से उसे मुद्रित कर दिया। जीवसिद्धि नामक क्षपणक को इस आरोप में कुसुमपुर से निष्कासित करवा दिया कि उसने पर्वतक को विषकन्या का प्रयोग करके मरवाया है। यह वस्तुतः चाणक्य का ही इन्दुशर्मा नामक मित्र है। राक्षस के मित्र शकटदास को फाँसी का आदेश दिलवा दिया परन्तु साथ ही अपने गुप्तचर सिद्धार्थक द्वारा उसे वध्यस्थल से भगाकर राक्षस की शरण में पहुँचा दिया। राक्षस के मित्र चन्दनदास की सारी सम्पत्ति हड़पकर उसे उसके पुत्र व पत्नी सहित इस आरोप में कारागार में डलवा दिया कि उसने राक्षस के परिवार को छिपा कर राजद्रोह किया है। पर्वतक के आभूषण विश्वावसु इत्यादि तीन भाइयों को दिलवा दिए तथा उन्हें कुछ आदेश किया। परन्तु पाठकों को यह नहीं पता कि उन्हें क्या आदेश दिया गया है। भद्रभट, पुरुषदत्त, डिंङ्गरात, बलगुप्त, राजसेन रोहिताक्ष, विजयवर्मा इत्यादि प्रधान पुरुषों को राक्षस के पास भेज दिया परन्तु अन्य लोग यही समझते हैं कि वे चन्द्रगुप्त से असंतुष्ट होकर वास्तव में ही राक्षस की शरण में चले गए हैं।

इस प्रकार चाणक्य की गूढ कूटनीति को प्रदर्शित करते हुए प्रथम अंक की समाप्ति हो जाती है।

द्वितीय अंक

विराधगुप्त नामक राक्षस के गुप्तचर के आगमन से जो जीर्णविष नामक सपेरे का वेष धारण करके कुसुमपुर के समाचार जानने गया था, द्वितीय अंक का प्रारम्भ होता है।

इसी अंक में राक्षस अपनी योजनाओं को बनाने को प्रयोजन बतलाता है कि वह केवल अपने दिवंगत स्वामियों को प्रसन्न करने के लिए ही चन्द्रगुप्त से उनका राज्य वापस लेना चाहता है। अंक के प्रारम्भ में राक्षस इस बात से अत्यधिक चिन्तातुर है कि उसकी योजनाएँ सफल भी हो पाएंगी अथवा नहीं। तभी मलयकेतु का क चुकी राक्षस के लिए मलयकेतु द्वारा अपने शरीर से उतार कर भेजे गए आभूषण लाता है जिन्हें राक्षस मलयकेतु की भावनाओं का आदर करने के लिए ही पहन लेता है। राक्षस चन्द्रगुप्त को मारने के लिए जो योजनाएँ बनाता है तथा वे किसी प्रकार असफल हो जाती है, इसका ज्ञान पाठकों को विराधगुप्त व राक्षस के वार्तालाप से होता है।

राक्षस अपने परिवार को चन्दनदास के घर में रख कर एक सुरंग के रास्ते कुसुमपुर से बाहर आ गया। अपने मित्र शकटदास को विपुल धनराशि देकर कुसुमपुर में स्थापित कर दिया ताकि वहाँ रहने वाले उसके सेवकों को आर्थिक कठिनाई न हो। शत्रुओं के समाचार जानने के लिए तथा उसके संगठन को तोड़ने के लिए जीवसिद्धि नामक क्षपणक को नियुक्त किया जो वास्तव में इन्दुशर्मा नामक ब्राह्मण है तथा चाणक्य का ही गुप्तचर है। चन्द्रगुप्त को मारने के लिए उसने एक विषकन्या नियुक्त की जो चाणक्य की कुटिलता से पर्वतक के सम्पर्क में आई और चन्द्रगुप्त के स्थान पर पर्वतक को मार दिया गया परन्तु उसे मारने का अपयश राक्षस पर आ गया।

पर्वतक पुत्र मलयकेतु के भी कुसुमपुर से भाग जाने पर चाणक्य द्वारा पर्वतक के भाई वैरोचक को आधा राज्य देने की घोषणा कर दी गई तथा नन्दभवन में प्रवेश करने का शुभ मुहूर्त आधी रात में बतलाया गया। चाणक्य द्वारा कुसुमपुर में रहने वाले सभी शिल्पियों को बुलवा कर राजभवन को सजाने का आदेश दिया गया परन्तु उनके द्वारा बतलाया गया कि पूर्वद्वार तो सूत्रधार दारुवर्मा द्वारा पहले ही सजा दिया गया। वे बाकी सजावट कर देंगे। चाणक्य तभी समझ गया कि दाल में कुछ काला है। उसने नन्दभवन में प्रवेश करते समय वैरोचक को मणिमुक्ता जड़ित मुकुट तथा

मालाओं से अलङ्कृत कर चन्द्रगुप्त की हथिनी चन्द्रलेखा पर बिठा दिया तथा चन्द्रगुप्त के अनुयायी राजाओं को भी उसके साथ कर दिया।

दारुवर्मा, जो राक्षस द्वारा यन्त्रतोरण गिरा कर चन्द्रगुप्त को मारने के लिए नियुक्त किया गया था, वैरोचक को ही चन्द्रगुप्त समझ बैठा। इसी बीच महावत वर्वरक ने भी, जो राक्षस द्वारा ही चन्द्रगुप्त को मारने के लिए नियुक्त किया गया था, वैरोचक को ही चन्द्रगुप्त समझ कर, हथिनी की जंजीर से लटकती हुई छुरी हाथ में पकड़ ली। छुरी द्वारा प्रहार की सम्भावना करती हुई हथिनी ने अपनी गति मन्द कर दी और इस प्रकार पूर्वगणना के अनुसार ही दारुवर्मा द्वारा गिराए गए यन्त्रतोरण से महावत वर्वरक मारा गया। यह देख दारुवर्मा ने अपनी म त्यु निश्चित जान कर यन्त्रतोरण को नियन्त्रित करने वाली लोहे की कील को हटा दिया। परिणामतः पूरा यन्त्रतोरण वैरोचक पर गिर पड़ा और वह तुरन्त ही मर गया। दारुवर्मा वैरोचक के आगे चलने वाले पैदल अनुचरों द्वारा पत्थर मार-मार कर मार दिया गया। इस प्रकार चन्द्रगुप्त के आधे राज्य का भागीदार वैरोचक तथा राक्षस के दोनों गुप्तचर दारुवर्मा और वर्वरक चाणक्य की कूटनीति से मार दिए गए।

अभयदत्त वैद्य भी, जो राक्षस द्वारा चन्द्रगुप्त को विष देकर मारने के लिए नियुक्त किया गया था, चाणक्य की बुद्धिमता से उसी विष को पिला कर मार दिया गया। इसी प्रकार चन्द्रगुप्त के शयनागार में राक्षस द्वारा नियुक्त प्रमोदक भी चाणक्य के इस प्रश्न का कि 'तुम्हारे पास इतना अधिक धन कहाँ से आया' सुसंगत उत्तर न दे सकने के कारण चाणक्य द्वारा मरवा दिया गया। बीभत्सक आदि जो राक्षस के कथनानुसार चन्द्रगुप्त को मारने के लिए राजग ह की दीवार में सुरंग बनाकर पहले से ही वहाँ रह रहे थे, चाणक्य द्वारा निरीक्षण किए जाने पर चावल के कण लेकर निकलती हुई चीटियों की पंक्ति को देख और यह सोच कर कि वह कक्ष पुरुषयुक्त है, आग लगवा दिया गया। धुएँ के कारण अवरुद्ध द ष्टि होने से निकलने का मार्ग न मिलने के कारण वे बीभत्सक आदि उसी आग में जल कर भस्म हो गए। इस प्रकार राक्षस की सारी योजनाएँ असफल ही नहीं अपितु अनिष्ट फल वाली हो गई।

विराधगुप्त राक्षस को यह भी बतलाता है कि उसके तीन मित्रों क्षपणक जीवसिद्धि, शकटदास और चन्दनदास को किस अपराध में पकड़ लिया गया है और उन्हें क्या-क्या दण्ड दिया गया है। तभी प्रथम अंक में वर्णित चाणक्य की योजनानुसार सिद्धार्थक शकटदास को वध्यस्थल से भगा कर राक्षस के पास ले आता है। राक्षस प्रसन्न होकर पुरस्कार रूप में अपने शरीर से उतार कर वही आभूषण सिद्धार्थक को दे देता है जो कुछ समय पूर्व ही मलयकेतु का क चुकी उसे पहना कर गया था। सिद्धार्थक राक्षस की मुद्रा से मुद्रित कर, उन्हें वहीं रखवा देता है। शकटदास राक्षस की अँगूठी पहचान लेता है व सिद्धार्थक से उसे ले लेता है। राक्षस वही अँगूठी शकटदास को राजकीय कार्य चलाने के लिए दे देता है। सिद्धार्थक वहीं रह कर राक्षस की सेवा करने लगता है।

उन दोनों के चले जाने पर विराधगुप्त बतलाता है कि मलयकेतु के कुसुमपुर से भागने के कारण चाणक्य और चन्द्रगुप्त में मनमुटाव रहने लगा है। राक्षस यह सुनकर अत्यधिक प्रसन्न होता है तथा विराधगुप्त द्वारा ही अपने प्रिय मित्र स्तनकलश नामक वैतालिक को सन्देश भिजवाता है कि जब-जब चाणक्य चन्द्रगुप्त की आज्ञा का उल्लंघन करे तब-तब वह चन्द्रगुप्त को चाणक्य के विरुद्ध भड़काने में समर्थ श्लोक गाए। विराधगुप्त चला जाता है।

तभी शकटदास राक्षस के पास तीन आभूषण भेजता है जो बेचे जा रहे हैं। राक्षस उन्हें बहुमूल्य समझ कर खरीदने की अनुमति दे देता है। वास्तव में ये पर्वतक के आभूषण ही हैं जिसमें प्रथम अंक में चाणक्य के कहने से विश्वावसु आदि तीन भाइयों ने चन्द्रगुप्त से पर्वतक के श्राद्ध के अवसर पर ग्रहण किया था और अब चाणक्य की योजनानुसार ही राक्षस को बेच देते हैं।

इस प्रकार इस अंक में राक्षस की नीतियों पर विस्तार से प्रकाश डाला गया है। इसी अंक में वह चाणक्य और चन्द्रगुप्त के बीच फूट डलवाने की योजना भी बनाता है और इसी अंक में हमें राक्षस के भी राजनीति का कुशल खिलाड़ी होने का स्पष्ट संकेत प्राप्त होता है।

त तीय अंक

मुद्राराक्षस नाटक में त तीय अंक का विशेष महत्व है इसमें चन्द्रगुप्त और चाणक्य के कृतककलह का वर्णन किया गया है जो नाटक को एक नया मोड़ देता है। यही मलयकेतु के मन में राक्षस के प्रति अविश्वास उत्पन्न करने का मुख्य कारण बन जाता है। इसी कलह से सन्दिग्ध बुद्धि वाले मलयकेतु का अविश्वास प चम अंक की योजनाओं से और भी अधिक द ढ़ हो जाता है और वह राक्षस को अपमानित कर निष्कासित कर देता है।

इस अंक का कथानक बहुत संक्षिप्त है। चन्द्रगुप्त और चाणक्य की पूर्वयोजनानुसार चाणक्य कुसुमपुर में चन्द्रगुप्त द्वारा घोषित कौमुदी महोत्सव का निषेध करवा देता है परन्तु चन्द्रगुप्त ऐसा अभिनय करता है जैसे कि चाणक्य द्वारा इस निषेध का ज्ञान उसे नहीं है। वह सुगांग महल की छत पर चढ़कर जब कुसुमपुर को कौमुदीमहोत्सव मनाए जाने से रहित देखता है तो वह अत्यधिक क्रुद्ध हो जाता है व क चुकी द्वारा चाणक्य को बुलवाता है। चन्द्रगुप्त द्वारा प्रणाम किए जाने पर चाणक्य उसे सार्वभौम सम्राट् होने का आशीर्वाद देकर स्वयं को बुलवाए जाने का कारण पूछता है। चन्द्रगुप्त उससे कौमुदी महोत्सव के निषेध का कारण पूछता है। चाणक्य इसका सीधा उत्तर न देकर यह कह देता है कि तुम सचिवायत सिद्धि (मंत्री के अधीन सफलता वाले) हो अतः हम अपनी इच्छानुसार कार्य करेंगे।

चाणक्य के इतना कहने पर ही चन्द्रगुप्त के दो वैतालिकों में से प्रथम तो चन्द्रगुप्त का अपना व्यक्ति है। वह शिव और विष्णु की स्तुति करता है परन्तु दूसरा वैतालिक जो स्तनकलश नामक राक्षस का गुप्तचर है, राक्षस के पूर्वादेशानुसार चन्द्रगुप्त को चाणक्य के विरुद्ध भड़काने में समर्थ श्लोक पढ़ता है। चन्द्रगुप्त अपने क चुकी से उन्हें एक लाख स्वर्ण मुद्राएँ देने की कहता है। परन्तु चाणक्य उसे रोक देता है। इससे तो राजा और भी अधिक क्रोधित हो जाता है। चाणक्य कहता है कि यदि तुम यह प्रतिबन्ध सहन नहीं कर सकते तो अपना राज्यभार स्वयं वहन करो। चन्द्रगुप्त इसे स्वीकार कर लेता है। व अब वह राजा के रूप में चाणक्य से कौमुदीमहोत्सव का निषेध करने का कारण पूछता है।

चाणक्य भद्रभट, पुरुषदत्त, डिंगरात, बलगुप्त, राजसेन, भागुरायण, लोहिताक्ष और विजयवर्मा के चन्द्रगुप्त से विरक्त होकर मलयकेतु की शरण में जाने के कारण विस्तार से बतलाता है तथा यह भी बतलाता है कि उन्हें वहां जाने से रोका जाना सम्भव किस कारण से नहीं था (वस्तुतः ये सब चाणक्य की योजनानुसार ही मलयकेतु के पास चले गए हैं)। तत्पश्चात् चन्द्रगुप्त पुनः भाग कर राक्षस की शरण में जाने वाले मलयकेतु की उपेक्षा करने का कारण चाणक्य से पूछता है। चाणक्य उसका भी बहुत तर्कसंगत उत्तर दे देता है और अन्त में चन्द्रगुप्त चाणक्य द्वारा राक्षस की उपेक्षा किए जाने का कारण पूछता हैं इस प्रश्न का भी चाणक्य दो टूक उत्तर दे देता है। परन्तु चन्द्रगुप्त यह कहकर अपना असन्तोष प्रकट कर देता है कि यद्यपि तर्क द्वारा हम आपको (चाणक्य को) नहीं जीत सकते तथापि हर प्रकार से राक्षस ही अधिक प्रशंसनीय है और अपनी विजय का श्रेय भी वह चाणक्य को न देकर भाग्य को देता है। इस पर तो चाणक्य इतना अधिक क्रोधित हो जाता है कि स्वयं चन्द्रगुप्त को यह आशंका हो जाती है कि कहीं आर्य चाणक्य वास्तव में तो क्रोधित नहीं हो गए। सम्भवतः चाणक्य भी चन्द्रगुप्त की मनःस्थिति को भाँप जाता है अतः वह यह कहते

हुए कि 'यदि मुझसे श्रेष्ठ राक्षस को समझा जाता है तो वह शस्त्र राक्षस को ही दे दो' कृतककलह की समाप्ति कर देता है।

चन्द्रगुप्त अपने क चुकी वैहीनर से राज्य में यह घोषणा करने का आदेश दे देता है कि 'चाणक्य को अमात्यपद से हटाकर चन्द्रगुप्त स्वयं राज्य करेगा'। चन्द्रगुप्त क चुकी को विचारमग्न देखकर पूछता है कि क्या सोच रहे हो। क चुकी कहता है कि सौभाग्य से अब आप राजा हो गए।

क चुकी के इसी कथन से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि चाणक्य और चन्द्रगुप्त के मध्य वह कृतककलह कितने स्वाभाविक ढंग से सम्पन्न हुआ होगा। चन्द्रगुप्त के इस कथन से कि 'आर्य की आज्ञा से यद्यपि उनकी कृतककलह वाली योजना एक पाप करने के समान स्वीकार कर ली थी तथापि मेरा हृदय लज्जा से विदीर्ण हुआ जा रहा है। 'आर्य चाणक्य अपने कार्य में सफलता प्राप्त करें' इस प्रकार इस अंक की समाप्ति होती है।

चतुर्थ अंक

पाटलिपुत्र का समाचार ज्ञात कर राक्षस के गुप्तचर करभक के पथिक वेष में रंगमंच पर प्रवेश करने से चतुर्थ अंक प्रारम्भ होता है। द्वारपाल उसे कुछ समय तक प्रतीक्षा करने को कहता है क्योंकि राक्षस रात्रि में देर तक जागने के कारण शिरोवेदना से पीड़ित है। इधर राक्षस को शकटदास के साथ चिन्तित अवस्था में दिखालाया गया है। द्वारपाल द्वारा करभक के आगमन के विषय में बतलाए जाने पर राक्षस उसे तुरन्त अन्दर बुलवाता है। तभी मयलकेतु भागुरायण के साथ शिरोवेदना से पीड़ित राक्षस को देखने के लिए पहुँच जाता है। मार्ग में ही भागुरायण मयलकेतु को यह संकेत दे देता है कि राक्षस की शत्रुता चाणक्य से है, चन्द्रगुप्त से नहीं और ऐसा सम्भव है कि कभी राक्षस और चन्द्रगुप्त सन्धि कर लें। मलयकेतु दरवाजे की आड़ से ही करभक और अमात्य की बात सुनना चाहता है। राक्षस के प्रति कोई दुराभाव होने के कारण वह ऐसा नहीं करता अपितु वास्तविक स्थिति को जानने के लिए ही वह ऐसा करता है क्योंकि उसका ऐसा विश्वास है कि मन्त्री राजाओं को उनका उत्साह भंग हो जाने के भय से वास्तविक स्थिति से अवगत नहीं करवाते।

करभक राक्षस को बतलाता है किस प्रकार चन्द्रगुप्त द्वारा घोषित कौमुदीमहोत्सव का निषेध चाणक्य द्वारा कर दिया गया और किसी प्रकार चन्द्रगुप्त द्वारा अमात्य राक्षस की प्रशंसा करके चाणक्य को अमात्यपद से हट दिया गया। यह सुनकर मलयकेतु भागुरायण से कहता है कि अमात्य राक्षस की प्रशंसा करके चन्द्रगुप्त ने उसके प्रति अपना पक्षपात दिखला दिया है। भागुरायण यह कहकर कि 'गुण प्रशंसा से इतना नहीं जितना कि चाणक्य को अमात्य पद से हटा कर' मलयकेतु को राक्षस के प्रति और भी अधिक शंकित कर देता है। राक्षस करभक से पूछता है कि चन्द्रगुप्त का चाणक्य के प्रति क्रुद्ध होने का क्या केवल यही एक कारण है अथवा अन्य कारण भी हैं। मलयकेतु द्वारा राक्षस की इस जिज्ञासा का कारण पूछे जाने पर भागुरायण पुनः यह कह कर कि अनेक कारणों से उत्पन्न शत्रुता चिरस्थायी होगी उसके कान भर देता है। इसी प्रकार राक्षस द्वारा कही गई प्रत्येक बात का विपरीत ढंग से ही स्पष्टीकरण कर वह मयलकेतु के मन में शंका के बीज बो देता है। वह उसे भली भाँति यह समझा देता है कि चन्द्रगुप्त चाणक्य को अमात्यपद से हटाकर, राक्षस को यह सोचकर कि यह 'हमारा पैत क अमात्य है' अपना अमात्य बना लेगा और राक्षस भी नन्दवंश में निरतिशय भक्ति होने के कारण यह सोचकर कि 'यह चन्द्रगुप्त नन्दवंश का ही है' इसका अमात्यपद स्वीकार कर लेगा। ऐसा होने पर वे दोनों मलयकेतु को दूध में से मक्खी की भाँति निकाल कर फेंक देंगे।

परन्तु वास्तविकता इसके विपरीत है। राक्षस चाणक्य को अमात्यपद से हटाए जाने के कारण यह सोच कर प्रसन्न हो रहा है कि अब उसे लिए चन्द्रगुप्त को जीतना सरल हो जाएगा और वह अपने उद्देश्य को प्राप्त कर लेगा। इसी शुभ घटना की सूचना देने के लिए वह मलयकेतु को देखना चाहता है। मलयकेतु तो वहाँ पहले से ही छिप कर खड़ा है अतः तुरन्त बाहर आ जाता है। मलयकेतु द्वारा यह पूछे जाने पर कि हमें आक्रमण करने के लिए कितने दिन तक प्रतीक्षा करनी पड़ेगी, राक्षस बतलाता है कि अब प्रतीक्षा करने का समय समाप्त हो गया है क्योंकि चाणक्य चन्द्रगुप्त से अलग हो गया है। जब चन्द्रगुप्त राज्य चलाने मे सवर्था असमर्थ है। इसी अवसर का लाभ उठाते हुए हम शत्रु पर आक्रमण कर देगें। मलयकेतु राक्षस के प्रति शङ्का से तथा युद्ध करने से उत्साह से युक्त होकर वहाँ से चला जाता है।

राक्षस क्षपणक जीवसिद्धि से जो वास्तव में चाणक्य का ही गुप्तचर है, प्रयाण करने का शुभ मुहूर्त्त निकलवाता है परन्तु उसके द्वारा बतलाए गए मुहूर्त्त से राक्षस संतुष्ट नहीं होता अतः वे अन्य ज्योतिषियों से भी परामर्श लेना चाहता है। इस पर क्षपणक क्रुद्ध होकर चला जाता है। सूर्यास्त के वर्णन से इस अङ्क की समाप्ति होती है।

चतुर्थ अङ्क की इस नाटक में महत्वपूर्ण भूमिका है क्योंकि यहीं पर भागुरायण मलयकेतु के मन में राक्षस के प्रति सन्देह के बीज उत्पन्न कर देता है और यही बीज प ंचम अंक में पूर्ण रूप से पल्लवित एवं पुष्पित होते हैं।

प चम अङ्क

मुद्राराक्षस का प चम अङ्क अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है क्योंकि एक तो प्रथम अङ्क में चाणक्य द्वारा बनाई गई सभी योजनाएँ इस अङ्क में अपना फल प्रदान कर देती हैं और दूसरे चतुर्थ अङ्क में भागुरायण द्वारा मलयकेतु के मन में राक्षस के प्रति सन्देह के जो बीज बो दिए गए थे, वे इस अङ्क में पूर्ण रूप से पल्लवित व पुष्पित होकर राक्षस और मलयकेतु को परस्पर प थक् कर देते हैं।

प्रवेशक में सिद्धार्थक और जीवसिद्धि क्षपणक के वार्त्तालाप से ज्ञात होता है कि मलयकेतु ने पाटलिपुत्र पर आक्रमण करने के लिए प्रस्थान कर दिया है। मार्ग में उसने शिविर स्थापित किया है। पाटलिपुत्र समीप ही है अतः यह नियम बना दिया गया है कि कोई भी व्यक्ति भागुरायण की मुद्रा से मुद्रित आज्ञापत्र लिए बिना न तो उस शिविर में आ सकता है और न ही शिविर से बाहर जा सकता है।

प्रथम अङ्क में चाणक्य द्वारा शकटदास से जो पत्र लिखावाकर राक्षस की मुद्रा से मुद्रित कर सिद्धार्थक को दिया गया था उसी पत्र को लेकर तथा दूसरे अङ्क में शकटदास को वध्यस्थल से बचाकर लाने के कारण प्रसन्न हुए राक्षस द्वारा अपने शरीर से उतार कर जो आभूषण दिए गए थे और सिद्धार्थक ने जिन्हें राक्षस की मुद्रा से मुद्रित करवा कर उसके भण्डारगार में ही रखवा दिया था, उन्हीं आभूषणों को लेकर सिद्धार्थक के रंगम च पर प्रवेश करने से प चम अङ्क प्रारम्भ होता हैं सिद्धार्थक वस्तुतः चाणक्य का विश्वसनीय गुप्तचर है। वह पत्र और आभूषण लेकर पाटलिपुत्र की तरफ जा रहा है परन्तु मार्ग में उसे जीवसिद्धि क्षपणक मिल जाता है। यह भी चाणक्य का ही गुप्तचर है परन्तु राक्षस का क त्रिम मित्र बना हुआ हैं वह सिद्धार्थक को भागुरायण की मुद्रा से मुद्रित आज्ञापत्र लेकर ही शिविर से बाहर जाने को कहता है क्योंकि पाटलिपुत्र समीप होने के कारण किसी के लिए भी आज्ञापत्र लिए बिना शिविर से आना-जाना निषिद्ध था। परन्तु सिद्धार्थक स्वयं को राक्षस का व्यक्तिगत सेवक

समझते हुए भगुरायण से आज्ञापत्र लेने की कोई आवश्यकता नहीं समझता है क्षपणक आज्ञापत्र लेने चला जाता है।

भागुरायण भी चाणक्य का ही गुप्तचर है जिसके द्वारा चाणक्य की योजनानुसार मलयकेतु का विश्वास प्राप्त कर उसे ही धोखा दिया जाना है। अब वह समय आ गया है। भागुरायण यद्यपि मलयकेतु को धोखा नहीं देना चाहता तथापि कर्त्तव्य को भावना से अधिक ऊँचा मानता हुआ वह चाणक्य की आज्ञा का पालन करने के लिए तत्पर है।

मलयकेतु राक्षस के प्रति शङ्कित है ही। वह भागुरायण से मिलने उसके पास पहुँचने वाला ही है कि तभी क्षपणक आज्ञापत्र लेने भागुरायण के पास पहुँच जाता है। भागुरायण को पता है कि क्षपणक राक्षस का परम मित्र है अतः वह उपहास में ही उससे पूछ लेता है कि 'कहीं राक्षस के कार्य से तो बाहर नहीं जा रहे'। वह कहता है कि मैं तो राक्षस से बहुत दूर जा रहा हूँ और प्रसङ्गवश वह यह भी बतला देता है कि राक्षस ने विषकन्या का प्रयोग करके राजा पर्वतक को मारा है जिसके कारण उसे (क्षपणक को) चाणक्य द्वारा निष्कासित कर दिया गया और अब राक्षस पुनः ऐसा कार्य करने जा रहा है जिससे उसे (क्षपणक को) इस संसार से ही निकाल दिया जाएगा। मलयकेतु छिप कर सब सुना लेता है और उसे यह निश्चय हो जाता है कि राक्षस ने ही उसके पिता पर्वतक को मरवाया है चाणक्य ने नहीं।

तभी शिविर के अधिकारी पुरुष सिद्धार्थक को पकड़ कर लाते हैं क्योंकि वह बिना आज्ञपत्र लिए शिविर से बाहर जा रहा था। उसके हाथ से राक्षस की मुद्रा से मुद्रित पत्र लेकर पढ़ा जाता है व उस पत्र के विषय में उससे पूछताछ की जाती है परन्तु इस विषय में उसके द्वारा अपनी अनभिज्ञता प्रकट किए जाने पर उसे पुनः पीटा जाता है और तभी उसकी बगल से राक्षस की मुद्रा से मुद्रित आभूषणों की पेटी भी गिर जाती है। जैसा कि प्रारम्भ में कहा जा चुका है कि यह वही पत्र है जो प्रथम अङ्क में चाणक्य द्वारा शकटदास से लिखवा कर राक्षस की मुद्रा से मुद्रित कर दिया गया था और ये वही आभूषण हैं जो द्वितीय अङ्क में मलयकेतु द्वारा शरीर से उतार कर अपने क चुकी द्वारा राक्षस को पहनाए गए थे और जो राक्षस द्वारा प्रसन्न होकर शकटदास को वध्यस्थल से भगा कर लाने के लिए सिद्धार्थक को दिए गए थे। उस पत्र से व सिद्धार्थक द्वारा जो कुछ बतलाया गया उससे यह स्पष्ट है कि सिद्धार्थक को राक्षस द्वारा चन्द्रगुप्त के पास भेजा रहा रहा है, चन्द्रगुप्त द्वारा राक्षस को अपना अमात्य बनाने के लिए ही चाणक्य को अमात्यपद से हटाया गया है, राक्षस के परम पाँच मित्रो- चित्रवर्मा, सिंहनाद, पुष्कराक्ष, सिन्धुषेण और मेघनाद में से प्रथम तीन तो मलयकेतु के राज्य तथा अन्य दो उसकी हस्तिसेना और अश्वसेना के इच्छुक हैं अतः चन्द्रगुप्त द्वारा उनकी इच्छा भी उसी प्रकार पूर्ण की जाए जिस प्रकार चाणक्य को हटा कर राक्षस की गई है तथा पत्र की अशून्यता के लिए तीन आभूषण भेजे जा रहे हैं।

मलयकेतु इस बात से राक्षस को विश्वासघाती समझने लगता है और क्रोधभिभूत होकर तुरन्त राक्षस को बुलवाता है। मलयकेतु का सन्देश प्राप्त होते ही राक्षस उससे मिलने चलता है और उसकी भावनाओं को ठेस न पहुँचाने के उद्देश्य से ही द्वितीय अङ्क के अन्त में विक्रेताओं से शकटदास द्वारा खरीदे गए तीन आभूषणों में से एक को पहन लेता है। ये आभूषण वास्तव में पर्वतक के हैं जो प्रथम अङ्क में उसके श्राद्ध के अवसर पर चाणक्य की योजनानुसार विश्वाससु इत्यादि तीन भाइयों को ग्रहण करवा कर राक्षस के पास बिकवा दिए गए थे।

मलयकेतु द्वारा पूछे जाने पर राक्षस उसे आक्रमण करने की योजना बतलाता है जिसके अनुसार वह अपने परम मित्र पाँच राजाओं को मलयकेतु की रक्षा के लिए नियुक्त करता है जिनके प्रति

मलयकेतु पहले से ही सन्देहयुक्त है। विडम्बना यह होती है कि यद्यपि राक्षस मलयकेतु पर अत्यधिक स्नेह होने के कारण अपने परम विश्वसनीय पाँच राजाओं को उसकी रक्षा के लिए नियुक्त करता है तथापि मलयकेतु अन्यथा समझकर यह सोचता है राक्षस ने उसे मारने के उद्देश्य से ही ऐसा किया है। इसी प्रकार जब राक्षस कहता है कि 'कुछ दिनों में हम वही वहाँ पहुँच जाएगें' तो मलयकेतु यह सोचता है कि राक्षस कुछ दिनों में ही चन्द्रगुप्त का अमात्यपद स्वीकार कर लेगा। और जब मलयकेतु राक्षस से सीधा प्रश्न करता है कि 'आपने सिद्धार्थक को यह पत्र व आभूषण लेकर चन्द्रगुप्त के पास क्यों भेजा' तो राक्षस हतप्रभ सा हो जाता है। वह यह नहीं कह सकता कि पत्र और आभूषण उसके नहीं है क्योंकि उन पर उसकी मुद्रा है। शत्रु द्वारा कपटमुद्रा उत्पन्न करने की बात भी निराधार हो जाती है क्योंकि सिद्धार्थक बतलाता है कि यह पत्र शकटदास द्वारा लिखा गया है और राक्षस शकटदास के प्रति अत्यन्त विश्वस्त होने के कारण यह बात डंके की चोट पर कह देता है कि यदि पत्र शकटदास द्वारा लिया गया है यह समझ लिया जाए कि यह मेरे द्वारा ही लिखा गया है। वस्तुतः सिद्धार्थक और राक्षस दोनों ही अपने-अपने स्थान पर ठीक हैं क्योंकि वह पत्र शकटदास के जाने बिना ही चाणक्य द्वारा उससे प्रथम अङ्क में लिखवाया गया था। मलयकेतु शकटदास को बुलवाना चाहता है परन्तु भागुरायण अत्यन्त बुद्धिमत्तापूर्वक उसे वहाँ न बुलवा कर उसके लेख की प्रतिलिपि ही मँगवा लेता है जिससे यह निश्चित हो जाता है कि पत्र शकटदास ने ही लिखा है। तभी मलयकेतु की द ष्टि राक्षस द्वारा पहने गए आभूषण पर पड़ जाती है जो वास्तव में पर्वतक का है। राक्षस को पूर्ण विश्वास हो जाता है कि यह सारी योजना धूर्त चाणक्य की ही थी। मलयकेतु को अब तो यह निश्चय हो जाता है कि उसका पिता राक्षस द्वारा ही मरवाया गया था और अब वह उसे भी मरवा देना चाहता है। मलयकेतु राक्षस से कहता है कि उसके कथन की पुष्टि क्षपणक जीवसिद्धि से कर ली जाए। तब राक्षस को पता चलता है कि क्षपणक जीवसिद्धि भी चाणक्य का ही गुप्तचर था।

इस प्रकार राक्षस के ऊपर एक के बाद एक वज्रपात होता है। चाणक्य की सुव्यवस्थित योजना में वह बुरी तरह इस प्रकार जकड़ दिया जाता है कि स्वयं को निर्दोष प्रमाणित करने के लिए उसके द्वारा दिया गया कोई भी उत्तर मलयकेतु को सन्तुष्ट नहीं कर पाता। अतः उसके ऊपर जो भी दोषारोपण किया गया है, उसको स्वीकार कर लेने में ही वह अपना भला समझता है।

मलयकेतु आगबबूला होकर अपने सेनापति शिखरसेन को आज्ञा देता है कि राक्षस के पाँच मित्रों को मरवा दिया जाए। मलयकेतु राक्षस को चन्द्रगुप्त का आश्रय लेने को कह कर उसे निकाल देता है। भागुरायण मलयकेतु को शीघ्र ही कुसुमपुर पर आक्रमण करने का सुझाव देता है और राक्षस सब तरफ से निराश होकर चन्दनदास को ही बचाने का कोई उपाय सोचता हुआ बाहर चला जाता है। इसी के साथ प चम अङ्क की समाप्ति होती है।

षष्ठ अंक

षष्ठ अंक का प्रारम्भ प्रवेशक से होता है जिसमें सिद्धार्थक तथा समिद्धार्थक के मध्य हुए वार्त्तालाप से पाठकों को पता चलता है कि चाणक्य की नीति से भ्रमित मलयकेतु ने राक्षस को निकाल कर उसके परम मित्र पाँच राजाओं - चित्रवर्मा इत्यादि को मरवा दिया है। मलयकेतु का साथ देने वाले अन्य राजा यह देखकर उससे विमुख हो गए। भद्रभट इत्यादि प्रधान पुरुषों ने जो प्रथम अंक में चाणक्य की योजनानुसार ही चन्द्रगुप्त को छोड़कर मलयकेतु के आश्रित हो गए थे मलयकेतु को पकड़ लिया है। चाणक्य ने शेष शत्रुसेना को पराजित कर दिया है। राक्षस मलयकेतु के शिविर से निकल कर चन्दनदास व उसके परिवार को कारागार से मुक्त करवाने के लिए पुनः पाटलिपुत्र आ गया है परन्तु चाणक्य द्वारा नियुक्त उदुम्बर नामक पुरुष उसका पीछा कर रहा है। चाणक्य

ने सिद्धार्थक तथा समिद्धार्थक को चाण्डाल का वेष धारण कर चन्दनदास को फाँसी पर लटकाने की आज्ञा दे दी है।

प्रवेशक की समाप्ति पर राक्षस को कुसुमपुर के सीमाप्रदेश में स्थित एक जीर्णोद्योन में इस आशा से प्रवेश करते हुए दिखलाया गया है कि सम्भवतः वहाँ चन्दनदास के विषय में कुछ ज्ञात हो जाए। कुसुमपुर व राजा नन्दों की पुरानी स्म तियाँ उसके मानसपटल पर पुनः नवीन हो जाती हैं। साथ ही मलयकेतु की विवेकशून्यता तथा भाग्य की विपरीतता पर भी वह आँसू बहाता है। तभी उसे अपने सामने एक पुरुष स्वयं को फाँसी लगाते हुए दिखता हैं। कारण पूछे जाने पर वह बतलाता है कि वह कुसुमपुर में रहने वाला मणिकार श्रेष्ठी विष्णुदास का मित्र है और विष्णुदास चन्दनदास नामक मणिकार श्रेष्ठी का परम मित्र है। विष्णुदास अपनी सम्पूर्ण सम्पत्ति दान में देकर अग्नि में प्रवेश करने जा रहा है क्योंकि उसके मित्र चन्दनदास को उसके द्वारा राक्षस का परिवार न सौंपे पर म त्युदण्ड दिया जा रहा है और चूंकि विष्णुदास आग में प्रवेश कर रहा है अतः उसकी म त्यु के विषय में सुनने से पूर्व ही वह आत्महत्या कर लेना चाहता है।

पुरुष के मुख से यह सब सुनकर राक्षस उसे विष्णुगुप्त को अग्नि में प्रवेश करने से रोकने को कहता है क्योंकि राक्षस तलवार की सहायता से चन्दनदास के प्राणों की रक्षा करने का निश्चय करता है। यह सुनकर पुरुष उससे पूछता है कि कहीं आप अमात्य राक्षस ही तो नहीं है। उसके 'हाँ' कहने पर पुरुष अत्यन्त प्रसन्न होने का अभिनय करता है तथा राक्षस को बतलाता है कि तलवार लेकर जाने से तो चन्दनदास का वध और भी अधिक जल्दी कर दिया जाएगा क्योंकि जब से किसी के द्वारा शकटदास को वध्यस्थल से भगाकर ले जाया गया है तब से घातक अपने प्राणों की रक्षा हेतु जिस किसी भी अपरिचित व्यक्ति को शस्त्र लिए वध्यस्थल के आसपास भी देखते हैं, वध्य व्यक्ति को तुरन्त मार डालते हैं।

राक्षस चाणक्य की नीति के विषय में आश्चर्यचकित होता हुआ आत्मसमर्पण करके ही चन्दनदास को बचाने का निश्चय करता है।

वस्तुतः प्रथम अंक में चाणक्य ने राक्षस को बुद्धि द्वारा वश में करने की जो उद्घोषणा की थी वह इस अंक की समाप्ति पर पूर्ण होती हुई परिलक्षित होती है क्योंकि जब राक्षस ने चन्दनदास को बचाने के लिए आत्मसमर्पण करने का निश्चय कर ही लिया है तो चाणक्य अपनी इच्छानुसार उसे कुछ भी करने को विवश कर सकता है।

सप्तम अंक

चाणक्य द्वारा प्रथम अंक में राक्षस के विषय में उद्घोषित 'बुद्धया निग ह्य व षलस्य कृते क्रियायामारण्यकं गजमिव प्रगुणीकरोमि' इस प्रयोजन की प्राप्ति चाणक्य को इस अन्तिम अंक में होती है। राक्षस को चन्द्रगुप्त का अमात्यपद स्वीकार करवाना और चन्द्रगुप्त की राजलक्ष्मी स्थिर करना नाटक के इन दो प्रमुख फलों का वर्णन प्रस्तुत अंक में है।

राक्षस के परिवार को चन्द्रगुप्त को न सौंपने के कारण चन्दनदास वज्रलोमन् और बिल्वपत्र नामक चण्डालों का रूप धारण किए हुए सिद्धार्थक और समिद्धार्थक द्वारा वध्यस्थल की ओर ले जाया जा रहा है। उसकी पत्नी और पुत्र पीछे-पीछे चल रहे हैं। वध्यस्थल पर पहुँचकर चन्दनदास अपने पुत्र को अपनी म त्यु के पश्चात् चाणक्य से रहित स्थान पर निवास करने को कहता है। उसे फाँसी लगाई जाने वाली ही है कि तभी राक्षस वहाँ प्रवेश करता है और चण्डालों से चन्दनदास को छोड़कर चाणक्य के पास यह सन्देह भिजवाने को कहता है कि 'जिसके कारण चन्दनदास को फाँसी लगाई जा रही थी, यह वही राक्षस आ गया है'। चाणक्य रंगम च पर आता है तथा राक्षस का अभिवादन

करता है। चाणक्य उसे बतलाता है कि राक्षस को चन्द्रगुप्त का मुख्यमन्त्री बनाने के उद्देश्य से ही उसके द्वारा सारी योजनाएँ बनाई गई थीं।

तभी चन्द्रगुप्त प्रवेश करता है और राक्षस को प्रणाम करता है। चाणक्य स्पष्ट रूप से राक्षस से कह देता है कि यदि वह चन्दनदास के जीवन को चाहता है तो उसे राजकीय तलवार ग्रहण करनी पड़ेगी। राक्षस संकोच प्रकट करता है परन्तु चन्दनदास को मुक्त करवाने का अन्य कोई विकल्प न देखते हुए राजकीय तलवार अर्थात् चन्द्रगुप्त के अमात्यपद को स्वीकार करने के लिए विवश हो जाता है।

तभी पुरुष द्वारा भद्रभट, भागुरायण इत्यादि के द्वारा मलयकेतु को पकड़कर द्वार पर लाए जाने की सूचना दी जाती है। चाणक्य स्वयं आदेश न देकर अमात्य राक्षस को ही इस विषय में आदेश देने को कहता है। राक्षस अपनी उदारता का परिचय देते हुए मलयकेतु के प्राणों की रक्षा किए जाने की इच्छा प्रकट करता है। चाणक्य चन्द्रगुप्त से राक्षस के प्रथम निवेदन को मानने के लिए कहता है तथा मलयकेतु को केवल जीवनदान ही नहीं देता अपितु उसके पिता पर्वतक का राज्य भी उसे वापिस कर देता है। भद्रभट इत्यादि को वह मलयकेतु के साथ भेजता है तथा मलयकेतु को राज्य पर यथाविधि प्रतिष्ठित करके ही उन्हें वापस आने का आदेश देता है।

अमात्य राक्षस की प्राप्ति से उत्पन्न प्रसन्नता के कारण हाथी घोड़ों के अतिरिक्त सबको बन्धनमुक्त कर दिया जाता है। चन्दनदास को 'नगरसेठ' बना दिया जाता है।

इस प्रकार चाणक्य द्वारा की गई नन्दवंश के वध की प्रतिज्ञा राक्षस को चन्द्रगुप्त का अमात्य बनाकर पूर्ण हो जाती है। चाणक्य अपनी खुली हुई शिखा बाँध लेता है और भरतवाक्य के साथ नाटक की सुखद समाप्ति हो जाती है।

नाटक के कथानक के पेचीदा तथा जटिल होते हुए भी पाठक की जिज्ञासा व उत्सुकता कहीं समाप्त नहीं होती। कथानक तीव्र गति से आगे बढ़ता है। घटना प्रधान नाटक होने के कारण इसमें कार्यान्विति का निर्वाह बहुत सफलतापूर्वक किया गया है। नाटक की कोई भी घटना अथवा संवाद ऐसा नहीं है जो नाटक की कार्य सिद्धि में योगदान न देता हो। सारी घटनाएँ अन्योन्याश्रित है और परस्पर एक दूसरे से इस प्रकार गुँथी हुई है कि छोटी से छोटी किसी भी घटना को हटाने से कथानक का तारतम्य भड्.ग हो जाएगा। नाटक की विस्त त कथावस्तु अपने आप में बडी संश्लिष्ट है।

कार्यान्विति के साथ - २ इस नाटक में कालान्विति तथा स्थानान्विति का भी कुशलतापूर्वक निर्वाह किया गया है। नाटक की सम्पूर्ण घटनाएँ एक वर्ष की अवधि में ही घटित हुई प्रतीत होती है। चतुर्थ अड्.क में मलयकेतु कहता है- **'अद्य दशमो मासस्तातस्योपरतस्य'**। मलयकेतु का यह कथन मार्गशीर्ष मास के मध्य में कहा गया है। इस हिसाब से इस महीने पीछे की गणना करके पर्वतक की म त्यु का समय फाल्गुन माह का मध्य बैठता है। नाटक का प्रारम्भ चैत्र माह की पूर्णिमा के दिन से होता है क्योंकि उस दिन नटी चन्द्रग्रहण की बात करती है। चन्द्रगुप्त के पाटलिपुत्र में प्रवेश करने से लेकर प्रथम अङ्क की घटनाओं में एक माह का समय अवश्य लगा होगा। इसी कारण प्रथम अड्.क में चन्द्रगुप्त द्वारा किया जाने वाला पर्वतक का श्राद्ध उसकी म त्यु के पश्चात् आने वाले प्रथम माह पर किया जा रहा होगा क्योंकि भारतीय परम्परा में म त्यु के पश्चात् एक वर्ष तक प्रत्येक मास में ब्रह्मभोज आदि करवाए जाने का विधान है।

त तीय अड्.क कार्तिक की पूर्णिमा को अभिनीत किया गया है। अतः चतुर्थ और प चम अड्.क की घटनाएँ करभक के पाटलिपुत्र से राक्षस के निवास-स्थान पर आने के पश्चात् लगभग एक महीने

बाद मार्गशीर्ष के महीने में ही घटित हुई होगी। षष्ठ और सप्तम अड्.क की घटनाओं में अधिक से अधिक दो मास का समय और लेकर सम्पूर्ण नाटक की अवधि एक वर्ष की बैठती है। इस प्रकार इस नाटक में कालान्विति का भी समुचित ध्यान रखा गया है जिसका संस्क त नाटकों में प्रायः अभाव है। इसी प्रकार इस नाटक की सम्पूर्ण घटनाएँ या तो राक्षस के निवास स्थान पर अथवा मलयकेतु के शिविर में घटित हुई है। अतः स्थानान्विति का भी पूर्ण ध्यान इस नाटक में रखा गया है।

इस प्रकार कार्यान्विति, कालान्विति तथा स्थानान्विति इन तीनों अन्वितियों का जैसा सुन्दर निर्वाह इस नाटक में हुआ है, वैसा अन्यत्र दुर्लभ है।

नाटक में बीज, बिन्दु, पताका, प्रकरी तथा कार्य ये पाँच अर्थप्रक तियाँ होती है। अर्थप्रक ति से तात्पर्य उन तत्त्वों से है जो प्रयोजनसिद्धि के कारण होते हैं।

नाटक के कथानक के विकास की पांच अवस्थाएँ होती है- आरम्भ, यत्न, प्राप्त्याशा, नियताप्ति और फलागम।

पाँच अर्थप्रक तियाँ और पाँच अवस्थाएँ मिलकर मुख, प्रतिमुख, गर्भ, अवमर्श तथा निर्वहण पाँच नाट्य सन्धियाँ बनाती हैं। मुद्राराक्षस नाटक में पाँचों नाट्य सन्धियों का समुचित ध्यान रखा गया है। कवि विशाखदत्त ने स्वयं राक्षस के मुख से कहा है कि नाटककार के लिए अपने कथानक का कुशलता से निर्वाह करना उतना ही श्रमसाध्य है जितना एक राजनीतिज्ञ के लिए कार्यसिद्धि प्राप्त करना-

'कार्योपक्षेपमादौ तनुमपि रचयंस्तस्य विस्तारमिच्छन्
बीजानां गर्भितानां फलमतिगहनं गूढमुद्भेदंयश्च।
कुर्वन्बुद्ध्या विमर्शं प्रस तमपि पुनः संहरन्कार्यजातं
कर्त्ता वा नाटकानामिममनुभवति क्लेशमस्मद्विधो वा।।

मुद्राराक्षस में चाणक्य द्वारा राक्षस की मुद्रा प्राप्ति तक की कथा मुखसन्धि के अन्तर्गत आती है जो बीज तथा आरम्भ से मिलकर बनती है। प्रथम अड्.क में चाणक्य का शकटदास से पत्र लिखवाकर सिद्धार्थक को कार्यसिद्धि के लिए भेजना और चन्दनदास को बन्दी बनाना प्रतिमुख सन्धि के अन्तर्गत आता है जो बिन्दु तथा यत्न से मिलकर बनती है। राक्षस के उपायों द्वारा चन्द्रगुप्त की राज्यलक्ष्मी का स्थिर न होना परन्तु विराधगुप्त द्वारा राक्षस की विफलता का वर्णन करने से चाणक्य नीति की विजय की पुनः आशा होना गर्भसन्धि है जो पताका तथा प्राप्त्याशा के संयोग से बनती है। मुद्राराक्षस के त तीय और चतुर्थ अकों में प्रकरी और नियताप्ति के संयोग से अवमर्श सन्धि की योजना की गई है। इस नाटक के अन्तिम तीन अड्.कों में कार्य तथा फलागम के संयोग से निर्वहण सन्धि की योजना की गई है। राक्षस द्वारा चन्द्रगुप्त का अमात्यपद स्वीकार कर लिया जाना निर्वहण सन्धि की सफल परिणति है।

मुद्राराक्षस का कथा विभाजन भी संस्क त के अन्य नाटकों की अपेक्षा अधिक मौलिक है। अन्य नाटकों में अड्.कों का ही विभाजन होता है परन्तु विशाखदत्त ने अड्.कों के मध्य द श्यों की योजना की है जैसे दूसरे अड्.क में पहला द श्य मार्ग का है जहाँ सपेरा सर्पों का खेल दिखा रहा है परन्तु दूसरा द श्य राक्षस के घर का है। इसी प्रकार तीसरे अड्.क में पहला द श्य सुगाड्.ग महल का है, दूसरा चाणक्य की कुटिया का और पुनः तीसरा द श्य सुगाड्.ग महल का है।

(ख) चरित्र - चित्रण

अपने पात्रों के चरित्र चित्रण में कवि ने विशेष कौशल दिखलाया है। वे नाटक के प्रमुख पात्रों को इस तुलनात्मक ढ़ंग से प्रस्तुत करता है कि उनकी विशेषताएँ स्वयं ही स्पष्ट हो जाती है। चाणक्य और राक्षस के तथा चन्द्रगुप्त और मलयकेतु के चरित्र का सुन्दर चित्रण तुलनात्मक प्रतिद्वन्द्वी युगल में हुआ है। चाणक्य धीर, गम्भीर, सतत जागरूक, दूरदर्शी, लक्ष्यसिद्धि के प्रति कठोर, स्मरणशील, नीतिनिपुण और कभी न झुकने वाला है तो इसके विपरीत राक्षस अपेक्षाक त अस्थिरचित्त, अदूरदर्शी, विस्मरणशील, उदार हृदय, भावुक, मित्रवत्सल तथा जल्दी से विश्वास कर लेने वाला है चाणक्य में बुद्धितत्व की प्रधानता है तो राक्षस में हृदयतत्त्व की। चाणक्य कर्म में विश्वास करता है- **"दैवमविद्वांसः प्रमाणयन्ति"** तो राक्षस हमेशा भाग्य की दुहाई देता रहता है- **'दैवं हि नन्दकुलशत्रुरसौ न विप्रः'।**

इसी प्रकार चन्द्रगुप्त युद्धवीर, विनम्र, बुद्धिमान् व गुरु पर विश्वास करने वाला है तो इसके विपरीत मलयकेतु उद्धत, उद्दण्ड, बुद्धिहीन, कच्चे कानों वाला तथा मित्र और शत्रु को परखने की क्षमता से रहित है। इसी प्रकार भागुरायण और सिद्धार्थक अपने प्रति अत्यधिक विश्वास करने वाले मलयकेतु और राक्षस को धोखा तो नहीं देना चाहते परन्तु कर्त्तव्य को भावना से ऊँचा मानते हुए चाणक्य के सेवक होने के कारण उसी की आज्ञा का पालन करना अपना परम कर्त्तव्य समझते हैं। सेठ चन्दनदास, शकटदास, विराधगुप्त, निपुणक, इन्दुशर्मा (क्षपणक जीवसिद्धि) वैहीनर, जाजलि, शार्ड्.गरव आदि गौण पात्र भी अपनी व्यक्तिगत विशिष्टताओं से युक्त हैं।

(ग) भाषा शैली

विशाखदत्त ने शौरसेनी, महाराष्ट्री और मागधी प्राक त का प्रयोग किया है। भाषा सरल, प्रवाहमयी और प्रक त विषय के अनुरूप है।

विशाखदत्त की शैली में ओज, माधुर्य तथा प्रसाद गुणों का समन्वय है। यह स्पष्ट, प्रभावशाली तथा विषयानुरूप है। कथोपकथनों में अत्यन्त सरल भाषा का प्रयोग किया गया है यथा -

क चुकी— एवमेवैतत्।

राजा— किमेतत्?

क चुकी— देव इदम्।

राजा— स्फुटं कथय।

क चुकी— प्रतिषिद्धिः कौमुदीमहोत्सवः।

राजा— (सक्रोधम्) आः केन?

क चुकी— देव, नातः परं विज्ञापयितुं शक्यम्।

परन्तु उग्रता व भयड्.करता का वर्णन करने के लिए गौड़ी रीति का आश्रय लिया गया है।

"आरुह्यारूढकोपस्फुरणविषमिताग्राड्.गुलीमुक्तचूडां............... पश्यतो राक्षसस्य।। में चाणक्य के क्रोध की प्रचण्डता कवि के द्वारा प्रयुक्त शब्दों से ही स्फुट हो जाती है।

कवि का शब्दविन्यास भी सशक्त एवं प्रभावशाली है। चाणक्य की राजनीति की विचित्रता की तुलना भाग्य से करते हुए भागुरायण कहता है-

मुहुर्लक्ष्योद्‌भेदा महुरधिगमाभावगहना
मुहुः संपूर्णाड्.गी मुहुरतिक शा कार्यवशतः।
मुहुर्नश्यद्बीजा मुहुरपि बहुप्रापितफले
त्यहो चित्राकारा नियतिरिव नीतिर्नयविदः।।

औचित्य का सर्वत्र ध्यान रखा गया है। राजनीति जैसे नीरस विषय को भी सरल एवं मनोरंजक बना देना कवि की अद्‌भुत काव्य प्रतिभा का परिचायक है। पद्य की अपेक्षा गद्य अधिक सशक्त है। भाषा में चमत्कार उत्पन्न करने के लिए कहीं-कहीं पताकास्थान का प्रयोग भी किया गया है। यथा चतुर्थ अड्.क में जब राक्षस अपने आप सोच-विचार करता हुआ कहता है- **तदपि नाम दुरात्मा चाणक्यबटुः।** तभी द्वारपाल प्रवेश करके कहता है- **जयतु। राक्षसः - अतिसन्धातु शक्यः स्यात्। दौवारिकः - अमात्यः।** इसमें चाणक्य बटुः का अन्वय जयतु के साथ और अमात्यः का **अन्वय—** अतिसन्धातुंस्यात् के साथ हो जाता है और इससे ही चाणक्य की विजय की और राक्षस को वश में किए जाने की सूचना मिल जाती है।

कथोपथन स्वाभाविक, रोचक और नाटकीय गुणों से भरपूर है। कहीं - २ ये अत्यधिक लम्बे हो गए है यथा प्रथम अड्.क में चाणक्य का तथा षष्ठ अड्.क में राक्षस का स्वगतम् परन्तु वहाँ भी ये बोझिल तथा मन को उकताने वाले नहीं लगते क्योंकि चाणक्य का स्वगत तो उसकी राजनीति पर प्रकाश डालता है तथा राक्षस की स्वगत उसकी निराशा, बेबसी तथा भावनाओं को अभिव्यक्त करता है।

भंग्यन्तर कथन अर्थात् जो बात गद्य में कही गई है उसी बात को पद्य में भी कहना विशाखदत्त की एक अन्य विशेषता है। यथा-

आहितुण्डिकः— (स्वगतम्, संस्क तमाश्रित्य) अहो आश्चर्यम् चाणक्यमतिपरिग हीतं चन्द्रगुप्तमवलोक्य विफलमिव राक्षसप्रयत्नमवगच्छामि। राक्षसमतिपरिग हीतं मलयकेतुमवलोक्य चलितमिवाधिराज्याच्चन्द्रगुप्तमवगच्छामि।

कुतः— "कौटिल्यधीरज्जुनिबद्धमूर्तिं मन्ये स्थिरां मौर्यन पस्य लक्ष्मीम्। उपायहस्तैरपि राक्षसेन विक ष्यमाणामिव लक्षयामि।।

इस प्रकार कवि की भाषा शैली दुरूह शब्दों, विशालकाय समासों, क्लिष्ट कल्पनाओं एवं वर्णनाधिक्यों से रहित है।

(घ) रस

मुद्राराक्षस वीर रस प्रधान नाटक है। परन्तु इस नाटक में इस रस की विशिष्टता यह है कि सम्पूर्ण नाटक में इसका परिपाक ओजस्वी कथनों, आत्मप्रंशसा, युद्धभूमि के वर्णन के माध्यम से ही किया गया है। वास्तविक युद्ध तो पूरे नाटक में एक भी स्थल पर नहीं किया गया। इसमें न तलवारों की खनखनाहट है, न हथियारों की झनझनाहट, न धनुष की टड्.कार, न घोड़ों की हिनहिनाहट, न हाथियों की चिंघाड। फिर भी चमत्कारिक ढंग से वीर रस की निष्पत्ति कर देना कवि की अद्‌भुत चातुरी का परिचायक है। चाणक्य के प्रति चन्द्रगुप्त का यह कथन शतशः ठीक है कि बिना युद्ध के ही उन्होंने दुर्जेय शत्रुसेना को पराजित कर दिया - "विनैव युद्धादार्येण जितं दुर्जयं परबलमिति'।

श ंगार रस का तो इस नाटक में वातावरण ही नहीं है। प चम अड्.क में सिद्धार्थक और मलयकेतु के वार्तालाप में हास्य रस की अभिव्यंजना हुई है। सप्तम अड्.क में चन्दनदास को फाँसी पर चढ़ाने के लिए ले जानते हुए द श्य में करुण रस निष्पन्न हुआ है।

(ड) छन्द अलंकार

सम्पूर्ण नाटक में कवि ने १६ प्रकार के छन्दों का प्रयोग किया है। अनुष्टुप और आर्या जैसे छोटे छन्दों से लेकर स्रग्धरा तथा शार्दूलविक्रीडित जैसे लम्बे छन्दों का प्रयोग करने में कवि सिद्धहस्त है। अनुष्टुप, वसन्ततिलका, स्रग्धरा और शार्दूलविक्रीडित का बाहुल्य है।

शब्दालड्.कारों की अपेक्षा कवि ने अर्थालड्.कारों का प्रयोग किया है। रूपक, श्लेष, उपमा, द ष्टान्त अर्थान्तरन्यास, उत्प्रेक्षा आदि का प्रयोग अधिकता से किया गया है। प्रस्तुत श्लोक में रूपक का प्रयोग दर्शनीय है जहाँ चाणक्य की नीति की तुलना लता से की गई है-

बुद्धिजलनिर्झरैः सिच्यमाना देशकालकलशैः।
दर्शयिष्यति कार्यफलं गुरुकं चाणक्यनीतिलता।।

भाषा पर असाधारण अधिकार होने के कारण कवि का श्लेष प्रयोग भी अद्वितीय है। यथा -

पीत्वा निरवशेषं कुसुमरसमात्मनः कुशलतया।
यदुद्गिरति भ्रमरः अन्येषां करोति तत्कार्यम्।।

यहाँ भ्रमर, कुसुमरसम् तथा अन्येषां पद श्लिष्ट है। भ्रमर का अर्थ भौंरा तथा भ्रमणशील दूत है, कुसुमरसम् का अर्थ फूलों का पराग तथा कुसुमपुर का समाचार है जबकि अन्येषां का अर्थ दूसरों का तथा राक्षस का है।

उजड़े हुए बगीचे का वर्णन करने में उपमा अलड्.कार दर्शनीय है-

विपर्यस्तं सौधं कुलमिव महारम्भरचनं
सरः शुष्कं साधोर्हृदयमिव नाशेन सुहृदाम्।
फलैर्हीना व क्षा विगुणन पयोगादिव नया -
स्त णैश्छन्ना भूमिर्मतिरिव कुनीतैरविदुषः।।

पुनः जीर्णोद्यान के वर्णन में कबूतर की कूज के रूप में व क्षों द्वारा अपनी पीड़ा को अभिव्यक्त किए जाने की तथा सर्पों द्वारा अपनी केंचुली से उनके घावों पर पट्टी बाँधे जाने की कवि की कल्पना निस्सन्देह अद्भुत है-

क्षताड्.गीनां तीक्ष्णैः परशुभिरुदग्रैः क्षितिरुहां
रुजा कूजन्तीनामविरतकपोतोपरुदितैः।
स्वनिर्मोकच्छेदैः परिचितपरिक्लेशक पया
श्वसन्तः शाखानां व्रणमिव निबन्धन्ति फणिनः।।

उनकी सूक्तियाँ अर्थान्तरन्यास की सुन्दर उदाहरण है और वे लोकोक्तियों के रूप में प्रचलित हो गई है यथा- **दैवमविद्वांसः प्रमाणयन्ति, अत्यादरः शड्.कनीयः, भव्यं रक्षति भवितव्यता, कीद शस्त णानामग्निना संह विरोधः** इत्यादि।

(च) वर्णन शक्ति

विशाखदत्त की वर्णन शक्ति भी अद्भुत है। चन्द्रगुप्त जैसे चक्रवर्ती राजा के महामात्य चाणक्य की कुटिया का वर्णन तो समस्त संस्क त साहित्य में अद्वितीय है।

> **'उपशकलमेतद् भेदकं गोमयानां**
> **बटुभिरुपहृतानां बर्हिषां स्तूपमेतत्।**
> **शरणमपि समिद्भिः शुष्यमाणाभिराभिर्**
> **विनमितपटलान्तं द श्यन्ते जीर्णकुड्यम्।।**

मानवीय भावों के विश्लेषण तथा उनकी अभिव्यक्ति में कवि सिद्धहस्त है।

> **पौरैरंगुलिभिर्नवेन्दुवदहं निर्दिश्यमानः शनैर**
> **यो राजेव पुरा पुरान्निरगमं राज्ञां सहस्रैर्व तः।**
> **भूयः संप्रति सो हमेव नगरे तत्रैव वन्ध्यश्रमो**
> **जीर्णोद्यानकमेष तस्कर इव त्रासाद्विशामि द्रुतम्।।**

इसमें राक्षस की अन्तर्वेदना का वर्णन कितना भावपूर्ण एवं मर्मस्पर्शी है।

इसी प्रकार राक्षस के प्रति मलयकेतु के ऊहापोह का चित्रण भी अत्यन्त काव्यात्मक एवं सुन्दर है।

> **भक्त्या नन्दकुलानुरागद ढया नन्दान्वयालम्बिना**
> **किं चाणक्यनिराक तेन क तिना मौर्येण सन्धास्यते**
> **स्थैर्यं भक्तिगुणस्य वाधिगणयन्किं सत्यसन्धो भवेद्।**
> **इत्यारूढकुलालचक्रमिव मे चेतश्चिरं भ्राम्यति।।**

कहीं - कहीं तो एक पंक्ति के द्वारा ही अनुभूतियों एवं भावनाओं की सुन्दर अभिव्य जना हुई है। यथा अपने पुत्र के प्रति चन्दनदास की यह उक्ति **'पुत्र, चाणक्यविरहिते देशे वस्तव्यम्'** चन्दनदास की चाणक्य के प्रति अत्यधिक घ णा व क्रोध को प्रकट करती है।

(छ) प्रक ति चित्रण

प्रक ति चित्रण में भी कवि ने अपनी कुशलता दिखलाई है। वैसे तो कवि को इस द ष्टि से अपनी चातुरी प्रदर्शित करने का नाटक में अवसर ही नहीं मिला परन्तु जहाँ कही भी ऐसा अवसर आया, कवि ने उसे अपने हाथों से जाने नहीं दिया। त तीय अड्.क में शरदर्तु का व षष्ठ अड्.क में जीर्णोद्यान का वर्णन मौलिक व सरस है।

जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है कि मुद्राराक्षस में कवि का न्यायशास्त्र, ज्योतिष्शास्त्र, राजनीतिशास्त्र, अर्थशास्त्र, गणितशास्त्र, दर्शनशास्त्र आदि शास्त्रों का बहुविध ज्ञान परिलक्षित होता है।

यद्यपि मुद्राराक्षस नाट्यशास्त्र के नियमों का पूर्णरूप से पालन नहीं करता तथापि इनकी भाषा तथा भाव, शैली तथा कवित्व, कथावस्तु तथा चरित्र-चित्रण के समीक्षण के आधार पर यह कहा जा सकता है कि विशाखदत्त का नाटक वास्तव में एक महान् क ति है। इसका वैशिष्ट्य और महत्व इसी बात से सिद्ध होता है कि प्रो० विल्सन द्वारा आंग्ल भाषा में अनूदित कुछ गिने चुने नाटकों में से मुद्राराक्षस भी एक है।

मुद्राराक्षस— ऐतिहासिक एवं राजनैतिक प ष्ठभूमि

मुद्राराक्षस ऐतिहासिक प ष्ठभूमि पर तैयार किया गया एक राजनैतिक नाटक है, यह शतशः सत्य है। चाणक्यः, चन्द्रगुप्त और राजा नन्द तो निर्विवाद ऐतिहासिक व्यक्ति है ही परन्तु सर्वार्थसिद्धि,राक्षस, पर्वतक और मलयकेतु भी ऐतिहासिक पात्र ही है। जैसा कि 'मुद्राराक्षस के स्रोत' में विस्तारपूर्वक कहा जा चुका है राजा नन्द के वंश को चाणक्य द्वारा समूल नष्ट कर चन्द्रगुप्त को मगध के राज्य पर स्थापित किए जाने का स्पष्ट संकेत विष्णुपुराण, मत्स्यपुराण, भागवत्पुराण इत्यादि में प्राप्त होता है। ब हत्कथा में भी चन्द्रगुप्त को राजा नन्द का पुत्र कहा गया है जो मुरा नामक शूद्र पत्नी से उत्पन्न हुआ था। बौद्ध और जैन ग्रन्थ भी चन्द्रगुप्त और उनके वंश के विषय में प्रकाश डालते है।

शारदातनय के भावप्रकाश के ८वें अध्याय में नाटक के भेद भास्वर के उदाहरण में एक नाटक का उल्लेख किया गया है जिसके पात्र नन्द और चाणक्य है। कुन्दमाला की भूमिका में भी प्रतिज्ञाचाणक्य नामक एक नाटक का निर्देश है। इस सब से यह सिद्ध होता है कि विशाखदत्त द्वारा प्रयुक्त नन्द और चाणक्य का कथानक ऐतिहासिक होने के साथ - साथ अत्यन्त प्रसिद्ध भी था।

प्रो० आर० सी० दत्त के अनुसार शिशुनागवंश के राजाओं ने मगध पर ६३७ से ३७० ई० पूर्व तक शासन किया। उनकी राजधानी पाटलिपुत्र थी जिसे कुसुमपुर भी कहा जाता था। महानन्द इस वंश का अन्तिम सम्राट था। उसके नन्द अथवा महापद्म नाम का शूद्र स्त्री से उत्पन्न एक पुत्र था। नन्द अत्यन्त शक्तिशाली परन्तु लालची था। उसके एक पत्नी से सुमाल्य आदि आठ पुत्र थे। पिता और आठ पुत्र नवनन्द कहे जाते थे। नन्द के मुरा नामक अन्य शूद्रा पत्नी से उत्पन्न चन्द्रगुप्त नाम का पुत्र भी था। नन्दों ने ५० वर्षो तक राज्य किया जबकि पुराणों के अनुसार शासनकाल की अवधि १०० वर्ष की थी। चन्द्रगुप्त मौर्य ने ३२२-२६८ ई० पूर्व तक राज्य किया। जब वह सिंहासन पर आरूढ़ हुआ तो बौद्ध धर्म का उत्तरी भारत में मगध के प्रारम्भ होकर अन्य देशों में प्रसार हुआ। चन्द्रगुप्त मौर्य सिकन्दर का समकालीन था। जब वह मगध के राज्य पर सुप्रतिष्ठित हो गया तो उसका ध्यान उत्तर पश्चिमी प्रदेशों की तरफ आकर्षित हुआ और उसने यवन तथा हिन्दू राजाओं को पराजित करके समस्त उत्तरी भारत को पंजाब से लेकर बिहार तक मगध राज्य के अर्न्तगत कर लिया। सैल्यूकस ने तो अपनी पुत्री का विवाह भी चन्द्रगुप्त से कर दिया तथा अपने राजदूत मैगस्थनीज को उसके राज्य में स्थापित कर दिया। प्रसिद्ध इतिहासकार प्रो० वी० स्मिथ ने भी अपनी पुस्तक "Early History of India" अध्याय पांच में चन्द्रगुप्त मौर्य तथा चाणक्य के विषय में विस्त त वर्णन दिया है।

चाणक्य चणक का पुत्र था- **'चणकस्य अपत्यं पुमान् इति चाणक्यः।'** उसका वास्तविक नाम विष्णुगुप्त था परन्तु कुटिल बुद्धि के कारण उसे कौटिल्य भी कहा जाता था।

इसी प्रकार राक्षस और सर्वार्थसिद्धि भी ऐतिहासिक पात्र है यद्यपि इन दोनों के नामों का उल्लेख इतिहास में नहीं है। यदि राक्षस कवि विशाखदत्त की अपनी कल्पना का परिणाम होता तो वह राक्षस का इतना भद्दा और बुरा नाम न रखता। कवि ने अपनी कल्पनाप्रसूत गुप्तचरों के नाम **'यथा नाम तथा गुण'** इस सिद्धान्त के आधार पर ही लिखे है। जैसे निपुणक (जो कार्य करने में निपुण है) विराधगुप्त (जो स्वयं को गुप्त रखने में समर्थ हैं), सिद्धार्थक (जिसने अपने लक्ष्य को प्राप्त कर लिया), समिद्धार्थक (जो प्रभूत धन वाला है) इत्यादि। यदि राक्षस काल्पनिक पात्र होता तो उसका यह नाम कदापि न होता। अतः यह निस्सड्.कोच कहा जा सकता है कि राक्षस भी ऐतिहासिक पात्र है।

ऐसा कहा जाता है कि राक्षस का वास्तविक नाम सुबुद्धिशर्मा था और वह कुसुम पुर में चन्दनदास के घर के समीप रहता था। एक बार राजा नन्द ने अमात्यों की बुद्धि को परखने के लिए उसके शत्रु राजाओं द्वारा भेजी गई एक पहेली का समाधान कोई नही कर पाया परन्तु सुबुद्धिशर्मा ने तुरन्त ही उसका समाधान कर राजा नन्द को इतना अधिक प्रभावित किया कि राजा नन्द ने उसे अपना प्रधानमन्त्री नियुक्त कर लिया। वह तलवार चलाने में भी अत्यन्त निपुण था तथा एक राक्षस में पाई जाने वाली शक्ति की भयड्.करता से लड़ता था। अतः वह राक्षस नाम से पुकारा जाने लगा।

सर्वार्थसिद्धि भी काल्पनिक पात्र न होकर ऐतिहासिक पात्र ही है अन्यथा जिसने जीवन में कुछ भी नहीं पाया कवि उसका सर्वार्थसिद्धि यह नाम कैसे रख देता।

इतना ही नहीं पाटलिपुत्र की ऐतिहासिकता भी ऐतिहासिक तथ्यों से प्रभावित है। मुद्राराक्षस में पाटलिपुत्र एक प्रसिद्ध वैभवशाली नगर के रूप में वर्णित है जो शोण नदी के पास विद्यमान था। पत जलि ने **'अनुशोण पाटलिपुत्रम्'** कहकर यह स्पष्ट कर दिया कि पाटलिपुत्र शोण नदी के समीप है। ईसा में त तीय चतुर्थ शताब्दी पूर्व भारत में आने वाले मैगस्थनीज ने भी इस नगर का वर्णन किया है। चीनी यात्री फाह्यान ने जो यहाँ ३६६-४११ ई० पश्चात् में आया था पाटलिपुत्र का वर्णन मगध देश की राजधानी के रूप में किया है। इसके विपरीत ७वीं शताब्दी पश्चात् लगभग भारत में आए दूसरे चीनी यात्री ह्वेनसांग ने इसका वर्णन खण्डर के रूप में किया है। यह सब तथ्य ऐतिहासिक द ष्टि से पाटलिपुत्र की सत्ता सिद्ध करते है।

उपर्युक्त सभी तथ्यों से मुद्राराक्षस का ऐतिहासिक नाटक होना पूर्ण रूप से प्रमाणित होता है। हाँ यह अवश्य है कि इतिहास जैसे नीरस और अरोचक विषय को कवि ने अपने काव्य नैपुण्य से अत्यधिक सरस और रोचक बनाकर प्रस्तुत किया है।

मुद्राराक्षस राजनैतिक षड्यन्त्रों से भरपूर है इस विषय में तो किसी की विप्रतिपत्ति हो ही नहीं सकती। वास्तव में यह राजनीति में कुशल दो अमात्यों चाणक्य और राक्षस के राजनैतिक दाँवपेचों का नाटक है। दोनों अमात्यों के अपने-अपने लक्ष्य पूर्वनिर्धारित है। चाणक्य वास्तव में एक शिक्षक आचार्य था अतः वह चन्द्रगुप्त के अमात्यपद के भार से स्वयं को मुक्त करना चाहता है। इसी कारण उसे एक स्वामिभक्त, पराक्रमी और बुद्धिमान् अमात्य की आवश्यकता थी और उसकी द ष्टि में राक्षस जैसा योग्य अमात्य पाकर ही चन्द्रगुप्त का राज्य चिरस्थायी और सम द्ध हो सकता है। परन्तु उसकी सीमा यह है कि वह राक्षस के विरूद्ध बल का प्रयोग नहीं कर सकता क्योंकि ऐसा करने से या तो राक्षस स्वयं नष्ट हो जाएगा अथवा चन्द्रगुप्त की सेना को नष्ट कर देगा। दोनों अवस्थाओं में हानि चन्द्रगुप्त की ही होगी।

"स हि भ शमभियुक्तो यद्युपेयाद्विनाशं
ननु व षल वियुक्तस्ताद शेनासि पुंसा।
अथ तव बलमुख्यान्घातयेत्सापि पीडा
वनगज इव तस्मात्सो भ्युपायैर्विनेयः।।

इस कारण बुद्धिबल से ही उसे वश में किया जाना था - **'बुद्धया निग ह्य व षलस्य क ते क्रियायाम् आरण्यकं गजमिव प्रगुणीकरोमि।** यही कारण है कि अपनी नन्दवंश के वध की प्रतिज्ञा पूर्ण कर लेने पर भी चाणक्य सन्तुष्ट नहीं हो पाता **"अथवा अग हीते राक्षसे किमुत्खातं नन्दवंशस्य किं वा स्थैर्यमुत्पादितं चन्द्रगुप्तलक्ष्म्याः"।**

दूसरी तरफ राक्षस नन्दों का स्वामिभक्त अमात्य है, अपने शत्रु चन्द्रगुप्त से राज्यलक्ष्मी वापस लेकर दिवंगत अपने स्वामियों को प्रसन्न करना चाहता है- **'देवः स्वर्गगतो पि शात्रववधेनाराधितः स्यादिति'।**

दोनों अमात्य अपने-अपने प्रयोजन की प्राप्ति के लिए अनेक योजनाएँ बनाते है। दोनों ही एक दूसरे से बढ़कर है। दोनों की योजनाएँ दूरदर्शिता से युक्त, समयानुकूल तथा स्थानानुकूल है। चाणक्य बिना युद्ध किए राक्षस को अपनी योजनाओं के जाल में इस तरह जकड़ लेना चाहता है कि वह विवश होकर चन्द्रगुप्त का अमात्यपद स्वीकार कर ले। सौभाग्यवश उसे राक्षस की अँगूठी प्राप्त हो जाती है। वह राक्षस के मित्र शकटदास से उसके द्वारा जाने बिना ही एक पत्र लिखवाता है और राक्षस की मुद्रा से मुद्रित कर देता है। अपने गुप्तचर भागुरायण द्वारा पर्वतक पुत्र मलयकेतु को व सिद्धार्थक द्वारा शकटदास को वध्यस्थल से भगाकर राक्षस की शरण शकटदास को वध्यस्थल से भगाकर राक्षस की शरण में पहुँचा देता है। भद्रभट, डिंगरात, बलगुप्त आदि प्रमुख पात्रों को किसी न किसी बहाने राक्षस के पास भेज देता है और ऐसा प्रकट करता है कि मानों वे स्वयं चन्द्रगुप्त से रुष्ट होकर राक्षस की शरण में चले गए। विश्वावसु इत्यादि तीन भाईयों को पर्वतक के श्राद्ध के अवसर पर चन्द्रगुप्त द्वारा दान में दिए गए आभूषणों को ग्रहण करवा कर राक्षस के पास बिकवा देता है। राक्षस के मित्र चन्दनदास को इस अपराध में सपरिवार कारागार में डलवा देता है कि उसने राक्षस का परिवार पुनः पुनः माँगे जाने पर नहीं सौंपा और इस प्रकार राजद्रोह किया है।

तत्पश्चात् कौमुदीमहोत्सव को लेकर चन्द्रगुप्त से क तककलह (झूठा झगड़ा) कर लेता है। यह क तककलह काफी हद तक राक्षस की पराजय का कारण बनता है क्योंकि इससे मलयकेतु के मन में राक्षस के प्रति सन्देह के बीज उत्पन्न हो जाते है। प चम अड्.क में क्षपणक जीसिद्धि के कथन और राक्षस की मुद्रा से मुद्रित कपट पत्र तथा आभूषण ले जाने वाले सिद्धार्थक इस सन्देह को और भी पुष्ट कर देते है। मलयकेतु राक्षस को विश्वासघाती कहकर अपमानपूर्वक निष्कासित कर देता है। चन्दनदास को बचाने की इच्छा से आया हुआ राक्षस जीर्णोद्यान में मिलने वाले चाणक्य के गुप्तचर द्वारा जो स्वयं को फाँसी लगाने का अभिनय कर रहा है, आत्मसमर्पण के द्वारा ही चन्दनदास को मुक्त करवाने के लिए विवश कर दिया जाता है और तब चाणक्य इस शर्त पर कि राक्षस चन्द्रगुप्त का अमात्यपद स्वीकार करेगा, चन्दनदास को मुक्त करवा देता है। इस प्रकार चाणक्य की कूटनीति व योजनाएँ इतनी संश्लिष्ट है कि राक्षस को भी यह कहना पड़ता है- **'अहो सुश्लिष्टो भूच्छत्रुप्रयोगः'।**

दूसरी तरफ राक्षस भी चाणक्य से कम नहीं है। वह चन्द्रगुप्त को मरवाने के लिए विषकन्या का प्रयोग करता है तथा वर्वरक, दारूवर्मा, अभयदत्त वैद्य, प्रमोदक, बीभत्सक इत्यादि अपने विश्वसनीय व्यक्तियों को अस्त्रों का प्रयोग कर अथवा तीव्र विष देकर चन्द्रगुप्त की हत्या करवाने के लिए नियुक्त करता है। चाणक्य और चन्द्रगुप्त में फूट डलवाने के लिए स्तनकलश नामक वैतालिक को भी नियुक्त करता है। यह बाद दूसरी है कि चाणक्य की बुद्धिमता, जागरूकता एवं सूक्ष्मदर्शिता के कारण उसके सभी प्रयत्न विफल ही नहीं हो जाते अपितु उसके लिए अनिष्टकारी भी होते है।

मुद्राराक्षस में न तो वास्तविक युद्ध हुआ और न ही किसी प्रकार का रक्तपात हुआ तब भी दुर्जेय शत्रुसेना की नीति द्वारा ही जीत लिया गया - **'विनैव युद्धादार्येण जितं दुर्जयं परबलमिति'।** प्रथम, त तीय, प चम तथा षष्ठ अड्.क चाणक्य की राजनैतिक कुशलता के परिचायक है तो द्वितीय और चतुर्थ अड्.क राक्षस की। दोनों अमात्य अपने-अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए तुच्छ से तुच्छ तथा

जघन्य से जघन्य षड्यन्त्र रचने के लिए तत्पर है। उनकी द ष्टि में साधन का महत्व नहीं है, साध्य की सफलता ही सब कुछ है। साध्य ही साधन की श्रेष्ठता को प्रतिपादित करता है। राजनैतिक आवश्यकताओं को देखते हुए चाणक्य ने पर्वतक, सर्वार्थसिद्धि, वैरोचक, राक्षस के पाँच परम मित्र राजाओं को निस्सड्.कोच मरवा दिया। दूसरी तरफ राक्षस ने चन्द्रगुप्त को मरवाने के लिए न केवल विषकन्या का ही प्रयोग किया अपितु अपने अनेक विश्वसनीय व्यक्तियों को विविध प्रकार से उसकी हत्या करने के लिए भी नियुक्त किया। यह बात दूसरी है कि उसकी सब पर विश्वास कर लेने की आदत तथा भावुक स्वभाव ही उसकी पराजय का कारण बन जाते है।

शत्रु को भ्रमित करने के लिए क तककलह भी किया जाता है व एक दूसरे को धोखा भी दिया जाता है। यहाँ तक कि दोनों पक्षों के गुप्तचर भी नीतिविद् तथा नीतिनिपुण हैं। इसी कारण अपने प्रति पूर्ण रूप से विश्वास करने वाले मलयकेतु को भागुरायण तथा राक्षस को क्षपणक जीवसिद्धि व सिद्धार्थक साध्य की आवश्यकता के कारण धोखा देने में तनिक भी नहीं हिचकिचाते। यमचर, सपेरा, सन्यासी, ज्योतिषी, पथिक, वैतालिक आदि सभी छद्मवेष धारण करने में निपुण दर्शाए गए है। चाणक्य की नीति तो भाग्य की गति के समान विचित्र आकार वाली।

मुहुर्लक्ष्योद्‌भेदा मुहुरधिगमाभावगहना
मुहुः संपूर्णाड्.गी मुहुरतिक शा कार्यवशतः।
मुहुर्नश्यद्बीजा मुहुरपि बहुप्रापितफले
त्यहो चित्राकारा नीतिरिव नीतिर्नयविदः।।

तथा अश्रुतगति (वयस्य, दैवगत्या इवाश्रुगत्यै नम आर्यचाणक्यनीत्यै) बतलाई गई है।

राजनीति नैतिक, सामाजिक तथा धार्मिक मूल्यों की सर्वथा उपेक्षा करती है। आवश्यकतानुसार ही इसमें मित्र, शत्रु और उदासीन की व्यवस्था होती है।

मित्राणि शत्रुत्वमुपानयन्ती मित्रत्वमर्थस्य वशाच्च शत्रून्।
नीतिर्नयत्यस्म तपूर्वव त्तं जन्मान्तरं जीवत एवं पुंसः।।

इसमें भावुकता का कोई स्थान नहीं है।

इस प्रकार राजनैतिक षड्यन्त्रों एवं छल प्रप चों का वर्णन मुद्राराक्षस में पग-पग पर द ष्टिगोचर होता है। मणिका चन योग के समान इतिहास एवं राजनीति का सुन्दर समन्वय कर कवि विशाखदत्त ने संस्क त साहित्य में एक विशिष्ट स्थान प्राप्त कर लिया है।

मुद्राराक्षस का नायक

मुद्राराक्षस का नायक कौन है, यह एक बहुत ही विवादास्पद विषय है। कुछ चाणक्य को तो कुछ राक्षस को तो कुछ विद्वान चन्द्रगुप्त को नाटक का नायक मानते है। इस समस्या का समाधान करने के लिए 'नायक' शब्द की व्युत्पत्ति और नायक में पाए जाने वाले गुणों का विवेचन करना आवश्यक है। तत्पश्चात् उसी परिप्रेक्ष्य में मुद्राराक्षस नाटक का नायक कौन है, इसका निर्धारण किया जा सकता है।

नायक शब्द - नी-प्रापणे धातु से निष्पन्न है जिसका अर्थ है 'ले जाना'। तदनुसार जो पात्र कथानक को आगे बढ़ाने वाला अथवा उसे फलागम की ओर अग्रसर करने वाला होता है उसे नायक कहते है। इसके अतिरिक्त वह फल का भोक्ता होता है, अड्.गी रस का प्रधान आश्रय होता है, कथा के

प्रारम्भ से लेकर अन्त तक उसकी उपस्थिति रहती है, अन्य पात्रों को अपने व्यक्तित्व से प्रभावित करता है व नाटक की प्रत्येक घटना उसके व्यक्तित्व से सम्बन्ध रखती है। कभी-२ नायक के नाम पर आधार पर भी नाटक का नामकरण होता है।

नायक चार प्रकार के माने गए है- धीरोदात्त, धीरललित, धीरप्रशान्त और धीरोद्धत **'भेदैश्चतुर्धा ललितशान्तोदात्तोद्धतैरयम्'**। धीरोदात्त गम्भीर, क्षमाशील, स्थिरचित्त, अहड्.कारशून्य तथा विनम्र, **धीरललित** कोमल, शान्त स्वभाव तथा कलाप्रेमी, **धीरशान्त** सामान्यगुण युक्त ब्राह्मण तथा धीरोद्धत ईर्ष्यालु, अभिमानी, चंचल, क्रोधी, कपटप्रवीण और आत्मप्रशंसक होता है।

इन सब बातों को ध्यान में रखते हुए मुद्राराक्षस में चाणक्य, राक्षस और चन्द्रगुप्त तीनों ही विभिन्न कारणों से नायकोचित गरिमा से युक्त है। यहाँ तीनों के पक्ष और विपक्ष में विचार करना उपयुक्त होगा।

चाणक्य

नाटक में सर्वप्रथम हमारा ध्यान चाणक्य आक ष्ट करता है यद्यपि वह किसी राजवंश से सम्बन्धित नहीं है तथापि मेधावी है और नाटक का स चालक है। वह धीरशान्त और धीरोद्धत नायक माना जा सकता है। निरीह, अनासक्त तथा निस्वार्थ ब्राह्मण होने के कारण वह धीरशान्त नायक है **'सामान्यगुणयुक्तस्तु धीरशान्तो द्विजादिकः'** तथा अभिमानी कपटप्रवीण, क्रोधी व आत्मप्रशंसक होने के कारण वह धीरोद्धत नायक है, **'धीरोद्धतस्त्वहड्.कारी चलश्चण्डो विकत्थनः'**। वह नाटक की कथा को आगे बढ़ाने वाला है। यद्यपि वह रड्.गम च पर प्रथम, त तीय और सप्तम अड्.क में ही प्रस्तुत किया गया है तथापि उसके व्यक्तित्व का प्रभाव नाटक के अन्य पात्रों पर सदैव ही परिलक्षित होता है। उसकी उपस्थिति का आभास सदैव होता रहता है। द्वितीय अड्.क में विराधगुप्त द्वारा किए गए राक्षस की योजनाओं की असफलता के वर्णन में चाणक्य पल भर के लिए भी मानसपटल से दूर नहीं होता। इसी प्रकार चतुर्थ, प चम और षष्ठ अड्.क में भी चाणक्य की योजनाओं द्वारा प्रेरित होकर ही विभिन्न पात्र अपनी भूमिका निभा रहे है। स्वपक्षीय भागुरायण सिद्धार्थक, चन्द्रगुप्त इत्यादि ही उसकी सराहना नहीं करते प्रत्युत विपक्षीय राक्षस, चन्दनदास आदि भी उसके नीतिकौशल तथा बुद्धिबल से प्रभावित है।

इतना ही नहीं नाटक का अड्.गीरस वीर है और चाणक्य ही उसका प्रधान आश्रय है। वह फल भोक्ता भी है यद्यपि राक्षस द्वारा चन्द्रगुप्त का अमात्य पद स्वीकार कर लिए जाने पर चाणक्य की किसी भी प्रकार की स्वार्थपूर्ति नहीं हुई तथापि चन्द्रगुप्त को राक्षस के रूप में एक योग्य अमात्य देकर उसके राज्य को स्थिर करने के कारण वह फल का भोक्ता भी है। इसी कारण कुछ विद्वानों ने चाणक्य को नाटक का नायक माना है।

राक्षस

कुछ विद्वान् राक्षस को इस नाटक का नायक मानते है। उनके अनुसार नाटक का नामकरण राक्षस के नाम पर ही हुआ है- 'मुद्रया जितः राक्षसः यस्मिन् इति मुद्राराक्षसः तमधिक त्य क तं नाटकम् इति मुद्राराक्षसम्। इस नाटक का भरत वाक्य भी राक्षस द्वारा ही करवाया गया है। नाटक के सात अड्.कों में से केवल प्रथम और त तीय अड्.क को छोड़कर वह सदैव रड्गम च पर उपस्थित रहा है और इन दोनों अड्.कों में भी उसकी उपस्थिति की अनुभूति होती रहती है क्योंकि ये दोनों अड्.क भी उसी के इर्द-गिर्द घूमते है। वह नाटक का केन्द्रबिन्दु है इसमें किसी की भी विप्रतिपत्ति नहीं हो सकती क्योंकि नाटक का सूत्रपात ही उसे चन्द्रगुप्त का अमात्य बनाने का उद्देश्य से हुआ है।

वह प्रारम्भ से ही हमारी सहानुभूति का पात्र हुआ है। यद्यपि अन्त में उसे पराजय मिली है तथापि पाश्चात्त्य विद्वानों ने नाट्य सिद्वान्तों के आधार पर मुद्राराक्षस को द्ःखान्त नाटक मानकर राक्षस को त्रासदीय नायक की संज्ञा दी है। अतः पाश्चात्त्य विद्वान अरस्तु, रिचर्ड और बूचर के सिद्वान्तों के अनुसार राक्षस ही इस नाटक का नायक है।

चन्द्रगुप्त

इसके विपरीत कुछ अन्य विद्वानों में चन्द्रगुप्त को नाटक का नायक माना है। इनके अनुसार चाणक्य ने सब कुछ चन्द्रगुप्त के हित की कामना से किया है। अतः नन्दवंश के नाश द्वारा राज्यप्राप्ति और राक्षस के द्वारा उसके अमात्यपद की स्वीक ति रूपी फल की प्राप्ति चन्द्रगुप्त के लिए ही लाभकारी सिद्व हुई है। चाणक्य सारी योजनाओं का निर्माता चाहे क्यों न हो तथा फल के प्रति आसक्ति उसमें नहीं है। चन्द्रगुप्त विनीत, गम्भीर, प्रजावत्सल और शूरवीर प्रसिद्व नरेश है। इस द ष्टि में धीरोदात्त नायक के सभी गुण उसमें है। चन्द्रगुप्त का व्यक्तित्व उत्तरोतर विकासशील रहा है।

'बाल एव हि लोकेस्मिन्संभावितमहोदयः।
क्रमेणारूढवान् राज्यं यूथैश्वर्यमिव द्विपः।।

यद्यपि सम्पूर्ण नाटक में रङ्.गम च पर उसकी उपस्थिति केवल त तीय अङ्.क में और कुछ समय के लिए सप्तम अङ्.क में ही हुई है तथापि नाटक के समस्त षड्यन्त्रों तथा क्रिया कलापों का केन्द्रबिन्दु वही है। इन सब कारणों से इन विद्वानों ने चन्द्रगुप्त को ही नाटक का नायक माना है।

उपर्युक्त मतों का सूक्ष्म विवेचन करने पर यह कहा जा सकता है कि राक्षस को तो नाटक का नायक मानने का प्रश्न ही नहीं उठता। चाहे वह प्रारम्भ से अन्त तक हमारी सहानुभूति का पात्र रहा है परन्तु वह नाटक के फल का भोक्ता नहीं है। पाश्चात्त्य विद्वानों ने यद्यपि मुद्राराक्षस को दुःखान्त नाटक मानकर राक्षस को त्रासदीय नायक के रूप में स्वीकार कर लिया है तथापि भारतीय द ष्टिकोण से उसे नायक नहीं माना जा सकता। संस्क त नाट्यशास्त्र के नियमों के अनुसार नाटक को सुखान्त ही होना चाहिए और जब मुद्राराक्षस नाटक को बिना किसी कठिनाई के सुखान्त माना जा सकता है तो केवल राक्षस को नायक बनाने के लिए ही इसे दुःखान्त मानने की क्या आवश्यकता है और विशेष रूप से तब जब उससे अधिक उपयुक्त पात्र इसका नायक बन सकता है।

अब वास्तविक द्वन्द्व चाणक्य और चन्द्रगुप्त के बीच ही रह जाता है। यह शतशः सत्य है कि राक्षस को वश में कर लेने से चन्द्रगुप्त को अमात्य लाभ हुआ है परन्तु वह केवल चाणक्य के हाथ की कठपुतली है। सम्पूर्ण नाटक में उसका प्रभाव कहीं भी द ष्टिगत नहीं है। वह केवल चाणक्य पर ही आश्रित है। और यही कारण है कि जब राक्षस को चतुर्थ अङ्.क से पता चलता है कि चाणक्य चन्द्रगुप्त से अलग हो गया है तो उसे अपनी विजय प्राप्ति निश्चित प्रतीत होती है- **'चन्द्रगुप्तस्तु दुरात्मा नित्यं सचिवायत्तसिद्धावेव स्थितश्चक्षुर्विकल इवाप्रत्यक्षलोकव्यवहारः कथमिव स्वयं प्रतिविधातुं समर्थ स्यात्'।** वह चाणक्य पर इतना अधिक निर्भर है कि राज्य का उत्तरदायित्व लेने की बात तो दूर पर्वतक का श्राद्ध करने के लिए भी वह चाणक्य की अनुमति प्राप्त करना चाहता है उसके चरित्र का स्वतन्त्र विकास नाटक में कहीं नहीं दिखाई देता। उसकी इस कमी को अनुभव सभी करते है। यही कारण है कि क तककलह के परिणामस्वरूप जब वह कुछ समय के लिए स्वयं राज्यभार सम्हालना स्वीकार कर लेता है तो क चुकी कहता है-**'दिष्ट्या देव इदानीं देवः**

संव तः',। राक्षस की द ष्टि में वह **'अद ष्टलोकव्यवहारमन्दधीः'**। तथा **'स्तनधंयो त्यन्तशिशुः'** है। इन सब कारणों से वह नाटक की प ष्ठभूमि में पड़ जाता है और इसीलिए उसे नाटक का नायक नहीं माना जा सकता।

चाणक्य में नायकोचित सभी गुण प्राप्त होते है। जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि उसके द ष्टिकोण से विचार करने पर वह फल का भोक्ता भी है। इसका उद्देश्य था नन्दवंश को समूल नष्ट करके राक्षस को चन्द्रगुप्त का अमात्य बनाकर चन्द्रगुप्त के लिए निष्कंटक और चिरस्थायी राज्य की स्थापना करना। और अपने इस उद्देश्य में वह पूर्ण रूप से सफल हुआ है। राक्षस को वंश में किए बिना, नन्दवंश का समूल नाश कर देने पर भी वह अपनी प्रतिज्ञा को पूर्ण हुआ नहीं मानता जैसा कि उसके कथन से स्पष्ट है- **'अथवा अग हीते राक्षसे किमुत्खातं नन्दवंशस्य किं वा स्थैर्यमुत्पादितं चन्द्रगुप्तलक्ष्म्याः'।** परन्तु राक्षस को वंश में कर लेने पर सप्तम अड्.क में वह कहता है- **'पूर्णप्रतिज्ञेन मया केवलं बध्यते शिखा'।**

इस नाटक के सम्पूर्ण घटनाचक्र का एकमात्र नियन्ता चाणक्य ही है। वह नाटक का मेरूदण्ड है। प्रो० बलदेव उपाध्याय ने भी कहा है कि 'इस नाटक में गति, प्रेरणा तथा स्फूर्ति प्रदान करने का एकमात्र श्रेय यदि किसी को है तो वह चाणक्य को ही है। विशाखदत्त स्वयं चाणक्य को ही नायक मानने के पक्ष में प्रतीत होते है। नाटक में स्थान-स्थान पर ऐसे संकेत मिलते है जो चाणक्य को नायक मानने के पक्ष को पुष्ट करते है। यथा 'जयति जयनकार्य, यावत्क त्वा च सर्व प्रतिहतपरपक्षा आर्यचाणक्यनीतिः' 'विनैव युद्धादार्येण जितं दुर्जयं परबलमिति' इत्यादि। इसके अतिरिक्त नाटक के अन्त में मलयकेतु, चन्दनदास तथा सभी कैदियों के विषय में चाणक्य द्वारा दिए गए आदेश उसके नायकत्व की पुष्टि करते है।

चाणक्य के कारण की चन्द्रगुप्त ही प्रभुत्व प्राप्त हुआ। अतः नन्द साम्राज्य के संहारक और मौर्य साम्राज्य के प्रतिष्ठापक के रूप में चित्रित चाणक्य का चरित्र इतना अधिक सशक्त है कि उसे ही मुद्राराक्षस नाटक का नायक माना जा सकता है।

चरित्र चित्रण

विशाखादत्त ने अपने मुख्य पात्रों चाणक्य और राक्षस तथा चन्द्रगुप्त और मलयकेतु को द्वन्द्व रूप से चित्रित किया है। अतः यहां उनका तुलनात्मक चरित्र चित्रण की दिया जा रहा है। प थक् - प थक् चरित्र चित्रण करना पिष्टपेषण ही होगा।

चाणक्य और राक्षस का तुलनात्मक चरित्र चित्रण

मुद्राराक्षस में चाणक्य और राक्षस दोनों का ही चरित्र चित्रण प्रभावोत्पादक ढंग से प्रस्तुत किया गया है। चाणक्य चन्द्रगुप्त का अमात्य है तो राक्षस नन्दों का। दोनों ही स्वामीभक्त है और निःस्वार्थ भाव से स्वामी के हित के लिए सदैव तत्पर रहते है। दोनों के अपने- अपने लक्ष्य पूर्वनिर्धारित हैं। चाणक्य प्रज्ञा, विक्रम और भक्ति जैसे दुर्लभ गुणों से युक्त राक्षस को चन्द्रगुप्त का अमात्य पद स्वीकार करवाकर उसके लिए निष्कंटक और चिरस्थायी राज्य स्थापित करना चाहता है। दूसरी तरफ राक्षस अपने शत्रु चन्द्रगुप्त से राज्यलक्ष्मी वापस लेकर अपने दिवंगत स्वामियों को प्रसन्न करना चाहता है।

चाणक्य और राक्षस दोनों निष्काम और निरीह है। चाणक्य इतने महान राजा चन्द्रगुप्त का मुख्यमंत्री भी है और गुरु भी परन्तु एक टूटी-फूटी झोपड़ी में निवास करता है जिसमें कुशा, उपलों तथा समिधाओं के ढेर के अतिरिक्त कुछ नहीं है।

उपशकलमेतद् भेदकं गोमयानां
बटुभिरुपह तानां बर्हिषां स्तूपमेतत्।
शरणमणि समिद्भिः शुष्यमाणाभिराभिर्
विनमितपटलान्तं द श्यते जीर्णकुड्यम्।।

उसकी इस अनासक्ति को देखकर ही चन्द्रगुप्त का क चुकी कह उठता है- 'निरीहाणामीशस्त णमिव तिरस्कारविषयः'। दूसरी तरफ राक्षस भी शत्रु का राज्य किसी स्वार्थपूर्ति के लिए नहीं बल्कि स्वर्गगत अपने स्वामियों को प्रसन्न करने के लिए ही वापस लेना चाहता है।

'नेदं विस्म तभक्तिना न विषयव्यासड्.गरूढात्मना
प्राणप्रच्युतिभीरुणा च न मया नात्मप्रतिष्ठार्थिना।
अत्यर्थं परदास्यमेत्य निपुणं नीतौ मनो दीयते
देवः स्वर्गगतोपि शात्रववधेनाराधितः स्यादिति।।

चाणक्य और राक्षस दोनों ही राजनीति के कुशल खिलाड़ी है। दोनों ही साहसी तथा बहुविध साधनों से सम्पन्न है। त तीय तथा प चम अड्.क चाणक्य की राजनैतिक कुशलता के परिचायक है तो द्वितीय अड्.क जहाँ विराधगुप्त राक्षस की असफलताओं का वर्णन करता है, वहीं राक्षस का राजनैतिक प्रतिभा से सम्पन्न होना सूचित करता है। दोनों ही अपने उद्देश्यों की पूर्ति के लिए जद्यन्य से जद्यन्य षड्यन्त्र रचने के लिए भी तत्पर है। उनके अनुसार साध्य की प्राप्ति होनी चाहिए चाहे साधन कैसा भी हो। उनमें मित्र, शत्रु और उदासीन की व्यवस्था आवश्यकतानुसार ही होती है।

'मित्राणि शत्रुत्वमुपानयन्ती मित्रत्वमर्थस्य वशाच्च शत्रुन्।
नीतिर्नयत्यस्म तपूर्वव त्तं जन्मान्तरं जीवत एव पुंसः।।

चाणक्य और राक्षस दोनों ही विशाल और उदारहृदय है। दोनों ही अपने शत्रुओं की दिल खोलकर प्रशंसा करते है। चाणक्य राक्षस की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुए कहता है-

'ऐश्वर्यादनपेतमीश्वरमयं लोको र्थतः सेवते
तं गच्छन्त्यनु ये विपत्तिषु पुनस्ते तत्प्रतिष्ठाशया।
भर्तुर्ये प्रलये पि पूर्वसुक तासंगेन निःसंगया
भक्त्या कार्यधुरां वहन्ति क तिनस्ते दुर्लभास्त्वाद शाः।।

तो दूसरी तरफ राक्षस भी अपने कट्टर शत्रु चाणक्य की प्रशंसा इस प्रकार करता है-

आकरः सर्वशास्त्राणां रत्नानामिव सागरः।
गुणैर्न परितुष्यामो यस्य मत्सरिणो वयम्।।

चाणक्य और राक्षस दोनों ही ब्राह्मण एवं मेधावी हैं। इस प्रकार यद्यपि चाणक्य और राक्षस दोनों के चरित्र में कुछ साम्य अवश्य है तथापि उनमें वैधर्म्य भी अत्यधिक है।

चाणक्य पुरूषार्थ में विश्वास रखता है। उसके अनुसार पुरुषार्थ समस्त कार्यो की सफलता का मूल है। उसके विचार मे मूर्ख ही भाग्य का आश्रय लेते है। **'दैवमविद्वांस प्रमाणयन्ति'**। दूसरी और राक्षस सदैव भाग्य की दुहाई देता रहता है। वह भाग्य को ही नन्दों के विनाश का कारण समझता

है, चाणक्य को नही **"दैवं हि नन्दकुलशत्रुरसौ न विप्रः"**। इसके साथ ही वह अन्धविश्वासी भी है। वामाक्षिस्पन्दन, सर्पदर्शन तथा क्षपणक दर्शन से उसे विश्वास हो जाता है कि कोई अशुभ घटना घटित होने वाली है।

चाणक्य सदैव सजग और सावधान है- **'जागर्ति खलु कौटिल्यः'**। वह अपने गुप्तचरों का विशेष ध्यान रखता है परन्तु राक्षस स्वयं को विविध कार्यो में फँसाए रखता है और यह भी भूल जाता है कि उसने किस गुप्तचर को किस कार्य के लिए नियुक्त किया था- **'कार्यव्यग्रत्वान्मनसः प्रभूतत्वाच्च प्रणिधीनां विस्म तम्'** तथा **'कस्मिन्प्रयोजने मयायं प्रहित इति प्रयोजनानां बाहुल्यान्न खल्ववधारयामि'**।

चाणक्य दूरदर्शी है। वह प्रत्येक योजना को बनाते समय बहुत दूर तक सोचता है। अपनी योजना के प्रत्येक पक्ष पर गम्भीरता से विचार करता है। यही कारण है कि चाणक्य की सभी योजनाएँ पूर्ण रूप से सफल होती है। इसके विपरीत राक्षस में उतावलापन अधिक है। अतीत में कुसुमपुर पर हुए आक्रमण का वर्णन सुनते - सुनते वह यह भूल जाता है कि यह भूतकाल की बात बतलाई जा रही है। उत्साह से युक्त होकर वह तुरन्त युद्ध करने के लिए उद्यत हो जाता है।

"प्राकारं परितः शरासनधरैः क्षिप्रं परिक्रम्यतां
द्वारेषु द्विरदैः प्रतिद्विपघटाभेदक्षमैः स्थीयताम्।
त्यक्त्वा म त्युभयं प्रहर्तुमनसः शत्रोर्बले दुर्बले
ते निर्यान्तु मया सहैकमनसो येषामभीष्टं यशः।।

वह केवल वर्त्तमानकालीन परिस्थितियों को ही देखता है। इसी कारण एक पल में ही अत्यधिक निराश हो जाता है।

"व ष्णीनामिव नीतिविक्रमगुणव्यापारशान्तद्विषां
नन्दानां विपुले कुले करुणया नीतेनियत्याक्षयम्।
चिन्तावेशसमाकुलेन मनसा रात्रिंदिवं जाग्रतः
सैवेयं मम चित्रकर्मरचना भित्तिं विना वत्तते।।

परन्तु दूसरे जी पल आशायुक्त हो जाता है। यथा - **(सहर्षम्) सखे शकटदास, हस्तलगतो मे सम्प्रति चन्द्रगुप्तो भविष्यति। इदानीं चन्दनदासस्य बन्धनान्मोक्षस्तव च पुत्रदारैः सह समागमः।'** वह किसी भी बात को गहराई तक नहीं सोचता। यथा जब सिद्धार्थक शकटदास को वध्यस्थल से भगाकर उसके पास लाता है तो वह सिद्धार्थक से इस विषय में कोई पूछताछ नहीं करता। इसी प्रकार चतुर्थ अङ्.क में यह बात उसे यद्यपि कुछ तर्कसङ्.त तो प्रतीत नहीं होती कि चन्द्रगुप्त द्वारा आमात्यपद से हटा दिए जाने के पश्चात् भी चाणक्य वही कुसुमपुर में रह रहा है, उसने न तो चन्द्रगुप्त को मारने की ही प्रतिज्ञा की है और न ही तपोवन में गया है तथापि शकटदास का उत्तर उसे संतुष्ट कर देता है। वह इस बात की गहराई तक जाने की आवश्यकता नहीं समझता। यही कारण है कि अन्ततोगत्वा उसकी सभी योजनाएँ पूर्ण रूप से असफल हो जाती है। चाणक्य बहुत ही सूक्ष्मदर्शी है। चन्द्रगुप्त के शयनागार में दीवार के किसी छेद में चावल के कण लेकर निकलती हुई चीटियों की पंक्ति को देखकर ही वह उसमें छिपे हुए मनुष्यों का अनुमान लगा लेता है। प्रत्येक घटना व प्रत्येक व्यक्ति को वह सन्देह की द ष्टि से देखता है। जब दारूवर्मा उसकी आज्ञा पाए बिना ही राजभवन का मुख्य द्वारा अलङ्.क त कर देता है तो चाणक्य को तुरन्त उस पर सन्देह हो

जाता है और वह चन्द्रगुप्त के स्थान पर वैरोचक को इस द्वार से प्रवेश करवाता है परिणामतः उसे चन्द्रगुप्त समझ कर उसकी हत्या कर दी जाती है। वह किसी पर विश्वास नही करता। यही कारण है वह अपनी सभी योजनाएँ अन्य किसी व्यक्ति से मन्त्रणा किए बिना ही बनाता है। दूसरी तरफ राक्षस सब पर तुरन्त विश्वास कर लेता है। अजनबी व्यक्ति को भी वह सन्देह की द ष्टि से नहीं देखता। सिद्धार्थक पर विश्वास करके वह उसे अपनी सेवा में नियुक्त कर लेता है। क्षणपक जीवसिद्धि को अपना परम मित्र समझता है और जीर्णोद्यान में फाँसी लगाने का अभिनय करने वाले पुरुष के कथन पर भी पूर्ण रूप से विश्वास कर बैठता है। उसका सब पर विश्वास कर लेना भी उसकी पराजय के मुख्य कारणों मे से एक कारण है। शकटदास पर अटूट विश्वास होने के कारण ही वह कह देता है- **'यदि शकटदासेन लिखितस्ततो मयैव लिखितः'**।

चाणक्य पाषाणहृदय है। उसके हृदय में भावुकता का सर्वथा अभाव है। उसके सेवक उसकी क्रूरता तथा कठोरता से सदैव भयभीत हैं। नटी उसका नाम सुनते ही काँप जाती है। निपुणक उसकी तुलना यम से करता है। चन्द्रगुप्त द्वारा चाणक्य को बुलाकर लाए जाने का आदेश पाकर क चुकी सेवा को श्वव त्ति के समान बतलाता है तो सिद्धार्थक उसकी आज्ञा का उल्लंघन करके जीवित रहने की कल्पना भी नहीं कर पाता। इसके विपरीत राक्षस इतना भावुक हृदय है कि अपने गुप्तचर विराधगुप्त की दयनीय अवस्था देखकर रोने लगता है। शकटदास को वध्यस्थल से बचाकर लाने के कारण वह प्रसन्न होकर तुरन्त अपने शरीर से आभूषण उतारकर सिद्धार्थक को दे देता है। चन्दनदास को बचाने के लिए आत्मसमर्पण कर देता है व चाणक्य की प्रत्येक शर्त स्वीकार कर लेता है **'विष्णुगुप्त नमः सर्वकार्यप्रतिपत्तिहेतवे सुहत्स्नेहाय। का गतिः। एष प्रह्वो स्मि'**। मलयकेतु द्वारा भला बुरा कहे जाने पर भी व अपमानपूर्वक निष्कासित कर दिए जाने पर भी नाटक के अन्त में वह चन्द्रगुप्त से उसके जीवन की रक्षा करने की प्रार्थना करता है। भावावेश में वह जाना उसकी सबसे बड़ी दुर्बलता हैं। अपने इन्हीं गुणों के कारण राक्षस पाठकों की सहानुभूति का पात्र तो बन गया परन्तु चाणक्य के हाथों पराजित हो गया। कवि विशाखदत्त ने चाणक्य में बुद्धिपक्ष और राक्षस में हृदयपक्ष की प्रधानता दिखाई है। चाणक्य में आत्मविश्वास है। निराशा उससे कोसों दूर है। कठिन से कठिन परिस्थिति में भी वह घबराता नहीं परन्तु राक्षस को अपने ऊपर विश्वास नहीं है। वह शीघ्र ही निराश हो जाता है।

व ष्णीनामिव नीतिविक्रमगुणव्यापारशान्तद्विषां
नन्दानां विपुले कुले करुणया नीते नियत्या क्षयम्।
चिन्तावेशसमाकुलेन मनसा रात्रिंदिवं जाग्रतः
सैवेयं मम चित्रकर्मरचना भित्तिं विना वर्त्तते।।

वह इसी बात से चिन्तित रहता है कि 'यह सब कैसे होगा'

'कथमिदमिहेत्युन्निद्रस्य प्रयात्यनिशं निशा'

चाणक्य को अपनी बुद्धि और नीति पर भरोसा है। उसने अपने बुद्धिबल तथा नीतिबल से ही नन्दवंश का नाश किया तथा राक्षस को चन्द्रगुप्त का अमात्य बनाया। कार्यसिद्धि में वह अपनी बुद्धि को सौ सेनाओं से भी अधिक समझता है।

ये याताः किमपि प्रधार्य हृदये पूर्वं गता एव ते
ये तिष्ठन्ति भवन्तु ते पि गमने कामं प्रकामोद्यमाः।

एका केवलमेव साधनविधौ सेनाशतेभ्यो धिका
नन्दोन्मूलनद ष्टवीर्यमहिमा बुद्धिस्तु मा गान्मम।।

सिद्धार्थक भी उसकी बुद्धि की प्रंशसा करते हुए कहता है-

बुद्धिजलनिर्झरैः सिच्यमाना देशकालकलशैः।
दर्शयिष्यति कार्यफलं गुरुकं चाणक्यनीतिलता।।

परन्तु राक्षस को अपनी तलवार पर भरोसा है।

निस्त्रिंशो यं सजलजलदव्योमसड्.काशमूर्तिर्
युद्धश्रद्धापुलकित इव प्राप्तसख्यः करेण
सत्त्वोत्कर्षात्समरनिकषे द ष्टसारः परैर्मे
मित्रस्नेहाद्विवशमधुना साहसे मां नियुड्.क्ते।।

राक्षस शस्त्र विद्या में निपुण है। उसमें युद्ध कौशल कूट - २ कर भरा है।

यत्रैषा मेघनीला चरति गजघटा राक्षसस्तत्रयायाद्
एतत्पारिप्लुवाम्भः प्लुति तुरगबलं वार्यतां राक्षसेन।
पत्तीनां राक्षसों त नयतु बलमिति प्रेषयन्मह्यमाज्ञाम्
अज्ञासीः प्रीतियोगात्स्थितमिव नगरे राक्षसानां सहस्रम्।।

सेना का संचालन करने की योग्यता भी उसमें हैं।

प्रस्थातव्यं पुरस्तात्खसमगधगणैर्मामनु व्यूह्य सैन्यैर्
गान्धारैर्मध्ययाने सयवनपतिभिः संविधेयः प्रयत्नः।
पश्चाद् गच्छन्तु वीराः शकनरपतयः संभ ताश्चीणहूणैः
कौलूताद्यश्च शिष्टः पथि परिव णुयाद्राजलोकः कुमारम्।।

इसी कारण चाणक्य राक्षस से युद्ध नहीं करना चाहता। अपने बुद्धिबल व कूटनीति से ही उसे वश में करने का प्रयत्न करता है। चाणक्य स्वभावतः क्रोधी है और राक्षस गम्भीर। यद्यपि चन्द्रगुप्त चाणक्य की पूर्वयोजनानुसार ही क तककलह में चाणक्य का अपमान करता है तथापि चाणक्य का क्रोध इतना अधिक उबल पड़ता है कि स्वयं चन्द्रगुप्त भी आशड्ि.कत हो जाता है कि कहीं आर्य चाणक्य वास्तव में ही क्रुद्ध नहीं हो गए - 'अये, कथं सत्यमेवार्यः कुपितः'। इसके विपरीत राक्षस का मलयकेतु द्वारा वास्तविक अपमान किया जाता है तब भी वह किसी प्रकार का क्रोध प्रकट न कर यही कहता है-'दैवेनोपहतस्य बुद्धिरथवा सर्वाविपर्यस्यति'। जब मलयकेतु उसके ऊपर विषकन्या का प्रयोग कर अपने पिता की पर्वतक की हत्या करने का आरोप लगाता है तो उसे बहुत बड़ा आघात पहुँचता है परन्तु फिर भी उसके मुख से केवल यही निकलता है- 'शान्तं पापं शान्तं पापं, नाहं पर्वतेश्वरे विषकन्यां प्रयुक्तवान्।' इसी प्रकार यह ज्ञात होने पर कि कपटलेख शकटदास द्वारा ही लिखा गया था, वह उस पर क्रोधित न होकर केवल यही कहता है।

स्म तं स्यात्पुत्रदाराणां विस्म तस्वामिभक्तिना।
चलेष्वर्थेषु लुब्धने न यशः स्वनपायिषु।।

चाणक्य आत्मप्रंशसक है। अवसर पाते ही वह अपनी प्रशंसा से करने से तनिक भी नहीं चूकता। तुलनीय १.१०,११,१३, ३.२७, ३१, ७.६ इत्यादि।

आस्वादितद्विरदशोणितशोणशोभां
सन्ध्यारुणामिव कलां शशला छनस्य।
ज म्भाविदारितमुखस्य मुखात्स्फुरन्तीं
को हर्तुमिच्छति हरेः परिभूय दंष्ट्राम्।।

परन्तु राक्षस आत्मप्रशंसा से कोसो दूर है। यदि उसे यह आभास भी हो जाता है कि वह आत्माप्रंशसा कर रहा है तो लज्जित हो जाता है यथा - 'स्वाधीने मयि - (इत्यर्धोक्ते लज्जां नाटयन्) प्रत्युत वह तो स्वयं को बुरा भला कहने में भी तनिक भी नहीं हिचकिचाता - 'सो हनुभूतभर्त विनाशः सुहद्विपत्तिहेतुरनार्यो दुर्ग हीतनामधेयो यथार्थो राक्षसः

चाणक्य भली प्रकार निरीक्षण करके ही ग्राह्य और त्याज्य का निर्धारण करता है परन्तु राक्षस मित्र और शत्रु की सच्ची परख नहीं कर पाता और इसी कारण उसे सर्वत्र मुहँ की खानी पड़ती है।

इतना ही नहीं चाणक्य को चन्द्रगुप्त के रूप में द्रव्य की प्राप्ति हुई है जबकि राक्षस को मलयकेतु के रूप में अद्रव्य की। चाणक्य ने जीवनपर्यन्त ब्रह्मचर्य आश्रम का पालन किया जबकि राक्षस ने ग हस्थाश्रम स्वीकार किया।

चाणक्य नाटक का नायक है तो राक्षस प्रतिनायक

इस प्रकार चाणक्य और राक्षस में कुछ साम्य होते हुए भी पर्याप्त वैषम्य है। प्रो० बलदेव उपाध्याय के शब्दों में - 'इस नाटक में गति, प्रेरणा तथा स्फूर्ति देने का एकमात्र श्रेय यदि किसी को है तो वह चाणक्य को ही है परन्तु चाणक्य में हृदय की अपेक्षा मस्तिष्क अधिक है। भाव की अपेक्षा बुद्धितत्त्व का ही प्राबल्य है। अतः वह हमारे आदर का पात्र है, स्नेह का नहीं, आतंक से हम उसके सामने नतमस्तक हो जाते है, स्नेह का नहीं। राक्षस की मानवता, कोमल-हृदयता तथा मित्रवत्सलता नितान्त श्लाघनीय है। राजनीति के अखाड़े में पराजित होने पर भी राक्षस मानवता के क्षेत्र में विजयी सिद्ध होता है। उसमें बुद्धितत्त्व की न्यूनता होने पर भी हृदयतत्त्व की प्रचुरता है। इसीलिए वह दर्शकों के हृदय को बरबस अपनी ओर खीचता है। उसके लिए हमे सम्मान व प्रेम है।

चन्द्रगुप्त और मलयकेतु का तुलनात्मक चरित्र चित्रण

मुद्राराक्षस नाटक में चन्द्रगुप्त और मलयकेतु का विरोधी चरित्र प्रस्तुत किया गया है चन्द्रगुप्त को रङ्.गम च पर त तीय और सप्तम अङ्.क में तथा मलयकेतु को चतुर्थ और प चम अङ्.क में प्रदर्शित किया गया है। चन्द्रगुप्त चाणक्य का आश्रय है तो मलयकेतु राक्षस का। परन्तु चन्द्रगुप्त चाणक्य पर पूर्ण रूप से निर्भर है। वह उसके हाथों में कठपुतली मात्र है। तुलनीय - **'चाणक्यमतिपरिग हीतं चन्द्रगुप्तमवलोक्य......।'** वह स्वतन्त्र रूप से स्वयं कोई भी कार्य करने में असमर्थ हैं। वह सचिवायत्तसिद्धि है। चाणक्य के ऊपर उसकी पूर्ण निर्भरता का वर्णन राक्षस इस प्रकार करता है-

न पो पक ष्टः सचिवात्तदर्पणः स्तनन्धयो त्यन्तशिशुःस्तनादिव।
अद ष्टलोकव्यवहारमन्दधीर्मुहूर्तमप्युत्सहते न वर्तितुम्।।

उसकी द ष्टि में चन्द्रगुप्त स्वयं न तो राज्यभार सम्हाल सकता है और न ही उनके द्वारा किए गए

आक्रमण का प्रतीकार कर सकता है त तीय अड्.क में चाणक्य भी कहता है-**'सचिवायत्तसिद्धेस्तव किं प्रयोजनमन्वेषणेन'**। स्वयं चन्द्रगुप्त भी इस बात का अनुभव करता है।

"विगुणीक तकार्मुको पि जेतुं भुवि जेतव्यमसौ समर्थ एव।
स्वपतो पि ममेव यस्य तन्त्रे गुरवो जाग ति कार्यजागरूकाः।।

चाणक्य पर पूर्ण रूप से निर्भर होने के कारण ही चन्द्रगुप्त राज्य का उत्तरदायित्व सम्हालने को भी तैयार नहीं है- **'व षल एव केवलं प्रधानप्रक तिरस्मास्वारोपितराज्यतन्त्रभारः सततमुदास्ते।'** वह राज्य को महान् दुःखदायी मानता है- **'राज्यं हि नाम राजधर्मानुव त्ति परस्य न पतेमहदप्रीतिस्थानम्।'** परन्तु मलयकेतु ने अपने को पूर्ण रूप से राक्षस के हाथ में नहीं सौंपा है- **'दिष्ट्या न रूचिवायत्ततन्त्रो स्मि'**। उसकी यही धारणा उसकी पराजय का सबसे बड़ा कारण है। वह इस बात में अत्यधिक गर्व का अुनभव करता है कि वह राक्षस पर सर्वात्मना निर्भर नहीं है। परन्तु वह इस बात से अनभिज्ञ है कि जिस भागुरायण पर वह पूर्ण रूप से आश्रित है, वह वास्तव में चाणक्य का गुप्तचर है और उसका क त्रिम मित्र बना हुआ है। वह मित्र और शत्रु की परख नहीं कर पाता।

चन्द्रगुप्त का अपने गुरु चाणक्य पर पूर्ण विश्वास है। वह गुरु के आदेश का सहर्ष स्वीकार कर लेता है। इसी कारण गुरु की आज्ञा के उल्लंघन को पाप समझने पर भी वह अपने गुरु चाणक्य की आज्ञा से उससे क तककलह भी कर लेता है।

आर्याज्ञयैव मम लंधितगौरवस्य
बुद्धिः प्रवेष्टुमिव भूविवरं प्रव त्ता।
ये सत्यमेव हि गुरूनतिपातयन्ति
तेषां कथं नु ह्वदयं न भिनत्ति लज्जा।

परन्तु दूसरी ओर मलयकेतु को राक्षस के प्रति पूर्ण विश्वास नहीं है। इसी कारण भागुरायण राक्षस के विरुद्ध उसे जो कुछ भी समझाता है और उस पर विश्वास कर लेता है। वह छिपकर राक्षस की बातें सुनना चाहता है क्योंकि उसका ऐसा विचार है कि राक्षस उससे वास्तविकता छिपा लेगा।

सत्त्वभड्.गभयाद्राज्ञां कथयन्त्यन्यथा पुरः।
अन्यथा विव तार्थेषु स्वैरालापेषु मन्त्रिणः।।

जिस अनुपात में चन्द्रगुप्त का चाणक्य के प्रति विश्वास है उसी अनुपात में मलयकेतु का राक्षस के प्रति सन्देह है। राक्षस के प्रति यह अविश्वास भी उसकी पराजय का एक कारण है।

चन्द्रगुप्त एक योग्य और विचारशील शासक है। युवावस्था के उत्साह से युक्त होने पर भी वह परिपक्व एवं परिष्क त बुद्धि वाला है।

सुविश्रब्धैरंगै पथिषु विषमेष्वप्यचलता
चिरं धुर्येणोढा गुरूरपि भुवो यास्य गुरुणा।
धुरं तामेवोच्चैर्नववयसि वोढुं व्यवसितो
मनस्वी दम्यत्वात्स्खलति च न दुःखं वहति च।।

वह लौकिक व्यवहार को जानने वाला है 'अभिज्ञः खल्वसि लोकव्यवहाराणाम्'। दूसरी ओर मलयकेतु मूर्ख और विवेकशून्य है। वह अपने नीचे काम करने वाला भागुरायण की आँखे पीछे से जाकर बन्द करना चाहता है। इससे अधिक मूर्खता और क्या हो सकती हे कि राक्षस के प्रति क्रोधावेश में वह राक्षस, चाणक्य और चन्द्रगुप्त की तुलना तो त्रिवर्ग से करता है और स्वयं की दुर्नीति से-

'विष्णुगुप्तं च मौर्यं च सममप्यागतौ त्वया।
उन्मूलयितुमीशो हं त्रिवर्गमिव दुर्नयः।।

वह अपनी बुद्धि का तनिक भी प्रयोग नहीं करता। राक्षस की सीधी-सादी बात को भी भागुरायण अन्यथा करके मलयकेतु को समझाता है और मलयकेतु इतना मूर्ख है कि वह उस बात को उसी प्रकार समझ जाता है। वह राक्षस की निष्कपट बातों को भी कपटपूर्ण समझने लगता है। इसी कारण उत्तरोत्तर राक्षस के प्रति उसका सन्देह बढ़ता जाता है। इसी प्रकार क्षपणक जीवसिद्धि के इस कथन पर भी वह पूर्ण विश्वास कर लेता है कि राक्षस ने ही विषकन्या का प्रयोग करके उसके पिता पर्वतक को मारा है तथा चाणक्य ने तो विषकन्या का नाम भी नहीं सुना। वह मूर्ख इतना ही नहीं सोच पाया कि यह किस प्रकार सम्भव हो सकता है और यदि उसने क्षपणक की बात पर विश्वास कर भी लिया तो उसने भागुरायण से यह स्पष्टीकरण क्यों नही माँगा कि भागुरायण उसे यह कह कर कि 'आपका पिता-चाणक्य के द्वारा मारा गया है और यदि आप यहाँ रहे तो चाणक्य आपको भी मरवा देगा' राक्षस के पास क्यों ले आया। इसी कारण राक्षस भी उसके लिए यह कहने का बाध्य हो जाता है **'एतावद्धि विवेकशून्यमनसा म्लेच्छेन नालोचितम्'**। अपनी मूर्खता के कारण वह स्वयं तो डूबता ही है परन्तु साथ ही राक्षस के अत्यन्त विश्वसनीय पाँच शूरवीर म्लेच्छ राजाओं-कौलूत के चित्रवर्मा इत्यादि को भी मौत के घाट उतरवा देता है। राक्षस को बुरा भला व विश्ववासघाती भी कहता है। अपने हितैषी राक्षस पर तो अविश्वास करता है परन्तु धोखा देने में तत्पर भागुरायण पर पूर्ण विश्वास कर लेता है।

चन्द्रगुप्त शूद्र होने पर भी महत्वाकांक्षी उज्ज्वलचरित्र, सुशिक्षित व योग्य है। इसके विपरीत मलयकेतु अयोग्य, दुरभिमानी, मिथ्याहठी व दुर्बल चरित्र का है। सम्पूर्ण नन्द राज्य का अधिपत्य प्राप्त कर लेने पर भी चन्द्रगुप्त में अहङ्.कार नहीं है। वह अपनी सफलता का सारा श्रेय चाणक्य को ही देता है। **'आर्यप्रसाद एष चन्द्रगुप्तेनानुभूयते'**। परन्तु मलयकेतु मिथ्या अहङ्.कारी है।

चन्द्रगुप्त और मलयकेतु दोनों ही पराक्रमी है यद्यपि दोनों में से किसी को भी नाटक में अपना पराक्रम प्रदर्शित करने का अवसर नहीं मिला। दोनों में वीररस भरपूर है **'विनैव युद्धादार्येण जितं दुर्जयं परबलमिति लल्जित एवास्मि।'** दूसरी तरफ मलयकेतु भी अपने पिता पर्वतक की म त्यु का बदला लेने के लिए तत्पर है। एक वीर योद्धा की भाँति वह या तो युद्ध में लड़ते - २ स्वयं म त्यु को प्राप्त हो जाना चाहता है अथवा शत्रु को नष्ट कर देना चाहता है।

"उत्तुङ्.गास्तुङ्.गकूलं स्रुतमदसलिलाः प्रस्यन्दिसलिलं
श्यामाः श्यामोपकण्ठद्रुममलिमुखराः कल्लोरमुखरम्
स्रोतः खातावसीदत्तटमुरुदशनैरुत्सादिततटाः
शोणं सिन्दूरशोणा मम गजपतयो पास्यन्तुशतशः।।

चन्द्रगुप्त शान्त एवं गम्भीर है तो मलयकेतु उद्धत, अशान्त एवं असमीक्ष्यकारी है। चन्द्रगुप्त अपने गुरु के प्रति श्रद्धा से नतमस्तक है और उनके नियन्त्रण में रहते हुए ही प्रत्येक कार्य करना चाहता है **'अथवा शश्वदार्योपदेश संस्क्रियमाणमतयः सदैव स्वतन्त्राः वयम्'** परन्तु मलयकेतु क्रोधावेश में

विवेकहीन हो जाता है और बिना सोचे समझे जो कुछ मन में आता है कह देता है जैसा कि राक्षस के प्रति उसकी इस उक्ति से स्पष्ट है **'अन्वर्थतोपि ननु राक्षस राक्षसो सि'।** चन्द्रगुप्त क तज्ञ है तो मलयकेतु क तघ्न। चन्द्रगुप्त चाणक्य द्वारा अपने प्रति किए गए उपकारों को पूर्ण रूप से समझता है-

जगतः किं न विजितं मयेति प्रविचिन्त्यताम्।
गुरौ षाड्गुण्यचिन्तायामार्ये चार्ये च जाग र्ति।।

जबकि मलयकेतु राक्षस के सभी उपकारों व अपने प्रति उसके पुत्र तुल्य स्नेह को भूलकर उसे अनार्य, विश्रम्भघाती, लोभी, 'अर्थ से भी राक्षस हो' इत्यादि कहकर खूब खरी खोरी सुनाता है। चन्द्रगुप्त धीरोदात्त नायक माना जा सकता है तो मलयकेतु धीरोद्धत।

चन्द्रगुप्त प्रक ति का प्रशंसक है। इसी कारण त तीय अड्क में दिशाओं के सौन्दर्य को देखकर वह आहलादित हो उठता है। अपराधियों को कठोर दण्ड देने वाला 'एवमपथ्यकारिषु तीक्ष्णदण्डो राजा' तथा प्रज्ञावत्सल भी है। इस प्रसड्.ग में मलयकेतु के गुण अथवा दोषों को उभारने का अवसर कवि को प्राप्त नहीं हुआ है।

इस प्रकार चन्द्रगुप्त और मलयकेतु के चरित्र में महान अन्तर है। नाटककार ने राक्षस के मुख से उन दोनों का वैषम्य इस प्रकार स्पष्ट किया है-

द्रव्यं जिगीषुमधिगम्य जडात्मनो पि
नेतुर्यशस्विनि पदे नियता प्रतिष्ठा।
अद्रव्यमेत्य तु विशुद्धनयो पि मन्त्री
शीर्णाश्रयः पतति कूलजव क्षव त्त्या।

अर्थात् योग्य और विजय प्राप्ति के इच्छुक (राजा) को प्राप्त करके जड़ बुद्धि वाले अमात्य की भी यशस्वी पद पर स्थिति निश्चित है परन्तु अयोग्य (राजा) को प्राप्त करके शुद्ध नीति वाला मन्त्री भी आश्रय के नष्ट हो जाने से नदी के तट पर उत्पन्न व क्ष की भाँति गिर जाता है।

भागुरायण

भागुरायण चन्द्रगुप्त के सेनापति सिंह बल का छोटा भाई है। यह चाणक्य का अत्यन्त विश्वसनीय गुप्तचर है। इसी ने मलयकेतु को यह कह कर कि 'आपके पिता को चाणक्य ने मरवाया है' कुसुमपुर से भगा दिया था। प्रथम अड्.क की समाप्ति पर चाणक्य के शिष्य शार्ड्.गरव से पता चला है कि भागुरायण कुसुमपुर से भाग गया है। वस्तुतः उसका भाग जाना चाणक्य की योजना का ही एक अड्.ग है। मलयकेतु के पास जाकर वह उसका पूर्ण विश्वास प्राप्त कर लेता है- **'भद्र भासुरक, न मां दूरीभवन्तमिच्छति कुमारः'**। मलयकेतु उसे अपना अमात्य बना लेता है। वह स्वामीभक्त, शूरवीर, साहसी, धैर्यवान् और कर्तव्यपरायण है।

भागुरायण यद्यपि चतुर्थ और प चम इन दो अड्.कों में ही रड्.गमंच पर आता है तथापि नाटक में उसकी भूमिका महत्वपूर्ण है। वह सफलतापूर्वक मलयकेतु के मन में राक्षस के विरुद्ध सन्देह के बीज उत्पन्न कर देता है यह कार्य वह इतनी कुशलता से सम्पन्न करता है कि अन्त तक भी मलयकेतु को उसके प्रति कोई आशड्.का नहीं होती। मलयकेतु उसके हाथ में कठपुतली मात्र बनकर रह गया है। भागुरायण कर्त्तव्य को भावना से ऊँचा समझता है। वह मलयकेतु को धोखा नही देना

चाहता परन्तु स्वयं को ऐसा करने के लिए विवश पाता है क्योंकि अपने स्वामी के प्रति वह विश्वासघात नहीं कर सकता।

कुले लज्जायां च स्वयशसि न माने च विमुखः
शरीरं विक्रीय क्षणिकधनलोभाद्धनवति।
तदाज्ञां कुर्वाणो हितमहितमित्येतदधुना
विचारातिक्रान्तः किमतिपरतन्त्रो विम शति।।

अपनी भावनाओं का हनन करके ही वह मलयकेतु को धोखा देता है। उसकी आत्मा उसे धिक्कारती रहती है- **'कष्टमेवमप्यस्मासु स्नेहवान्कुमारो मलयकेतुरतिसन्धातव्य इत्यहो दुष्करम्।'**

भागुरायण अत्यधिक प्रत्युत्पन्नमति भी है। जब सिद्धार्थक कपटलेख शकटदास द्वारा लिखा गया बतलाया है और इसकी पुष्टि करने के लिए शकटदास को बुलाने का प्रस्ताव रखा जाता है तो भागुरायण सोचता है कि चाणक्य का गुप्तचर असत्य बात नहीं करेगा।

यह पत्र अवश्य ही शकटदास के द्वारा ही लिखा गया होगा और यहाँ आने पर वह इस पत्र को पहचान लेगा जिससे आर्य चाणक्य की सारी योजना असफल हो जाएगी। ऐसी परिस्थिति में वह अपनी कुशाग्रबुद्धि का परिचय देता हुआ तुरन्त कहता है कि यहाँ आकर शकटदास अमात्य राक्षस के सम्मुख कभी भी यह स्वीकार नहीं करेगा कि यह पत्र उसके द्वारा लिखा गया है। अतः उसका दूसरा लेख मगँवा लिया जाए। वर्णो की समानता ही इसका निश्चय कर देगी - **(स्वगतम्) न खल्वनिश्चतार्थमार्यचाणक्यप्रणिधयो भिधास्यन्ति, आगत्य शकटदासो वा सोयं लेख इति प्रत्यभिज्ञाय पूर्वव त्तं प्रकाशयेत्। एवं सति सन्दिहानो मलयकेतुरस्मिन्प्रयोगे श्लथादरो भवेत्। (प्रकाशम्) कुमार, न कदाचिदपि शकटदासो मात्यस्याग्रतो मया लिखितमिति प्रतिपत्स्यते। अतो न्यलिखितमस्यानीयतां वर्णसंवाद एवैतद् विभावयिष्यति।** तर्कसंगत होने के कारण उसका यह सुझाव सबके द्वारा तुरन्त स्वीकार कर लिया जाता है।

राक्षस के सामान्य कथनों को भी वह मलयकेतु को अन्यथा जिस ढड्.ग से समझाता है, वह भी उसकी नीतिपटुता तथा कुशाग्रबुद्धि का परिचायक है। जब मलयकेतु राक्षस के प्रति अत्यधिक क्रोधित होकर उसे मारना चाहता है तब भी वह उसे शान्त करता हुआ कहता है कि 'नन्दराज्य की प्राप्ति तक तो आप राक्षस को स्वीकार कीजिए। तत्पश्चात् उसे स्वीकार करने अथवा त्यागने में आप प्रमाण है 'आनन्दराज्यलाभादुपग्राह्यश्च परतश्च परिग हे वा परित्यागे वा कुमारः प्रमाणम्।' मलयकेतु इसका अनुमोदन करता हुआ कहता है- एवम्। सखे सम्यग्द ष्टवानसि। यतो मात्यवधे प्रक तिक्षोभः स्यादेवं च सन्दिगधो विजयः।

सप्तम अड्.क में पुरुष के कथन से हमें यह पता चलता है कि भागुरायण ने अपना कार्य सफलतापूर्वक सम्पन्न कर लिया है और भद्रभट इत्यादि अन्य प्रधान पुरुषों की सहायता से मलयकेतु के हाथ पैर बाँधकर कुसुमपुर ले आया गया है।

इस प्रकार भागुरायण कर्तव्यपरायण, स्वामीभक्त, तीक्ष्णबुद्धि गम्भीर एवं प्रत्युत्पन्नमति है। एक योग्य गुप्तचर के सभी गुण उसमें विद्यमान हैं।

सिद्धार्थक

सिद्धार्थक भी चाणक्य का अत्यन्त विश्वसनीय गुप्तचार है। नाटक में इसका प्रवेश प्रथम, द्वितीय तथा प चम अड्.क में होता है। चाणक्य ने इसे राक्षस के मित्र व गुप्तचर शकटदास की गतिविधियों

पर नजर रखने के लिए नियुक्त किया है। चाणक्य की योजनानुसार वह शकटदास को सफलतापूर्वक वध्यस्थल से भगाकर राक्षस के पास पहुँचा देता है व राक्षस की सेवा करने मे तत्पर हो जाता है। वह चाणक्य की बुद्धि तथा नीतिपटुता से अत्यधिक प्रभावित है।

"बुद्धिजलनिर्झरैः सिच्यमाना देशकालकलशैः।
दर्शयिष्यति कार्यफलं गुरुकं चाणक्यनीतिलता।।

भागुरायण की भाँति वह भी कर्त्तव्य को भावना से ऊँचा समझता है। आर्य चाणक्य की कार्य सिद्धि ही उसके जीवन का लक्ष्य है। परिस्थितियों के अनुरूप स्वयं को ढाल लेना सिद्धार्थक के स्वभाव की विशेषता है। स्वामी की आज्ञा का पालन करना वह अपना परम कर्त्तव्य समझता है।

"आनयन्त्यै गुणेषु दोषेषु पराङ्.मुखं कुर्वत्यै।
अस्माद शजनन्यै प्रणमामः स्वामिभक्त्यै।।

चाहे इसके लिए उसे अपनी भावनाओं का हनन ही क्यों न करना पड़े। इसी कारण जब चाणक्य उसे व उसके मित्र सिद्धार्थक चाण्डाल का रूप धारण कर चन्दनदास को फाँसी लगाने का आदेश देता है तब न चाहते हुए भी वह इन्कार नहीं कर पाता - **'तदेहि चण्डालवेषधारिणौ भूत्वा चन्दनदासं वध्यस्थानं नयावः'** तथा **'वयस्य को जीवलोके जीवितुकाम आर्यचाणक्यस्याज्ञप्तिं प्रतिकूलयति।'** सिद्धार्थक एक कुशल अभिनेता भी है। प चम अङ्.क में वह इतना कुशल एवं स्वाभाविक अभिनय करता है कि किसी को भी उसके प्रति सन्देह उत्पन्न नहीं होता।

कुशल अभिनेता होने के साथ - साथ वह बुद्धिमान भी है क्योंकि मलयकेतु से अपने लिए अभयदान की स्वीक ति वह पहले ही ले लेता है- **(पादयोर्निपत्य) अभयेन मे प्रसादीकरोत्वार्यः।**

मलयकेतु— भद्र अभयमेव परवतो जनस्य।

इस प्रकार सिद्धार्थक भी एक स्वामिभक्त, नीतिपटु एवं कर्त्तव्यपरायण सेवक है।

विराधगुप्त

विराधगुप्त राक्षस का विश्वसनीय गुप्तचर है जो सपेरे का वेष धारण करके कुसुमपुर जाता है और वहाँ का समस्त समाचार जानकर वापस आता है। वह केवल द्वितीय अङ्.क में ही रङ्गम च पर प्रस्तुत किया गया है वह छद्म वेष धारण करने में भी निपुण है और राजनीति में भी। इसी कारण वह राजनीति की दुष्करता की तुलना सर्प दिखाने के खेल की दुष्करता से करता है

जानन्ति तन्त्रयुक्तिं यथास्थितिं मण्डलमभिलिखन्ति।
ये मन्त्ररक्षणपरास्ते सर्पनराधिपावुपचरन्ति।।

वह संस्क त भाषा का प्रयोग करता है अतः उच्च श्रेणी का पुरुष पात्र है वह प्राक त भाषा का कवि भी है। वह द्वयर्थक श्लोक प्राक त भाषा में लिखकर राक्षस के पास भेजता है।

पीत्वा निरवशेषं कुसुमरसमात्मनः कुशलतया।
यदुद्गिरति भ्रमरः अन्येषां करोति तत्कार्यम्।।

जिससे पढ़कर राक्षस कह उठता है- **'सुकविरेषः'**। कुसुमपुर का समस्त व त्तान्त सुव्यवस्थित ढङ्.ग से संक्षिप्त रूप से बतलाना उसकी विश्लेषणात्मक प्रव त्ति का सूचक है। राक्षस के निराश व हतोत्साहित हो जाने पर वह उसे ढाढस बँधाता है व पुनः उत्साहित करने का प्रयत्न करता है-

'अमात्य, अलं शोकेन। नातिचिरादमात्यो स्मान् पुरातनीमवस्थामारोपयिष्यति अमात्य, दैवस्यात्र कामचारः, किं क्रियताम्, अमात्य स्वाम्यर्थ एव साधयितव्य इति प्रयतसे' इत्यादि।

नाटक का गौण पात्र होते हुए भी विराधगुप्त का चरित्र सशक्त, गम्भीर एवं ओजपूर्ण है।

चन्दनदास

मुद्राराक्षस नाटक में सर्वाधिक मर्मस्पर्शी एवं करुण चरित्र चन्दनदास का है। वह मणिकार श्रेष्ठी है। जिसे सप्तम अङ्.क में चाणक्य द्वारा नगरसेठ के पद पर प्रतिष्ठित कर दिया जाता है। वह प्रथम और सप्तम अङ्.क में कुछ समय के लिए रङ्.गम च पर आता है। वह जाति से वैश्य है व राक्षस का परम मित्र है। उसकी के घर में राक्षस अपने परिवार को रखकर कुसुमपुर से बाहर गया था- **'अमात्यराक्षसस्य द्वितीयमिवं ह्वदयं पुष्पपुरनिवासी मणिकारश्रेष्ठी चन्दनदासो नाम यस्य गेहे कलत्रं न्यासीक त्य अमात्यराक्षसो नगरादपक्रान्तः'**। चाणक्य भी यह अनुभव करता है कि चन्दनदास वास्तव में राक्षस का परम मित्र होगा क्योंकि 'न ह्यनात्मसद शेषु राक्षसः कलत्रं न्यासीकरिष्यति'। राक्षस के प्रति उसका प्रेम गम्भीर व अटल है। इसी कारण चाणक्य के द्वारा राक्षस के परिवार को बार-बार माँगने पर भी वह उसे नहीं सौंपता। धन, सम्पत्ति और परिवार की चिन्ता तो दूर, चाणक्य द्वारा प्राणदण्ड की धमकी दिए जाने पर भी वह स्पष्ट रूप से कह देता है- **'आर्य किं मे भयं दर्शयसि। सन्तमपि गेहे अमात्यराक्षस्य ग हजनं न समर्पयामि किं पुनरसन्तम्'**। उसके इस आत्मत्याग से चाणक्य भी अत्यधिक प्रभावित होता है।

सुलभेष्वर्थलाभेषु परसंवेदने जनः।
क इदं दुष्करं कुर्यादिदानीं शिविना विना।।

चाणक्य चन्दनदास को पुत्र पत्नी सहित कारागार में डलवा देता है क्योंकि उसे यह विश्वास है कि जिस प्रकार चन्दनदास राक्षस के लिए अपने प्राणों को छोड़ने के लिए तत्पर है उसी प्रकार राक्षस भी इसे बचाने के लिए कुछ भी करने को तैयार हो जाएगा

त्यजत्यप्रियवत्प्राणान्यथा तस्यायमापदि।
तथैवास्यापदि प्राणा नूनं तस्यापि न प्रियाः।।

आगे जाकर चाणक्य के इस अनुमान की पुष्टि राक्षस के इस कथन से भी हो जाती है- 'ननु वक्तव्यं संयमितः सपुत्रकलत्रो राक्षस इति'। चाणक्य के कठोर से कठोर दण्ड से भी वह विचलित नहीं होता- **'सज्जो स्मि अनुतिष्ठतु आर्यः आत्मनो धिकारसद शम्'**। उसे इस बात का हर्ष है कि उसका विनाश किसी पुरुषदोष से नही अपितु मित्रकार्य से हो रहा है- **'आर्ये, अयं मित्रकार्येण मे विनाशो न पुनः पुरुषदोषेण।'** परन्तु उसे इस बात का दुःख अवश्य है कि सदैव चरित्रभङ्.ग से भयभीत रहने के पश्चात् भी उसे चोरजनोचित म त्युदण्ड दिया जा रहा है- **'अस्माद शानामपि नित्यं चरित्रभङ्.गभीरूणां चोरजनोचितं मरण भवतीति नमःक तान्ताय'**। चाणक्य के प्रति उसके मन में अत्यधिक घ णा है। अपने पुत्र द्वारा यह पूछे जाने पर कि 'तातविरहित मेरे द्वारा क्या किया जाना चाहिए' वह तुरन्त कहता है- **'चाणक्यविरहिते देशे वस्तव्यम्'**।

इस प्रकार चन्ददास शरणगतवत्सल, कर्तव्यपरायण तथा सदाचारी है। निस्सन्देह उसका चरित्र अनुकरणीय एवं श्लाघनीय है।

प्रथमों कः

धन्या केयं स्थिता ते शिरसि शशिकला किं नु नामैतदस्या
नामैवास्यास्तदेत्परिचितमपि ते विस्म तं कस्य हेतोः।
नारीं प च्छामि नेन्दुं कथयतु विजया न प्रमाणं यदीन्दुर्
देव्या निन्होतुमिच्छोरिति सुरसरितं शाठ्यमव्याद्विभोर्वः।।१।

अन्वय— ते शिरसि स्थिता इयं धन्या का शशिकला किं नु एतद् अस्याः नाम? एतद् अस्याः नाम एव तत् परिचितम् अपि ते कस्य हेतोः विस्म तम्। नारीं प च्छामि इन्दुं न यदि इन्दुः प्रमाणं न विजया कथयतु, इति सुरसरितं देव्याः निन्होतुम् इच्छोः विभोः शाठ्यम वः अव्यात्।

संदर्भ— शिव के मस्तक पर विराजमान गंगा को देखकर पार्वती अत्यधिक ईर्ष्या से युक्त हो जाती हैं। उन्हें ऐसा प्रतीत होता है कि शिवजी के अर्द्धनारीश्वर होने के कारण वे तो उनके वामांग ही विद्यमान होती हैं परन्तु यह धन्य स्त्री कौन है जो उनसे भी ऊँचे स्थान शिव जी के मस्तक पर ही विराजमान है। वे शिवजी से इस विषय में पूछती हैं। यद्यपि शिव जी पार्वती के प्रश्न को समझ जाते हैं तथापि उनके प्रश्न को न समझने का अभिनय करते हुए अन्यथा उत्तर देते हैं। पार्वती और शिवजी के इसी वार्तालाप का प्रस्तुत श्लोक में वर्णन है।

हिन्दी अनुवाद—

(पार्वती) आपके सिर पर विद्यमान पर धन्य स्त्री कौन है? (शिव) शशिकला। (पार्वती) क्या यह इसका नाम है। (शिव) यह इसका नाम ही है। उसे जानते भी हुए तुम्हें किस कारण भूल गया है। (पार्वती) (मैं) स्त्री के विषय में पूछ रही हूँ, चन्द्रमा के विषय में नहीं। (शिव) यदि तुम चन्द्रमा को प्रमाण नहीं मानती तो तुम्हारी सखी विजया (ही तुम्हें) बतलाए। इस प्रकार देवी पार्वती से गंगा को छिपाने के इच्छुक भगवान शिव की कुटिलता आप सबकी रक्षा करे।(१)

स्पष्टीकरण—संस्कृत कवियों की यह परम्परा रही है कि अपने ग्रन्थ को निर्विघ्न समाप्ति के लिए वे ग्रन्थ के प्रारम्भ में मंगलाचरण करते हैं। इस मंगलाचरण के श्लोक को 'नान्दी' कहते हैं जिसका अर्थ है 'नन्दन्ति देवता अस्याम् अनया वा' अर्थात् इसमें अथवा इसके द्वारा देवता प्रसन्न होते हैं। यहाँ कवि के आशीर्वादात्मक प्रकार की नान्दी का प्रयोग किया है।

'धन्या' शब्द से ही गंगा के प्रति पार्वती की ईर्ष्या अभिव्यक्त होती है। अपने पति के सिर पर अपने से भी उन्नत स्थान पर अवस्थित गंगा को देखकर पार्वती का ईर्ष्या युक्त होना स्वाभाविक ही है। शिव जी यद्यपि पार्वती का प्रश्न समझ जाते हैं तथापि न समझने का अभिनय करते हुए कहते हैं कि यह तो शशिकला है क्योंकि शिवजी के मस्तक पर चन्द्रमा की कला भी विद्यमान है। पार्वती सोचती हैं कि शायद शशिकला इस स्त्री का नाम है अतः वे पुनः प्रश्न करती हैं कि क्या शशिकला इस स्त्री का नाम है। शिवजी पुनः कहते हैं कि हाँ यह इसका नाम ही है। तुम तो इसे बहुत समय से जानती हो फिर कैसे भूल गई। अब पार्वती समझ जाती हैं कि शिवजी तो चन्द्रमा की कला के विषय

में ही बात कर रहे है अतः वे अपना प्रश्न स्पष्ट करती हुई कहती हैं कि मैं तो स्त्री के बारे में पूछ रही हूँ, चन्द्रमा के विषय में नहीं। इस पर भी शिवजी पार्वती को गंगा के बारे में नहीं बतलाते प्रत्युत यही कहते हैं कि यदि तुम मेरे द्वारा कथित चन्द्रमा को प्रमाण नहीं मानतीं तो अपनी प्रिय सखी विजया से ही पूछ लो। विजया पार्वती की बचपन की सखी थीं। इस प्रकार भगवान् शिव अपनी वाक्चातुरी से ही गंगा को पार्वती से छिपाना चाहते हैं। शिव जी की ऐसी वाक्चातुरी आप सबकी रक्षा करें।

उक्त श्लोक में स्रग्धरा छन्द और वक्रोक्ति अलंकार है।

संस्कृत भावार्थ—

ते उत्तमांगें विद्यमाना इयं सौभाग्यवती स्त्री का अस्ति। इयं शशिकला अस्ति। किम् एतद् अस्याः नाम अस्ति। आम् अस्याः नाम शशिकला एवास्ति। सुविदितमपि त्वया किमर्थं विस्म तम्? अहं तु नारीविषयं ज्ञातुम् इच्छामि, चन्द्रं न। यदि त्वम् मम कथने न विश्वासं न करोषि तदा स्वसखीं विजयामेव प च्छतु। एवं पार्वत्याः गंगा गोपयितुकामस्य भगवतः शिवस्य वाक्चातुरी युष्मान् सर्वान् पातु।

पादस्याविर्भवन्तीमवनतिमवने रक्षतः स्वैरपातैः
संकोचेनैव दोष्णां मुहुरभिनयतः सर्वलोकातिगानाम्।
द ष्टिं लक्ष्येषु नोग्रज्वलनकणमुचं बध्नतो दाहभीतेर्
इत्याधारानुरोधात्त्रिपुरविजयिनः पातु वो दुःखन त्तम्।।२।।

अन्वय— स्वैर् पादस्य पातैः आविर्भवन्तीम् अवनेः अवनतिम् रक्षतः, सर्वलोकातिगानाम् दोष्णां मुहुःसंकोचेनैव अभिनयतः, उग्रज्वलनकणमुचं द ष्टिं लक्ष्येषु दाहभीतेः न बध्नतःइति आधारानुरोधात् त्रिपुरविजयिनःदुखन त्तम् वः पातु।

संदर्भ— प्रस्तुत श्लोक भी मंगलाचरण का श्लोक है जिसमें धरातल के सीमित होने के कारण भगवान शिव द्वारा कठिनतापूर्वक किए गए ताण्डव न त्य से सबकी रक्षा करने की प्रार्थना की गई है।

हिन्दु अनुवाद—

इच्छानुसार पैर के रखने से होने वाली प थ्वी की अवनति से की रक्षा करने वाले, सभी लोकों को पार करने वाली भुजाओं को बार बार सिकोड़ कर ही अभिनय करने वाले, भयंकर आग की लपटों को छोड़ने वाली द ष्टि को वस्तुओं पर भस्म हो जाने के भय से न टिकाने वाले (और) इस प्रकार धरातल के सीमित होने के कारण तीनों लोको को जीतने वाले अर्थात् भगवान् शिव द्वारा कठिनतापूर्वक किया गया न त्य आप सब की रक्षा करे।(२)

स्पष्टीकरण— प्रस्तुत श्लोक में वर्णन किया गया है कि भगवान शिव यद्यपि ताण्डव न त्य कर रहे हैं तथापि वे इसे अपनी इच्छानुसार नहीं कर पा रहे। प्रथम तो वे अपने पैरों को अपनी इच्छानुसार प थ्वी पर नही रख पा रहे क्योंकि ऐसा करने से प थ्वी रसातल को चली जाएगी। पुनः उन्हें अपनी भुजाओं को बार बार सिकोड़ना पड़ रहा है अन्यथा वे तीनों लोकों को पार कर जाएँगी। इसके अतिरिक्त आग की भयंकर लपटों को छोडने वाली अपनी तीसरी आँख को किसी भी वस्तु पर क्षण भर के लिए भी स्थिर नहीं रख पाते अन्यथा वह वस्तु ही जल कर भस्म हो जाएगी। इस प्रकार स ष्टि का नाश की आशंका

से न तो पैरों को स्वतन्त्रतापूर्वक रखा जा रहा है, न भुजाओं को इच्छानुसार फैलाया जा रहा है और न ही द ष्टि को एक स्थान पर टिकाया जा रहा है। इन कारणों से अत्यन्त कठिनाईपूर्वक किया गया भगवान् शिव का न त्य आप सबकी रक्षा करे।

उक्त श्लोक में स्रग्धरा छन्द, अतिशयोक्ति अलंकार तथा परिकर अलंकार है।

संस्कृत भावार्थ—

चरणस्य स्वछन्दविक्षेपैः आविर्भविष्यन्तीम् प थिव्याः अधोगमनं परिहरतः सर्वान् लोकान् अतिक्रम्य गन्तुं समर्थनां भुजानां व्यावर्तनेनैव पुनः-पुनः अंगविक्षेपं कुर्वतः, भयंकराग्निस्फुलिंगान् मु चन्ती द ष्टिं वस्तुषु दहनशंकाद् न पातयतः इत्येवमुक्तस्य न त्तक्रियाश्रयस्य प थिव्यादेः अनुक्रोशात त्रिपुरविजयिनः भगवतः शिवस्य यथाकथ चिद् कृच्छ्रेण कृतं न त्यं युष्मान् सर्वान् रक्षतु।

(नान्द्यते)

सूत्रधारः— **अलमतिप्रसंगेन। आज्ञापितो स्मि परिषदा यथाद्य त्वया सामन्तवटेश्वरदत्तपौत्रस्य महाराजभास्करदत्तसूनोः कवेर्विशाखदत्तस्य कृतिरभिनवं मुद्राराक्षसं नाम नाटकं नाटयितव्यमिति। यत्सत्यं काव्यविशेषवेदिन्यां परिषदि प्रयु जानस्य ममापि सुमहान्परितोषः प्रादुर्भवति। कुतः-**

हिन्दी अनुवाद—

(नान्दी की समाप्ति पर)

सूत्रधार— बहुत अधिक विस्तार मत करो। सभा के द्वारा मुझे आज्ञा दी गई है कि आज तुम्हारे द्वारा सामन्त वटेश्वरदत्त के पौत्र और महाराज भास्करदत्त के पुत्र कवि विशाखदत्त की नई रचना मुद्राराक्षस नामक नाटक का अभिनय किया जाना चाहिए। सच तो यह है कि काव्य के गुण और दोषों को जानने वाली सभा में अभिनय किए जाने पर मुझे भी महान् सन्तोष हो रहा है। क्योंकि -

चीयते बालिशस्यापि सत्क्षेत्रपतिता कृषिः।
न शालेः स्तम्बकरिता वप्तुर्गुणमपेक्षते।।३।।

अन्वय— बालिशस्य अपि सत्क्षेत्रपतिता कृषिः चीयते। शालेः स्तम्बकरिता वप्तुः गुणं नापेक्षते।।

संदर्भ— प्रस्तुत श्लोक में सभा की प्रशंसा करते हुए सूत्रधार कहता है कि काव्य के गुण और दोषों को जानने वाली सभा के सामने अभिनीत किया गया नाटक अवश्य सफल होगा।

हिन्दी अनुवाद—

एक मूर्ख की भी उपजाऊ भूमि पर बोई गई खेती व द्धि को प्राप्त होती है। धान की सघनता बोने वाले के गुणों को नहीं देखती।(३)

स्पष्टीकरण— यदि भूमि उपजाऊ है और बीज भी अच्छा है तो वह बीज चाहें एक विद्वान् द्वारा बोया जाए अथवा एक मूर्ख द्वारा, अवश्य ही फूलेगा। कृषि की सघनता वप्ता के गुणों पर निर्भर न होकर अच्छी भूमि और अच्छे बीज पर निर्भर होती है। इसी प्रकार मुद्राराक्षस नामक नाटक रूपी बीज भी श्रेष्ठ है और जिस सभा के समक्ष यह अभिनीत किया जा रहा है वह भी उपजाऊ भूमि के समान काव्य के गुण और दोषों को परखने वाली है। अतः इसका अभिनय करवाने वाला मैं (सूत्रधार) गुणी न होऊं तब भी यह

नाटक अवश्य सफल होगा। यह विद्वत्सभा नीरक्षीरविवेकी की भाँति इस नाटक के गुणों को ग्रहण कर लेगी और अवगुणों का त्याग कर देगी। यहाँ विद्वत्सभा की तुलना उपजाऊ भूमि, मुद्राराक्षस नाटक की तुलना बीज तथा सूत्रधार की तुलना मूर्ख वप्ता से की गई है।

उक्त श्लोक में अनुष्टुप् छन्द तथा द ष्टान्त अलंकार है।

संस्कृत भावार्थ—

कृषिकर्मणि अनभिज्ञस्यापि उर्वरायां भुवि उप्तं बीजम् अवश्यमेव वर्धते। धान्यविशेषस्य पुष्कलता बीजावापकर्तुः दक्षत्वादिकं नापेक्षते किन्तु स्वयमेव भूसारगुणेनोपचिता भवति।

तद्यावदिदानीं ग हं गत्वा ग हजनेन सह संगीतकमनुतिष्ठामि (परिक्रम्यावलोक्य च) इमे नो ग हाः। तद्यावत्प्रविशामि (नाट्येन प्रविश्यावलोक्य च) अये तत्किमिदमस्मद्ग हेषु महोत्सव इव। स्वस्वकर्मण्यधिकतरमभियुक्तः परिजनः। तथा हि—

हिन्दी अनुवाद—

तो तब तक अब घर जाकर पत्नी को बुलाकर घर के लोगों के साथ संगीत का आयोजन करता हूँ। (घूमकर और देखकर) यह मेरा घर है। मैं प्रवेश करता हूँ। (अभिनयपूर्वक प्रवेश कर और देखकर) अरे यह क्या। हमारे घर में तो महोत्सव सा (दिखाई पड़ता है)। सेवक (परिजन) अपने कार्यों में विशेष रूप से व्यस्त हैं । इसी कारण -

वहति जलमियं पिनष्टि गन्धान्
इयमियमुद्ग्रथते स्रजो विचित्राः।
मुसलमिदमियं च पातकाले
मुहुरनुयाति कलेन हुंकृतेन।।४।।

अन्वय— इयं जलं वहति इयं गन्धान् पिनष्टि इयं विचित्राः स्रजः उद्ग्रथते इयं च मुहुः पातकाले हुंकृतेन कलेन इदं मुसलम् अनुयाति।

संदर्भ— प्रस्तुत श्लोक में सूत्रधार अपने घर में किसी उत्सव की तैयारी में व्यस्त परिजन द्वारा किए जाने वाले विभिन्न कार्यों का वर्णन अत्यन्त स्वाभाविक ढंग से करता है।

हिन्दी अनुवाद—

यह स्त्री पानी ला रही है। यह स्त्री सुगन्धित पदार्थों को पीस रही है। यह स्त्री रंग-बिरंगी मालाएँ गूंथ रही है और यह स्त्री बार-बार (ओखली में) गिरते समय मधुर परन्तु अस्पष्ट हुंकार का शब्द करने वाले इस मूसल का अनुकरण कर रही है। (४)

स्पष्टीकरण— पहले घरों में जल का कोई प्रबन्ध न होने के कारण स्त्रियां बाहर से जल लाती थीं। अतः कोई स्त्री जल ला रही थी, कोई भोजन में डालने के लिए सुगन्धित पदार्थ पीस रही थी तो कोई स्त्री घर से सजाने के लिए अथवा अतिथियों का सत्कार करने के लिए रंग-बिरंगी मालाएँ गूंथ रही थी। कोई स्त्री ओखली में कुछ पीस रही थी। जैसे ही मूसल ओखली में गिरता था वैसे ही उस स्त्री के मुख से हुं हुं का शब्द निकलता था जिससे ऐसा प्रतीत होता था कि मानों वह मूसल का अनुसरण कर रही हो।

उक्त श्लोक में पुष्पिताग्रा छन्द तथा स्वाभावोक्ति अंलकार है।

संस्कृत भावार्थ—

काचित् स्त्री सलिलम् आनयति, काचित् गन्धद्रव्याणि चूर्णयति काचिच्च विविधवर्णाः पुष्पमालाः उद्ग्रथ्नाति। इयमपरा च उलूखलपतनसमये वारम्वारं मधुरेण परम् अस्पष्टेन 'हुम्' इति शब्दोच्चारणेन इदं मुसलम् अनुकरोति। सा मुसलं पातयति 'हुं' शब्द चापि समकालमेव करोतीत्यर्थः।

भवतु कुटम्बिनीमाहूय प च्छामि। (नेपथ्याभिमुखमवलोक्य)

गुणवत्युपायनिलये स्थितिहेतोः साधिके त्रिवर्गस्य।
मद्भवननीतिविद्ये कार्याचार्ये द्रुतमुपेहि।।५।।

अन्वय— गुणवति उपायनिलये स्थितिहेतोः त्रिवर्गस्य साधिके मद्भवननीतिविद्ये कार्याचार्ये द्रुतमुपेहि।

संदर्भ— सूत्रधार प्रस्तुत श्लोक में अपनी पत्नी को विभिन्न विशेषणों से युक्त करके बुलाता है।

हिन्दी अनुवाद—

गुणों से युक्त, उपायों की घर , स्थिति के कारणभूत त्रिवर्ग (धर्म, अर्थ, काम) को सिद्ध करने वाली (और) सभी कार्यों में सलाह देने वाली जल्दी से आओ।(५)

स्पष्टीकरण— गुणवति का अर्थ है- दान, दया, उदारता आदि गुणों से युक्त। उपायनिलये का अर्थ है- घर के संचालन में दक्ष अर्थात् विभिन्न उपायों द्वारा घर की समस्याओं का समाधान करके उसे सुव्यवस्थित ढंग से चलाने वाली। स्थितिहेतोः साधिके त्रिवर्गस्य का अर्थ है-ग हस्थी की स्थिति के कारणभूत तीन पुरुषार्थों-धर्म अर्थ और काम को प्राप्त करवाने वाली। पत्नी के निम्न गुण बतलाए गए है-

कार्येषु मंत्री वचनेषु दासी भोज्येषु माता शयनेषु रम्भा।
धर्मानुकूल क्षमया धरित्री भार्या च षाड्गुण्यवतीह दुर्लभा।।

इस श्लोक का गूढ़ार्थ यह है कि चाणक्य नाटक के प्रारम्भ में ही कूटनीति का आह्वान कर रहा है। सूत्रधार की पत्नी के लिए प्रयुक्त उपरिलिखित सभी विशेषण द्वयर्थक है। चाणक्य की नीति के पक्ष में इसका अर्थ है- संधि, विग्रह, यान, आसन, द्वैधीभाव और समाश्रय इन छः गुणों वाली, साम, दान, दण्ड और भेद चार उपायों वाली, राष्ट्र की स्थिरता के हेतुभूत क्षय, स्थान और व द्धि इस त्रिवर्ग को सिद्ध करने वाली, राजनीतिक कार्यों में सलाह देने वाली, मेरी नीतिविद्या जल्दी से आओ।

उक्त श्लोक में आर्या छन्द तथा श्लेष अलंकार है।

संस्कृत भावार्थ—

दयादाक्षिण्यादिभिः गुणैः विभूषिते, गहकर्मसाधनीभूतव्यापारणां निवासभूते, ग हस्थाश्रमस्य स्थितेः यो हेतुः तस्य निर्वाहयित्रि, कर्तव्यस्य उपदेष्ट्रि अतएव मम ग हस्य नीतिविद्ये शीघ्रमागच्छ।

नीतिपक्षे— संधिविग्रहयानासनद्वैधीभावसमाश्रयेति षड्गुणसम्पन्ने, सामदानदण्डभेदेति चतुरुपायविभूषिते, क्षयस्थानव द्धिश्चेति यः त्रिवर्गः राज्यस्य स्थितेः हेतुः तस्य निर्वाहयित्रि, कार्योपदेष्ट्रि, राज्यशासनशास्त्रभूते मम कूटनीति त्वम् झटिति आगच्छ। एतेन अस्मिन् नाटके नीतिविद्यायाः प्राधान्यं सूच्यते।

(प्रविश्य)

नटी— **आर्य इयमस्मि। आज्ञानियोगेन मामार्यो नुग ह्णातु। (अज्ज इअह्मि। अण्णाणिओएण मं अज्जो अणुदेह्णदु।)**

सूत्र०— **आर्ये तिष्ठतु तावदाज्ञानियोगः। कथय किमद्य भवत्या भगवतां ब्राह्मणानामुपनिमन्त्रेण कुटुम्बकमनुग हीतमभिमता वा भवनमतिथयः संप्राप्ता यत एष पाकविशेषारम्भः।**

नटी— **आर्य आमन्त्रिता मया भगवन्तो ब्राह्मणाः। (अज्ज आमन्तिदा मए भअवन्तो ब्रह्मणा।)**

सूत्र०— **कथय कस्मिन्निमित्ते।**

नटी— **उपरज्यते किल भगवान् चन्द्र इति। (उवरज्जदि किल भअवं चन्दो त्ति।)**

सूत्र०— **आर्ये क एवमाह?**

नटी— **एवं खलु नगरवासी जनो मन्त्रयते (एवं खु णअरवासी जणो मन्तेदि।)**

सूत्र०— **आर्ये कृतश्रमोस्मि चतुःषष्ट्यंगे ज्योतिःशास्त्रे। तत्प्रवर्त्यतां भगवतो ब्राह्मणानुद्दिश्य पाकः। चन्द्रोपरागं प्रति तु केनापि विप्रलब्धासि। पश्य—**

हिन्दी अनुवाद— (प्रवेश करके)

नटी— हे आर्य! यह मैं हूँ। आज्ञा देकर आर्य मुझे अनुग हीत करें।

सूत्र०— आर्ये, आज्ञा देने की बात अभी रहने दो। बतलाओ क्या आज तुम्हारे द्वारा आदरणीय ब्राह्मणों को आमन्त्रित करके परिवार को अनुग हीत किया गया है अथवा घर में अभीष्ट अतिथि आ रहे हैं जो इस विशेष भोजन का प्रारम्भ किया गया है।

नटी— आर्य, मेरे द्वारा आदरणीय ब्राह्मणों को आमन्त्रित किया गया है।

सूत्र०— बताओ, किस कारण से?

नटी— निस्संदेह भगवान् चन्द्र का ग्रहण हो रहा है।

सूत्र०— आर्ये, ऐसा किसने कहा?

नटी— ऐसा तो सभी नगरवासी कह रहे हैं।

सूत्र०— आर्ये, मैंने ज्योतिष्शास्त्र के चौंसठ अंगों में प्रवीणता प्राप्त की है। आदरणीय ब्राह्मणों के लिए भोजन की तैयारी चलती रहे परन्तु चन्द्रग्रहण के विषय में तो किसी के द्वारा धोखा दे दी गई हो। देखो-

क्रूरग्रहः स केतुश्चन्द्रं सम्पूर्णमण्डलमिदानीम्। अभिभवितुमिच्छति बलात्।

(नेपथ्ये)

आः क एष मयि स्थिते चन्द्रमभिभवितुमिच्छति?

सूत्र०— **रक्षत्येनं तु बुधयोगः ।।६।।**

अन्वय— सः क्रूरग्रहः केतुः इदानीं सम्पूर्णमण्डलं चन्द्रं बलाद् अभिभवितुमिच्छति। तु बुधयोगः एनं रक्षति।

संदर्भ— जब नटी सूत्रधार को बतलाती है कि आज चन्द्रग्रहण होने वाला है तो सूत्रधार चन्द्रग्रहण की सम्भावना से इन्कार करता हुआ, प्रस्तुत श्लोक में उसका कारण बतलाता है।

हिन्दी अनुवाद—

वह प्रसिद्ध क्रूरग्रह केतु आज सम्पूर्ण मण्डल वाले चन्द्रमा को बलपूर्वक पराजित करना

चाहता है (पर्दे के पीछे से) अरे, यह कौन है जो मेरे विद्यमान रहते हुए चन्द्र (चन्द्रगुप्त) को बलपूर्वक जीतना चाहता है।

सूत्र०— परन्तु बुध की समीपता इसकी रक्षा कर रही है। (६)

स्पष्टीकरण— सूत्रधार जैसे ही नटी से कहता है कि वह प्रसिद्ध क्रूरग्रह केतु सम्पूर्ण मण्डल वाले चन्द्र को बलपूर्वक पराजित करना चाहता है, वैसे ही पर्दे के पीछे से आवाज आती है कि यह कौन है जो मेरे रहते हुए चन्द्र को बलपूर्वक पराजित करना चाहता है। परन्तु सूत्रधार उस पर ध्यान दिए बिना अपना कथन पूरा करते हुए बतलाता है कि बुध की समीपता इसकी रक्षा कर रही है। यह शास्त्रीय सिद्धान्त है कि प चग्रहसंयोग में ग्रहण नहीं लगता।

ग्रहप चकसंयोग द ष्टवा न ग्रहणं वदेत्।
यदि न स्याद् बुधस्तत्र तं द ष्टवा ग्रहणं वदेत्।।

ये पांच ग्रह सूर्य, चन्द्र, बुध, गुरू और शुक्र है। वस्तुतः केतु, चन्द्र और बुध ये श्लिष्ट पद हैं। स्पष्टार्थ तो चन्द्रग्रहण के प्रसंग में है ही परन्तु इसका गूढ़ार्थ यह है कि वह प्रसिद्ध दुष्ट मलयकेतु (केतु) सम्पूर्ण मण्डल वाले चन्द्रगुप्त के बलपूर्वक पराजित करना चाहता है।

पर्दे के पीछे से चाणक्य संपूर्ण वाक्य न सुनने और प्रसंग न जानने के कारण वह सोचता है कि मलयकेतु चन्द्रगुप्त पर आक्रमण करने वाला है अतः वह आगबबूला होते हुए कहता है कि 'यह कौन है जो मेरे रहते हुए चन्द्रगुप्त को बलपूर्वक पराजित करना चाहता है।' 'बुध' पद का गूढार्थ चाणक्य है। यद्यपि मलयकेतु चन्द्रगुप्त को पराजित करना है तथापि चाणक्य की समीपता हमेशा उसकी रक्षा करती है

केतु से मलयकेतु तथा चन्द्र से चन्द्रगुप्त का बोध होना उचित ही है क्योंकि नाम के एकादेश के ग्रहण से सम्पूर्ण नाम का बोध होता है।

संस्कृत भावार्थ—

सः प्रसिद्धः पापग्रहः राहुः अद्य पौर्णमास्यां सम्पूर्णमण्डलं चन्द्रमसं बलात् ग्रसितुम् इच्छति परं बुधग्रहस्य सम्बन्धः एनम् रक्षति। चन्द्रगुप्तपक्षे अस्य श्लोकस्य गूढार्थो यं वर्तते यत् सः क्रूरः ग्रहः (चन्द्रगुप्ताभिभावं प्रति आग्रहो यस्य सः क्रूरग्रहः) राक्षसः मलयकेतुना सह स्वाम्यमात्यसुह त्कोषराष्ट्रदुर्गबल चेति सप्तांगैः युतं सम्पूर्णमण्डलं चन्द्रगुप्तं बलात् पराभवितुम् इच्छति परं नयज्ञस्य चाणक्यस्य उपायः एनं चन्द्रगुप्त शत्रुपरिभवात् रक्षति।

उक्त श्लोक में आर्या छन्द है।

नटी— **आर्य कः पुनरेष धरणीगोचरो भूत्वा चन्द्रं ग्रहाभियोगाद्रक्षितुमिच्छति। (अज्ज को उण ऐसा धरणीगोअरो भविअ चन्दं ग्गहाभिजोआदो रक्खिदुं एच्छदि।)**

सूत्र०— **आर्ये यत्सत्यं मयापि नोपलक्षितः। भवतु भूयोभियुक्तः स्वरव्यक्तिमुपलप्स्ये। (क्रूरग्रह इत्यादि पुनस्तदेव पठति)**

(नेपथ्ये)

आः क एष मयि स्थिते चन्द्रगुप्तभिभवितुमिच्छति।

सूत्र०— **(आकर्ण्य) आं ज्ञातम्।**

हिन्दी अनुवाद—

नटी— आर्य, यह कौन है जो प थ्वी पर प्रकट होकर चन्द्र को ग्रहाभियोग से बचाना चाहता है।

सूत्र०— आर्ये, यह सच है कि मेरे द्वारा भी ध्यान नहीं दिया गया। ठीक है। पुनः सावधान होकर आवाज को पहचानता हूँ। (क्रूरग्रह इत्यादि श्लोक पुनः पढ़ता है।)

(नेपथ्य में)

अरे! यह कौन है जो मेरे रहते हुए चन्द्रगुप्त को पराजित करना चाहता है।

सूत्र०— (सुनकर) हाँ, पता चल गया।

कौटिल्यः (नटी भयं नाटयति) कुटिलमतिः स एष येन

क्रोधाग्नौ प्रसभमदाहि नन्दवंशः।
चन्द्रस्य ग्रहणमिति श्रुतेः सनाम्नो
मौर्यन्दोर्द्विषदभियोग इत्यवैति।।७।।

अन्वय— एषः सः कुटिलमतिः कौटिल्यः येन नन्दवंशः क्रोधाग्नौ प्रसभमदाहि। चन्द्रस्य ग्रहणमिति श्रुतेः सनाम्नो मौर्यन्दोः द्विषदभियोग इत्यवैति।

संदर्भ— सूत्रधार और नटी जब परस्पर 'चन्द्रग्रहण' के विषय में बात कर रहे होते हैं तो तभी नेपथ्य से किसी व्यक्ति का क्रोधित स्वर सुनाई पड़ता है कि 'यह कौन है जो मेरे रहते हुए चन्द्रगुप्त को बलपूर्वक पराजित करना चाहता है।' सूत्रधार उस स्वर को पहचानते हुए प्रस्तुत श्लोक में नटी को बतलाता है।

हिन्दी अनुवाद—

यह वह कुटिल बुद्धि वाला चाणक्य है जिसके द्वारा नन्दवंश (अपनी) क्रोध रूपी अग्नि में बलपूर्वक जला दिया गया। 'चन्द्र का ग्रहण' इस प्रकार सुनते ही नाम की समानता के कारण चन्द्रगुप्त मौर्य पर शत्रु का आक्रमण (होने वाला है), ऐसा समझ रहा है।(७)

स्पष्टीकरण— सूत्रधार आवाज पहचनाने के लिए क्रूरग्रहः इत्यादि श्लोक पुनः पढ़ता है और सावधान होकर आवाज सुनता है। वह तुरन्त ही पहचान जाता है कि वह चाणक्य का स्वर था। नटी को बतलाते हुए वह कहता है कि यह कौटिल्य है जो 'चन्द्रग्रहण' की बात सुनकर यह समझ रहा है कि कोई चन्द्रगुप्त पर आक्रमण करके उसे वश में करना चाहता है क्योंकि 'चन्द्र' पद चन्द्रमा और चन्द्रगुप्त दोनों का ही बोध करवाता है। नाम की समानता होने के कारण ही चाणक्य को इस प्रकार का भ्रम हो गया।

उक्त श्लोक में प्रहर्षिणी छन्द है। और रूपक अलंकार है।

संस्कृत भावार्थ— येन कुटिलबुद्धिना चाणक्येन कोपवह्नौ नन्दस्य कुलं झटिति भस्मीकृतं (नेपथ्यगतः अयं स एव अस्ति)। सः 'चन्द्रस्य ग्रहणम' इति श्रवणात् तुल्यनामधेयस्य चन्द्रगुप्तस्य मलयकेतुसहितेन राक्षसेन आक्रमणमिति मन्यते।

तदित आवां गच्छावः। (इति निष्क्रान्तौ)

इति प्रस्तावना।

(ततः प्रविशति मुक्तां शिखां पराम शन् कुपितश्चाणक्यः)

चाण०— कथय क एष मयि स्थिते चन्द्रगुप्तमभिभवितुमिच्छति।

हिन्दी अनुवाद—

तो आओ हम दोनों चलते हैं। (ऐसा कहकर निकल जाते हैं)

प्रस्तावना समाप्त हुई

(तत्पश्चात् अपनी खुली हुई शिखा को छूता हुआ क्रोधित चाणक्य प्रवेश करता है।)

चाण०— कहो यह कौन है जो मेरे रहते हुए चन्द्रगुप्त को पराजित करना चाहता है।

आस्वादितद्विरदशोणितशोणशोभां
सन्ध्यारुणामिव कलां शशला छनस्य।
ज म्भाविदारितमुखस्य मुखात्स्फुरन्तीं
को हर्तुमिच्छति हरेः परिभूय दंष्ट्राम्।।८।।

अन्वय— आस्वादितद्विरदशोणितशोणशोभां शशला छनस्य सन्ध्यारुणाम् कलाम् इव स्फुरन्तीं द्रंष्ट्राम् ज म्भाविदारितमुखस्य हरेः मुखात् परिभूय कः हर्तुम् इच्छति।

सन्दर्भ— सूत्रधार और नटी द्वारा परस्पर की गई चन्द्रग्रहण की वार्त्ता से चाणक्य नाम की समानता के कारण भ्रमित होकर यह समझता है कि कोई चन्द्रगुप्त को पराजित करना चाहता है। प्रस्तुत श्लोक में आत्मप्रशंसा करते हुए वह यह स्पष्ट कर देता है कि उसके रहते हुए कोई चन्द्रगुप्त को हाथ भी नहीं लगा सकता।

हिन्दी अनुवाद—

हाथी के रक्त का पान करने से लाल (शोण), चन्द्रमा की सन्ध्याकालीन लाल कला के समान शोभा वाली (और) चमचमाती हुई दाढ़ को जम्हाई लेने के लिए खुले हुए मुख वाले शेर के मुख से बलपूर्वक कौन छीनना चाहता है। (८)

स्पष्टीकरण— चाणक्य के कहने का अभिप्राय यह है कि जिस प्रकार उस शेर के मुख से जिसने अभी-अभी हाथी का शिकार करके उसका रक्तपान किया हो, अब वह सोने के लिए तत्पर हो रहा हो और उस समय जम्हाई लेने के लिए उसका मुख खुला हो, उसकी दाढ़ को उसके मुख से निकालने का प्रयत्न करने वाला अवश्य ही विनाश को प्राप्त होगा। इसी प्रकार चाणक्य के रहते हुए जिसने अभी-अभी नन्दवंश का नाश किया है और जिसका क्रोध अभी शान्त नहीं हुआ है, यदि कोई चन्द्रगुप्त पर आक्रमण करने का विचार भी करेगा तो अवश्य ही म त्यु को प्राप्त होगा। यहाँ चाणक्य ने अपनी तुलना शेर से, नन्दवंश की तुलना हाथी से व चन्द्रगुप्त की तुलना दाढ़ से की है।

कवि विशाखदत्त ने बहुत ही काव्यात्मक ढंग से दाढ़ को सन्ध्याकालीन चन्द्रमा की लाल कला के समान बतलाया है। चन्द्रमा की कला भी लाल व कुछ टेढ़ी होती है और दाढ़ भी रक्तपान करने से लाल है व उसकी बनावट भी चन्द्रमा की कला के समान है।

उक्त श्लोक में वसन्ततिलका छन्द व अप्रस्तुतप्रशंसा, छेकानुप्रास तथा उपमा अलंकार है।

संस्कृत भावार्थ—

श्रान्तिजनितचेष्टाविशेषेण प्रसारितं मुखं येन तस्य सिंहस्य मुखात् गजरुधिरपानेन रक्तवर्णा शोभा यस्याः ताद शीं चन्द्रस्य सन्ध्याकालीनारुणां कलामिव दीप्यमानां दंष्ट्रां सिहम् अवमत्य कः जनः उत्पाटयितम् इच्छति।

अपि च—

नन्दकुलकालभुजगीं कोपानलबहुलनीलधूमलताम्।
अद्यापि बध्यमानां वध्यः को नेच्छति शिखां मे ।।६।।

अन्वय— नन्दकुलकालभुजगीं कोपानलबहुलनीलधूमलताम् मे शिखां वध्यः कः अद्यापि बध्यमानां न इच्छति।

संदर्भ— चाणक्य पुनः आत्मप्रशंसा करते हुए कहता है कि यदि कोई मेरी क्रोधाग्नि को भड़काएगा तो वह अवश्य ही विनाश को प्राप्त होगा।

हिन्दी अनुवाद—

और भी— नन्दवंश के लिए कालसर्पिणी के समान (व मेरे) क्रोध रूपी अग्नि के अत्यधिक काले धुएँ की रेखा के समान मेरी चोटी को मौत का इच्छुक कौन आज भी बँधी हुई नहीं देखना चाहता। (६)

स्पष्टीकरण—यहाँ चाणक्य ने अपनी चोटी की तुलना कालसर्पिणी व धुएँ की रेखा से की है कालसर्पिणी बदला लेने के लिए बहुत प्रसिद्ध है। चाणक्य ने भी अपनी चोटी खोल कर नन्दों के नष्ट कर अपने अपमान का बदला ले लिया। धूम्रलेखा काली व सीधी होती है। चाणक्य की चोटी भी काली व सीधी है।

उक्त श्लोक में आर्या छन्द तथा रूपक छेकानुप्रास व लुप्तोपमा अलंकार है।

संस्कृत भावार्थ—

नन्दकुलस्य कालसर्पिणीमिव मम क्रोधवह्नेः अत्यन्तकृष्णां धूमलेखामिव मे चूडां वधाहः कः जनः अद्यापि संयम्यमानां नाभिलषति।

अपि च—

उल्लघंयन् मम समुज्ज्वलतः प्रतापं
कोपस्य नन्दकुलकाननधूमकेतोः।
सद्यः परात्मपरिमाणविवेकमूढः
कः शालभेन विधिना लभतां विनाशम।।१०।।

अन्वय— परात्मपरिमाणविवेकमूढः कः नन्दकुलकाननधूमकेतोः मम समुज्ज्वलतः कोपस्य प्रतापं उल्लंघयन् शालभेन विधिना सद्यः विनाशं लभताम्।

सन्दर्भ— प्रस्तुत श्लोक में भी चाणक्य आत्मश्लाघा करते हुए कहता है कि जो भी मुझे टकराएगा, वह एक पतंगे के समान तुरन्त म त्यु को प्राप्त हो जाएगा।

हिन्दी अनुवाद—

और भी— अपनी और दूसरे की शक्ति का (परिमाण) विवेचन करने अथवा अन्तर करने में मूर्ख कौन है (जो) नन्दवंश रूपी जंगल के लिए अग्नि के समान मेरे भड़कते हुए क्रोध के तेज का उल्लंघन करते हुए पतगें के समान तुरन्त विनाश को प्राप्त करना चाहता है (१०)

स्पष्टीकरण— चाणक्य के कथन का अभिप्राय यह है कि वह व्यक्ति जो मेरे रहते हुए चन्द्रगुप्त पर आक्रमण करना चाहता है, वास्तव में अपनी और मेरी शक्ति में अन्तर कर पाने में असमर्थ है और इसी कारण भड़कते हुए मेरे क्रोध के उस तेज को नहीं समझ पा रहा जिसने सम्पूर्ण नन्दवंश का नाश कर दिया। यदि वह मेरा सामना करने का प्रयत्न करेगा तो

उसी प्रकार तुरन्त नष्ट हो जाएगा जिस प्रकार एक पतंगा अपनी और दीपक की शिखा की शक्ति में अन्तर न कर पाने के कारण ही दीपक की लौ से टकरा कर तुरन्त ही नष्ट हो जाता है।

उक्त श्लोक में वसन्ततिलका छन्द तथा रूपक अलंकार है।

संस्कृत भावार्थ—

प्रतिपक्षस्य स्वस्य च सामर्थ्यं विविच्य ग्रहणे असमर्थः कः जनः नन्दकुलदाहकवह्निरूपस्य मदीयस्य प्रदीप्तस्य क्रोधस्य उग्रत्वम् अतिक्रामन् दहनज्वालापतयालुः शलभरीत्या तत्क्षणम् एव मरणं भजताम्।

शाङ्र्गरव, शाङ्र्गरव

(प्रविश्य)

शिष्यः— उपाध्याय, आज्ञापय।

चाण०— वत्स, उपवेष्टुमिच्छामि।

शिष्यः— उपाध्याय, नन्वियं सन्निहितवेत्रासनैव द्वारप्रकोष्ठशाला। तदस्यामुपवेष्टुमर्हत्युपाध्यायः।

चाण०— वत्स, कार्याभिनियोग एवास्मान्व्याकुलयति न पुनरुपाध्यायसमभूः शिष्यजने दुःशीलता। (नाट्येनोपविश्यात्मगतम्) कथं प्रकाशतां गतो यमर्थः पौरेषु यथा किल नन्दकुलविनाशजनितरोषो राक्षसः पित वधामर्षितेन सकलनन्दराज्यपरिपणनप्रोत्साहितेन पर्वतकपुत्रेण मलयकेतुना सह सन्धाय तदुपग हीतेन च महता म्लेच्छराजबलेन परिव तो व षलमभियोक्तुमुद्यत इति। (विचिन्त्य) अथवा येन मया सर्वलोकप्रकाशं नन्दवंशवधं प्रतिज्ञाय निस्तीर्णा दुस्तरा प्रतिज्ञासरित्सो हमिदानीं प्रकाशीभवन्तमप्येनमर्थं समर्थः प्रशमयितुम्। कुतः? यस्य मम

हिन्दी अनुवाद— शाङ्र्गरव, शाङ्र्गरव।

(प्रवेश करके)

शिष्य— उपाध्याय, आज्ञा दीजिए।

चाण०— हे वत्स, मैं बैठना चाहता हूँ।

शिष्य— उपाध्याय, यह दरवाजे के पास की बैठक (द्वारप्रकोष्ठशाला) निस्सन्देह बेंत के आसन से युक्त है। उपाध्याय इस पर बैठे।

चाण०— वत्स, कार्यों की व्यग्रता ही मुझे व्याकुल कर रही है परन्तु इसे शिष्यों के प्रति गुरुओं से प्राप्त होने वाली दुःशीलता मत समझना। (अभिनयपूर्वक बैठकर अपने आप) नगरवासियो में यह बात किस प्रकार फैल गई कि नन्दवंश के विनाश से कुपित राक्षस, पिता के वध को सहन न कर सकने वाले (और) सम्पूर्ण नन्द राज्य के विनिमय से उत्साहित पर्वतक के पुत्र मलयकेतु के साथ सन्धि करके उसके (मलयकेतु के) अधीन म्लेच्छ राजाओं की महान् सेना से युक्त होकर चन्द्रगुप्त पर आक्रमण करने के लिए तत्पर है। (सोचकर) अथवा जिस मेरे द्वारा सारे संसार के सामने नन्दवंश के वध की प्रतिज्ञा करके कठिनता से पार की जाने योग्य प्रतिज्ञा रूपी नदी पार कर ली गई वह मैं अब फैलती हुई इस बात को शान्त करने में भी समर्थ हूँ। क्योंकि जिस मेरी—

श्यामीकृत्यानेनन्दूनरियुवतिदिशां सन्ततैः शोकधूमैः
कामं मन्त्रिद्रुमेभ्यो नयपवनह तं मोहभस्मं प्रकीर्य।
दग्ध्वा संभ्रान्तपौरद्विजगणरहितान्नन्दवंशप्ररोहान्
दाह्याभावान्न खेदाज्ज्वलन इव वने शाम्यति क्रोधवह्नि ।।११।।

अन्वय— (मम) क्रोधवह्निः अरियुवतिदिशाम् आननेन्दून् सन्ततैः शोकधूमैः श्यामीकृत्य मन्त्रिद्रुमेभ्यो नयपवनह तं मोहभस्मं कामं प्रकीर्य संभ्रान्तपौरद्विजगणरहितान् नन्दवंशप्ररोहान् दग्ध्वा दाह्याभावात् खेदात् न वने ज्वलन इन शाम्यति।

सन्दर्भ— प्रस्तुत श्लोक में भी चाणक्य आत्मप्रशंसा करता है।

हिन्दी अनुवाद—

(मेरी) क्रोध रूपी अग्नि शत्रुओं की स्त्री रूपी दिशाओं के मुख रूपी चन्द्रमाओं को निरन्तर दुःख रूपी धुँए से मलिन करके, मन्त्री रूपी व क्षों पर नीति रूपी वायु द्वारा उड़ाई गई मोह रूपी भस्म अपनी इच्छानुसार बिखरा कर, डरे हुए नगरवासी रूपी पक्षियों के समूह को छोड़कर, नन्दवंशरूपी बाँसों के अंकुरों को भस्म करके जलाने योग्य पदार्थ के अभाव में, थकावट के कारण नहीं, जंगल में आग के समान शान्त हो गई है।(११)

स्पष्टीकरण— चाणक्य अपने क्रोध की तुलना दावानल से करता है। जिस प्रकार दावानल का धुआँ समस्त दिशाओं में व्याप्त होकर चन्द्रमाओं को मलिन कर देता है व उसकी राख वायु के द्वारा व क्षों पर बिखरा दी जाती है, सारे बाँस भस्म हो जाते हैं, केवल डरे हुए पक्षी उड़कर अन्यत्र चले जाते हैं और तत्पश्चात् वह दावानल थकावट के कारण शान्त नहीं होती अपितु दाह्य पदार्थ न होने के कारण शान्त हो जाती है इसी प्रकार चाणक्य ने अपने अपमान का बदला लेने के लिए सभी नन्दों को नष्ट कर दिया। परिणामतः उनकी स्त्रियों के मुख दुःख से मलिन (निस्तेज) हो गए। चाणक्य की नीति से नन्दों के सभी अमात्य किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो गए। यद्यपि चाणक्य की क्रोधाग्नि में नन्दवंश को समूल भस्म कर दिया गया तथापि नगरवासियों को कुछ नहीं कहा गया। चाणक्य का अभिप्राय यह है कि उसका क्रोध शान्त हो गया है क्योंकि अब कोई भी व्यक्ति ऐसा नहीं है जो उसके क्रोध का लक्ष्य हो। परन्तु यदि कोई व्यक्ति उससे टकराएगा तो उसका क्रोध पुनः भड़क जाएगा और वह उसे भी नष्ट कर देगा जिस प्रकार शान्त हुई अग्नि को यदि कुरेदा जाए तो वह पुनः भड़क उठती है।

उक्त श्लोक में क्रोध में अग्नि का, अरियुवति में दिशाओं का, आनन में इन्दु का, शोक में धुँए का, मंत्री में व क्षों का, नीति में वायु का, मोह में भस्म का, पौरगण में द्विजगण का तथा नन्दवंश में प्ररोह का आरोप है।

उक्त श्लोक में स्रग्धरा छन्द तथा रूपक अलंकार है।

संस्कृत भावार्थ—

मम क्रोधाग्निः शत्रुस्त्रीदिशां मुखचन्द्रान् अविच्छिन्नैः शोकरूपैः धूमैः मलिनीकृत्य स्वामिविरहे सततरुदितेन रिपुवनितानां मुखानि मलिनयित्वा इत्यर्थः, मन्त्रिरूपेभ्यः व क्षेभ्यः नीतिरूपेण वायुना आनीतम् अविवेकरूपं भस्म यथेच्छं यथा तथा प्रक्षिप्य स्वनीतिविभवेन नन्दामात्यान् मोहयित्वा इत्यर्थः संत्रस्तान् पक्षिसमूहरूपान् कुसुमपुरवासिनः हित्वा, नन्दस्य वंशः एव वेणुः तस्य अंकुरान् शिशुपर्यन्तान् नन्दवंशान् इत्यर्थः भस्मीकृत्य वने दावानल इव

दग्धुमन्यवस्तुनो भावात् विरमति नूनं श्रमात् न। संप्रति दाह्यो वध्यो मलकेतुः प्राप्तः। तस्मिन् क्रोधवह्निर्ज्वलिष्यतीति भावः।

अपि च—

शोचन्तो वनतैर्नराधिपभयाद्धिक्शब्दगर्भैर्मुखैर्
मामग्रासनतो वकृष्टमवशं ये द ष्टवन्तः पुरा।
ते पश्यन्ति तथैव सम्प्रति जना नन्दं मया सान्वयं
सिंहेनेव गजेन्द्रमद्रिशिखरात्सिंहासनात्पातितम्।।१२।।

अन्वय— ये जनाः पुरा नराधिपभयात् अवनतैः, धिक्शब्दगर्भैः मुखैः शोचन्तः माम् अवशम् अग्रासनतो वकृष्टं द ष्टवन्तः ते (जनाः) सम्प्रति मया नन्दं सान्वयं सिंहासनात् तथैव पातितं पश्यन्ति इव सिंहेन गजेन्द्रम् अद्रिशिखरात् पात्यते।

सन्दर्भ— चाणक्य पुनः आत्मप्रशंसा करता हुआ स्वयं की व नन्दों की भूतकालीन और वर्तमानकालीन अवस्था का वर्णन प्रस्तुत श्लोक में करता है।

और भी -

हिन्दी अनुवाद—

जिन लोगों ने पहले राजा के भय से नीचे झुके हुए, धिक्कार के शब्दों से युक्त मुखों से अथवा मुख वाले होकर मुझ लाचार को आदर के आसन से खींचे जाते हुए देखा उन्हीं (लोगों ने) अब मेरे द्वारा नन्द को (अपने) वंश सहित सिंहासन से उसी प्रकार गिराए जाते हुए देखें जिस प्रकार शेर के द्वारा हाथियों का राजा पर्वत की चोटी से (गिरा दिया जाता है)। (१२)

स्पष्टीकरण— चाणक्य के कथन का अभिप्राय यह है कि पहले जब उसे नन्दों द्वारा आदर के आसन से हटाया जा रहा था तो सभी लोग एक ब्राह्मण का अपमान होने के कारण यद्यपि राजा को मन ही मन धिक्कार रहे थे तथापि राजा के भय से कुछ कह नहीं पा रहे थे। अत्यधिक लज्जा व दुःख के कारण केवल अपना सिर नीचे झुकाए हुए थे। उन्हीं लोगों के देखते ही देखते अब चाणक्य ने सम्पूर्ण नन्दवंश को सिंहासन से उतार कर उसी प्रकार नष्ट कर दिया है जिस प्रकार एक शेर हाथियों के राजा को पर्वत की चोटी से गिरा कर मार देता है।

उक्त श्लोक में शार्दूलविक्रीडित छन्द तथा उपमा अलंकार है।

संस्कृत भावार्थ—

पूर्वं ये जनाः राजभयात् अधः कृतैः परं धिक् शब्दः गर्भे येषां ताद शैः मुखैः शोकाकुलीभूताः तदानीं प्रतिकर्तुमसमर्थं माम् मुख्यासनाद् च्यावितम् अवलोकितवन्तः ते एव जनाः अधुना मया चाणक्येन पुत्रपौत्रादिसहितं नन्दं तेनैव प्रकारेण सिंहासनात् भ्रंशितं पश्यन्ति यथा गजेन्द्रः एकेन सिंहेन पर्वतश्र ंगात् पात्येत।

सो हमिदनीमवसितप्रतिज्ञाभारो पि व षलापेक्षया शस्त्रं धारयामि। येन मया—

हिन्दी अनुवाद—

वह मैं अब प्रतिज्ञा का भार पूरा हो जाने पर भी व षल के कारण राजकीय शस्त्र को धारण कर रहा हूँ। जिस मेरे द्वारा-

समुत्खाता नन्दा नव ह दयशल्या इव भुवः
कृता मौर्यलक्ष्मीः सरसि नलिनीव स्थिरपदा।
द्वयोः सारं तुल्यं द्वितयमभियुक्तेन मनसा
फलं कोपप्रीप्योर्द्विषति च विभक्तं सुह दि च ।।१३।।

अन्वय— नव नन्दाः भुवः ह दयशल्या इव समुत्खाताः मौर्यलक्ष्मीः सरसि नलिनीव स्थिरपदा कृता। कोपप्रीत्योः द्वयोः द्वितयं फलं सारं तुल्यम् अभियुक्तेन मनसा द्विषति च सुह दि च विभक्तम्।

सन्दर्भ— चाणक्य पुनः आत्मप्रशंसा करते हुए स्पष्ट करता है कि किस प्रकार उसने अपने शत्रु राजा नन्द को उनके आठों पुत्रों सहित नष्ट कर दिया और किस प्रकार अपने मित्र चन्द्रगुप्त को राजलक्ष्मी प्राप्त करवा दी।

हिन्दी अनुवाद—

नौ नन्द प थ्वी के ह दय में चुभती हुई कीलों के समान उखाड़ दिए गए हैं। चन्द्रगुप्त के लिए राजलक्ष्मी तालाब में कमलिनी के समान स्थिर पैर वाली कर दी गई है। क्रोध और प्रेम दोनों का दो प्रकार का फल न्यायपूर्वक बराबर-बराबर सावधान मन से शत्रु में और मित्र में बाँट दिया गया है। (१३)

स्पष्टीकरण— चाणक्य ने नव नन्दों (राजा नन्द व उसके आठ पुत्रों) को इस प्रकार उखाड़ फेंका है मानों वे प थ्वी के ह दय मे चुभती हुई कीलें हों और चन्द्रगुप्त के लिए राजलक्ष्मी को उसी प्रकार स्थिर कर दिया जिस प्रकार कमलिनी सरोवर में स्थिर रहती है। इस प्रकार उसके क्रोध का फल राजा नन्दों को तथा प्रीति का फल चन्द्रगुप्त का प्राप्त हो गया।

उक्त श्लोक में शिखरिणी छन्द तथा यथासंख्य अलंकार है।

संस्कृत भावार्थ—

येन मया चाणक्येन नव नन्दाः प थिव्या ह दये र्पिता शंकव इव समूलमुन्मीलिताः। सरोवरे च कमलिनीव चन्द्रगुप्ते राज्यलक्ष्मीः स्थिरीकृता। एवं तेन कार्यद्वयेन क्रोधस्नेहयोः उभयोः निग्रहानुग्रहरूपं द्विविधं फलं शत्रौ च मित्रे च अभिनिवेशवता मनसा न्याय्यं युगपत् विभज्य स्थापितम्।

अथवा अग हीते राक्षसे किमुत्खातं नन्दवंशस्य किं वा स्थैर्यमुत्पादितं चन्द्रगुप्तलक्ष्म्याः। (विचिन्त्य) अहो राक्षसस्य नन्दवंशे निरतिशयो भक्तिगुणः। स खलु कस्मिंश्चिदपि जीवति नन्दान्वयावयवे व षलस्य साचिव्यं ग्राहयितुं न शक्यते। तदभियोगं प्रति निरुद्योगः शक्यो वस्थापयितुमस्माभिः। अनयैव बुद्धया तपोवनगतो पि घातितस्तपस्वी नन्दवंशीयःसर्वार्थसिद्धिः। यावदसौ मलयकेतुमंगीकृत्यास्मदुच्छेदाय विपुलतरं प्रयत्नमुपदर्शयत्येव। (प्रत्यक्षवदाकाशे लक्ष्यं बद्ध्वा) साधु अमात्य राक्षससाधु, साधु श्रोत्रिय, साधु। साधु मन्त्रिब हस्पते, साधु। कुतः?

हिन्दी अनुवाद—

अथवा राक्षस को वश में किए बिना क्या तो नन्दवंश को उखाड़ दिया गया और क्या ही चन्द्रगुप्त की राजलक्ष्मी की स्थिरता उत्पन्न कर दी गई। (सोचकर) अहो राक्षस की नन्दवंश में अत्यधिक भक्ति है। नन्दवंश में किसी के भी जीवित रहने पर उसे चन्द्रगुप्त का अमात्यपद स्वीकार नहीं करवाया जा सकता। उस कार्य के प्रति अर्थात् भक्ति गुण

के प्रति शिथिल प्रयत्न होने पर ही वह हमारे द्वारा वश में किया जा सकता है। इसी विचार से तपोवन चले जाने पर भी नन्दवंशीय बेचारे सर्वार्थसिद्धि को मरवा दिया गया। परन्तु वह (राक्षस) मलयकेतु का आश्रय लेकर हमें नष्ट करने के लिए और अधिक प्रयत्न कर रहा है। (प्रत्यक्ष के समान आकाश में द ष्टि बाँधकर) शाबाश अमात्यराक्षस शाबाश! शाबाश क्षोत्रिय शाबाश! शाबाश मन्त्रिब हस्पति शाबाश! क्योंकि -

स्पष्टीकरण— चाणक्य जो अभी तक आत्मप्रशंसा ही कर रहा था, अपना विचार बदलते हुए सोचता है कि जब तक राक्षस को चन्द्रगुप्त का अमात्पद स्वीकार नहीं करवा दिया जाता तब तक चन्द्रगुप्त द्वारा नन्दों की राज्यलक्ष्मी प्राप्त कर लेने का कोई अर्थ नहीं है क्योंकि राक्षस उन्हें कभी भी चैन से नहीं बैठने देगा। राक्षस की नन्दवंश के प्रति अटल भक्ति है और जब तक नन्दवंश का कोई भी व्यक्ति जीवित है तब तक राक्षस की भक्ति उसके प्रति कदापि कम नहीं होगी और जब तक उसकी भक्ति कम नहीं होगी तब तक वह चन्द्रगुप्त का अमात्यपद स्वीकार नहीं करेगा। इसी विचार से चाणक्य ने नन्दों के दूर के सम्बन्धी सर्वार्थसिद्धि को तपोवन में तपस्या करने के लिए चले जाने पर भी मरवा दिया। परन्तु फिर भी राक्षस पर्वतक पुत्र मलयकेतु का आश्रय लेकर चन्द्रगुप्त पर आक्रमण करने की तैयारी कर रहा है। चाणक्य राक्षस के इस निरतिशय भक्तिगुण की भूरि-भूरि प्रशंसा करता है।

ऐश्वर्यादनपेतमीश्वरमयं लोको र्थतः सेवते
तं गच्छन्त्यनु ये विपत्तिषु पुनस्ते तत्प्रतिष्ठाशया।
भर्तुर्ये प्रलये पि पूर्वसुकृतासंगेन निःसंगया
भक्त्या कार्यधुरां वहन्ति कृतिनस्ते दुर्लभास्त्वाद शाः।।१४।।

अन्वय— ऐश्वर्यात् अनपेतम् ईश्वरम् अयं लोको र्थतः सेवते। ये विपत्तिषु तम् अनुगच्छन्ति ते पुनः तत्प्रतिष्ठाशया (एवं कुर्वन्ति)। ये भर्तुः प्रलये पि पूर्वसुकृतासंगेन निःसंगया भक्त्या कार्यधुरां वहन्ति, त्वाद शाः ते कृतिनः दुर्लभाः।

सन्दर्भ— चाणक्य राक्षस की नन्दों के प्रति निस्स्वार्थ भक्ति की भूरि-भूरि प्रशंसा करता है।

हिन्दी अनुवाद—

ऐश्वर्य से युक्त स्वामी की यह संसार धन की इच्छा से सेवा करता है। जो विपत्ति में उसका अनुसरण करते हैं अर्थात् साथ देते हैं वे पुनः उसकी प्रतिष्ठा की आशा से (ऐसा करते हैं)। जो स्वामी के नष्ट हो जाने पर भी पहले किए गए उपकारों को याद करके निस्स्वार्थ भक्ति से कार्य भार वहन करते हैं, तुम्हारे जैसे वे कृतज्ञ दुर्लभ है।(१४)

स्पष्टीकरण— इस संसार में सेवक प्रायः स्वामी की सेवा तब तक ही करते हैं जब तक उसके पास धन होता है। कुछ सेवक अपनी स्वामी का विपत्ति में भी साथ देते है क्योंकि उन्हें यह आशा रहती है कि सम्भवतः उनके स्वामी की पुनः पदप्रतिष्ठा हो जाए और इसका लाभ उन्हें भी प्राप्त हो जाए। परन्तु राक्षस जैसे कृतज्ञ सेवक इस संसार में मिलने दुर्लभ हैं जो अपने स्वामी की म त्यु हो जाने पर भी उनके द्वारा अपने प्रति किए गए उपकारों को याद करके उनके कार्यभार को निःस्वार्थ भक्ति भावना से वहन करते हैं।

उक्त श्लोक में शार्दूलविक्रीडित छन्द तथा अप्रस्तुतप्रशंसा अलंकार है।

संस्कृत भावार्थ—

अयं संसारः ऐश्वर्यसम्पन्नं स्वामिनं धनप्राप्त्यर्थं सेवते। ये जनाः व्यसनेषु ऐश्वर्यनाशे पि इत्यर्थः तं परिचरन्ति, ते तस्य भर्तुः पुनरुत्थानस्याशया एवं कुर्वन्ति। परं हे राक्षस! भवाद शाः कृतज्ञाः अस्मिन्संसारे विरलाः एव सन्ति ये स्वामिनः नाशे पि तस्य पूर्वोपकारान् स्म त्वा निस्स्वार्थभावेन कार्यभारं धारयन्ति।

अत एवास्माकं त्वत्संग्रहे यत्नः कथमसौ व षलस्य साचिव्यग्रहणेन सानुग्रहः स्यादिति। कुतः—

अप्राज्ञेन च कातरेण च गुणः स्याद्भक्तियुक्तेन कः
प्रज्ञाविक्रमशालिनोपि हि भवेत्किं भक्तिहीनात्फलम्।
प्रज्ञाविक्रमभक्तयः समुदिता येषां गुणा भूतये
ते भ त्या न पतेः कलत्रमितरे संपत्सु चापत्सु च।।१५।।

अन्वय— भक्तियुक्तेन च अप्राज्ञेन च कातरेण कः गुणः स्यात् प्रज्ञाविक्रमशालिनोपि भक्तिहीनात् किं फलं भवेत्। येषां प्रज्ञाविक्रमभक्तयः गुणाः समुदिताः ते भ त्याः न पतेः भूतये इतरे सम्पत्सु चापत्सु कलत्रम्।

संदर्भ— प्रस्तुत श्लोक में चाणक्य स्पष्ट करता है कि वह राक्षस को चन्द्रगुप्त का अमात्यपद किस कारण स्वीकार करवाना चाहता है।

हिन्दी अनुवाद—

इसी कारण हमारा आपको वश में करने का प्रयत्न है ताकि आप चन्द्रगुप्त का अमात्यपद स्वीकार कर हमें अनुग्रहीत करें। क्योंकि-

भक्ति से युक्त परन्तु बुद्धिरहित और कायर (सेवक) से क्या लाभ हो सकता है। बुद्धि और पराक्रम से युक्त होने पर भी भक्तिरहित से क्या लाभ होगा। जिनमें प्रज्ञा, विक्रम और भक्ति ये गुण एक साथ होते हैं वही सेवक राजा के ऐश्वर्य के लिए के लिए होते हैं। इससे भिन्न सेवक तो सम्पत्ति में और आपत्ति में स्त्री है। (१५)

स्पष्टीकरण— चाणक्य के अनुसार जिस सेवक में प्रज्ञा, विक्रम और भक्ति ये तीनों गुण एक साथ पाए जाते हैं, वही राजा के ऐश्वर्य का कारण बनते हैं। इन तीनों में से किसी भी एक गुण का अभाव होने पर सेवक राजा के लिए स्त्री के समान हो जाता है जिनका लालन पालन ही राजा को करना पड़ना है चाहें अच्छे दिन हो अथवा बुरे। राक्षस इन तीनों गुणों से ही युक्त है अतः उसके द्वारा चन्द्रगुप्त का अमात्यपद स्वीकार कर लिए जाने पर ही चन्द्रगुप्त का राज्य चिरस्थायी एवं निष्कण्टक हो सकता है।

उक्त श्लोक में शार्दूलविक्रीडित छन्द तथा अप्रस्तुतप्रशंसा अलंकार है।

संस्कृत भावार्थ—

सानुरागेण परं बुद्धिरहितेन विक्रमशून्ये च भ त्येन किंचिदपि फलं न भवेत्। विवेकवीरत्ववतः अपि अनुरागरहितात् सेवकात् किमपि प्रयोजनं न स्यात्। येषां भ त्यानां विवेकवीरत्वानुरागाः इति गुणाः मिलिताः एव सन्ति ते भ त्या एव राज्ञः कल्याणाय भवन्ति। अन्ये त अभ्युदयेषु व्यसनेषु च केवलं भार्या इव पोष्यमात्रम्। एते त्रयो गुणाः राक्षसे मिलिताः सन्ति अतः राक्षससंग्रहाय यत्नः।

तन्मयाप्यस्मिन्वस्तुनि न शयानेन स्थीयते यथाशक्ति क्रियते तद्ग्रहणं प्रति यत्नः। कथमिव। अत्र तावद्व षलपर्वतरकयोरन्यतरविनाशेनापि चाणक्यस्यापकृतं भवतीति

विषकन्यया राक्षसेनास्माकमत्यन्तोपकारि मित्रं घातितस्तपस्वी पर्वतक इति स चारितो जगति जनापवादः। लोकप्रत्ययार्थमस्यैवाभिव्यक्तये पिता ते चाणक्येन घातित इति रहसि त्रासयित्वा भागुरायणेनापवाहितः पर्वतकपुत्रो मलयकेतुः। शक्यः खल्वेष राक्षसमतिपरिगृहीतो पि व्युत्तिष्ठमानः प्रज्ञया निग्रहीतुम्। न पुनरस्य निग्रहात्पर्वतकवधोतपन्नं राक्षसस्यायशः प्रकाशीभवत्प्रमार्ष्टुमिच्छामि। प्रयुक्ताश्च स्वपक्षपरपक्षयोरनुरक्तापरक्तजनजिज्ञासया बहुविधदेशवेषभाषाचारवेदिनो नानाव्य जनाः प्रणिधयः। अन्विष्यते च कुसुमपुरवासिनां नन्दामात्यसुहृदां निपुणं प्रचारगतम्।

हिन्दी अनुवाद—

इसी कारण मेरे द्वारा भी इसी विषय में सोकर स्थित नहीं हुआ जा रहा अर्थात् मैं इस विषय में पूर्ण रूप से जागरूक हूँ। अपनी शक्ति के अनुरूप उसे वश में करने का प्रयत्न किया जा रहा है। किस प्रकार। सर्वप्रथम तो 'चन्द्रगुप्त अथवा पर्वतक किसी एक के भी विनाश से चाणक्य का अहित होगा यह सोचकर विषकन्या के प्रयोग से राक्षस द्वारा अत्यन्त उपकार करने वाला हमारा मित्र बेचारा पर्वतक मरवा दिया गया है' यह अफवाह (जनापवाद) संसार में फैला दी गई है लोगों में विश्वास उत्पन्न करने के लिए व इसी बात को पुष्ट करने के लिए तेरा पिता चाणक्य के द्वारा मारा गया है' इस प्रकार एकान्त में डराकर पर्वतक का पुत्र मलयकेतु भागुरायण के द्वारा भगा दिया गया है। राक्षस की बुद्धि से कार्य करता हुआ (हम पर) आक्रमण करने पर भी यह (मलयकेतु) बुद्धि द्वारा वश में किया जा सकता है लेकिन इसको (मलयकेतु) पकड़कर पर्वतक के वध से उत्पन्न राक्षस के फैलते हुए अपयश को मैं शान्त नहीं करना चाहता। अपने पक्ष और शत्रुपक्ष पर स्नेह रखने वाले और द्वेष रखने वाले लोगों को जानने की इच्छा से विविध स्थान (देश), वेष, भाषा और आचार जानने वाले गुप्तचरों को विभिन्न वेषों में नियुक्त कर दिया गया। कुसुमपुर में रहने वाले नन्दों के अमात्यों व मित्रों की गतिविधियों पर अधिक सावधान हो कर निगरानी रखी जाती है।

तत्तत्कारणमुत्पाद्य कृतकृत्यतामापादिताश्चन्द्रगुप्तसहोत्थायिनो भद्रभटप्रभृतयः प्रधानपुरुषाः। शत्रुप्रयुक्तानां च तीक्ष्णरसदायिनां प्रतिविधानं प्रत्यप्रमादिनः परीक्षितभक्तयः क्षितिपतिप्रत्यासन्ना नियोजितास्तत्र तत्राप्तपुरुषाः। अस्ति चास्माकं सहाध्यायि मित्रमिन्दुशर्मा नाम ब्राह्मणः। स चौशनस्यां दण्डनीत्यां चतुःषष्ट्यंगे ज्योतिःशास्त्रे च परं प्रावीण्यमुपगतः। स मया क्षपणकलिंगधारी नन्दवंशवधप्रतिज्ञानन्तरमेव कुसुमपुरमुपनीय सर्वनन्दामात्यैः सह सख्यं ग्राहितो विशेषतश्च तस्मिन् राक्षसः समुत्पन्नविश्रम्भः। तेनेदानीं महत्प्रयोजनमनुष्ठेयं भविष्यति तदेवमस्मतो न किंचित्परिहीयते। वृषल एव केवलं प्रधानप्रकृतिरस्मास्वारोपितराज्यतन्त्रभारः सततमुदास्ते। अथवा यत्स्वयमभियोगदुःखैरसाधारणैरपाकृतं तदेव राज्यं सुखयति। कुतः?

हिन्दी अनुवाद—

भिन्न भिन्न कारणों को उत्पन्न करके चन्द्रगुप्त का साथ देने वाले भद्रभट इत्यादि प्रधान पुरुषों को सन्तुष्ट कर दिया गया है शत्रु द्वारा प्रयुक्त तीव्र विष आदि देने वालों का प्रतिकार करने में समर्थ सावधान और भक्ति की परीक्षा कर लिए गए विश्वसनीय मनुष्यों को राजा के समीप नियुक्त कर दिया गया है और मेरे साथ पढ़ने वाला इन्दुशर्मा नामक ब्राह्मण मेरा मित्र है। उसने उशनस् की दण्डनीति में और ज्योतिषशास्त्र के चौंसठ अंगों में अत्यधिक कुशलता प्राप्त की है। वह मेरे द्वारा नन्दवंश के वध की प्रतिज्ञा के तुरन्त

बाद ही क्षपणक (नग्न जैन साधु) का वेष धारण करवा कर और कुसुमपुर लाकर नन्द के सभी अमात्यों के साथ मित्रता को प्राप्त करवा दिया गया और राक्षस का तो उस पर विशेष रूप से विश्वास है। उसके द्वारा अब महान् कार्य किया जाएगा। तो इस प्रकार हमारी तरफ से कुछ भी कमी नहीं है। केवल प्रधानपुरुष व षल ही हमारे ऊपर राज्यशासन का भार डाल कर हमेशा उदासीन रहता है। अथवा वही राज्य सुख देता है जो स्वयं कार्यों के असाधारण दुःखों से रहित हो क्योंकि?

स्वयमाह त्य भु जाना बलिनो पि स्वभावतः।
गजेन्द्राश्च नरेन्द्राश्च प्रायः सीदन्ति दुःखिताः ।।१६।।

अन्वय— स्वयमाह त्य भु जाना गजेन्द्राश्च नरेन्द्राश्च स्वभावतः बलिनो पि दुःखिताः प्रायः सीदन्ति।

संदर्भ— राक्षस को वश करने के लिए अपने द्वारा किए गए प्रयत्नों पर द ष्टिपात करने पर चाणक्य को यह अनुभव होता है कि यद्यपि उसकी तरफ से कुछ भी न्यूनता नहीं है तथापि एक कमी अवश्य है और वह यह है कि चन्द्रगुप्त राज्य का समस्त भार चाणक्य को सौंप कर स्वयं राज्य में विशेष रुचि नहीं दिखाता। परन्तु तभी वह अपना विचार बदल देता है क्योंकि उसे ऐसा प्रतीत होता है कि वास्तव में वही राज्य राजा को सुख देता है जो कार्यों के असाधारण दुःखों से रहित हो।

हिन्दी अनुवाद—

अपने आप लाकर भोग करने वाले शेर और राजा स्वभाव से बलशाली होने पर भी दुःखी होने पर प्रायः कष्ट का अनुभव करते हैं। (१६)

स्पष्टीकरण— शेर और राजा दोनों ही स्वभाव से अत्यन्त पराक्रमी होते हैं। दोनों ही अपने द्वारा प्राप्त की गई वस्तुओं का भोग करते हैं। शेर अपने द्वारा मारा गया शिकार ही खाता है और राजा भी अपने पराक्रम से प्राप्त की गई राजलक्ष्मी का भोग करता है। बड़ी-बड़ी समस्याओं का समाधान करने में तो वे कठिनाई का अनुभव नहीं करते परन्तु यदि छोटी-छोटी समस्याओं को भी उन्हें दूर करना पड़े तो वे पराक्रमी होने पर भी चिड़चिड़े से हो जाते हैं।

उक्त श्लोक में अनुष्टुब् छन्द तथा दीपक अलंकार है।

संस्कृत भावार्थ—

स्वकृतश्रमेण सम्पाद्य उपभोगं कुर्वाणाः प्रकृत्या बलवन्तः अपि सिंहाः राजानश्च बाहुल्येन परिक्लिष्टाः सन्तः अवसीदन्ति। तं कष्टं परिहरन् व षलः उपालम्भनीयः नैव।

(ततः प्रविशति यमपटेन चरः)

प्रणमत यमस्य चरणौ किं कार्यं देवतैरन्यैः।
एष खल्वन्यभक्तानां हरति जीवं परिस्फुरन्तम्।।१७।।

पणमह जमसय चलणे किं कज्जं देवएहिं अण्णेहिं।

एसो खु अण्णभत्ताणं हरइ जीअं चडफडन्तं।।

अन्वय— यमस्य चरणौ प्रणमत अन्यैः देवतैः किं कार्यम्। खलु एषः अन्यभक्तानां परिस्फुरन्तं जीवं हरति

संदर्भ— चाणक्य का दूत यमपट लेकर प्रवेश करता है और सभी मनुष्यों को यम के चरणों में ही नमस्कार करने को कहता है।

हिन्दी अनुवाद—

यम के चरणों में नमस्कार करो। अन्य देवताओं से क्या लाभ। निस्सन्देह यह अन्य (देवताओं) के भक्तों के स्फुरण करते हुए जीवन को हर लेता है। (१७)

स्पष्टीकरण— चाणक्य का दूत जो यमचर का वेष धारण करवा कर कुसुमपुर में रहने वाले व्यक्तियों के चित्त को जानने के लिए नियुक्त किया गया था, यमपट के साथ प्रवेश करता है और यम की ही उपासना करने का उपदेश दे देता है क्योंकि अन्य देवताओं के भक्तों का भी जीवन छीन लेने के कारण यम ही सबसे अधिक शक्तिशाली है।

उक्त श्लोक का गूढार्थ यह है कि चाणक्य की ही सेवा करो। अन्य किसी (राक्षस) की सेवा करने पर वह चाणक्य उस सेवक के प्राणों को ही नष्ट कर देगा।

उक्त श्लोक में आर्या छन्द तथा काव्यलिंग अलंकार है।

संस्कृत भावार्थ—

यूयम् यमस्य चरणौ एव भजध्वम् यतः अपरैः देवैः किमपि न साध्यते। अयं यम एव अपरदेवातानां भक्तानां च चलं जीवं नाशयति। अस्य श्लोकस्य गूढार्थो यं यत् चाणक्यस्यैव सेवां कुरु। तदैव यूयम् जीवितुं क्षमाः। राक्षसभक्तान् तु सः मारयति निश्चयेन।

अपि च (अवि अ)—

पुरुषस्य जीवितव्यं विषमाद्भवति भक्तिग हीतात्
मारयति सर्वलोकं यस्तेन यमेन जीवामः।।१८।।

पुरिसस्स जीविदव्वं विसमादो होइ भत्तिगहिआदो।

मारेइ सव्वलोअं जो तेण जमेण जीआमो।।

अन्वय— भक्ततिग हीतात् विषमाद् (यमादपि) पुरुषस्य जीवितव्यं भवति। यः सर्वलोकं मारयति तेन यमेन जीवामः।

संदर्भ— यमचर पुनः यम की उपासना करने का महत्व बतलाता है।

हिन्दी अनुवाद— और भी -

भक्ति से सन्तुष्ट कर लिए जाने पर भयंकर (यम से भी) मनुष्य की जीविका चल जाती है। जो सारे संसार को मारता है उसी यम के द्वारा हम जीवित रहते है। (१६)

स्पष्टीकरण— यमचर के कथन का तात्पर्य यह है कि यदि यम को अपनी भक्ति द्वारा प्रसन्न कर लिया जाए तो मनुष्य का जीवन तो सुरक्षित रहता ही है बल्कि उसकी जीविका भी चल जाती है। इसी बात को वह अपना द ष्टान्त देकर स्पष्ट करता है कि मैं यम सम्बन्धी यमपट दिखा कर ही अपनी जीविका भी अर्जित कर लेता हूं। इस प्रकार यम की उपासना करने का द्विगुणित लाभ है।

उक्त श्लोक का गूढार्थ यह है कि क्रूर चाणक्य को यदि कोई अपनी सेवा द्वारा प्रसन्न कर ले तो उसका जीवन भी सुरक्षित रहता है और चाणक्य उसे जीविका चलाने के लिए प्रभूत धन भी देता है।

यहाँ आर्या छन्द व अप्रस्तुतप्रशंसा अलंकार है।

संस्कृत भावार्थ—

भक्त्या वशीकृतात् अस्मात् क्रूरात् यमादपि पुरुषस्य जीविका सम्पद्यते। यमचरः आत्मनः द ष्टान्तमुपस्थापयति यत् यः यमः सर्वजनं विनाशयति तत्सम्बन्धियमपटं प्रदर्श्य एव वयं जीवनयात्रां कुर्मः।

गूढार्थो यं यत् यदि क्रूरः चाणक्यः स्वामिभक्त्या ग ह्यते तदा सः स्वभक्तेभ्यः भूरि ददाति। अनेन श्लोकद्वयेन चाणक्यस्य यमवत्क्रूरत्वं स्वपक्षपरपक्षानुग्रहनिग्रहसामर्थ्यं च द्योतयन् निपुणकः स्वस्य गुप्तचरत्वं द्योतयति।

यावदिदं ग हं प्रविश्य यमपटं दर्शयन् गीतानि गायामि। (जाव एदं गेहं पविसिअ जमपडं दंसअन्तो गीआहं गाआमि।) (इति परिक्रामति)

शिष्यः— **(विलोक्य) भद्र न प्रवेष्टव्यम्।**

चरः— **अहो ब्राह्मण, कस्येदं ग हम्। (हंहो ब्रह्मण, कस्स एंद गेहं।)**

शिष्यः— **अस्माकमुपाध्यायस्य सुग हीतनाम्न आर्य चाणक्यस्य।**

चरः — **(विहस्य) अहो ब्राह्मण, आत्मीयस्यैव धर्मभ्रातुर्ग हं भवति। तस्माद्देहि मे प्रवेशं यावत्तवोपाध्यायस्य यमपटं प्रसार्य धर्ममुपदिशामि। (हंहो ब्रह्मण, अत्तकेरअस्स जेव्व मह धम्मभादुणो घरं होदि। तो देहि मे पवैसं जाव दे उवज्झाअस्स जमपडं पसारिअ धम्मं उपदिसामि।)**

शिष्यः— **(सक्रोधम्) धिङ् मूर्ख। किं भवानस्मदुपाध्यायादपि धर्मवित्तरः।**

चरः— **अहो ब्राह्मण, मा कुप्य। न हि सर्वःसर्वं जानाति। तत्किमपि ते उपाध्यायो जानाति किमपि अस्माद शा जानन्ति। (हंडो बह्मण, मा कुप्प। ण हि सव्वो सव्वं जाणादि। त्त किंवि ते उपज्झाओ जाणादि किंवि अह्मरिसा जाणन्दि।)**

शिष्यः— **मूर्ख, सर्वज्ञतामुपाध्यायस्य चोरयितुमिच्छसि।**

चरः— **अहो ब्राह्मण, यदि तवोपाध्यायः सर्वं जानाति तर्हि जानातु तावत्कस्य चन्द्रो नभिप्रेत इति। (हंहो ब्रह्मण, जइ तव उवज्झाओ सव्वं जाणादि ता जाणादु दाव कस्स चन्दो अणभिप्पेदो ति।)**

शिष्यः— **मूर्ख, किमनेन ज्ञातेनाज्ञातेन वा।**

चरः— **तवोपाध्याय एव ज्ञास्यति यदेतेन ज्ञातेन भवति। त्वं तावदेतावत् जानासि कमलानां चन्द्रो नभिप्रेत इति। ननु पश्य (तव उवज्झाओ एव्व जाणिस्सदि जं इमिणा जाणिदेण होदि। तुमं दाव एत्तिअं जाणासि कमलाणं चन्दो अणभिप्पेदो त्ति। णं पेक्ख।)**

हिन्दी अनुवाद—

जब तक इस घर में प्रवेश करके यमपट दिखलाता हुआ गीत गाता हूँ। (ऐसा कहकर घूमता है)

शिष्य— (देखकर) हे भद्र, प्रवेश मत करो।

चर— हे ब्राह्मण, यह किसका घर है।

शिष्य— शुभ नाम वाले हमारे उपाध्याय आर्य चाणक्य का।

चर— (हँसकर) हे ब्राह्मण, (तब तो यह) मेरे अपने ही धर्म भाई का घर है। इसलिए मुझे अन्दर आने दो ताकि यमपट फैलाकर तुम्हारे उपाध्याय को धर्म का उपदेश दे सकूं।

शिष्य— (क्रोधपूर्वक) हे मुर्ख धिक्कार है। क्या आप हमारे उपाध्याय से भी अधिक धर्म को जानने वाले है।

चर— हे ब्राह्मण क्रोध न करो। सब लोग सब कुछ नहीं जानते। कुछ तो तुम्हारे उपाध्याय जानते हैं तो कुछ हमारे जैसे भी जानते हैं।

शिष्य— हे मूर्ख, हमारे उपाध्याय की सर्वज्ञता को चुराना चाहते हो।

चर— हे ब्राह्मण, यदि तुम्हारे उपाध्याय सब कुछ जानते हैं तो बतलाएँ कि चन्द्र किसे अच्छा नहीं लगता?

शिष्य— हे मूर्ख, इसे जानने अथवा न जानने से क्या होगा।

चर— तुम्हारे उपाध्याय ही समझेंगे जो इसे जानने से होगा। तुम तो इतना ही जानते हो कि चन्द्र कमलों को अच्छा नहीं लगता। निस्संदेह देखो -

स्पष्टीकरण— चन्द्रगुप्त के मित्र शत्रुओं के विषय में जानकारी प्राप्त कर जब चाणक्य का गुप्तचर चाणक्य के घर में प्रवेश करने लगता है तो चाणक्य का शिष्य उसे अपरिचित जान घर में प्रवेश करने से रोक देता है। दूत चाणक्य को अपना धर्म भाई बतलाता है क्योंकि चाणक्य भी आचार्य होने के नाते शिष्यों को उपदेश देता है और यमचर भी लोगों को स्वर्ग नरक सम्बन्धी उपदेश देता है। परन्तु इसका गूढ़ार्थ यह है कि चाणक्य भी चन्द्रगुप्त की सेवा कर रहा है और वह गुप्तचर भी।

जब गुप्तचर शिष्य से कहता है कि वह आचार्य चाणक्य को धर्म का उपदेश देना चाहता है तो शिष्य अत्यधिक कुपित हो जाता है क्योंकि उसे ऐसा प्रतीत होता है कि वह व्यक्ति उसकेआचार्य का अपमान कर रहा है वे उन्हें सर्वज्ञ नहीं समझ रहा। गुप्तचर पुनः कहता है कि यदि तुम्हारे आचार्य सर्वज्ञ हैं तो यह बतलाएँ कि चन्द्र किसे अच्छा नहीं लगता। चन्द्र का तात्पर्य चन्द्रमा व चन्द्रगुप्त दोनों से ही है। स्पष्ट रूप से चन्द्र कमलों को अच्छा नहीं लगता क्योंकि उसके उदित होते ही कमल बन्द हो जात हैं परन्तु गूढ़ार्थ यह है कि दूत चाणक्य को यह बतलाना चाहता है कि कुसुमपुर में कौन से व्यक्ति चन्द्रगुप्त को सहन नहीं कर पा रहे।

कमलानां मनोहराणामपि रूपाद्विसंवदति शीलम्।
सम्पूर्णमण्डले पि यानि चन्द्रे विरुद्धानि।।१६।।

कमलाण मणहराण वि रुवाहिंतो विसंवदई शीलं।
संपुण्णमण्डलम्मि वि जाइं चन्दे विरुद्धाइं।।

अन्वय— मनोहराणामपि कमलानां शीलं रूपाद् विसंवदति यानि चन्द्रे सम्पूर्णमण्डले पि विरुद्धानि।

संदर्भ— चाणक्य का शिष्य जब गुप्तचर को चाणक्य के पास जाने से रोकता है तो वह संकेत देते हुए कहता है कि वह कुसुमपुर मे रहने वाले परन्तु चन्द्रगुप्त से विरोध रखने वाले व्यक्तियों का पता लगाकर कर आया है।

हिन्दी अनुवाद—

सुन्दर होने पर भी कमलों का स्वभाव (उनके) रूप से विपरीत होता है जो चन्द्रमा के सम्पूर्ण मण्डल वाला होने पर भी (उसके) विरूद्ध होते हैं। (१६)

स्पष्टीकरण— गुप्तचर के कथन का स्पष्टार्थ यह है कि कमलों का बाह्य रूप यद्यपि अत्यन्त मनोहारी होता है तथापि उनका स्वभाव उनके रूप के समान सुन्दर नहीं होता क्योंकि वे १६ कलाओं से युक्त होने पर भी चन्द्रमा से द्वेष रखते हैं। एक प्राकृतिक तथ्य का कि चन्द्रोदय होने पर कमल मुरझा जाते हैं, कवि विशाखदत्त ने काव्यात्मक वर्णन किया है।

परन्तु इस श्लोक का गूढार्थ यह है कि कुसुमपुर में कुछ लोग ऐसे हैं जो बाह्य रूप में तो चन्द्रगुप्त का साथ देते हुए प्रतीत होते हैं परन्तु उनका आचरण चन्द्रगुप्त के विरूद्ध ही है। यद्यपि चन्द्रगुप्त के सातों अंग - स्वामी, अमात्य, सुह त्, कोष, दुर्ग, राष्ट्र और बल सम ृद्ध अवस्था में हैं तथापि वे उसे सहन नहीं कर पा रहे।

उक्त श्लोक में श्लेष अलंकार है।

संस्कृत भावार्थ—

सौन्दर्ययुतामपि कमलानां चरितं तेषाम् आकृतेः विपरीतं भवति यतः तानि सम्पूर्णमण्डलमपि चन्द्रं न सहन्ते। चन्द्रस्य उदिते एव तानि निमीलन्ति। एवं तेषां रूपं तु रमणीयं परं चरितं विषमम्। एषां रूपात् चरितानुमानं न शक्यम्।

अस्य श्लोकस्य गूढार्थो यं यत् बहवः राक्षसभक्ताः कुसुमपुरे निवसन्ति ये सौम्यदर्शनाश्चरन्ति परं स्वाम्यमात्यराष्ट्रकोषदुर्गबलसुह च्चेति सप्तागंयुतं चन्द्रगुप्तं न सहन्ते। तस्य विरुद्धमेव आचरन्ति।

चाण०— **(आकर्ण्यात्मगतम्) अये चन्दगुप्तादपरक्तान् पुरुषान् जानामीत्युपक्षिप्तमनेन।**

शिष्यः— **मूर्ख, किमिदमसम्बद्धमभिधीयते।**

चरः— **अहो ब्राह्मण, सुसम्बद्धमेवैतद् भवेत्। (हंहो ब्रह्मण, सुसम्बधं ज्जेव्व एदं भवे)**

शिष्यः— **यदि किं स्यात्।**

चरः— **यदि श्रोतुं जानन्तं लभे (यदि सुणिदुं जाणन्तं लहे।)**

चाण०— **भद्र, विश्रब्धं प्रविश लप्स्यसे श्रोतारं ज्ञातारं च।**

चरः— **एष प्रविशामि। (प्रविश्योपस त्य च) जयतु आर्यः। (एसो पविसामि। जेदु अज्जो।)**

चाण०— **(विलोक्यात्मगतम्) कथमयं प्रकृतिचित्तपरिज्ञाने नियुक्तो निपुणकः। (प्रकाशम्) भद्र, स्वागतमुपविश।**

चरः— **यदार्य आज्ञापयति (जं अज्जो आणवेदि) (भूमावुपविष्टः)**

चाण०— **भद्र, वर्णयेदानीं स्वनियोगव त्तम्। अपि व षलमनुरक्ताः प्रकृतयः।**

चरः— **अथ किम्। आर्येण खलु तेषु तेषु विरागकारणेषु परिह तेषु सुग हीतनामधेये देवे चन्द्रगुप्ते द ढ़मनुरक्ताः प्रकृतयः। किंतु पुनरस्त्यत्र नगरे अमात्यराक्षसेन सह प्रथमं समुत्पन्नस्नेहबहुमानास्त्रयःपुरुषा देवस्य चन्द्रश्रियः श्रियं न सहन्ते। (अह इ। अज्जेण खु तेसु तेसु विराअकारणेसु सुहिरिदेसु सुगहीदणामहेए देव चन्दउत्ते दिढं अणुरत्ताओ पकिदिआकिंदु उण अत्थि एत्थ णअरे अमच्चरक्खेण सह पढमं समुप्पण्णसिणेहबहुमाणा तिपिण्ण पुरीसा देवस्य चन्द्रसिरिणो सिरिंण सहन्दि।)**

चाण०— **(सक्रोधम्) ननु वक्तव्यं स्वजीवितं न सहन्त इति। भद्र, अपि ज्ञायन्ते नामधेयतः।**

चरः— **कथमज्ञातनामधेया आर्यस्य निवेद्यन्ते। (कहं अजाणिअणामहेआ अज्जस्य णिवेदीअन्ति।)**

चाण०— तेन हि श्रोतुमिच्छामि।

चरः— श्र णोत्वार्यः। प्रथमं तावदार्यस्य रिपुपक्षे बद्धपक्षपातः क्षपणको-(सुणादु अज्जो। पढमं दाव अज्जस्य रिपुपक्खे बद्धपक्खवादो खवणओ-)।

चाण०— (आत्गतम्) अस्मद्रिपुपक्षे बद्धपक्षपातः क्षपणकः।

हिन्दी अनुवाद—

चाण०— (सुन कर अपने आप) अरे चन्द्रगुप्त से विमुख पुरुषों को जानता हूँ ऐसा इसके द्वारा संकेत दिया गया है।

शिष्य— हे मूर्ख, यह असम्बद्ध बातें क्यों कर रहे हो?

चर— हे ब्राह्मण, यह सब सुसम्बद्ध हो जाए।

शिष्य— यदि क्या हो।

चर— यदि सुनने के लिए जानकार मिल जाए।

चाण०— भद्र, निस्संकोच प्रवेश करो। श्रोता और ज्ञाता (दोनों) को प्राप्त करोगे।

चरः— यह मै प्रवेश करता हूँ (प्रवेश करके और पास जाकर) आर्य विजयी हों।

चाण०— (देखकर अपने आप) अरे यह तो प्रजा के मन को जानने के लिए नियुक्त किया गया निपुणक है। (स्पष्ट रूप से) भद्र, स्वागत है, बैठो।

चर— जैसी आर्य आज्ञा देते हैं। (भूमि पर बैठ जाता है)

चाण०— अब अपने कार्य का व त्तान्त बतलाओ। क्या प्रजा चन्द्रगुप्त से स्नेह रखती है।

चर— हाँ, आपके द्वारा विरक्ति के विभिन्न कारण दूर कर दिए जाने पर शुभनामवाले चन्द्रगुप्त से प्रजा अत्यधिक स्नेह करती है। किन्तु इस नगर में पहले से ही अमात्य राक्षस के प्रति स्नेह और सम्मान से युक्त तीन व्यक्ति हैं जो राजा चन्द्रगुप्त की राजलक्ष्मी को सहन नहीं करते।

चाण०— (क्रोधपूर्वक) वास्तव में यह कहना चाहिए कि अपने जीवन को सहन नहीं करते। भद्र, क्या उनके नाम ज्ञात हैं।

चर— नाम ज्ञात किए बिना आपको किस प्रकार बतलाता।

चाण०— तब तो मैं सुनना चाहता हूँ।

चर— आर्य सुनें। सर्वप्रथम तो शत्रु पक्ष पर पक्षपात रखने वाला **क्षपणक—**

चाण०— (अपने आप) हमारे शत्रु पक्ष पर पक्षपात रखने वाला क्षपणक।

स्पष्टीकरण— निपुणक चाणक्य को बतलाता है कि कुसुमपुर में रहने वाले और चन्द्रगुप्त से विरोध रखने वाले तीन व्यक्तियों में से सर्वप्रथम क्षपणक जीवसिद्धि है।

चरः— जीवसिद्धिर्नाम स येन सा अमात्यराक्षसप्रयुक्ता विषकन्या देवे पर्वतेश्वरे समावेशिता (जीवसिद्धीणाम जो जेण सा अमच्चरक्खसप्पउता विसकण्ण देवे पव्वदीसरे समावेसिदा)।

चाण०— (स्वगतम्) जीवसिद्धिः। एष तावदस्मत्प्रणिधिः। (प्रकाशम्) भद्र, अथापर कः।

चरः— आर्य, अपरो प्यमात्यराक्षस्य प्रियवयस्यः कायस्थः शकटदासो नाम (अज्ज अवरोवि अमच्चरक्खसस्स पिअवअस्सो का अत्थो अवरोवि सअडदासो णाम।)

चाण०— **(विहस्यात्मगतम्) कायस्थ इति लघ्वी मात्रा। तथापि न युक्तं प्राकृतमपि रिपुमवज्ञातुम। तस्मिन्मया सुह च्छद्मना सिद्धार्थको विनिक्षिप्तः। (प्रकाशम्) भद्र, त तीयमपि श्रोतुमिच्छामि।**

चरः— **त तीयो पि अमात्यराक्षसस्य द्वितीयमिव ह दयं पुष्पपुरनिवासी मणिकारश्रेष्ठी चन्दनदासो नाम यस्य गेहे कलत्रं न्यासीकृत्य अमात्यराक्षसो नगरादपक्रान्तः। (तिदीओ वि अमच्चरक्खसस्स दुदीअं हिअअं पुष्परमणिवासी मणिआरसेठ्टी चन्दणदासो णाम। जस्स गेह कलत्तं णासीकदुअ अमच्चरक्खसो णअरादो अवक्कन्तो।)**

चाण०— **(आत्मगतम्) नूनं सुह त्तमः। न ह्यनात्मसद शेषु राक्षसः कलत्रं न्यासीकरिष्यति। (प्रकाशम्) भद्र, चन्दनदासस्य ग हे राक्षसेन कलत्रं न्यासीकृतमिति कथमवगम्यते।**

चरः— **आर्य, इयमंगुलिमुद्रा आर्यमवगतार्थं करिष्यति। (अज्ज इअं अंगुलिमुद्दा अज्जं अवगदत्थं करिस्सादि।) (इति मुद्रामर्पयति।)**

चाण०— **(मुद्रामवलोक्य ग हीत्वा राक्षसस्य नाम वाचयति। सहर्षं स्वगतम्) ननु वक्तव्यं राक्षस एवास्मदंगुलीप्रणयी संव त्त इति। (प्रकाशम्) भद्र, अंगुलिमुद्राधिगमं विस्तरेण श्रोतुमिच्छामि।**

चरः— **श्र णोत्वार्यः। अस्ति तावदहमार्येण पौरजनचरितान्वेषणे नियुक्तः परग हप्रवेशे परस्यानांकनीयेन अनेन यमपटेन हिण्डमानो मणिकारश्रेष्ठिनश्चन्दनदासस्य ग हं प्रविष्टो स्मि। तत्र यमपटं प्रसार्य प्रव त्तो स्मि गीतानि गातुम। (सुणादु अज्जो। अत्थि दाव अहं अज्जेण पौरजणचरिदअण्णेसणे णिउत्तो परघरप्पवेसे परस्स अणासंकणिज्जेण इमिणा तमपडेणा हिण्डन्तो मणिआरसेट्ठिण चन्दणदासस्य गेंह पठिठ्ठोह्मि। तहिं जमपडं पसारिअ पउत्तोह्मि गीदाइं गाइदुं।)**

चाण०— **ततः किम्।**

हिन्दी अनुवाद—

चर— जीवसिद्धि नाम का है जिसके द्वारा अमात्य राक्षस द्वारा प्रयुक्त वह विषकन्या राजा पर्वतक पर प्रयुक्त की गई।

चाण०— (अपने आप) जीवसिद्धि। यह तो हमारा ही गुप्तचर है। (स्पष्ट रूप से) भद्र, दूसरा कौन है।

चर— यह दूसरा भी अमात्य राक्षस का प्रियमित्र शकटदास नाम का कायस्थ है।

चाण०— (हँस कर अपने आप) कायस्थ यह तो छोटी मात्रा है अर्थात् महत्त्वहीन है। तब भी साधारण शत्रु की भी उपेक्षा उचित नहीं है। उस पर मेरे द्वारा मित्र के रूप में सिद्धार्थक नियुक्त कर दिया गया है । (स्पष्ट रूप से) भद्र, तीसरे के बारे में भी सुनना चाहता हूँ।

चर— तीसरा भी अमात्यराक्षस के दूसरे ह दय के समान कुसुमपुर में रहने वाला, सुनारों में श्रेष्ठ चन्दनदास नाम का है जिसके घर में अपने परिवार को धरोहर रूप में रख कर अमात्य राक्षस कुसुमपुर से बाहर चला गया है।

चाण०— (अपने आप) निस्सन्देह परम मित्र है क्योंकि अपने जैसा न होने पर राक्षस अपने परिवार को धरोहर रूप में नहीं रखेगा (स्पष्ट रूप से) भद्र, चन्दनदास के घर में राक्षस के द्वारा (अपना) परिवार रखा गया है, यह कैसे ज्ञात हुआ?

चर— आर्य, यह अँगूठी आप को सब कुछ बता देगी। (ऐसा कहकर अँगूठी देता है)

चाण०— (अँगूठी देखकर, लेकर राक्षस का नाम पढ़ता है। हर्ष पूर्वक अपने आप) निस्सन्देह यह कहना चाहिए कि राक्षस ही हमारी अंगुली का प्यारा हो गया। अर्थात् हमारे वश में हो

गया (स्पष्ट रूप से) भद्र, अँगूठी की प्राप्ति के विषय में विस्तार से सुनना चाहता हूं।

चर— आर्य सुनें। प्रजा के मन का पता लगाने के लिए आपके द्वारा नियुक्त किया गया मैं दूसरे के घर में प्रवेश करने पर, दूसरे का सन्देह उत्पन्न न करने वाले इस यमपट को लेकर इधर- उधर घूमता हुआ (भाग्यवश) सुनारों में श्रेष्ठ चन्दनदास के घर में प्रविष्ट हो गया। वहाँ यमपट फैलाकर गीत गाने लगा।

चाण०— फिर क्या हुआ।

स्पष्टीकरण— जीवसिद्धिं वस्तुतः वही इन्दुशर्मा नामक ब्राह्मण है जो चाणक्य का सहपाठी था और जिसकी मित्रता चाणक्य ने नन्दवंश के वध की प्रतिज्ञा करने के तुरन्त बाद ही नन्द के सभी अमात्यों से करवा दी और राक्षस का तो उस पर विशेष विश्वास था। दूसरा व्यक्ति शकटदास है जो यद्यपि चाणक्य के लिए अमहत्त्वपूर्ण है तथापि उपेक्षणीय नहीं है। उस पर निगरानी रखने के लिए वह अपने विश्वस्त गुप्तचर सिद्धार्थक को नियुक्त कर देता है। तीसरा व्यक्ति जो चाणक्य की चिन्ता का विषय है वह चन्दनदास है जिसके धर में राक्षस ने अपने परिवार को रखा है।

प्रजा के मन की थाह लेने के लिए निपुणक यमचर का वेष धारण कर इधर उधर घूमता है। यमचर का वेष ऐसा वेष है जिसे धारण करके किसी के भी घर में प्रवेश कर जाने पर किसी को उस व्यक्ति के विषय में सन्देह नहीं हो सकता। इस प्रकार घूमता हुआ निपुणक एक दिन अचानक ही चन्दनदास के घर में प्रविष्ट हो गया।

चरः— **ततश्च एकस्मादपवरकात्प चवर्षदेशीयः प्रियदर्शनीयशरीराकृतिः कुमारको बालत्वसुलभकौतूहलोत्प्रफुल्लनयनो निष्क्रमितुं प्रव त्तः। ततो हा निर्गतो हा निर्गत इति शंकापरिग्रहनिवेदयिता तस्यैवापवरकस्याभ्यन्तरे स्त्रीजनस्योत्थितो महान् कलकलः। (ततो एक्कादो अववरकादो प चवरिदेसीओ पिअंदसणीअ सरीराकिदी कुमारओ बालत्तणसुलहको- दुहलोप्फुल्लणअणो णिक्कमिदुं पउत्तो। तदो हा णिग्गदो हा णिग्गदोति संकापरिग्गहणि वेदइत्तिओ तस्य एव्व अव्वरकस्य अब्भन्तरे इत्थिआजणस्य उठ्ठिदो महन्तो कलअलो।)**

तत ईषद्द्वारदेशदापितमुख्या एकया स्त्रिया स कुमारको निष्क्रामन्नेव निर्भत्र्स्यावलम्बितः कोमलया बाहुलतया। तस्याः कुमारसंरोधसंभ्रमप्रचलितांगुलेः करात्पुरुषागुंलि-परिणाहप्रमाणघटिता विगलितेयमगुंलिमुद्रिका। देहलीबन्धे पतित उत्थिता तया अनवबुद्धैव मम चरणपार्श्वं समागत्य प्रणामनिभ ता कुलवधूरिव निश्चला संव त्ता। मयापि अमात्यराक्षसस्य नामाकिंतेति आर्यस्य पादमूलं प्रापिता। तस्मादेषो स्या आगमः। (तदो ईसिदारदेशदाविदमुहीए एक्काए इत्थिआए सो कुमारओ णिक्कमन्तो एव्व णिब्भच्छिअ अवलम्बिदो कोमलाए बाहुलदाए। तस्साए कुमार संरोधसंभमप्पचलिदंगुलिदो करादो पुरिसअंगुलिपरिणाहप्पमाणघडिआ विअलिया इअं अगुंलिमुद्दिआ देहलीबन्धम्मि पडिआ उट्ठिदा ताए अणवबुद्धा एव्व मम चलणपासं समागच्छिअ पणामणिहुदा कुलवहु विह णिच्चला संवुता। मए वि अमच्चरक्खसस्स णामकिंदेत्ति अज्जस्स पादमूलं पाविदा। ता एसो इमाए आअमो।)

चाण०— **भद्र, श्रुतम्। अपसर। न चिरादस्य परिश्रमस्यानुरूपं फलमधिगमिष्यसि।**

चरः— **यदार्य आज्ञापयति। (जं अज्जो आणवेद।)**

(इति निष्क्रान्तः)

चाण०— शार्ङ्गरव शार्ङ्गरव

(प्रविश्य)

शिष्यः— उपाध्याय आज्ञापय।

चाण०— वत्स मसीभाजनं पत्रं चोपानय।

शिष्यः— (तथा करोति)

चाण०— (पत्रं ग हीत्वा स्वगतम्) किमत्र लिखामि। अनेन खलु लेखेन राक्षसो जेतव्यः।

(प्रविश्य)

प्रतिहारी— जयत्वार्यः। (जेदु अज्जो)

चाण०— (सहर्षमात्मगतम्) ग हीतो जयशब्दः। (प्रकाशम्) शोणोत्तरे किमागमप्रयोजनम्?

हिन्दी अनुवाद—

चर— तत्पश्चात् एक कमरे में से प्रिय और सुन्दर शक्ल सूरत वाला तथा बालसुलभ उत्सुकता के कारण विकसित नेत्रों वाला एक पाँच वर्ष का बालक बाहर निकलने लगा तब 'हाय निकल गया, हाय निकल गया' इस प्रकार घबराहट को सूचित करने वाला स्त्रियों का महान् शोर उसी कमरे के अन्दर होने लगा। तब उस अधखुले दरवाजे में से थोड़ा-सा मुख दिखाई देने वाली एक स्त्री के द्वारा वह बालक निकलते हुए ही डाँट कर कोमल बाहु रूपी लता के द्वारा पकड़ लिया गया। बालक को रोकने की घबराहट में हिलती हुई अंगुली वाले उसके हाथसे पुरुष की अंगुलि के नाप से बनाई गई यह अंगुठी फिसल गई देहली पर गिरी, उछली (और) उसके जाने बिना ही मेरे पैरों के पास आकर प्रणाम करती हुई कुलवधू के समान निश्चल हो गई। मेरे द्वारा भी यह अमात्य राक्षस के नाम से अंकित है, यह सोचकर आपके चरणों में प्राप्त करवा दी गई। इस प्रकार इसकी प्राप्ति हुई।

चाण०— भद्र, मैंने सुन लिया, तुम जाओ। शीघ्र ही (अपने) परिश्रम के अनुरूप फल प्राप्त करोगे।

चर— जैसी आप आज्ञा देते हैं। (ऐसा कहकर निकल जाता है)

चाण०— शार्गरव, शांर्गरव!

(प्रवेश करके)

शिष्य— उपाध्याय आज्ञा दीजिए।

चाण०— वत्स स्याही की दावत और कागज़ ले आओ।

शिष्य— वैसा ही करता है।

चाण०— (कागज़ लेकर अपने आप) यहाँ क्या लिखूँ। इस पत्र से निस्सन्देह राक्षस को जीतना है।

(प्रवेश करके)

प्रतिहारी— आर्य विजयी हों।

चाण०— (हर्षपूर्वक अपने आप) 'विजय' शब्द स्वीकार कर लिया गया। (स्पष्ट रूप से) शोणेत्तरे, आने का क्या प्रयोजन है।

स्पष्टीकरण— यमचर का वेष धारण किए हुए निपुणक ने जैसे ही गीत गाना प्रारम्भ किया वैसे ही बालसुलभ कौतूहल के कारण एक बच्चा कमरे से जैसे ही निकलने लगा वैसे ही एक स्त्री ने उसे अन्दर खींच लिया। ऐसा करते समय अँगूठी उस स्त्री के हाथ से गिर गई। वस्तुतः वह बालक राक्षस का था और वह स्त्री उस बच्चे की माँ थी। राक्षस के नाम से चिन्हित उस अँगूठी को देखकर निपुणक उसे सोचकर कि सम्भवतः यह आर्य चाणक्य के किसी काम आ सके, उसे उनके पास ले आया। वह अँगूठी प्राप्त हो जाने पर चाणक्य कुछ ऐसा पत्र लिखना चाहता है जिससे राक्षस को जीता सके। वह अपने मन में यह सोच ही रहा है कि तभी प्रतीहारी प्रवेश करती है और कहती है 'आर्य विजय हो' यह सुनकर चाणक्य अतीव प्रसन्न होता है क्योंकि उसे अपनी विजय प्राप्ति निश्चित-सी प्रतीत होती है।

प्रती०— **आर्य देवश्चन्द्रश्रीः शीर्षे कमलमुकुलाकारम जलिं निवेश्य आर्यं विज्ञापयति। इच्छाम्यार्येणाभ्यनुज्ञातो देवस्य पर्वतेश्वरस्य पारलौकिकं कर्तुम्। तेन च धारितपूर्वाणि आभरणानि ब्राह्मणेभ्यः प्रतिपादयामीति। (अज्ज देवो चन्दसिरी सीसे कमलमुउलाआरम जलिं णिवेसिअ अज्जं विण्णवेद। इच्छामि अज्जेण अब्भणुण्णादो देवस्स पव्वदीसरस्स पारलोइअं कादुं तेण अ धारिदपुव्वाइं आहरणां इं ब्रह्मणाणं पडिवादेमिति।)**

चाण०— **(सहर्षमात्मगतम्) साधु व षल ममैव ह्रदयेन सह संमन्त्र्य सन्दिष्टवानासि। (प्रकाशम्) शोणोत्तरे उच्चयतामस्मद्वचनाद्व षल.....साधु वत्स, अभिज्ञः खल्वसि लोकव्यवहारणां तदनुष्ठीयतामात्मनो भिप्रायः। किन्तु पर्वतेश्वरध तपूर्वाणि गुणवन्तिभूषणानि गुणवद्भ्य एव प्रतिपादनीयानि। तदहं स्वयमेव परीक्षितगुणान् ब्राह्मणान् प्रेषयामीति।**

प्रती०— **यदार्य आज्ञापयति। (जं अज्जो आणवेदि)**

(इति निष्क्रान्ता)

चाण०— **शार्ंगरव, उच्यन्तामस्मद्वचनाद्विश्वावसुप्रभ तयस्त्रयो भ्रातरः व षलात्प्रतिग ह्याभरणानि भवद्भि द्रष्टव्य इति।**

शिष्यः— **तथेति। (निष्क्रान्तः)**

चाण०— **उत्तरो यं लेखार्थः। पूर्वः कथमस्तु। (विचिन्त्य) आः ज्ञातम्। उपलब्धवानस्मि प्रणिधिभ्यो यथा तस्य म्लेच्छराजलोकस्य मध्यात्प्रधानतमाः प च राजानः परया सुह त्तया राक्षसमनुवर्तन्ते। ते यथा -**

हिन्दी अनुवाद—

प्रती०— आर्य राजा चन्द्रगुप्त कमल की कली के समान अ जलि अपने मस्तक पर रख कर अर्थात् हाथ जोड़ कर आपसे विनम्र निवेदन करते हैं (कि) आपकी (चाणक्य की) आज्ञा से राजा पर्वतक का श्राद्ध (परालौकिक) करना चाहता हूँ और उसके द्वारा पहले पहने गए आभूषणों को ब्राह्मणों को देना चाहता हूँ

चाण०— (हर्षपूर्वक अपने आप) व षल तुम्हें शाबाश है। मेरे ही ह दय के साथ सलाह करके तुमने सन्देश भेजा है अर्थात् तुमने मेरे ही मन की बात कही है। (स्पष्ट रूप से) शोणोत्तरे, हमारी तरफ से चन्द्रगुप्त को कहो-वत्स तुम्हें शाबाश है। निस्सन्देह तुम लौकिक व्यवहारों को जानते हो। इसलिए अपने मन की इच्छा पूरी करो। किन्तु पर्वतक के द्वारा

पहले पहने गए आभूषण बहुमूल्य हैं (अतः) गुणी व्यक्तियों को ही दिए जाने चाहिए इसीलिए मैं स्वयं ही गुणों की परीक्षा कर लिए गए ब्राह्मणों को भेजूँगा।

प्रती०— जैसी आप आज्ञा देते हैं

(ऐसा कह कर निकल जाती है)

चाण०— शार्गरव, हमारी तरफ से विश्वावसु इत्यादि तीन भाइयों को कहो कि चन्द्रगुप्त से आभूषण ग्रहण कर मेरे पास आएँ

शिष्य— ऐसा ही करता हूँ। (निकल जाता है।)

चाण०— यह पत्र का बाद वाला भाग होगा। प्रारम्भ किस प्रकार का हो (सोचकर) हाँ पता चल गया। मुझे गुप्तचरों से विदित हुआ है कि म्लेच्छ राजाओं के समूह में से पाँच मुख्य राजा परम मित्रता सहित राक्षस का अनुसरण कर रहे हैं। वे इस प्रकार हैं -

स्पष्टीकरण— चन्द्रगुप्त पर्वतक का श्राद्ध करना चाहता है और उसके द्वारा पहने गए आभूषण दान में देना चाहता है। चाणक्य उसे ऐसा करने की अनुमति तो दे देता है परन्तु वह आभूषण अपने द्वारा भेजे गए ब्राह्मणों को ही दिलवाना चाहता है। इसके पीछे भी रहस्य है जो द्वितीय तथा प चम अंक में स्पष्ट होगा।

कौलूतश्चित्रवर्मा मलयनरपतिः सिंहनादो न सिंहः
काश्मीरः पुष्कराक्षः क्षतरिपुमहिमा सैन्धवः सिन्धुषेणः।
मेघाख्यः प चमो स्मिन्प थुतुरगबलः पारसीकाधिराजो
नामान्येषां लिखामि ध्रुवमहमधुना चित्रगुप्तः प्रमार्ष्टु।।२०।।

अन्वय— कौलतूः चित्रवर्मा, न सिंहः मलयनरपतिः सिंहनादो काश्मीरः पुष्कराक्षः क्षतरिपुमहिमा सैन्धवः सिन्धुषेणः, अस्मिन् प चमः प थुतुरगबलः पारसीकाधिराजो मेघाख्यः अधुना अहम् एषां नामानि लिखामि चित्रगुप्तः ध्रुवं प्रमार्ष्टु।

सन्दर्भ— राक्षस के नाम से अंकित अँगूठी प्राप्त हो जाने पर चाणक्य एक ऐसा पत्र लिखना चाहता है जिसके द्वारा राक्षस को वश में किया जा सके। तभी उसे ध्यान आता है कि पाँच राजा राक्षस के परम मित्र हैं। प्रस्तुत श्लोक में उन्हीं पाँच राजाओं के नामों का उल्लेख करता है।

हिन्दी अनुवाद—

कुलूत देश का चित्रवर्मा, मनुष्यों में श्रेष्ठ मलयदेश का राजा सिंहनाद, काश्मीर का पुष्कराक्ष, शत्रुओं की महिमा को नष्ट करने वाला सिन्धु देश का राजा सिन्धुषेण (और) इनमें से पाँचवाँ घोड़ों की विशाल सेना से युक्त पारस देश का मेघ नाम राजा का है। अब मैं इनके नाम लिख रहा हूँ। चित्रगुप्त निस्सन्देह इन्हें (अपने बहीखाते में से) मिटा दे।(२०)

स्पष्टीकरण— चाणक्य के कहने का तात्पर्य यह है कि मैं इन पाँच राजाओं के नाम अपने इस पत्र में लिख रहा हूँ। इनकी म त्यु निश्चित ही है। अतः चित्रगुप्त अपने बहीखाते में से इन्हें मिटा दे। चित्रगुप्त यमराज का लेखक है जो जीवित व्यक्तियों का लेखा-जोखा करता है।

उक्त श्लोक में स्रग्धरा छन्द व अर्थापत्ति अलंकार है।

संस्कृतभावार्थ—

कुलूताधिपतिः चित्रवर्मा, मनुष्येषु श्रेष्ठः मलयदेशाधिपति सिंहनादः, काश्मीराधिपतिः पुष्कराक्षः, नष्टा रिपूणां महिमा येन ताद शः सिन्धुदेशाधिपतिः सिन्धुषेणः, महत् अश्वसैन्यं यस्य ताद शः पारसीकाधिपतिः मेघः अस्मिन् राजवर्गे प चमः अस्ति। अस्मिन् पत्रे अहमेतेषां नामनि लिखामि। मदीयेन लेखनेन एते अवश्यमेव मरिष्यन्ति अतः चित्रगुप्तः स्वगणिताकरपत्रात् एतेषां नामानि क्षालयतु।

(विचिन्त्य) अथवा न लिखामि पूर्वमनभिव्यक्तमेवास्ताम्। (नाट्येन लिखित्वा) शार्ंगरव।

(प्रविश्य)

शिष्यः— उपाध्याय, आज्ञापय।

चाण०— वत्स, श्रोत्रियाक्षराणि प्रयत्नलिखितान्यपि नियतमस्फुटानि भवन्ति। तदुच्यतामस्मद्वचनात्सिद्धार्थकः। एभिरक्षरैः केनापि कस्यापि स्वयं वाच्यमिति अदत्तबाह्यनामानं लेखं शकटदासेन लेखयित्वा मामुपतिष्ठस्व। न चाख्येयमस्मै चाणक्यो लेखयतीति।

शिष्यः— तथा (इति निष्क्रान्तः)

चाण०— (स्वगतम्) हन्त जितो मलयकेतुः

(प्रविश्य लेखहस्तः)

सिद्धार्थकः— जयत्वार्यः। आर्य, अयं स शकटदासेन लिखितो लेखः। (जेदु अज्जो। (अज्ज अअं सो सअडदासेण लिहिदो लेहो।)

चाण०— (ग हीत्वा) अहो दर्शनीयान्यक्षराणि। (अनुवाच्य) भद्र, अनया मुद्रया मुद्रयैनम्।

सिद्धा०— (तथा कृत्वा) आर्य, अयं मुद्रितो लेखः। किमपरमनुष्ठीयताम्। (अज्ज अअं मुद्दिदो लेहो किं अवरं अणुचिट्ठी अदु।)

चाण०— भद्र, कस्मिंश्चिदाप्तजनानुष्ठेये कर्मणि त्वां व्यापारयितुमिच्छामि।

सिद्धा०— (सहर्षम्) आर्य, अनुग हीतोस्मि। आज्ञापयत्वार्यः किमनेन दासजनेनार्यस्यानुष्ठातव्यम्। (अज्ज अणुग्गिहिदोह्मि आणवेदु अज्जो किं इमिणा दासणेण अज्जस्य अणुचिट्ठदव्वं।)

चाण०— प्रथमं तावद्वध्यस्थानं गत्वा घातकाः सरोषदक्षिणाक्षिसंकोचसंज्ञां ग्राहयितव्याः। ततस्तेषु ग हीतसंज्ञेषु भयापदेशादितस्ततः प्रद्रुतेषु शकटदासो वध्यस्थानादपनीय राक्षसं प्रापयितव्यः। तस्माच्च सुहृत्प्राणपरितुष्टपारितोषिकं ग्राह्यम्। राक्षस एव क चित्कालं सेवितव्यः। ततः प्रत्यासन्नेषु परेषु प्रयोजनमिदमनुष्ठेयम्। (कर्णे एवमेवम्।)

सिद्धा०— यदार्य आज्ञापयति। (जं अज्जो आणवेदि)

चाण०— शार्ंगरव शार्ंगरव

(प्रविश्य)

शिष्यः— उपाध्याय, आज्ञापय

हिन्दी अनुवाद—

चाण०— (सोचकर) अथवा नहीं लिखता। पूर्वभाग अस्पष्ट ही रहे। (अभिनयपूर्वक लिखकर) शार्गरव।

(प्रवेश करके)

शिष्य– उपाध्याय, आज्ञा दीजिए।

चाण०– पुत्र, क्षोत्रिय द्वारा प्रयत्नपूर्वक लिखे जाने पर भी अक्षर निश्चित रूप से अस्पष्ट होते हैं। इसलिए हमारी ओर से सिद्धार्थक से कहा-'किसी के द्वारा (लिखा गया है), किसी के लिए है, स्वयं पढ़ा जाना चाहिए अर्थात् व्यक्तिगत है' इस प्रकार के अक्षरों द्वारा बाहर नाम लिखे बिना शकटदास से पत्र लिखवा कर मेरे पास आओ और इसे (शकटदास को) यह नहीं बतलाना कि (पत्र) चाणक्य लिखवा रहा है।

शिष्य– ठीक है। (निकल जाता है।)

चाण०– (अपने आप) अब तो मलयकेतु भी जीत लिया गया।

(पत्र हाथ में लिए हुए प्रवेश करके)

सिद्धार्थक– आर्य विजयी हो। आर्य, यह शकटदास द्वारा लिखा गया वह पत्र है।

चाण०– अहो! अक्षर दर्शनीय हैं। (पढ़कर) भद्र, इस अँगूठी से इसे मुद्रित कर दो।

सिद्धा०– (वैसा करके) आर्य,यह मुद्रित पत्र है। अब क्या किया जाए।

चाण०– भद्र किसी विश्वसनीय मनुष्य के द्वारा किए जाने योग्य कार्य में तुम्हें नियुक्त करना चाहता हूँ।

सिद्धा०– (हर्षपूर्वक) आर्य, मैं अनुगहीत हुआ। आर्य आज्ञा दें कि इस सेवक द्वारा आर्य का कौन-सा कार्य किया जाना चाहिए।

चाण०– सर्वप्रथम तो वध्यस्थल पर जाकर घातकों को क्रोधपूर्वक (सरोष) दाई आँख को सिकोड़ने का इशारा (संकोचसंज्ञां) समझा देना। तत्पश्चात् इशारा समझ जाने पर मानों भय के कारण उनके इधर-उधर भागने पर शकटदास को वध्यस्थल से बचाकर राक्षस के पास ले जाया जाना चाहिए। प्रिय मित्र के प्राण बच जाने से प्रसन्न हुए उससे पारितोषिक ले लेना। कुछ समय तक राक्षस की ही सेवा करना। फिर शत्रुओं के विश्वस्त हो जाने पर यह कार्य करना (कान में ऐसे-ऐसे)

सिद्धा०– जैसी आप आज्ञा देते हैं।

चाण०– शार्गरव, शार्गरव।

(प्रवेश करके)

शिष्य– उपाध्याय आज्ञा दीजिए।

स्पष्टीकरण– चाणक्य पहले राक्षस के पाँच मित्र राजाओं के नाम पत्र पर लिखना चाहता है परन्तु फिर वह विचार बदल देता है। वह अपने गुप्तचर सिद्धार्थक के द्वारा शकटदास से एक पत्र लिखवाता है जिसमें स्पष्टरूप से कुछ नहीं लिखा। केवल इतना लिखा है कि 'यह पत्र किसी के द्वारा, किसी के लिए व व्यक्तिगत है।' शकटदास को यह नहीं पता कि वह पत्र चाणक्य लिखवा रहा है। वस्तुतः शकटदास राक्षस का मित्र है। सिद्धार्थक को भी वह अपना मित्र समझता है परन्तु उसे यह नहीं पता कि सिद्धार्थक चाणक्य का दूत है।

चाणक्य उस पत्र को राक्षस की अँगूठी से मुद्रित कर देता है जिसका अभिप्राय यह हो गया कि यह पत्र राक्षस द्वारा भेजा जा रहा है। यहाँ नाटककार ने पाठकों को जिज्ञासा उत्पन्न कर दी कि चाणक्य ने राक्षस के मित्र शकटदास से पत्र लिखवा कर उसे राक्षस की मुद्रा से मुद्रित क्यों कर दिया। वह सिद्धार्थक को यह भी आदेश देता है कि वह

शकटदास को वध्यस्थल से भगा कर राक्षस के पास ले जाए। प्रसन्न होकर राक्षस उसे जो भी उपहार रूप में दे ले ले। राक्षस का विश्वास जीतने का प्रयत्न करे और फिर जब राक्षस का पूर्ण विश्वास उस पर हो जाए तो कान में उसे बतलाता है कि वह क्या करे। पुनः पाठकों को उत्सुकता जाग त हो गई कि चाणक्य ने सिद्धार्थ को कान में क्या कहा।

चाण०— उच्यतामस्मद्वचनात्कालपाशिको दण्डपाशिकश्च यथा व षलः समाज्ञापयति य एष क्षपणको जीवसिद्धिर्नाम राक्षसप्रयुक्तो विषकन्या पर्वतकं घातितवान्स एनमेव दोषं प्रख्याप्य सनिकारं नगरान्निर्वास्यतामिति।

शिष्यः— तथा (इति परिक्रामति)

चाण०— वत्स, तिष्ठ, तिष्ठ। यो यमपरः कायस्थः शकटदासो नाम राक्षसप्रयुक्तो नित्यमस्मच्छरीरमभिद्रोग्धुमिह प्रयतते स चाप्येनं दोषं प्रख्याप्य शूलमारोप्यतां ग हजनश्चास्य बन्धनागारं प्रवेश्यतामिति।

शिष्यः— तथा (इति निष्क्रान्तः)

चाण०— (चिन्तां नाटयित्वा आत्मगतम्) अपि नाम दुरात्मा राक्षसो ग ह्येत।

सिद्धा०— आर्य ग हीतः। (अज्ज गहीदो)

चाण०— (सहर्षमात्मगतम्) हन्त ग हीतो राक्षसः (प्रकाशम्) भद्र, को यं ग हीतः।

सिद्धा०— ग हीत आर्यसन्देशः। तस्माद् गमिष्यामि कार्यसिद्धयै। (गिहीदो अज्जसन्देसो ता गमिस्सं कज्जसिद्धीए।)

चाण०— (सागुंलिमुद्रं लेखमर्पयित्वा) गम्यताम्। अस्तु ते कार्यसिद्धिः।

सिद्धा०— तथा (तह)। (इति निष्क्रान्तः)

शिष्यः— (प्रविश्य) उपाध्याय कालपाशिको दण्डपाशिकश्च उपाध्यायं विज्ञापयतः। इदमनुष्ठीयते देवस्य चन्द्रगुप्तस्य शासनमिति।

चाण०— शोभनम्। वत्स मणिकारश्रेष्ठिनं चन्दनदासमिदानीं द्रष्टुमिच्छामि।

शिष्यः— तथा (इति निष्क्रम्य चन्दनासेन सह प्रविश्य) इत इतः श्रेष्ठिन्।

चन्दनदासः— (स्वागतम्)

हिन्दी अनुवाद—

चाण०— हमारी तरफ से कालपाशिक और दण्डपाशिक से कह दो कि चन्द्रगुप्त आज्ञा देता है कि जीवसिद्धि नामक जिस क्षपणक ने राक्षस के द्वारा प्रयुक्त विषकन्या से पर्वतक को मारा है उसके इसी अपराध को घोषित कर अपमानपूर्वक नगर से निकाल दिया जाए।

शिष्य— ठीक है। (ऐसा कहकर घूमता है)

चाण०— वत्स, ठहरो, ठहरो। राक्षस द्वारा नियुक्त यह जो दूसरा शकटदास नामक कायस्थ है, हमेशा ही यहाँ (कुसुमपुर में) हमारे शरीर से द्रोह करने का प्रयत्न करता है, उसका भी यह अपराध घोषित कर उसे फाँसी पर चढ़ा दिया जाए और उसके परिवार को कारागार में डाल दिया जाए।

शिष्य— जो आज्ञा। (ऐसा कह कर निकल गया।)

चाण०— (चिन्ता का अभिनय करके अपने आप) क्या दुष्ट राक्षस पकड़ लिया जाएगा।

सिद्धा०— आर्य, पकड़ (ग्रहण कर) लिया गया।

चाण०— (हर्षपूर्वक अपने आप) अरे राक्षस पकड़ लिया गया। (स्पष्टरूप से)। भद्र। कौन पकड़ लिया गया।

सिद्धा०— आर्य का सन्देश पकड़ (ग्रहण कर) लिया गया। अब मैं अपने कार्य की सफलता के लिए जाता हूँ।

चाण०— (अँगूठी से मुद्रित पत्र देकर) जाओ। तुम्हारी कार्यसिद्धि हो।

सिद्धा०— ऐसा ही हो। (ऐसा कहकर निकल गया।)

शिष्य— (प्रवेश करके) उपाध्याय, कालपाशिक और दण्डपाशिक आपसे विनम्र निवेदन करते हैं कि राजा चन्द्रगुप्त की आज्ञा का अभी पालन किया जा रहा है।

चाण०— बहुत अच्छा। वत्स, अब सुनारों में श्रेष्ठ चन्दनदास को देखना चाहता हूँ।

शिष्य— ठीक है। (निकलकर चन्दनदास के साथ प्रवेश करके) हे सेठ जी, इधर, इधर आइए।

चन्दनदास— (अपने आप)

स्पष्टीकरण— जीवसिद्धि जैन साधु (क्षणपक) का वेष धारण किए हुए है अतः उसे म त्यु दण्ड न देकर अपमान सहित नगर से निष्कासित किए जाने का दण्ड दिया गया है। परन्तु शकटदास को म त्यु दण्ड दिया गया है।

सिद्धार्थक द्वारा कथित ग हीतः शब्द चाणक्य के कथन अपि नाम दुरात्मा राक्षसो ग ह्येत के साथ संयुक्त हो जाता है। इस प्रकार के नाटकीय तत्त्व को पताकास्थान कहते हैं। इससे भावी घटनाओं को सूचित कर दिया जाता है।

चाणक्येनाकरुणेन सहसा शब्दायितस्यापि जनस्य।
निर्दोषस्यापि शंका किं पुनर्मम जातदोषस्य ।।२१।।

चाणक्कम्मि अक्रूणे सहसा सद्दाविदस्य विजणस्य।
णिद्दोसस्स वि संका किं उण मह जाददोसस्स।।

अन्वय— अकरुणेन चाणक्येन सहसा शब्दायितस्य निर्दोषस्यापि जनस्य शंका पुनः जातदोषस्य मम किम्।

सन्दर्भ— चाणक्य द्वारा चन्दनदास को बुलाए जाने पर चन्दनदास अत्याधिक भयभीत एवं शंकित होते हुए कहता है।

हिन्दी अनुवाद—

क्रूर चाणक्य के द्वारा अचानक बुलाए जाने पर निरपराध व्यक्ति को भी शंका हो जाती है फिर अपराध करने वाले मेरा क्या हाल होगा। (२१)

स्पष्टीकरण— चन्दनदास का आशय यह है कि चाणक्य इतना निर्दयी है कि वह एकाएक यदि किसी निर्दोष व्यक्ति को भी बुला ले तो वह भी भयभीत हो जाएगा फिर मैंने तो अमात्य राक्षस के परिवार को अपने घर में शरण देकर उसके प्रति अपराध किया है। अतः मेरा भयभीत होना तो स्वाभाविक ही है।

उक्त श्लोक में आर्या छन्द तथा अर्थापत्ति अलंकार है।

संस्कृत भावार्थ—

क्ररेण चाणक्येन अकस्मात् आहूतस्य निरपराधस्य मनुष्यस्यापि भयं भवति पुनः कृतापराधस्य मम तु कथैव का।

तस्माद्भणिता मया धनसेनप्रमुखा निजनिवेशसंस्थिताः कदापि चाणक्यहतको गेहं मे विचाययति। तस्मादवहिता निर्वहत भर्तुरमात्यराक्षसस्य ग हजनम्। मम तावद् यद्भवति तद्भवत्विति। (ता भणिदा मए धणसेणप्पमुहा णिअणिवेससण्ठिआ कदावि चाणक्कहदओ गेहूं में विचिण्णावेदि। ता अवहिदा निव्वहेद भट्टिणो अमच्चरक्खसस्स घरअणं। मह दाव जं होदि तं होदु त्ति)

शिष्यः— **भोः श्रेष्ठिन् इत इतः।**

चन्द०— **अयमागच्छामि। (अअमाअच्छामि) (उभौ परिक्रामतः)**

शिष्यः— **(उपस त्य) उपाध्याय, अयं श्रेष्ठी चन्दनदासः।**

चन्द०— **जयत्वार्यः (जेदु अज्जो)**

चाण०— **(नाट्येनावलोक्य) श्रेष्ठिन्, स्वागतमिदमासनमास्यताम्।**

चन्द०— **(प्रणम्य) किं न जानात्यार्यः यथानुचित उपचारो ह दयस्य परिभवादपि महद् दुःखमुत्पादयति। तस्मादिहैवोचितायां भूमावुपविशामि। (किं ण जाणादि अज्जोजह अणुचिदो उवआरो हिअ अस्स परिहवादोवि महन्तं दुःखमुप्पादेदि। ता इह ज्जेव उचिदाए भूमीए उवविसामि।)**

चाण०— **भोः श्रेष्ठिन्। मा मैवम् सम्भावितमेवेदमस्मद्विधैः भवतः। तदुपविश्यतामासन एव।**

चन्द०— **(स्वागतम्) उपक्षिप्तमनेन दुष्टेन किमपि। (प्रकाशम्) यदार्य आज्ञापयति। (इत्युपविष्टः) (उवक्खितमणेण दुठ्टेन किंवि। जं अज्जो आणवेदि।)**

चाण०— **भोः श्रेष्ठिन् चन्दनदास, अपि प्रचीयन्ते संव्यवहारणां व द्धिलाभाः।**

चन्द०— **(स्वगतम्) अत्यादरः शंकनीयः। (प्रकाशम्) अथ किम्। आर्यस्य प्रसादेन अखण्डिता मे वणिज्या। (अच्चादरो संकणीओ। अहइं। अज्जस्स प्पसाएण अखण्डिता में वणिज्जा।)**

चाण०— **न खलु चन्द्रगुप्तदोषा अतिक्रान्तपार्थिवगुणानधुना स्मरन्ति प्रकृतीः।**

चन्द्र०— **(कर्णौ पिधाय) शान्तं पापम्। शारदनिशासमुद्गतेनेव पूर्णिमाचन्द्रेण चन्दश्रियाधिकं नन्दन्ति प्रकृतयः। (सन्तं पावं। सारअणिसासमुग्गएण विअ पुण्णिमाचन्देण चन्दसिरिणा अहिअं णन्दन्ति पकिदिओ।)**

हिन्दी अनुवाद—

इसी कारण अपने घर में रहने वाले धनसेन आदि प्रमुख व्यक्तियों को मेरे द्वारा कह दिया गया है कि दुष्ट चाणक्य कभी भी मेरे घर की तलाशी करवा सकता है अतः स्वामी अमात्य राक्षस के परिवार को सावधानीपूर्वक (कहीं और) ले जाओ। मेरा जो होना है, वह हो जाए।

शिष्य— सेठ जी, इधर, उधर।

चन्द०— यह मैं आ रहा हूँ (दोनों घूमते हैं)

शिष्य— (पास जाकर) उपाध्याय, यह सेठ चन्दनदास है।

चन्द०— आर्य विजयी हो।

चाण०— (अभिनयपूर्वक देखकर) सेठ जी स्वागत है, यह आसन है बैठिए।

चन्द०— (प्रणाम करके) क्या आपको नहीं पता कि अनुचित आदर ह्रदय में अपमान से भी अधिक दुःख उत्पन्न करता है। इसीलिय यहीं अपने योग्य भूमि पर बैठता है।

चाण०— सेठ जी, ऐसा मत कहिए। हमारे जैसे व्यक्तियों के द्वारा आपका यह सम्मान उचित ही है। इसीलिए आसन पर ही बैठिए।

चन्द०— (अपने आप) इस दुष्ट के द्वारा कुछ तो संकेत कर दिया गया है। (स्पष्ट रूप से) जैसी आप आज्ञा देते हैं। (ऐसा कह कर बैठ गया)

चाण०— सेठ जी, क्या व्यापार में लाभ व द्धि हो रही है।

चन्द०— (अपने आप) अत्यधिक आदर शंका उत्पन्न करता है। (स्पष्ट रूप से) और क्या। आपकी कृपा से मेरे व्यापार बाधारहित है।

चाण०— क्या चन्द्रगुप्त के दोष प्रजा को दिवंगत राजाओं के गुणों की याद नहीं दिलाते।

चन्द०— (कानों को ढक कर) पाप शान्त हो। शरदर्तु की रात्रि में उदित हुए पूर्णिमा के चन्द्रमा के समान प्रजा चन्द्रगुप्त की राज्यलक्ष्मी से अत्यधिक प्रसन्न है।

चाण०— भोः श्रेष्ठिन्, यद्येवं प्रीताभ्यः प्रकृतिभ्यः प्रतिप्रियमिच्छन्ति राजानः।

चन्द०— आज्ञापयतु आर्यः। किं कियदस्मज्जनादिष्यत इति। (आणवेदु अज्जो किं किंत्तिअं इमादो जणादो इच्छी अदि ति)

चाण०— भोः श्रेष्ठिन् चन्द्रगुप्तराज्यमिदं न नन्दराज्यम्। यतो नन्दस्यैवार्थरुचेरर्थसम्बन्धः प्रीतिमुत्पादयति चन्द्रगुप्तस्य तु भवतामपरिक्लेश एव।

चन्द०— **(सहर्षम्) आर्य अनुग हीतोस्मि। (अज्ज अणुमाहीदोह्रि)**

चाण०— **भो श्रेष्ठिन्, स चापरिक्लेशः कथमाविर्भवतीति ननु भवता प्रष्टव्याः स्म।**

चान्द०— **आज्ञापयतु आर्यः। (आणवेदु अज्जो।)**

चाण०— **संक्षेपतो राजनि अविरुद्धाभिव त्तिभिर्भवितव्यम्।**

चन्द०— **आर्य कः पुनरधन्यो राज्ञा विरुद्ध इति आर्येणावगम्यते।**

(अज्ज को उण अधण्णो रण्णा विरुद्धोति अज्जेण अवगच्छीआदि।)

चाण०— **भवानेव तावत्प्रथमम्।**

चन्द०— **(कर्णौ पिधाय) शान्तं पापं शान्तं पापम्। कीद शस्त णानामग्निना सह विरोधः। (सन्तं पावं सन्तं पावं। कीदिसो तिणाणं अग्गिण सह विरोहो।)**

चाण०— **अयमीद शो विरोधः। यत्त्वमद्यापि राजापथ्यकारिणः अमात्यराक्षसस्य ग हजनं स्वग हे रक्षसि।**

चन्द०— **आर्य, अलीकमेतत् केनाप्यनभिज्ञेन आर्यस्य निवेदितम्। (अज्ज अलीअं एदं केणावि अणभिण्णेण अज्जस्य णिवेदिदं।)**

चाण०— **भोः श्रेष्ठिन्, अलमाशंकया। भीताः पूर्वराजपुरुषाः पौराणामनिच्छतामपि ग हेषु ग हजनं निक्षिप्य देशान्तरं व्रजन्ति। ततस्तत्प्रच्छादनं दोषमुत्पादयति।**

चन्द०— **एवं नु इदम्। तस्मिन् समय आसीदस्मद्ग हे अमात्यराक्षसस्य ग हजन इति। (एवं ण्णेदं। तस्सि समये आसि अह्मघरे अमच्चरक्खस्स घरअणोत्ति।)**

चाण०— पूर्वमन तमिदानीमासीदिति परस्परविरोधिनी वचने।

चन्द०— एतावदेवास्ति मे वाक्छलम्। (एत्तिअं जेव्व अत्थि मे वाआच्छलम्।)

चाण०— भोः श्रेष्ठिन्, चन्दगुप्ते राजन्यपरिग्रहश्छलानाम्। तत्समर्पय राक्षसस्य ग हजनम्। अच्छलं भवतु भवतः।

चन्द०— आर्य, ननु विज्ञापयामि आसीदस्मद्ग हे अमात्यराक्षसस्य ग हजन इति (अज्ज णं विण्णवेमि आसि अह्मघरे अमच्चरक्खस्य घरअणो त्ति।)

चाण०— अथेदानीं क्व गतः?

चन्द०— न जानामि। (ण जाणामि)

चाण०— (स्मितं कृत्वा) कथं न ज्ञायते नाम। भोः श्रेष्ठिन्! शिरसि भयमतिदूरे तत्प्रतीकारः।

हिन्दी अनुवाद—

चाण०— सेठ जी, यदि ऐसा है तो प्रसन्न हुई प्रजा से राजा भी बदले में कुछ प्रिय चाहते है। (प्रतिप्रियमिच्छन्ति)।

चन्द०— आर्य, आज्ञा दें। क्या और कितना इस मनुष्य से चाहा जा रहा है।

चाण०— सेठ जी, चह चन्द्रगुप्त का राज्य है नन्दों का नहीं क्योंकि धन सम्बन्धी बातें धन में रुचि रखने वाले नन्द को ही प्रसन्न करती थी। चन्द्रगुप्त को तो आप लोगों का कष्टरहित होना ही प्रसन्नता देता है।

चन्द०— आर्य, मैं अनुग हीत हुआ।

चाण०— सेठ जी, आपके द्वारा हमसे यह पूछा जाना चाहिए था कि वह अपरिक्लेश किस प्रकार उत्पन्न होता है?

चन्द०— आर्य, आज्ञा दे।

चाण०— संक्षेप में राजा के विरुद्ध व्यवहार नहीं करना चाहिए।

चन्द०— आर्य, वह अभागा कौन है जो आर्य के द्वारा राजा के विरुद्ध समझा जा रहा है।

चाण०— सर्वप्रथम तो आप ही है।

चन्द०— (कानों पर हाथ रख कर) पाप शान्त हो, पाप शान्त हो। तिनके का आग के साथ कैसा विरोध।

चाण०— यह इस प्रकार का विरोध है किआप आज भी राजा का अहित करने वाले अमात्य राक्षस के परिवार को अपने घर में शरण दे रहे हो।

चन्द०— यह झूठ है। किसी अनभिज्ञ के द्वारा आपको ऐसी सूचना दे दी गई है।

चाण०— सेठ जी, भयभीत मत होइए। पहले राजा के सेवक भयभीत होकर नगरवासियों के न चाहने पर भी उनके घरों में (अपने) परिवार को रखकर दूसरे स्थानों में चले जाते है। तब उसको छिपाना अपराध होता है।

चन्द०— यह बात ऐसी है। उस समय हमारे घर में राक्षस का परिवार था।

चाण०— पहले तो 'झूठ' है और अब 'पहले था' ये दो परस्पर विरोधी वचन हैं।

चन्द०— इतना ही मेरी वाणी का छल है।

चाण०— हे सेठ, चन्द्रगुप्त के राज्य में छल के स्वीकार नहीं किया जाता। इसीलिए राक्षस का परिवार सौंप दो और छलरहित हो जाओ।

चन्द०— आर्य, मैं निवेदन तो कर रहा हूँ कि हमारे घर में अमात्य राक्षस परिवार था।

चाण०— अब कहाँ गया?

चन्द०— नहीं जानता।

चाण०— (मुस्कुराकर) कैसे नहीं जानते हे सेठ, सिर पर भय है और उसका प्रतिकार करने का उपाय दूर है।

स्पष्टीकरण— चाणक्य चन्दनदास से राक्षस के परिवार को चन्द्रगुप्त को सौंपने का आग्रह बार-बार करता है परन्तु चन्दनदास

इस विषय में अपनी पूर्ण अनभिज्ञता प्रकट कर देता है।

उपरि घनं घनरटितं दूरे दयिता किमेतदापतितम्।
हिमवति दिव्यौषधयः शीर्षे सर्पः समाविष्टः ।।२२।।
उवरि घणं घणरडिअं दूरे दइदा किमेतदावडिअम्।
हिमवदि दिव्वोसहिओ सीसे सप्पो समाविठ्ठो।।

अन्वय— उपरि घनरटितं घनं दयिता दूरे एतद् किम् आपतितम्। हिमवति दिव्यौषधयः शीर्षे सर्पः समाविष्टः।

सन्दर्भ— चन्दनदास चाणक्य से स्वयं को मुक्त कराने का कोई उपाय न सोच पाने के कारण प्रस्तुत श्लोक में कहता है-

चन्द०— (अपने आप)

हिन्दी अनुवाद—

ऊपर बादल गरज रहा है, प्रिया दूर है। यह क्या हो गया। हिमालय पर दिव्य औषधियाँ हैं और सिर पर साँप लटक रहा है। (२२)

स्पष्टीकरण— चन्दनदास का कहने का तात्पर्य यह है कि वर्षा ऋतु का आगमन हो गया जो श्रंगार रस की उद्दीपन है परन्तु प्रिया दूर है। सिर पर साँप लटक रहा है परन्तु उसका विष दूर करने की जड़ी बूटियाँ दूर हिमालय पर हैं। इसी प्रकार चन्दनदास के सामने भय चाणक्य के रूप में विद्यमान है परन्तु उसे दूर करने का उपाय राक्षस बहुत दूर है। चन्दनदास के पास चाणक्य से मुक्ति पाने का कोई उपाय नहीं है।

संस्कृत भावार्थ—

मे एतत्किम् समायातम्। यथा प्रवासस्थस्य जनस्य उपरि मेघगर्जनं भवति परं तस्य प्रिया दूरे तिष्ठति। यथा दंशनार्थं सर्पः मस्तके आरूढ़ः परं तत्प्रतिविधानसमर्थाः विषहराः दिव्यौषधयः दूरस्थे हिमालयपर्वते विद्यमानाः तथैव चन्दनदासस्योपरि राजदण्डः समापन्न एव परं तत्प्रतिविधानं राक्षसश्चन्द्रगुप्तं निपात्य तस्य रक्षणं करिष्यति इत्याश सुतरां दूरापेता।

चाण०— **अन्यच्च नन्दमिव विष्णुगुप्तः — (इत्यर्धोक्ते लज्जां नाटयित्वा) चन्द्रगुप्तममात्यराक्षसः समुच्छेत्स्यतीति मा मैवं मंस्थाः। पश्य—**

विक्रान्तैर्नयशालिभिः सुसचिवैः श्रीर्वक्रनासादिभिर्
नन्दे जीवति या तदा न गमिता स्थैर्यं चलन्ती मुहुः।
तामेकत्वमुपागतां द्युतिमिव प्रह्लादयन्तीं जगत्
कश्चन्द्रादिव चन्द्रगुप्तन पतेः कर्तुं व्यवस्येत्प थक् ।।२३।।

अन्वय— विक्रान्तैः नयशालिभिः वक्रनासादिभिः सुसचिवैः मुहुः चलन्ती या श्रीः तदा नन्दे जीवति स्थैर्यं न गमिता। एकत्वम् उपागतां जगत् प्रह्लादयन्तीं तां चन्द्रात् द्युतिमिव चन्द्रगुप्तन पतेः प थक्कर्तुं कः व्यवस्येत्।

सन्दर्भ— चन्दनदास से राक्षस के परिवार को प्राप्त करने के लिए चाणक्य हर सम्भव प्रयास करता है। वह उसे समझाते हुए कहता है कि तुम इस भ्रम में मत रहना कि जिस प्रकार नन्दों से क्रोधित होकर चाणक्य ने उन्हें नष्ट कर दिया उसी प्रकार राक्षस भी चन्द्रगुप्त को नष्ट कर देगा। प्रस्तुत श्लोक में वह इसका कारण बतलाया है।

हिन्दी अनुवाद—

चाण०— और भी। 'नन्द के समान चन्द्रगुप्त को चाणक्य के समान अमात्य राक्षस समूल नष्ट कर देगा' ऐसा मत समझो। देखो-

पराक्रमी और नीतिकुशल वक्रनास इत्यादि योग्य मन्त्रियों के द्वारा बार-बार जो राज्यलक्ष्मी उस समय नन्दों के जीवित रहते हुए स्थिरता के प्राप्त नहीं करवाई गई, एकत्व को प्राप्त हुई तथा संसार को प्रसन्न करती हुई उसको चन्द्रमा से चाँदनी के समान चन्द्रगुप्त राजा से अलग करने का कौन प्रयत्न कर सकता है। अर्थात् कोई भी नहीं। (२३)

स्पष्टीकरण— चाणक्य के कहने का अभिप्राय यह है कि जब राजा नन्द भी जीवित थे, राजलक्ष्मी भी उन्हीं के पास थी और वक्रनास, राक्षस इत्यादि पराक्रमी और नीतिनिपुण अनेक योग्य अमात्य भी थे तब भी वे राज्यलक्ष्मी को अपने पास सुरक्षित नहीं रख पाए तो अब तो सारी परिस्थितियाँ ही विपरीत हो गई हैं। न राजा नन्द जीवित है, राज्यलक्ष्मी उनके पास है और न ही अमात्य हैं तो एक अकेला राक्षस या अन्य कोई व्यक्ति भी चन्द्रगुप्त से राज्यलक्ष्मी कैसे छीन सकता है विशेष रूप से तब जब कि वह चन्द्रगुप्त के पास स्थिर हो गई है और सारी प्रजा को भी प्रसन्न कर रही है।

उक्त श्लोक में शार्दूलविक्रीडित छन्द तथा उपमा अलंकार है।

संस्कृत भावार्थ—

पराक्रमैः नीतिकुशलैः वक्रनासादिभिः मन्त्रिश्रेष्ठैः अपि तदानीं नवनन्देषु जीवितेषु, मया चालिता या अतिच चला राज्यलक्ष्मीः स्थिरा न कृता, अभिन्नतामुपागतां संसार च आनन्दयन्तीं तामेव श्रियम् इदानीं चन्द्रात् चन्द्रिकामिव चन्द्रगुप्तन पतेः वियोजयितुं कः यतेत को पि न। चन्द्रात् कान्तिवियोजनमिव चन्द्रगुप्तात् राजलक्ष्मीवियोजनमपि असम्भवम्।

अपि च—

आस्वादितद्विरदशोणितशोणशोभाम् (इति पूर्वोक्तं पठति)

चन्द०— (स्वगतम्) फलेन संवादितमस्य विकत्थितम्। (फलेण संवादिदं से विकत्थिदम्।)

(नेपथ्ये कलकलः)

चाण०— शांर्गरव, ज्ञायतां किमेतद्।

शिष्यः— तथा (इति निष्क्रम्य पुनः प्रविश्य) उपाध्याय एष राज्ञश्चन्द्रगुप्तस्याज्ञया राजापथ्यकारी क्षपणको जीवसिद्धिः सनिकारं नगरान्निर्वास्यते।

चाण०— क्षपणक अहह। अथवा अनुभव राजापथ्यकारित्वस्य फलम्। भोः श्रेष्ठिन् चन्दनदास एवमपथ्यकारिषु तीक्ष्णदण्डो राजा। तत्क्रियतां पथ्यं सुह द्वचः। समर्प्यतां राक्षसग हजनः। अनुभूयतां चिरं विचित्रो राजप्रसादः।

चन्द०— नास्ति मे गेहे अमात्यग हजनः। (णंत्थि मे गेहेअमच्चघर अणो।)

(नेपथ्ये पुनः कलकलः)

चाण०— शांर्गरव ज्ञायतां किमेतद्।

शिष्यः— तथा। (इति निष्क्रम्य पुनः प्रविश्य) उपाध्याय, अयमपि राजापथ्यकार्येव कायस्थः शकटदासः शूलमारोपयितुं नीयते।

चाण०— स्वकर्मफलमनुभवतु। भोः श्रेष्ठिन् एवमयं राजापथ्यकारिषु तीक्ष्णदण्डो राजा न मर्षयिष्यति राक्षसकलत्रप्रच्छादनं भवतः। तद्रक्ष परकलत्रेणात्मनः कलत्रं जीवितं च।

चन्द०— आर्यं, किं मे भयं दर्शयसि सन्तमपि गेहे अमात्यराक्षसस्य ग हजनं न समर्पयामि किं पुनरसन्तम्। (अज्ज किं मे भअं दावेसि। सन्तं वि गेहे अमच्चरक्खसस्स घरअणं ण समप्पेमि कि उण असन्तं।)

चाण०— चन्दनदास, एष ते निश्चयः?

चन्द०— बाढम्। एष मे निश्चयः। (वाढं एसो मे णिच्चओ) (स्वगतम्) साधु चन्दनदास साधु।

हिन्दी अनुवाद—

और भी -

आस्वादितद्विरदशोणितशोणशोभां (१.८) श्लोक पुनः पढ़ता है।

चन्द०— (अपने आप) फल के द्वारा इसकी आत्मप्रशंसा चरितार्थ कर दी गई है।

(नेपथ्य में शोर होता है)

चाण०— शांर्गरव, पता करो यह क्या है?

शिष्य— जैसी आज्ञा। (निकलकर पुनः प्रवेश करके) उपाध्याय राजा का अहित करने वाला यह जीवसिद्धि नामक क्षपणक राजा चन्द्रगुप्त की आज्ञा से अपमानपूर्वक नगर से निष्कासित किया जा रहा है।

चाण०— क्षपणक, अहह (दुःख अभिव्यक्त करता है) अथवा राजद्रोह करने का फल भोगो (अनुभव)। सेठ चन्दनदास यह राजा इस प्रकार राजद्रोह करने वालों को कठोर दण्ड देता है। अतः मित्र की हितकारी (पथ्यं) बात मान लो। राक्षस के परिवार को सौंप दो (और) चिरकाल तक विभिन्न प्रकार की राजकीय कृपा का अनुभव करो।

वन्द०— मेरे घर में अमात्य का परिवार नहीं है।

(नेपथ्य में शोर होता है)

चाण०— शांर्गरव पता लगाओ यह क्या है।

शिष्य— बहुत अच्छा (ऐसा कहकर निकल कर पुनः प्रवेश करके) उपाध्याय यह भी राजा का अहित करने वाला (राजाद्रोही) शकटदास फाँसी पर चढ़ने के लिए ले जाया जा रहा है।

चाण०— अपने कर्मों का फल भोगो। हे सेठ इस प्रकार राजद्रोह करने वालों को यह राजा भयंकर दण्ड देता है, आपका राक्षस के परिवार को छिपाना राजा क्षमा नहीं करेगा। अतः दूसरे के परिवार से अपने परिवार व जीवन की रक्षा करो।

चन्द— आर्य, मुझे भय क्या दिखा रहे हो। घर में विद्यमान होने पर भी राक्षस के परिवार को नहीं दूँगा फिर अविद्यमान होने पर तो कहना ही क्या।

चाण०— चन्दनदास यह तुम्हारा निश्चय है।

चन्द०— हाँ! यह मेरा निश्चय है।

चाण०— (अपने आप) चन्दनदास तुम्हें शाबाश है।

सुलभेष्वर्थलाभेषु परसंवेदने जनः।
क इदं दुष्करं कुर्यादिदानीं शिविना विना।।२४।।

अन्वय— परसंवेदने अर्थलाभेषु सुलभेषु इदानीं शिविना विना कः जनः इदं दुष्करं कुर्यात्।

संदर्भ— चाणक्य द्वारा बार-बार राक्षस का परिवार माँगे जाने पर भी चन्दनदास जब अपने जीवन परिवार व धन की परवाह किए बिना उसे नहीं सौंपता तब चाणक्य मन ही मन उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा करता है।

हिन्दी अनुवाद—

दूसरे की वस्तु दे देने पर धन की प्राप्ति आसान होने पर अब अर्थात् इस कलियुग में शिवि के अतिरिक्त कौन-सा मनुष्य इस कठिन कार्य को कर सकता है। (२४)

स्पष्टीकरण— राक्षस का परिवार चन्द्रगुप्त को सौंप देने मात्र से ही चन्दनदास को विविध प्रकार की राजकीय कृपा प्राप्त हो सकती है परन्तु चन्दनदास शरणागत (राक्षस के परिवार) की रक्षा करने के लिए अपना सर्वस्व दे देने को तत्पर है। राजा शिवि ने तो ऐसा श्रेष्ठ कार्य सतयुग में किया था परन्तु चन्दनदास ने तो यह कार्य कलियुग में करके उनके यश को भी लघु कर दिया है।

उक्त श्लोक में अनुष्टुब् छन्द तथा उदात्तालंकार है।

संस्कृत भावार्थ—

परकीयार्थस्य समर्पणे कृते सति यदा अर्थप्राप्तिः सुलभास्ति तदा इदानीं कलियुगे परकलत्रसंरक्षणरूपं दुःखेन करणीयं कार्यम् एकेन शिविना विना त्वदन्यः कः सम्पादयेत् न को पि इत्यर्थः। राजा शिविरपि एतत्दुष्करं कार्यं सतयुगे कृतवान् परं त्वं तु इदानीं पापिनि कलौ एतद् करोषि। अतः ततो सतिशयितसुचरितस्त्वमिति भावः।

चाण०— (प्रकाशम्) चन्दनदास एष ते निश्चयः।

चन्द०— बाढम्। (वाढम्)

चाण०— (सक्रोधम्) दुरात्मन्, दुष्टवणिक्, अनुभूयतां तर्हि नरपतिक्रोधः।

चन्द०— सज्जो स्मि। अनुतिष्ठतु आर्यः आत्मनो धिकारसद शम्। (सज्जोह्मि। अणिचिठ्ठदु अज्जो अत्तणो अहिआरसरिस्यं।)

चाण०— **शार्गरव, उच्यतामस्मद्वचनात्कालपाशिको दण्डपाशिकश्च। शीघ्रमयं दुष्टवणिक् निग ह्यताम्। अथवा तिष्ठतु। उच्यतां दुर्गपालो विजयपालः ग हीतग हसारमेनं सपुत्रकलत्रं संयम्य तावद्रक्ष यावन्मया व षलाय एवास्य कथ्यते। व षल प्राणहरं दण्डमाज्ञापयिष्यति।**

शिष्यः— **यदाज्ञापयत्युपाध्यायः। श्रेष्ठिन् इत इतः।**

चन्द०— **आर्य अयमागच्छामि। (स्वगतम्) दिष्ट्या मित्रकार्येण मे विनाशो न पुरुषदोषेण। (अज्ज अअमाअच्छामि। दिट्ठिआ मित्तकज्जेण मे विणासो ण पुरिसदोसेण।)**

(परिक्रम्य शिष्येण सह निष्क्रान्तः)

चाण०— (सहर्षम्) हन्त लब्ध इदानीं राक्षसः। कुतः?

हिन्दी अनुवाद— (स्पष्ट रूप से) चन्दनदास यह तुम्हारा निश्चय है?

चन्द०— हाँ।

चाण०— (क्रोधपूर्वक) दुरात्मन्, दुष्ट व्यापारी, तब राजा के क्रोध का अनुभव करो।

चन्द०— मैं तैयार हूँ। आप अपने अधिकार के अनुरूप कार्य करें।

चाण०— शार्गरव। हमारी तरफ से कालपाशिक और दण्डपाशिक से कहो। शीघ्र ही इस दुष्ट व्यापारी को पकड़ लिया जाए। अथवा रुको। दुर्ग की रक्षा करने वाले विजयपाल से कहो कि घर की सारी सम्पत्ति हड़प कर पुत्र और पत्नी सहित बाँधकर इस पर तब तक नजर रखो जब तक मेरे द्वारा चन्द्रगुप्त से कहा जाता है। चन्द्रगुप्त ही इनके म त्युदण्ड की आज्ञा देगा।

शिष्य— जैसी उपाध्याय आज्ञा देते हैं। हे सेठ इधर (आओ) इधर।

चन्द०— आर्य, यह मैं आ रहा हूँ (अपने आप) सौभाग्य से मित्र के कार्य से मेरी म त्यु हो रही है पुरुष दोष के कारण नहीं अर्थात् मनुष्य में पाए जाने वाले किसी दोष के कारण नहीं।

(घूम कर शिष्य के साथ निकलकर)

चाण०— (हर्षपूर्वक) हन्त अब राक्षस प्राप्त कर लिया गया। क्योंकि?

त्यजत्यप्रियवत्प्राणान्यथा तस्यायमापदि।
तथैवास्यापदि प्राणा नूनं तस्यापि न प्रियाः।।२५।।

अन्वय— यथा अयं तस्य आपदि प्राणान् अप्रियवत् त्यजति तथैव अस्य आपदि तस्य अपि प्राणा नूनं न प्रियाः।

संदर्भ— बार-बार माँगे जाने पर भी जब चन्दनदास राक्षस का परिवार चन्द्रगुप्त को नहीं सौंपता प्रत्युत अपना सर्वस्व त्यागने के लिए उद्यत हो जाता है तो चाणक्य अत्यधिक प्रसन्न होते हुए कहता है।

हिन्दी अनुवाद—

जिस प्रकार यह चन्दनदास उसकी (राक्षस की) आपत्ति में प्राणों को प्रिय न होने के समान छोड़ रहा है उसी प्रकार इसकी (चन्दनदास की) आपत्ति में उसे भी (राक्षस को) अपने प्राण निस्सन्देह प्रिय नहीं होगे। (२५)

स्पष्टीकरण— चाणक्य की प्रसनता का कारण यह है कि जिस प्रकार चन्दनदास राक्षस के लिए कुछ भी करने को तत्पर है उसी प्रकार राक्षस भी चन्दनदास के लिए सब कुछ करने

को तैयार हो जाएगा और उस समय चाणक्य बिना किसी कठिनाई के उसे चन्द्रगुप्त का अमात्यपद स्वीकार करवा पाएगा।

उक्त श्लोक में अनुष्टुव् छन्द और उपमा अलंकार है।

संस्कृत भावार्थ—

यथा अयं चन्दनदासः राक्षसस्य विपत्तौ आत्मजीवनम् अनिष्टवस्तुत्यागवत् जहाति तेनैव प्रकारेण चन्दनदासस्य राजदण्डरूपायां प्राप्तायाम् आपदि राक्षसस्यापि जीवनं प्रियं न भविष्यति।

(नेपथ्ये कलकलः)

चाण०— शार्ङ्गरव, शार्ङ्गरव।

(प्रविश्य)

शिष्यः— उपाध्याय, आज्ञापय

चाण०— किमेष कलकलः।

(निष्क्रम्य, विभाव्य पुनः प्रविश्य)

शिष्यः— उपाध्याय एष खलु शकटदास वध्यमानं वध्यभूमेरादाय समपक्रान्तः सिद्धार्थकः।

चाण०— (स्वगतम्) साधु सिद्धार्थक, कृतः कार्यारम्भः। (प्रकाशम्) प्रसह्य किमपक्रान्तः (सक्रोधम्) वत्स उच्यतां भागुरायणो यथा त्वरितं सम्भावयेति।

(निष्क्रम्य प्रविश्य च)

शिष्यः— (सविषादम्) उपाध्याय, हा धिक् कष्टमपक्रान्तो भागुरायणो पि।

चाण०— (स्वागतम्) व्रजतु कार्यसिद्धये (प्रकाशम्, सक्रोधमिव) वत्स, उच्यन्तामस्मद्वचनाद् भद्रभटपुरुषदत्तडिगंरातबलगुप्तराजसेनरोहिता क्षविजयवर्माणः शीघ्रमनुस त्य ग ह्यतां दुरात्मा भागुरायण इति।

शिष्यः— तथा (इति निष्क्रम्य पुनः प्रविश्य सविषादम्) हा धिक्, कष्टं सर्वमेव तन्त्रमकुलीभूतम्। ते पि खलु भद्रभटप्रभ तयः प्रथमतरमुषस्येवापक्रान्ताः।

चाण०— (स्वगतम्) सर्वेषामेव शिवाः पन्थानः सन्तु। (प्रकाशम्) वत्स, अलं विषादेन। पश्य-

हिन्दी अनुवाद—

(नेपथ्य में शोर होता है)

चाण०— शार्ङ्गरव शार्ङ्गरव (प्रवेश करके)

शिष्य— उपाध्याय, आज्ञा दीजिए।

चाण०— यह शोर कैसा है?

(निकल कर, पता लगाकर पुनः प्रवेश करके)

शिष्य— उपाध्याय, म त्युदण्ड दिए जाने वाले शकटदास को सिद्धार्थक वध्यस्थल से लेकर भाग गया।

चाण०— (अपने मन में) शाबाश सिद्धार्थक। कार्य का प्रारम्भ कर दिया गया है। (स्पष्ट रूप से) क्या जबदस्ती (प्रसह्य) भाग गया। (क्रोधपूर्वक) वत्स भागुरायण से कहो कि शीघ्र ही इसका पीछा करे।

(निकलकर और प्रवेश करके)

शिष्य— (दुःखपूर्वक) उपाध्याय, दुःख की बात है। भागुरायण भी भाग गया।

चाण०— (मन में) (अपने) कार्य की सफलता के लिए जाए। (स्पष्ट रूप से मानो क्रोधित हुआ) वत्स, हमारी तरफ से भद्रभट, पुरुषदत्त, डिगंरात, बलगुप्त, राजसेन, रोहिताक्ष, विजयवर्मा इत्यादि से कहो कि शीघ्रता से पीछा करके (अनुस त्य) दुष्ट भागुरायण पकड़ लिया जाए।

शिष्य— जो आज्ञा। (ऐसा कहकर, निकल कर पुनः प्रवेश करके दुःखपूर्वक) हाय बहुत कष्ट की बात है। सारी शासन व्यवस्था ही अस्त-व्यस्त हो गई। वे भद्रभट इत्यादि भी बहुत पहले प्रातः काल में ही भाग गए।

चाण०— (मन में) सभी के मार्ग कल्याणकारी हों। (स्पष्ट रूप से) पुत्र दुःखी मत होओ। देखो-

स्पष्टीकरण— चाणक्य की पूर्वयोजानुसार ही सिद्धार्थक शकटदास को व भागुरायण पर्वतकपुत्र मलयकेतु को लेकर सफलतापूर्वक भाग गए। भागुरायण, डिंगरात आदि को भी चाणक्य की योजनानुसार ही कुसुमपुर से भाग कर राक्षस की शरण में जाना था। अतः चाणक्य सबके लिए अपने-अपने कार्यों में सफलता प्राप्त करने की कामना करता है परन्तु प्रत्यक्ष रूप से अपने शिष्य शार्गरव को सबके चले जाने के कारण दुःखी न होने को कहता है।

ये याताः किमपि प्रधार्य ह दये पूर्वं गता एव ते
ये तिष्ठन्ति भवन्तु ते पि गमने कामं प्रकामोद्यमाः।
एका केवलमेव साधनविधौ सेनाशतेभ्यो धिका
नन्दोन्मूलनद ष्टवीर्यमहिमा बुद्धिस्तु मा गान्मम।।२६।।

अन्वय— हृदये किमपि प्रधार्य ये याताः ते पूर्वम् एव गताः। ये तिष्ठन्ति ते पि कामं गमने प्रकामोद्यमाः भवन्तु। साधनविधौ सेनाशतेभ्यो धिका नन्दोन्मूलनद ष्टवीर्यमहिमा केवलम् एका मम बुद्धि एव मा गात्।

सन्दर्भ— चाणक्य अपने शिष्य को जिस किसी को भी बुलाने के लिए भेजता है, वही पहले से ही कुसुमपुर को छोड़ कर जा चुका होता है। अतः चाणक्य का शिष्य अत्यन्त दुःखी हो जाता है। तब चाणक्य उसे सात्वना देते हुए कहता है-

हिन्दी अनुवाद—

अपने ह दय में कुछ भी सोचकर जो (भद्रभट इत्यादि) चले गए हैं वे तो पहले ही चले गए हैं। जो बचे हैं, वे भी इच्छानुसार जाने के लिए अत्यधिक प्रयत्नशील हो जाएँ। कार्य की सिद्धि में सौ सेनाओं से भी बढ़कर (और) नन्दों को नष्ट करने में जिसकी शक्ति की महिमा देख ली गई है (ऐसी) केवल अकेली मेरी बुद्धि ही मत जाए। (२६)

स्पष्टीकरण— चाणक्य का आशय यह है कि चाहें सब लोग हमें छोड़कर चले जाएँ केवल मेरी बुद्धि ही मुझे छोड़ कर न जाए। वह अकेली ही सब कार्य करने में समर्थ है जो कई सेनाओं द्वारा किए जाने योग्य हैं। इस बुद्धि की शक्ति की महिमा तो उस समय प्रमाणित हो गई थी जब नन्दों का नाश चाणक्य ने किया था।

उक्त श्लोक में शार्दूलविक्रीडित छन्द तथा काव्यलिंग अलंकार है।

संस्कृत भावार्थ–

ये भागुराणादयः मदिष्टमनिष्टं वा मनसि विचार्य गताः ते जनाः तु पूर्वमेव अपक्रान्ताः। ये जनाः अत्र तिष्ठन्ति ते पि यथेच्छं गमनाय प्रयत्नवन्तः भवन्तु। कार्यसम्पदाने बहुसेनाभ्यः श्रेष्ठा नन्दानाम् उन्मूलने द ष्टं माहात्म्यं यस्याः ताद शी केवलं मम अद्वितीया बुद्धिः न गच्छतु। सर्वा अपि प्रकृतयः सुखेन यान्तु न हि तदवलम्बेनाहं कार्यं साधये। बुद्धिबलेनैव सर्वं कार्य साधयिष्यामि इति चाणक्यस्याशयः।

(उत्थाय) एष दुरात्मनो भद्रभटप्रभ तीनाहरामि। (प्रत्यक्षवदाकाशे लक्ष्यं बद्धवा आत्मगतम्) दुरात्मन् राक्षस, क्वेदानीं गमिष्यसि। एषो हमचिराद् भवन्तम् -

स्वच्छन्दमेकचरमुज्ज्वलदानशक्तिम्
उत्सेकिना मदबलेन विगाहमानम्।
बुद्ध्या निग ह्य व षलस्य कृते क्रियायाम्।
आरण्यकं गजमिव प्रगुणीकरोमि।।२७।।

अन्वय– स्वच्छन्दम् एकचरम् उज्ज्वलदानशक्तिम् उत्सेकिना मदबलेन विगाहमानम् आरण्यकं गजमिव बुद्ध्या निग ह्य व षलस्य कृते क्रियायां प्रगुणीकरोमि।

सन्दर्भ– जब चाणक्य की सभी योजनाएँ उसकी योजनानुसार ही कार्यान्वित होनी प्रारम्भ हो जाती हैं तो वह अत्यधिक आशा से युक्त होकर कहता है।

हिन्दी अनुवाद–

(उठकर) यह मैं, दुष्ट भद्रभट इत्यादि को वापस लाता हूँ। (प्रत्यक्ष के समान आकाश में द ष्टि बाँध कर अपने आप) दुष्ट राक्षस। अब कहाँ जाओगे। यह मैं शीघ्र ही आपको-

स्वतन्त्रता पूर्वक अकेले कार्य करने वाले, अत्यधिक दान देने की शक्ति वाले, दुरभिमानी, घमण्ड के प्रभाव से (हमारे विरुद्ध) षड्यन्त्र रचने वाले (तुमको) जंगली हाथी के समान बुद्धि से पकड़कर चन्द्रगुप्त के लिए कार्य में नियुक्त करूंगा (जो जंगली हाथ) स्वतन्त्रतापूर्वक अकेला (वनों में) विचरण करता है, जिसकी मदजल बहाने की शक्ति प्रशस्त है, जो दुरभिमानी है तथा जो मदजल के घमण्ड से घने जंगलों में प्रवेश करता है। (२७)

स्पष्टीकरण– प्रस्तुत श्लोक में चाणक्य राक्षस की तुलना जंगली हाथी से करता है। जिस प्रकार जंगली हाथी को वश में करने के लिए बुद्धि कौशल की आवश्यकता होती है बल की नहीं उसी प्रकार राक्षस को वश में करने के लिए भी बुद्धि की आवश्यकता है। बल का प्रयोग करने से जंगली हाथ के समान या तो स्वयं म त्यु को प्राप्त हो जाएगा अथवा चन्द्रगुप्त की सेना को नष्ट कर देगा। दोनों ही अवस्थाओं में हानि चन्द्रगुप्त की ही होगी। पहली स्थिति में चन्द्रगुप्त प्रज्ञा, विक्रम और भक्ति जैसे दुर्लभ गुणों से युक्त राक्षस जैसे योग्य व्यक्ति से व चित हो जाएगा और दूसरी स्थिति में चन्द्रगुप्त के सैनिक मार दिए जाएंगे। अतः उसे वश में करने के लिए चाणक्य को बुद्धि व नीति का प्रयोग करना होगा

उक्त श्लोक में वसन्ततिलका छन्द तथा श्लेषमूलक उपमा अलंकार है।

संस्कृत भावार्थ—

प्रशस्या दानशक्तिः (गजपक्षे) मदजलक्षरणशक्तिः यस्य तथोक्तम् परित्यक्त-निजवर्गम् (गजपक्षे) यूथहीनं, निरंकुशं (उभयत्र समानम्), दुरभिमानवता दर्पप्रभावेण अस्मद् विनाशाय चेष्टमानम् (गजपक्षे) मदजलप्रभावेण अरण्ये भ्रमन्तं वन्यं गजमिव भवन्तम् बुद्धिबलेन वशीकृत्य चन्द्रगुप्तार्थे झटिति अमात्यकर्मणि (गजपक्षे) भारवहनकर्मणि व्यापारयामि।

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे)

इस प्रकार सब निकल जाते हैं।

इति मुद्रालाभो नाम प्रथमोंकः

इस प्रकार मुद्रालाभ नामक प्रथम अंक समाप्त हुआ।

द्वितीयोंकः

(ततः प्रविशत्याहितुण्डिकः)

आहितुण्डिकः—

जानन्ति तन्त्रयुक्तिं यथास्थितिं मण्डलमभिलिखन्ति।
ये मन्त्ररक्षणपरास्ते सर्पनराधिपावुपचरन्ति।।१।।

जाणन्ति तन्तुजत्ति जहट्ठिअं मण्डलं अहिलिहन्ति।
जे मन्तरक्खणपरा ते सप्पणराहिवे उवअरन्ति।।

अन्वय— ये तन्त्रयुक्तिं जानन्ति यथास्थितिं मण्डलमभिलिखन्ति, मन्त्ररक्षणपराः ते सर्पनराधिपावुपचरन्ति।

संदर्भ— राक्षस का विराधगुप्त नामक गुप्तचर जो सपेरे का रूप धारण किए हुए हैं, कुसुमपुर का समस्त व त्तान्त ज्ञात करके राक्षस के पास वापस आया है। उसकी द ष्टि में साँपों का खेल दिखाना तथा राजा की सेवा करना, ये दोनों ही अत्यन्त दुष्कर कार्य हैं व कतिपय विशिष्ट गुणों से युक्त व्यक्ति ही इन्हें कर सकते हैं।

हिन्दी अनुवाद—

(तब सपेरा प्रवेश करता है।)

आहितुण्डिक— जो विषौषधि के विषय में जानते हैं, यथाविधि मण्डल खींच सकते हैं (तथा) मन्त्रों के द्वारा रक्षा करने में समर्थ हैं, वहीं साँपों का खेल दिखा सकते हैं। (इसी प्रकार) जो शासनव्यवस्था के विषय में जानते हैं, यथावत् राजमण्डल खींच सकते हैं (तथा) गुप्त बातों की रक्षा करने में समर्थ हैं वही राजा की सेवा कर सकते हैं। (१)

स्पष्टीकरण— प्रस्तुत श्लोक द्वयर्थक है। एक अर्थ सपेरे के पक्ष में तो दूसरा अर्थ राजसेवक के पक्ष में लगता है। वही व्यक्ति साँपों का खेल दिखा सकता है जिसे औषधि (विषौषधि) का ज्ञान हो। जो महेन्द्रादि देवताओं के मण्डल को खींच सकता हो जिसे खींच देने पर साँप उस घेरे से बाहर नहीं जा पाता और जो गरुड़ इत्यादि के नामों से युक्त मन्त्रों को जानता है जिनके द्वारा सपेरा अपनी रक्षा करता है।

राजसेवक के पक्ष में इसका अर्थ है कि वही सेवक राजा की सेवा कर सकता है जो राजा की शासन-प्रणाली अथवा शासनव्यवस्था के विषय में जानता है जो अपने चारों तरफ यथावत् मण्डल खींच सकता है और राजा की गुप्त बातों की रक्षा कर सकता है।

उक्त श्लोक में आर्या छन्द तथा तुल्ययोगिता अलंकार है।

संस्कृत भावार्थ—

ये जनाः तन्त्रयुक्तिं सर्पौषधस्य प्रयोगं (राजपक्षे) - स्वराष्ट्रचिन्तायां सिद्धान्तोक्तन्यायं यथावत् जानन्ति। ये च मण्डलमभिलिखन्ति महेन्द्रादिदेवतायन्त्रं भूमौ रेखाकारेण लिखन्ति (राजपक्षे) स्वमर्यादां विचारयन्ति ये च मन्त्ररक्षणपराः - गारुडादिमन्त्रैः आत्मरक्षणे अप्रमत्ताः (राजपक्षे) गुप्तमन्त्राणां रक्षणे तत्पराः ते एव जनाः सर्पे नराधिपे च व्यवहरन्ति नान्ये।

(आकाशे) आर्य, किं त्वं भणसि कस्त्वमिति। आर्य, अहं खलु आहितुण्डिको जीर्णविषो नाम। किं भणसि अहमपि अहिना खेलितुमिच्छामीति। (अज्ज किं तुमं भणसि को तुमं त्ति। अज्ज अहं खु आहितुण्डिओ जिण्णविसो णाम। किं भणासि। अहं वि अहिणा खेलिदुं इच्छामित्ति)

अथ कतरां पुनरार्यो व त्तिमुपजीवति। किं भणसि राजकुलसेवक इति। ननु खेलति एव आर्यो हिना। कथमिव। अमन्त्रौषधिकुशलो व्यालग्राही प्रमतो मत्तंगजारोही लब्धाधिकारी जितकाशी राजसेवक इत्येते त्रयो प्यवश्यं विनाशमनुभवन्ति। कथं द ष्टमात्रो तिक्रान्त एषः। (पुनराकाशे) आर्य, किं त्वं भणसि किमेतेषु पेटकसमुद्केषु इति। आर्य, जीविकायाः संपादकाः सर्पाः। किं भणसि प्रेक्षितुमिच्छामीति। प्रसीदत्वार्यः अस्थानं खलु एतद्। तद्यदि कौतुहलमेहि एतस्मिन्नावासे दर्शयामि। किं भणसि इदं खलु भर्तुरमात्यराक्षसस्य ग हं नास्त्यस्माद शानामिह प्रवेश इति। तेन हि गच्छत्वार्यः। मम पुनर्जीविकायाः प्रसादेन अस्तीह प्रवेशः। कथमेषो पि अतिक्रान्तः। (अह कदरं उण अज्जो वित्तिं उवजीवदि। किं भणासि राअउलसेविकोह्मि त्ति। णं खेलदि एव्व अज्जो अहिणा। कहं विअ। अमन्तोसहिकुसलो वालग्गाही पमत्तो मतंगआ रोही लद्धाहिआरो जिदकासी राजसेवओ त्तिस एदे तिण्णि वि अवस्सं विणासमणुहोन्ति। कहंदिट्ठमेत्तो अदिक्कन्तो ऐसा। अज्ज कि तुमं भणसि कि एदेसु पेडालसमुग्गएसु त्ति। अज्ज जीविआए संपादआ सप्पा। किं भणासि पेक्खिदुमिच्छामीत्ति। पसीददु अज्जो। अट्ठाणं खु एदं। ता जइ कोतूहलं एहि एदस्सि आवासे दंसेमि। कि भणसि एदं खु भट्टिणो अमच्चरक्खसस्स गेहं णत्थि अह्मारिसाणं इह पवेसो त्ति। तेण ही गच्छदु अज्जो। मम उण जीविआए पसादेण अत्थि एत्थ पेवेसो। कधं एसोवि अतिक्कन्तो।)

(स्वगतम्, संस्कृतमाश्रित्य) अहो आश्चर्यम्। चाणक्यमतिपरिग हीतं चन्द्रगुप्तमवलोक्य विफलमिव राक्षसप्रयत्नमवगच्छामि। राक्षसमतिपरिग हीतं मलयकेतुमवलोक्य चलितमिवाधिराज्याच्चन्द्रगुप्तमवगच्छामि। कुतः?

हिन्दी अनुवाद—

आर्य, तुम क्या कह रहे हो (कि) तुम कौन हो। आर्य मैं निस्सन्देह जीर्णविष नामक सपेरा हूँ। क्या कह रहे हो कि मैं भी साँप के साथ खेलना चाहता हूँ।

अच्छा, आर्य किस प्रकार अपनी जीविका चलाते हैं? क्या कह रहे हो, राजकुल का सेवक हूँ। तब तो आर्य साँप के साथ ही खेल रहे हैं। किस प्रकार। गरुड़ादि मन्त्र और विषौषधि के विषय में न जानने वाला सपेरा, मदमस्त हाथी पर चढ़ने वाला असावधान (प्रमत्ता) महावत और अधिकार को प्राप्त कर विजय से घमण्डी राजसेवक ये तीनों अवश्य ही नाश को प्राप्त करते हैं। यह क्या। यह तो देखते ही चला गया। (पुनः आकाश में) आर्य तुम कह रहे हो। इन पिटारियों में क्या है। आर्य जीविका को संपादित करने वाले सर्प है। क्या कह रहे हो-'मैं (इन्हें) देखना चाहता हूँ। आर्य प्रसन्न हो। यह (इन्हें) दिखाने का उचित स्थान नहीं है। तो यदि (आपको) उत्सुकता है तो आइए घर में दिखाता हूँ। क्या कह रहे हैं। यह स्वामी अमात्य राक्षस का घर है। हमारे जैसों का यहाँ प्रवेश नहीं है। तो आर्य जाएं मेरा तो जीविका की कृपा ये यहाँ प्रवेश है। यह क्या। यह भी चला गया।

(अपने आप संस्कृत का आश्रय लेकर) अहो आश्चर्य है। चाणक्य की सलाह से कार्य करने वाले चन्द्रगुप्त को देखकर राक्षस के प्रयत्न को असफल सा समझता हूँ (परन्तु)

राक्षस की सलाह से कार्य करने वाले मलयकेतु को देखकर चन्द्रगुप्त को साम्राज्य से पतित हुआ सा समझता हूँ। क्योंकि?

कौटिल्यधीरज्जुबद्धमूर्तिं मन्ये
स्थिरां मौर्यन पस्य लक्ष्मीम्।
उपायहस्तैरपि राक्षसेन
विकृष्यमाणामिव लक्षयामि।।२।।

अन्वय— कौटिल्यधीरज्जुनिबद्धमूर्तिं मौर्यन पस्य लक्ष्मीं स्थिरां मन्ये। राक्षसेन उपायहस्तैः विकृष्यमाणाम् इव अपि लक्षयामि।

सन्दर्भ— कुसुमपुर के सभी समाचार ज्ञात कर आया हुआ राक्षस का गुप्तचर विराधगुप्त जब अपने मन में विचारविमर्श करता है तो एक तरफ चाणक्य की बुद्धि पर द ष्टिपात करने से उसे राक्षस के द्वारा किए गए सभी प्रयत्न असफल हुए से प्रतीत होते हैं परन्तु दूसरी तरफ राक्षस के उपायों पर द ष्टिपात करने से उसे चन्द्रगुप्त का साम्राज्य छिना हुआ सा प्रतीत होता है। उसकी इसी दुविधा का वर्णन प्रस्तुत श्लोक में किया गया है।

हिन्दी अनुवाद—

चाणक्य की बुद्धि रूपी रस्सी में बँधे हुए शरीर वाली राजा चन्द्रगुप्त की राज्यलक्ष्मी को मैं स्थिर समझता हूँ (परन्तु) राक्षस के द्वारा उपाय रूपी हाथों से खींची जाती हुई सी भी देखता हूँ।(२)

स्पष्टीकरण— चन्द्रगुप्त की राज्यलक्ष्मी मानों चाणक्य की बुद्धि रूपी रज्जु द्वारा बाँध दी गई है। परन्तु राक्षस उपाय रूपी हाथों से उसे खींचना चाहता है। रस्सी एक है और उपाय चार हैं - साम, दान, दण्ड और भेद। अतः वह रस्सी टूट भी सकती है और नहीं भी टूट सकती।

उक्त श्लोक में उपजाति छन्द, उत्प्रेक्षा अलंकार है।

संस्कृत भावार्थ—

चन्द्रगुप्तस्य राज्यलक्ष्मीं चाणक्यस्य धीः एव रज्जुः तथा द ढं बद्धा मूर्तिः यस्याः तथाविधाम् अचलां सम्भावयामि परं पक्षान्तरे राक्षसेन सामदानदण्डभेदरूपैः हस्तैः नितराम् आकृष्यमाणाम् अपि उत्प्रेक्षे। कौटिल्येन दत्तः बन्धः द ढः अस्ति पर राक्षसेन चतुर्भिरुपायहस्तैः आकृष्टः त्रुट्येत् अपि इति भावः।

विरुद्धयोर्भ शमिव मन्त्रिमुख्ययोर्
महावने वनगजयोरिवान्तरे।
अनिश्चयाद्गजवशयेव भीतया
गतागतैर्ध्रुवमिह खिद्यते श्रिया।।३।।

अन्वय— इह महावने वनगजयोः इव भ शं विरुद्धयोः मन्त्रिमुख्ययोः अन्तरे अनिश्चयाद् भीतया गजवशया इव श्रिया ध्रुवं गतागतैः खिद्यते इव।

सन्दर्भ— प्रस्ततु श्लोक में विराधगुप्त दो महामात्यों के मध्य विद्यमान हुई राज्यलक्ष्मी की इस दुविधा का, कि वह किसका वरण करे और किसका त्याग करे, अत्यन्त काव्यात्मक ढंग से वर्णन करता है।

हिन्दी अनुवाद—

तो इस प्रकार इन दोनों बुद्धिशाली और योग्य अमात्यों के विरोध में नन्दवंश की राज्यलक्ष्मी मानों सन्देह में पड़ गई है।

इस राज्य के विषय में महान् जंगल में दो जंगली हाथियों के समान अत्यधिक विरोध रखने वाले दो मुख्यमन्त्रियों के मध्य निश्चय न कर सकने के कारण डरी हुई हथिनी के समान राज्यलक्ष्मी निश्चित रूप से जाने आने से मानों थक रही है। (३)

स्पष्टीकरण— जिस प्रकार महावन में दो जंगली हाथियों के युद्ध करने पर हाथिनी उनकी विजय और पराजय का निश्चय न कर सकने के कारण उनमें से न तो किसी एक का वरण कर पाती है और न ही त्याग कर पाती है प्रत्युत भयभीत होती हुई थकावट का अनुभव करती है इसी प्रकार चन्द्रगुप्त की राज्यलक्ष्मी की भी यही स्थिति है। एक क्षण वह चाणक्य की तरफ अग्रसर होती है तो दूसरे ही क्षण राक्षस का वरण करना चाहती है। इस प्रकार पौनः पुन्येन जाने आने से वह खिन्न है।

उक्त श्लोक में रुचिरा छन्द व उत्प्रेक्षा अलंकार है।

संस्कृत भावार्थ—

अस्मिन् राज्यविषये महारण्ये द्वयोः वन्यहस्तिनोरिव अत्यर्थं विरोधमाचरतोः द्वयोः अमात्यश्रेष्ठयोः चाणक्यराक्षसयोश्च मध्ये अन्यतरविजयानिर्धारणात् त्रस्तया करिण्या इव चन्द्रगुप्तस्य राज्यलक्ष्म्या पौनः पुन्येन गमनागमनैः नूनं खेदमनुभूयते।

तद्यावदमात्यराक्षसं पश्यामि (इति परिक्रम्य स्थितः)

(ततः प्रविशत्यासनस्थः पुरुषेणानुगम्यमानः सचिन्तो राक्षसः)

राक्षसः— (सवाष्पम्) कष्टं भोः कष्टम्।

व ष्णीनामिव नीतिविक्रमगुणव्यापारशान्तद्विषां
नन्दानां विपुले कुले करुणया नीते नियत्या क्षयम्।
चिन्तावेशसमाकुलेन मनसा रात्रिंदिवं जाग्रतः
सैवेयं मम चित्रकर्मरचना भित्तिं विना वर्तते।।४।।

अन्वय— नीतिविक्रमगुणव्यापारशान्तद्विषां व ष्णीनामिव नन्दानां विपुले कुले अकरुणया नियत्या क्षयं नीते चिन्तावेशसमाकुलेन मनसा रात्रिंदिवं जाग्रतः मम सा एव इयं चित्रकर्मरचना भित्तिं विना वर्तते।

सन्दर्भ— राक्षस अत्यधिक चिन्तित है क्योंकि अपने आश्रयदाता राजा नन्दों के भाग्य के द्वारा नष्ट कर दिए जाने पर उसे अपने शत्रु को जीतने के लिए अपने द्वारा बनाई गई सभी योजनाएँ आश्रय न होने के कारण निष्फल हुई सी प्रतीत होती है।

हिन्दी अनुवाद—

तो जब तक अमात्य राक्षस को देखता हूँ। (ऐसा कहकर घूमकर खड़ा हो जाता है)

(तब पुरुष के द्वारा अनुस त आसन पर बैठा हुआ चिन्तित राक्षस प्रवेश करता है)

राक्षस— (आँसू सहित) कितने कष्ट की बात है-

नीति और पराक्रम जैसे गुणों का प्रयोग कर शत्रुओं को नष्ट करने वाले यदुवंशियों की भांति नन्दों के विशाल कुल के निष्ठुर भाग्य द्वारा नष्ट कर दिए जाने पर, चिन्ता के

आवेग से व्याकुल मन से रात दिन जागने वाले मेरी वही यह चित्रकारी आश्रय (दीवार) के बिना है। (४)

स्पष्टीकरण— जिस प्रकार महान् यदुवंश एक छोटी-सी भूल के कारण नष्ट कर दिया गया उसी प्रकार नन्दवंश भी चाणक्य को आदर के आसन से हटा देने की भूल के कारण समूल नष्ट कर दिया गया। राक्षस यद्यपि नन्दों का राज्य वापस लेने के लिए योजनाएँ तो बना रहा है तथापि उन्हें आश्रय देने वाला कोई नहीं है अतः वे सब उसी प्रकार निष्फल हो सकती है जिस प्रकार एक चित्रकारी आश्रय न मिलने पर निष्फल हो जाती है।

उक्त श्लोक में शार्दूलविक्रीडित छन्द तथा उपमा अलंकार है।

संस्कृत भावार्थ— नीतिविक्रमादीनां गुणानां प्रयोगेण नष्टाः शत्रवः येषां ताद शानां यदूनाम् इव नन्दानां विशाले वंशे क्रूरेण भाग्येन विनाशं प्रापिते चिन्तायाः आवेगेन व्याकुलेन मनसा अहर्निशम् अनिद्रितस्य मम विचित्रपौरुषव्यापारः याद शः नन्देषु जीवत्सु आसीत् ताद श एव अधुनापि अस्ति परन्तु सम्प्रति सः निरालम्बः वर्तते।

अथवा—

नेदं विस्म तभक्तिना न विषयव्यासंगमूढात्मना
प्राणप्रच्युतिभीरुणा च न मया नात्मप्रतिष्ठार्थिना।
अत्यर्थं परदास्यमेत्य निपुणं नीतौ मनो दीयते
देवः स्वर्गगतोपि शात्रववधेनाराधितः स्यादिति।।५।।

अन्वय— परदास्यमेत्य मनः अत्यर्थं निपुणं नीतौ दीयते इदं न विस्म तभक्तिना न विषयव्यासंगमूढात्मना न प्राणप्रच्युतिभीरुणा न च मया आत्मप्रतिष्ठार्थिना देवः स्वर्गगतः अपि शात्रववधेन आराधितः स्यात्।

सन्दर्भ— प्रस्तुत श्लोक में राक्षस अपने शत्रुओं से राजलक्ष्मी वापस लेने का उद्देश्य स्पष्ट रूप से बतलाता है।

हिन्दी अनुवाद—

अथवा—

दूसरे (मलयकेतु) की दासता स्वीकार करके (मेरे द्वारा जो अपना) मन अत्यधिक कुशलतापूर्वक राजनीति में लगाया जा रहा है (तो) ऐसा नहीं है (कि मैं) भक्ति भूल गया हूँ, न ही मेरी आत्मा विषय भोगों में आसक्त है, न ही मैं प्राणों के नष्ट होने से भयभीत हूँ और न ही आत्मप्रतिष्ठा का इच्छुक हूँ। (अपितु) राजा नन्द स्वर्ग चले जाने पर भी शत्रुओं के वध से प्रसन्न होंवे (यही सोचकर राजनीति में मैं अपना मन लगा रहा हूँ।(५)

स्पष्टीकरण— जिस प्रकार चाणक्य ने अपनी सभी योजनाओं का उद्देश्य राक्षस को चन्द्रगुप्त का अमात्यपद स्वीकार करवाना उद्घोषित किया था इसी प्रकार राक्षस का मुख्य उद्देश्य स्वर्ग चले जाने पर भी अपने स्वामियों को शत्रुओं के नाश से प्रसन्न करना है। प्रस्तुत श्लोक राक्षस की निःस्वार्थ स्वामिभक्ति का उत्कृष्ट उदाहरण है।

उक्त श्लोक में शार्दूलविक्रीडित छन्द तथा परिसंख्या अलंकार है।

संस्कृत भावार्थ—

मलयकेतोः दासतां स्वीकृत्य मया परमकुशलतया राजनीतौ मनः व्याप्रियते। नीतौ मनोदानस्य एतद् कारणं नास्ति यत् अहं स्वामिनन्दं प्रति स्वामिभक्तिं विस्म तवानस्मि न च

मम आत्मा विषयभोगेषु आसक्तः, न चाहं म त्योः बिभेमि, न चाहं चाणक्यं जित्वा जगति आत्मयशः कामये। परं स्वामिनन्दः परलोकगतः अपि रिपुविनाशेन प्रसन्नः भवेत्। अस्मादेव कारणात् मया नीतौ मनः दीयते।

(आकाशमवलोकयन् सास्रम्) भगवति कमलालये, भ शमगुणज्ञासि। कुतः?

आनन्दहेतुमपि देवमपास्य नन्दं
सक्तासि किं कथय वैरिणि मौर्यपुत्रे।
दानाम्बुराजिरिव गन्धगजस्य नाशे
तत्रैव किं न चपले प्रलयं गतासि।।६।।

अन्वय— आनन्दहेतुम् अपि देवं नन्दम् अपास्य कथय वैरिणि मौर्यपुत्रे किं सक्तासि। गन्धगजस्य नाशे दानाम्बुराजिरिव चपले! तत्रैव प्रलयं किं न गतासि।

सन्दर्भ— नन्दों की मुत्यु के पश्चात् उनकी राज्यलक्ष्मी चन्द्रगुप्त मौर्य के पास चले जाने पर राक्षस राज्यलक्ष्मी को कोसते हुए कहता है।

हिन्दी अनुवाद—

(आकाश की तरफ देखते हुए आँसू सहित) हे देवि लक्ष्मि! तुम गुणों को बिल्कुल भी नहीं पहचानती। क्योंकि?

आनन्द का कारण होने पर भी राजा नन्द को छोड़कर (हे राज्यलक्ष्मी) बतलाओ (तुम उनके) शत्रु मौर्यपुत्र में क्यों आसक्त हो गई। गन्धगज की म त्यु पर मदजल को रेखा के समान हे च चले। (तुम) उन्हीं के साथ नष्ट क्यों नहीं हो गई। (६)

स्पष्टीकरण— राक्षस लक्ष्मी को कोसते हुए कहता है कि तुम्हें गुणों की तनिक भी पहचान नहीं है क्योंकि सर्वप्रथम तो तुमने तुम्हें आनन्द प्रदान करने वाले राजा नन्द को छोड़ दिया जो बुद्धिमत्तापूर्ण कार्य नहीं था। फिर तुम उनके ही शत्रु और निम्नकुल में उत्पन्न चन्द्रगुप्त के प्रति आसक्त हो गई। असत्पुरुष का आश्रय लेने की अपेक्षा तो तुम्हारे लिए राजा नन्दों के साथ ही म त्यु को प्राप्त हो जाना अधिक श्रेयस्कर होता जिस प्रकार मदजल की रेखा पतिव्रता स्त्री की भाँति गन्धगज की म त्यु होते ही नष्ट हो जाती है।

उक्त श्लोक में वसन्ततिलका छन्द तथा उपमा अलंकार है।

संस्कृत अनुवाद—

प्रीतिकारणमपि राजानन्दं त्यक्त्वा ब्रूहि तस्य रिपौ मौर्यपुत्रे किमर्थम् अनुरक्ता असि। यथा गन्धगजस्य म त्युकाले तस्य मदजलधारापि तेन सह एव विनश्यति तथैव हे च चले। नन्दनाशकाले एव नाशं कथं न प्राप्नुवती।

अपि च अनभिजाते—

प थिव्यां किं दग्धाः प्रथितकुलजा भूमिपतयः
पतिं पापे मौर्यं यदसि कुलहीनं व तवती।
प्रकृत्या वा काशप्रभवकुसुमप्रान्तचपला
पुरन्ध्रीणां प्रज्ञा पुरुषगुणविज्ञानविमुखी।।७।।

अन्वय— किं प थिव्यां प्रथितकुलजा भूमिपतयः दग्धाः यद् पापे कुलहीनं मौर्यं पतिं व तवती असि। वा काशप्रभवकुसुमप्रान्तचपला पुरन्ध्रीणां प्रज्ञा प्रकृत्या पुरुषगुणविज्ञानविमुखी।

संदर्भ— पूर्वश्लोकवत्

हिन्दी अनुवाद—

और भी हे अकुलीने-

क्या प थ्वी पर प्रसिद्ध वंश में उत्पन्न राजा (चाणक्य की क्रोधाग्नि में) भस्म हो गए थे जो हे पापिन् (तूने) कुलहीन चन्द्रगुप्त मौर्य को पति के रूप में चुना है। अथवा काश से उत्पन्न फूल के अग्रभाग के समान स्त्रियों की च चल बुद्धि स्वभाव से मनुष्य के गुणों को पहचानने में विमुख होती है। (७)

काश का फूल अत्यन्त च चल होता है और फिर उसका अग्रभाग तो और भी अधिक च चल होता है। स्त्रियों की बुद्धि भी इसी प्रकार च चल होती है जो न तो मनुष्य के गुणों को और न ही अवगुणों को पहचान पाती है। इसी कारण राज्यलक्ष्मी ने कुलीन राजा नन्दों को छोड़कर अकुलीन चन्द्रगुप्त का आश्रय ले लिया।

उक्त श्लोक में शिखरिणी छन्द तथा अर्थान्तरन्यास अलंकार है।

संस्कृत भावार्थ—

हे पापिनि! किमस्मिन्संसारे प्रसिद्धवंशोत्पन्नाः सर्वे एव राजानः चाणक्यस्य क्रोधाग्नौ भस्मीभूताः येन त्वम् नीचकुलोत्पन्नं मौर्यं पतिरूपेण अव णोः। अथवा अहं व थैव त्वामुपालभे। स्त्रीणां बुद्धिस्तु काशत णजातम् यत् कुसुमम् तस्य प्रान्तः इव च चला भवति या स्वभावतः जनानां गुणानामवगुणानां वा पर्यालोचने उदासीना भवति।

अयि अविनीते, तदहमाश्रयोन्मूलनेनैव त्वामकामां करोमि। (विचिन्त्य) मया तावत्सुह त्तमस्य चन्दनदासस्य ग हे ग हजनं निक्षिप्य नगरान्निर्गच्छता न्याय्यमनुष्ठितम्। कुतः कुसुमपुराभियोगं प्रति अनुदासीनो राक्षस इति तत्रस्थानामस्माभिः सहैककार्यणां देवपादोपजीविनां नोद्यमः शिथिलीभविष्यति। चन्द्रगुप्तशरीरमभिद्रोग्धुमस्मत्प्रयुक्तानाम् तीक्ष्णरसदायिनामुपसंग्रहार्थं परकृत्योपजापार्थं च महता कोशस चयेन स्थापितः शकटदासः। प्रतिक्षणमरातिव त्तान्तोपलब्धये तत्संहतिभेदनाय च व्यापारिताः सुह दो जीवसिद्धिप्रभ तयः। तत्किमत्र बहुना—

हिन्दी अनुवाद—

हे अविनीते। इसीलिए मैं तेरे आश्रय को जड़ सहित नष्ट करके ही तुम्हारी इच्छा को पूरा नहीं होने दूँगा। (सोचकर) मेरे द्वारा (अपने) परम मित्र चन्दनदास के घर में (अपने) परिवार को रखकर कुसुमपुर से निकल कर उचित कार्य किया गया है। क्योंकि कुसुमपुर पर आक्रमण करने के लिए राक्षस उदासीन नहीं है ऐसा सोचकर वहाँ रहने वाले हमारे साथ समान उद्देश्य वाले राजा नन्दों के सेवकों का प्रयत्न शिथिल नहीं होगा। चन्द्रगुप्त पर आघात पहुँचाने के लिए हमारे द्वारा प्रयुक्त तीव्र विष को देने वालों की सन्तुश्टि के लिए और शत्रुओं के कार्यों का भेद बतलाने के लिए शकटदास को महान् धनराशि देकर स्थापित कर दिया गया है। प्रतिक्षण शत्रुओं का समाचार प्राप्त करने के लिए व उनके संगठन का तोड़ने को लिए (संहतिभेदनाय) जीवसिद्धि इत्यादि मित्र नियुक्त कर दिए गए हैं। इस विषय में अधिक क्या कहूँ-

स्पष्टीकरण— यहाँ से प्रारम्भ कर राक्षस अपनी उन सब योजनाओं के विषय में बतलाता है जो उसने शत्रुओं को नष्ट करने के लिए बनाई है। जीवसिद्धि को उसने शत्रुओं में फूट डालने के लिए नियुक्त किया था। प्रथम अंक में भद्रभट, डिगंरात इत्यादि आठ प्रधान

पुरुषों का चन्द्रगुप्त को छोड़कर मलयकेतु की शरण में जाने का वर्णन है। राक्षस यह सोचकर अत्यधिक प्रसन्न होता है कि जीवसिद्धि के कारण ही ऐसा हो पाया है परन्तु यह उसका भ्रम ही है क्योंकि जीवसिद्धि वास्तव में चाणक्य का ही गुप्तचर है ओर वे भद्रभद इत्यादि चाणक्य की योजनानुसार ही मलयकेतु की शरण में आए हैं।

इष्टात्मजः सपदि सान्वय एव देवः
शार्दूलपोतमिव यं परिपोष्य नष्टः।
तस्यैव बुद्धिविशिखेन भिनद्मि मर्म
वर्मीभवेद्यदि न दैवमद श्यरूपम्।।८।।

अन्वय— इष्टात्मजः देवः यं शार्दूलपोतमिव परिपोष्य सपदि एव सान्वयः नष्टः तस्यैव मर्म बुद्धिविशिखेन भिनद्मि यदि अद श्यरूपम् दैवं वर्मी न भवेत्।

संदर्भ— चन्द्रगुप्त को नष्ट करने के लिए अपने द्वारा बनाई गई विभिन्न योजनाओं के प्रति अत्यधिक आश्वस्त होते हुए राक्षस को यह विश्वास है कियदि भाग्य चन्द्रगुप्त का साथ न दे तो वह चन्द्रगुप्त को शीघ्र ही नष्ट कर देगा।

हिन्दी अनुवाद—

पुत्रों पर स्नेह करने वाले राजा नन्द जिसे (चन्द्रगुप्त को) शेर के बच्चे के समान पाल-पोस कर शीघ्र ही कुल सहित नष्ट हो गए उसी (चन्द्रगुप्त) के मर्मस्थलों को (मैं) बुद्धिरूपी बाण द्वारा बींध दूँगा यदि अद श्य भाग्य (उसके लिए) कवच नहीं बन जाता। (८)

स्पष्टीकरण— यद्यपि चन्द्रगुप्त मुरा नामक शुद्र स्त्री से उत्पन्न हुआ था तथापि राजा नन्दों ने उसे भी पुत्र के समान ही पाल-पोस कर बड़ा किया था परन्तु जिस प्रकार शेर का बच्चा बड़े होने पर अपना ही लालन-पालन करने वाले को खा जाता है उसी प्रकार चन्द्रगुप्त ने भी राजा नन्द को उनके कुल सहित नष्ट कर दिया। मर्मस्थल शरीर के वे कोमल अंग हैं जहाँ प्रहार करने पर मनुष्य की अवश्य ही म त्यु हो जाती है।

उक्त श्लोक में वसन्ततिलका छन्द तथा रूपक और उपमा अलंकार के योग से संस ष्टि अलंकार है।

संस्कृत भावार्थ—

सुतप्रियः स्वामीनन्दः निकृष्टक्षेत्रजातमपि यं मौर्यम् सिंहशावकमिव परिपाल्य अविलम्बितम् एवं सकलवंशेन सहितं विनाशं प्राप्तः तस्यैव मौर्यस्य मर्मस्थलानि बुद्धिरूपेण बाणेन भेत्स्यामि अद श्यमानं भाग्यमेव तस्य कवचरूपं भूत्वा तं न रक्षति।

(ततः प्रविशयति क चुकी)

क चुकी—

कामं नन्दमिव प्रमथ्य जरया चाणक्यनीत्या यथा
धर्मो मौर्य इव क्रमेण नगरे नीतः प्रतिष्ठां मयि।
तं संप्रत्युपचीयमानमनु मे लब्धान्तरः सेवया
लोभो राक्षसवज्जयाय यतते जेतुं न शक्नोति च।।९।।

अन्वय— चाणक्यनीत्या यथा जरया नन्दम् इव कामं प्रमथ्य क्रमेण मौर्य इव धर्मः मयि प्रतिष्ठां नीतः। सम्प्रति सेवया लब्धान्तरः उपचीयमानम् तम् अनु राक्षसवत् मे लोभः जयाय यतते च जेतुं न शक्नोति।

सन्दर्भ— प्रस्तुत श्लोक में कुमार मलयकेतु का क चुकी जाजलि अपनी व द्धावस्था का वर्णन काव्यात्मक ढंग से चाणक्य, नन्दवंश, चन्द्रगुप्त तथा राक्षस के सन्दर्भ में करता है।

हिन्दी अनुवाद—

(तब क चुकी प्रवेश करता है)

क चुकी— चाणक्य की नीति के समान व द्धावस्था द्वारा नन्द के समान कामभावना को नष्ट करके धीरे धीरे नगर में चन्द्रगुप्त मौर्य के समान धर्म भावना को मेरे अन्दर प्रतिष्ठित कर दिया गया है। अब सेवा द्वारा अवसर पाकर व द्धि को प्राप्त होती हुई उसे (धर्म भावना को), अमात्य राक्षस के समान मेरा लोभ जीतने का प्रयत्न करता है परन्तु जीतने में समर्थ नहीं होता।(६)

स्पष्टीकरण— क चुकी का आशय यह है कि जिस प्रकार चाणक्य की नीति द्वारा नन्दवंश को नष्ट कर कुसुमपुर में चन्द्रगुप्त को स्थापित कर दिया गया उसी प्रकार व द्धावस्था द्वारा मेरी कामभावना को नष्ट करके धर्म भावना को मेरे अन्दर प्रतिष्ठित कर दिया गया क्योकि व द्धावस्था में भोगविलाासों के प्रति आसक्ति कम हो जाती है तथा धर्म में रुचि हो जाती है। अब जिस प्रकार राक्षस मलयकेतु की सेवा द्वारा अवसर पाकर व द्धि को प्राप्त होते हुए चन्द्रगुप्त को जीतने की कोशिश तो कर रहा है परन्तु सफल नहीं हो पा रहा उसी प्रकार मेरा लोभ राजकीय सेवा द्वारा अवसर पाकर व द्धि को प्राप्त होती हुई धर्म भावना को नष्ट तो करना चाहता है परन्तु सफल नहीं हो पाता। क चुकी के इस निर्वेद से चाणक्य की नीति द्वारा राक्षस के उपायों का भावी उपमर्द सूचित किया जा रहा है।

प्रस्तुत श्लोक में चाणक्यनीति की व द्धावस्था से, नन्दवंश की कामभावना से चन्द्रगुप्त मौर्य के धर्मभावना से, नगर की मेरे अन्दर (मयि) से तथा राक्षस की तुलना लोभ से की गई है।

उक्त श्लोक में शार्दूलविक्रीडित छन्द तथा उपमा अलंकार है।

संस्कृत भावार्थ—

यथा कौटिल्येन नन्दम् उपमर्द्य कुसुमपुरे शनैः शनैः चन्द्रगुप्तमौर्यः प्रतिष्ठापितः तद्वत् जरसा विपयाभिलाषमुत्साद्य मयि धर्मः स्थितिमापादितः। वार्द्धके विषयवैराग्ये कामं विहाय धर्ममेव सेवितुमुत्सहे इति भावः। अधुना मलयकेतुसेवया लब्धावसरः यथा राक्षसः तं वर्द्धिष्णुं मौर्यं लक्ष्यीकृत्य विजयाय प्रयतते परं चाणक्यनीतिप्रबलत्वात् साफल्यं न प्राप्नोति तथैव राजकुलसेवया लब्धावसरः मे विषयो भिलाषः वार्द्धकोचितं धर्मं जेतुं प्रयतते परं समर्थः न भवति।

(परिक्रम्योपस त्य च) इदममात्यराक्षस्य ग हम्। प्रविशामि। (प्रविश्यावलोक्य च) स्वस्ति भवते।

राक्षस— आर्य, अभिवादये। प्रियंवदक आसनमानीयताम्।

पुरुष— इदमासनम्। उपविशतु आर्यः (एदं आसणं। उपविसदु अज्जो)

क चु०— (उपविश्य) कुमारो मलयकेतुरमात्यं विज्ञापयति। चिरात्प्रभ त्यार्यः परित्यक्तोचितशरीरसंस्कार इति पीड्यते मे ह दयम्। यद्यपि सहसा स्वामिगुणा न शक्यन्ते विस्मर्तुं तथापि

मद्विज्ञापनां मानयितुमर्हत्यार्यः। (इत्याभरणानि प्रदर्श्य) इमान्याभरणानि कुमारेण स्वशरीरादवतार्य प्रेषितानि धारयितुमर्हत्यार्यः।

राक्षस— आर्य जाजले, विज्ञाप्यतामस्मद्वचनात्कुमारः। विस्म ता एव भवद्गुणपक्षपातेन स्वामिगुणाः। किन्तु—

हिन्दी अनुवाद—

(घूमकर और पास जाकर) यह अमात्य राक्षस का घर है। प्रवेश करता हूँ। (प्रवेश करके और देखकर) आपका कल्याण हो।

राक्षस— आर्य अभिवादन करता हूँ, प्रियंवदक आसन लाओ।

पुरुष— यह आसन है। आर्य बैठें।

क चुकी— (बैठकर) कुमार मलयकेतु अमात्य (आप) से निवेदन करते हैं कि चिरकाल से आर्य ने शरीर की उचित साजसज्जा छोड़ दी है यह बात मेरे ह दय को दुःखी करती है। यद्यपि स्वामी के गुण सहसा नहीं भुलाए जा सकते तथापि मेरी प्रार्थना को स्वीकार करने में आर्य समर्थ हैं। (ऐसा कह कर आभूषण दिखाकर) ये आभूषण कुमार के द्वारा अपने शरीर से उतार कर भेजे गए हैं। आप इन्हें धारण कर लें।

राक्षस— आर्य जाजलि। मेरी तरफ से कुमार से निवेदन कीजिएगा कि आपके गुणों के पक्षपात के कारण स्वामी के गुण मेरे द्वारा भुला ही दिए गए हैं। किन्तु -

स्पष्टीकरण— मलयकेतु का क चुकी जाजलि राक्षस के पास मलयकेतु द्वारा अपने शरीर से उतार कर भेजे गए आभूषण राक्षस को पहनाने के लिए लाया है। यह राक्षस के प्रति मयलकेतु के अतिशय प्रेम का सूचक है।

न तावन्निवीर्यैः परपरिभवाक्रान्तिकृपणैर्
वहाम्यंगैरेभिः प्रतनुमपि संस्काररचनाम्।
च यावन्निःशेषक्षपितरिपुचक्रस्य निहितं
सुगाङ्गे हेमाकं न वर तव सिंहासनमिदम्।।१०।।

अन्वय— न वर परपरिभवाक्रान्तिकृपणैः निवीर्यैः एभिः अगैं तावत् प्रतनुमपि संस्काररचनां न वहामि यावत् निःशेषक्षपित रिपुचक्रस्य हेमांकं तव इदं सिंहासनं सुगाङ्गे न निहितम्।

सन्दर्भ— जब कुमार मलयकेतु अपने शरीर से आभूषण उतार कर अपने क चुकी जाजलि द्वारा उन्हें अमात्य राक्षस को पहचानने के लिए भेजता है तब राक्षस उनको धारण करने में अपनी असमर्थता प्रकट करता है।

हिन्दी अनुवाद—

हे मनुष्यों में श्रेष्ठ। शत्रु के तिरस्कार के आक्रमणों से दीन तथा निस्तेज इन अंगों पर तनिक भी साजसज्जा धारण नहीं करूँगा। जब तक पूर्ण रूप से नष्ट हुए शत्रुमण्डल वाले स्वर्णचिह्नित तुम्हारे इस सिंहासन को सुगाङ्ग महल में स्थापित नहीं कर दिया जाता।(१०)

स्पष्टीकरण— राक्षस का अभिप्राय यह है कि उसने आभूषणों का परित्याग स्वामी नन्दों के गुणों का स्मरण करने के कारण नहीं किया अपितु उसने अपने मन में यह प्रतिज्ञा सी कर

ली है। कि शत्रुओं से राज्यलक्ष्मी वापस लेने तक वह अपने शरीर पर कोई साज सज्जा धारण नहीं करेगा।

उक्त श्लोक में शिखरिणी छन्द तथा परिकर अलंकार है।

संस्कृत भावार्थ—

हे राजन् शत्रूणां तिरस्कारस्य आक्रमणैः दीनेषु तेजहीनेषु च एषु अंगेषु तावत् स्वल्पामपि साजसज्जां न धारयामि यावत् ते शत्रून् निःशेषमुत्साद्य तव इदं सुवर्ण चिह्नितं सिंहासनं कुसुमपुरनगरे सुगाङ्गप्रासादे न स्थापयामि।

क चु०— अमात्ये नेतरि सुलभमेतत्कुमारस्य। तत्प्रतिमान्यतां कुमारस्य प्रथमः प्रणयः।

राक्ष०— आर्य, कुमार इवानतिक्रमणीयवचनो भवानपि। तदनुष्ठीयतां कुमारस्याज्ञा।

क चु०— (नाट्येन भूषणानि परिधाप्य) स्वरित भवते। साधयाम्यहम्।

राक्ष०— आर्य, अभिवादये।

क चु०— (निष्क्रान्तः)

राक्ष०— प्रियंवदक, ज्ञायतां को स्मद्दर्शनार्थी द्वारि तिष्ठति।

पुरु— यदमात्य आज्ञापयति। (इति परिक्रम्य आहितुण्डिकं द ष्ट्वा) आर्य, कस्त्वम्। (जं अमच्चो आणवेदि। अज्ज को तुमं।)

आहि०— भद्र अहं खल्वाहितुण्डिको-जीर्णविषो नाम। इच्छाम्यमात्यस्य पुरतः सर्पैः खेलितुम् (भद्द अहं खु आहितुण्डिओ जिण्णविसो णाम। इच्छामि अमच्चस्य पुरदो सप्पेहिं खेलिदुं।)

पुरु०— तिष्ठ, यावदमात्याय निवेदयामि। (राक्षसमुपस त्य) अमात्य, एष खलु सर्पोपजीवी इच्छति सर्पं दर्शयितुम्। (चिट्ठ जाव अमच्चस्य णिवेदमि। अमच्च एसो खु सप्पोपजीवी इच्छादि सप्पं दंसेदुं।)

राक्ष०— (वामाक्षिस्पन्दनं सूचयित्वा आत्मगतम्) कथं प्रथममेव सर्पदर्शनम्। (प्रकाशम्) प्रियवंदक, न नः कौतुहलं सर्पदर्शने तत्परितोष्य विसर्जयैनम्।

प्रिय०— तथा। (इत्याहितुण्डिकमुपस त्य) आर्य, एष खलु ते दर्शनकार्येणामात्यः प्रसादं करोति। न पुनः सर्पदर्शनेन। (अज्ज एसो खु दे दंसण कज्जेण अमच्चो प्रसादं करेदि। ण उण संप्पदंसणेण।)

आहि०— भद्रमुख। विज्ञापयामात्यं न केवलमहं सर्पोपजीवी प्राकृतकविः खल्वहम्। तस्माद्यदि मे दर्शनेनामात्यो प्रसादं न करोति तदा एतत्पत्रकं वाचयितुं प्रसीदत्विति। (भद्दमुह विण्णवेहि अमच्चंण केवलं अहं सप्पोपजीवी पाउडकवी क्खु अहं। ता जइ मे दंसणेण अमच्चो पसादं ण करेदि ता एदं पत्तअं वाचेदुत्ति।)

प्रिय०— (पत्रं ग हीत्वा राक्षसमुपस त्य) आर्य, एष खल्वमात्यं विज्ञापयति न केवलमहं सर्पोपजीवी प्राकृतकविः खल्वहम्। तस्माद्यदि मे अमात्यो दर्शनेन प्रसादं न करोति तदा एतदपि तावत्पत्रकं वाचयत्विति। (अज्ज एसो खु अमचचं विण्णवेदि ण केवल अहं सप्पोजीवी पाउडकवी खु अहं। ता जइ मे अमच्चो दंसणेण पसादं ण करेदि तदो एवं वि दाव पत्तअं वाचेदु त्ति।)

राक्षसः— (पत्रं ग हीत्वा वाचयति)

हिन्दी अनुवाद—

क चु०— अमात्य के नेता होने पर कुमार के लिए यह सुलभ है। अतः कुमार की प्रथम प्रार्थना स्वीकार कीजिए।

राक्षस— आर्य, कुमार की भाँति आपके वचनों का भी उल्लंघन नहीं किया जा सकता। अतः कुमार की आज्ञा का पालन कीजिए।

क चु०— (अभिनयपूर्वक आभूषण पहना कर) आपका कल्याण हो। मैं चलता हूँ।

राक्षस— आर्य मैं अभिवादन करता हूँ।

क चु०— (निकल जाता है।)

राक्षस— प्रियवदंक पता करो हमारे दर्शनों का इच्छुक द्वार पर कौन खड़ा है।

पुरुष— जैसी अमात्य आज्ञा देते हैं (ऐसा कहकर घूमकर सपेरे को देखकर) आर्य, तुम कौन हो?

आहि०— भद्र, मैं जीर्णविष नामक सपेरा हूँ। अमात्य के समान साँपों का खेल दिखाना चाहता हूँ।

पुरुष— ठहरो, जब तक मैं अमात्य राक्षस को सूचित करता हूँ। (राक्षस के पास जाकर) अमात्य, यह सपेरा (आपको) साँप दिखाना चाहता है।

राक्षस— (बाई आँख फड़कने का अभिनय करके अपने आप) यह क्या, सर्वप्रथम ही साँपों का दर्शन। (स्पष्ट रूप से) प्रियंवदक, मेरी साँपों को देखने में उत्सुकता नहीं है। अतः इसे सन्तुष्ट करके भेज दो।

प्रिय०— जैसी आज्ञा। (तत्पश्चात् सपेरे के पास जाकर) आपके (सर्पों को) दिखाने के कार्य से अमात्य पारितोषिक दे रहे हैं। साँपों को देखकर नहीं।

अहि०— भद्रमुख, अमात्य से निवेदन करो कि मैं केवल सपेरा नहीं हूँ बल्कि प्राकृत भाषा का कवि भी हूँ। अतः अमात्य यदि दर्शन देकर मेरे ऊपर कृपा नहीं करते तो इस पत्र को पढ़ने की कृपा करें।

प्रियं— (पत्र लेकर राक्षस के पास जाकर) आर्य, यह (सपेरा) आपसे निवेदन करता है कि मैं केवल सपेरा नहीं हूँ बल्कि प्राकृत भाषा का कवि भी हूँ। इसी कारण यदि अमात्य दर्शन देकर मेरे ऊपर कृपा नहीं करते तो इस पत्र को ही पढ़ लें।

राक्षस— (पत्र लेकर पढ़ता है)

स्पष्टीकरण— बाँए अंग का फड़कना पुरुषों के लिए अशुभ माना गया है और इसी कारण वामाक्षिस्पन्दन से राक्षस को किसी अशुभ घटना की सूचना मिलने की आशंका हो जाती है और फिर प्रातः काल ही सर्पदर्शन भी अशुभ माना गया है। अतः वह सपेरे को साँपों का खेल देखे बिना ही कुछ पारितोषिक देकर भेजना चाहता है। परन्तु वास्तव में वह राक्षस का ही गुप्तचर विराधगुप्त है जो सपेरे के वेष में कुसुमपुर के सभी समाचार जानकर आया है।

इससे यह प्रमाणित होता है कि राक्षस रूढ़िवादी और अन्धविश्वासी है जो शकुन अपशकुन में विश्वास करता है जबकि इसके विपरीत चाणक्य केवल कर्म ही विश्वास रखता है।

पीत्वा निरवशेषं कुसुमरसमात्मनः कुशलतया।
यदुद्गिरति भ्रमरः अन्येषां करोति तत्कार्यम्।।११।।

पाउण निरवसेसं कुसुमरअसं अत्तणो कुसलदाए।
जं उग्गिरेइ भमरो अण्णाणं कुणइ तं कज्जं।।

अन्वय— भ्रमरः आत्मनः कुशलतया निरवशेषं कुसुमरसं पीत्वा यदुद्गिरति तदन्येषां कार्यं करोति।

सन्दर्भ— विराधगुप्त राक्षस को यह संकेत देने के लिए कि वह राक्षस का ही गुप्तचर है जे कुसुमपुर का व त्तान्त जानकर आया है, एक पत्र पर प्रस्तुत गाथा (प्राकृत भाषा में लिखा गया श्लोक) लिखकर भेजता है।

हिन्दी अनुवाद—

भौंरा अपना कुशलता से पूरी तरह से फूलों का रस पीकर जो कुछ गिराता है वह (शहद के रूप में) अन्य लोगों का हित करता है।(११)

परन्तु इसका गूढ़ार्थ गुप्तचर के पक्ष में यह है कि - भ्रमणशील दूत अपनी कुशलता से कुसुमपुर के समस्त समाचार को जानकर आया है और वह जो कुछ भी बतलाएगा वह दूसरों के लिए अर्थात् आपके लिए हितकारी होगा।

स्पष्टीकरण— इस गाथा के दो अर्थ हैं एक भौंरे के पक्ष में और दूसरा गुप्तचर के पक्ष में।

उक्त श्लोक में आर्या छन्द तथा श्लेषालंकार है।

संस्कृत भावार्थ—

भ्रमरः पक्षे भ्रमणशीलः स्पशः आत्मनः नैपुण्येन समग्रं कुसुमरसं पक्षे कुसुमपुरव त्तान्तं पीत्वा पक्षे सम्यग्ज्ञात्वा यद् कि चिदपि बहिः निस्सारयति पक्षे कथयति तद् अन्येषां मनुष्याणां पक्षे तज्जिज्ञासूनां स्वाम्यादीनां हितं सम्पादयति।

(विचिन्त्य स्वगतम्) अये, कुसुमुरव त्तान्तज्ञो भवत्प्रणिधिरिति गाथार्थः कार्यव्यग्रत्वान्मनसः प्रभुतत्वाच्च प्रणिधीनां विस्म तम्। इदानीं स्म तिरुपलब्धा। व्यक्तमाहितुण्डिकच्छद्मना विराधगुप्तेनानेन भवितव्यम्। (प्रकाशम्) प्रियंवदक, प्रवेशयैनं सुकविरेषः। श्रोतव्यमस्मात्सुभाषितम्।

प्रिय०— तथा (इत्याहितुण्डिकमुपस त्य) उपसर्पतु आर्यः। (उपसप्पदु अज्जो)।

आहि०— (नाट्येनोपस त्य विलोक्य च स्वगतम्। संस्कृतमाश्रित्य) अयममात्यराक्षसः। स एषः-

हिन्दी अनुवाद—

(सोचकर अपने आप) अरे कुसुमपुर का समाचार जानने वाला आपका गुप्तचर हूँ ऐसा गाथा का अर्थ है। कार्यों में मन के व्याकुल होने के कारण और गुप्तचरों की अधिकता के कारण भूल गया था। स्मरण आ गया। स्पष्ट ही सपेरे के वेष में इसे विराधगुप्त होना चाहिए। (स्पष्ट रूप से) प्रियवंदक, इसे अन्दर ले आओ। यह अच्छा कवि है। इससे सुन्दर बातें सुननी है।

प्रियं— जैसी आज्ञा। (सपेरे के पास जाकर) आर्य, (अमात्य के पास) जाएँ।

आहि०— (अभिनयपूर्वक पास जाकर और देखकर अपने संस्कृत का आश्रय लेकर) यह अमात्य राक्षस हैं। जो यह -

स्पष्टीकरण— गाथा का गूढ़ार्थ समझ जाने पर राक्षस को स्मरण हो जाता है कि वह विराधगुप्त नामक गुप्तचर ही है जो सपेरे का वेश धारण करके कुसुमपुर का समाचार जान कर आया है।

वामां बाहुलतां निवेश्य शिथिलं कण्ठे विव त्तानना
स्कन्धे दक्षिणया बलान्निहितयाप्यङ्के पतन्त्या मुहुः।
गाढालिंगनसगंपीडितमुखं यस्योद्यमाशकिंनी
मौर्यस्योरसि नाधुनापि कुरुते वामेतरं श्रीः स्तनम्।।१२।।

अन्वय— यस्य उद्यमाशंकिनी श्रीः वामां बाहुलतां कण्ठे शिथिलं निवेश्य विव त्तानना, बलात् स्कन्धे निहितया अपि मुहुः अंके पतन्त्या दक्षिणया गाढ़ालिंगनसंगपीडितमुखं वामेतरं स्तनम् अधुनापि मौर्यस्योरसि न कुरुते।

सन्दर्भ— राक्षस को देखकर विराधगुप्त के मन में हठात् यह विचार आता है कि यद्यपि नन्दों की राज्यलक्ष्मी चन्द्रगुप्त मौर्य के पास चली गई है तथापि राक्षस से भयभीत हुई वह आज भी पूर्ण रूप से चन्द्रगुप्त का आश्रय नहीं ले पा रही।

हिन्दी अनुवाद—

जिस (राक्षस) के प्रयत्नों से डरी हुई राज्यलक्ष्मी लता रूपी बाईं भुजा को (चन्द्रगुप्त के) गले में शिथिलता से डालकर, मुँह फेरकर जबरदस्ती (दाएँ) कन्धे पर रखी गई होने पर भी बार बार गोद में गिरती हुई दाईं (भुजा) से प्रगाढ़ आलिंगन के कारण दबे हुए अग्रभाग वाले दाएँ स्तन को आज भी चन्द्रगुप्त के वक्षस्थल पर नहीं रखती। (१२)

स्पष्टीकरण— विराधगुप्त का अभिप्राय यह है कि राज्यलक्ष्मी सर्वात्मना चन्द्रगुप्त का प्रगाढ़ आलिंगन राक्षस के भय के कारण नहीं कर पा रही।

उक्त श्लोक में शार्दूलविक्रीडित छन्द तथा काव्यलिंग अलंकार है।

संस्कृत भावार्थ—

यस्य राक्षसस्य उद्योगभीता मौर्यलक्ष्मीः वामां भुजवल्लीं चन्द्रगुप्तस्य कण्ठे शिथिलं संस्थाप्य राक्षसस्य भयेनैव पराव त्तमुखीभूत्वा प्रसह्य दक्षिणस्कन्धे निहितया पौनः पुन्येन क्रोडे पतन्त्या पि दक्षिणया भुजलतया इति गाढाालिंगनम् तस्य संगेन चिपिटीकृतं चूचुकम् यस्य ताद शं दक्षिणं स्तनम् अधुनापि चन्द्रगुप्तस्य वक्षस्थले न स्थाप्यति।

(प्रकाशम्) जयतु अमात्यः। (जेदु अमच्चो।)

राक्ष०— (विलोक्य) अये, विराध - (इत्यर्द्धोक्ते) ननु प्ररूढश्मश्रुः। प्रियवंदक, भुजगैरिदानीं विनोदयितव्यम् तद्विश्रम्यतामितः परिजनेन। त्वमपि स्वाधिकारमशून्यं कुरु।

प्रिय०— तथा (तह)। (इति सपरिवारो निष्क्रान्तः)

राक्ष०— सखे विराधगुप्त, इदमासनमास्यताम्।

(विराधगुप्तो नाट्येनोपविष्टः)

राक्ष०— (निर्वर्ण्य) अये देवपादपद्मोपजीविनो वस्थेयम्। (इति रोदति)

विरा०— अमात्य अलं शोकेन। नातिचिरादमात्यो स्मान् पुरातनीमवस्थामारोपयिष्यति।

राक्ष०— सखे, वर्णय कुसुमपुरव त्तान्तम्।

विरा०— अमात्य, विस्तीर्णः कुसुमपुरव त्तान्तस्तत्कुतः प्रभ ति वर्णयामि।

राक्ष०— सखे, चन्द्रगुप्तस्यैव तावन्नगरप्रवेशात्प्रभ ति अस्मत्प्रयुक्तैः तीक्ष्णरसदायिभिः किमनुष्ठितमित्याद्यादितः श्रोतुमिच्छामि।

विरा०— एष कथयामि। अस्ति तवच्छकयवनकिरातकाम्बोजपारसीबाल्हीकप्रभ तिभिः चाणक्य मतिपरिग हीतैश्चन्द्रगुप्त पर्वतेश्वरबलैरुदधिभिरिव प्रलयोच्चलितसलिलैः समन्तादुपरुद्धं कुसुमपुरम्।

राक्ष०— (शस्त्रमाकृष्य ससम्भ्रमम्) अयि, मयि स्थिते कः कुसुमपुरमुपरोत्स्यति। प्रवीरक, प्रवीरक, क्षिप्रमिदादीम्—

हिन्दी अनुवाद—

(स्पष्ट रूप से) अमात्य विजयी हो।

राक्ष०— (देखकर) अरे विराध - (इस प्रकार आधा कहने पर) बढ़ी हुई दाढ़ी मूँछ वाले हो (प्ररूढश्मश्रुः)। प्रियंवदक अब साँपों के द्वारा मन बहलाना है अतः सेवक यहाँ से (जाकर) विश्राम करें। तुम भी अपना कर्त्तव्य पूरा करो।

प्रियं— जैसी आज्ञा (सेवकों सहित निकल जाता है)।

राक्षस— मित्र विराधगुप्त, यह आसन है बैठो।

(विराधगुप्त अभिनयपूर्वक बैठ जाता है)।

राक्षस— (देखकर) अरे महाराज नन्द के सेवकों की यह अवस्था (ऐसा कहा कर रोता है)।

विरा०— अमात्य, दुःखी मत होइए। शीघ्र ही आप हमें पुरानी अवस्था प्राप्त करवा देगें।

राक्ष०— मित्र कुसुमपुर का समाचार बतलाओ।

विरा०— मित्र, कुसुमपुर का समाचार विस्त त है। कहाँ से लेकर वर्णित करूँ।

राक्ष०— मित्र चन्द्रगुप्त के नगर (कुसुमपुर) में प्रवेश करने से लेकर हमारे द्वारा नियुक्त तीव्र विष देने वालों के द्वारा क्या किया गया, यह प्रारम्भ से सुनना चाहता हूँ।

विरा०— यह मैं बतलाता हूँ। चाणक्य की बुद्धि से निर्दिष्ट शक, यवन, किरात, काम्बोज पारसीक और बाल्हीक इत्यादि चन्द्रगुप्त और पर्वतक की सेनाओं द्वारा प्रलयकाल के समय उफनते हुए जल वाले (प्रलयोच्चलितसलिलैः) समुद्र की भाँति चादरों तरफ से कुसुमपुर को घेर लिया गया।

राक्ष०— (तलवार खींच कर, घबड़ाकर) अरे, मेरे रहते हुए कौन कुसुमपुर को घेरेगा। प्रवीरक, अब जल्दी से -

स्पष्टीकरण— राक्षस विराधगुप्त को देखकर तुरन्त ही उसे उनके नाम से पुकारना चाहता है परन्तु तभी उसे ध्यान आ जाता है कि द्वारपाल प्रियवंदक भी वहाँ उपस्थित है। अतः वह अपने आधे वाक्य विराध को ननु प्ररूढमश्रुः कह कर पूरा करता है जिसका अर्थ विकृतो राधो वेषः तद् रूपाणि प्ररूढानि श्मश्रूणि यस्य।

विराधगुप्त की अवस्था देखकर राक्षस का रोना उसकी भावुकता को सूचित करता है। राक्षस की पराजय के अनेक कारणों में से उसका भावुक स्वभाव भी एक मुख्य कारण है। विराधगुप्त कुसुमपुर का व त्तान्त वहाँ से आरम्भ करता है जब राजा नन्द के ऊपर चन्द्रगुप्त और पर्वतक की सेनाओं द्वारा मिलकर आक्रमण किया गया और उन्हें पूरे वंशसहित नष्ट कर दिया गया। शक, यवन आदि जातियों के नाम हैं, राजाओं के नहीं। प्रवीरक सम्भवतः नन्द के सेनापति का नाम रहा होगा।

प्राकारं परितः शरासनधरैः क्षिप्रं परिक्रम्यतां
द्वारेषु द्विरदैः प्रतिद्विपघटाभेदक्षमैः स्थीयताम्।
त्यक्त्वा म त्युभयं प्रहर्तुमनसः शत्रोर्बले दुर्बले
ते निर्यान्तु मया सहैकमनसो येषाभीष्टं यशः।।१३।।

अन्वय— शरासनधरैः प्राकारं परितः क्षिप्रं परिक्रम्यतां प्रतिद्विपघटाभेदक्षमैः द्वारेषु स्थीयीताम्। येषां यशः अभीष्टम् म त्यभुयं शत्रोः दुर्बले बले प्रहर्तुमनसः मया सह निर्यान्तु।

सन्दर्भ— जैसे ही विराधगुप्त शक, यवन आदि चन्द्रगुप्त और पर्वतक की सेनाओं द्वारा कुसुमपुर को घेरे जाने की बात बतलाता है वैसे ही राक्षस यह भूल जाता है कि यह भूतकाल की घटना थी। आवेश में आकर वह तुरन्त सेना के विभिन्न अंगों को विभिन्न स्थानों पर स्थित होने का आदेश देने लगता है।

हिन्दी अनुवाद—

धनुर्धारियों के द्वारा प्राचीर के चारों ओर शीघ्रता से चक्कर काटा जाए, शत्रुओं के हाथियों की पंक्ति को तोड़ने में समर्थ हाथियों द्वारा द्वारों पर स्थित हुआ जाए। जिन्हें यश अभीष्ट है और जो म त्यु के भय को छोड़कर शत्रु की दुर्बल सेना पर आक्रमण करने के लिए द ढ़ निश्चय वाले हैं, वे एकाग्र मन वाले मेरे साथ बाहर निकल आएँ।(१३)

स्पष्टीकरण— प्राचीर के चारों तरफ चक्कर काटने का तात्पर्य है कि धनुर्धारी सैनिक प्राचीर के चारों तरफ खड़े हो जाएँ ताकि शत्रु को दूर से देखते ही उन पर बाण चला सकें। पहले युद्ध के समय किले के दरवाजे बन्द कर दिए जाते थे। यदि शत्रु जैसे तैसे किले में प्रवेश भी हो जाते थे तो उनका सामना करने के लिए शक्तिशाली हाथी खड़े किए जाते थे। इसी कारण राक्षस कहता है कि किले के दरवाजों पर शत्रु हाथियों का सामना करने में समर्थ हाथी खड़े हो जाएँ।

शत्रु सेना यद्यपि दुर्बल नहीं है तथापि अपने सैनिकों का मनोबल बढ़ाने के लिए राक्षस शत्रु की दुर्बल सेना इस पद का प्रयोग करता है।

उक्त श्लोक में शार्दूलविक्रीडित छन्द तथा यमक और स्वाभावोक्ति अलंकार है।

संस्कृत भावार्थ—

धनुर्धरैः प्राचीरं समन्तात् शीघ्रं परिक्रम्यताम्। शत्रूणां गजानां पंक्तीनां भेदने समर्थैः गजैः द्वारेषु स्थीयताम्। येषां यशो भीष्टं न तु नश्वरो देहः ते यशो र्थिनः मरणभीतिं परित्यज्य शत्रोः दुर्बले सैन्ये युयुत्सवः सन्तः एकाग्रमनसश्च भूत्वा योद्धुं मया सह बहिरागच्छन्तु।

विरा०— अमात्य, अलमावेगेन। व त्तमिदं वर्ण्यते।

राक्ष०— (निःश्वस्य) कष्टं व त्तमिदम्। मया पुनर्ज्ञातं स एवायं काल इति। (शस्त्रमुत्स ज्य) हा देव नन्द, स्मरामि ते राक्षसं प्रति प्रसादातिशयम्। त्वमत्र संग्रामकाले -

यत्रैषा मेघनीला चरति गजघटा राक्षसस्तत्र यायाद्
एतत्पारिप्लुवाम्भः प्लुति तुरगबलं वार्यतां राक्षसेन।
पत्तीनां राक्षसो ंतं नयतु बलमिति प्रेषयन्मह्यमाज्ञाम्
अज्ञासीः प्रीतियोगात्स्थितमिव नगरे राक्षसानां सहस्रम्।।१४।

अन्वय— यत्रैषा मेघनीला गजघटा चरति तत्र राक्षसः यायात् पारिप्लुवाम्भःप्लुति एतत् तुरगबलं राक्षसेन वार्यतां पत्तीनां बलं राक्षसो न्तं नयतु इति मह्यम् आज्ञां प्रेषयन् प्रीतियोगात् अज्ञासीः इव नगरे राक्षसानां सहस्रं स्थितम्।

सन्दर्भ— विराधगुप्त द्वारा वर्णित युद्धप्रसंग में राक्षस को राजा नन्द की याद आ जाती है कि वे किस प्रकार राक्षस पर अत्यधिक स्नेह होने के कारण उसे ही योग्य व समर्थ समझकर एक के बाद एक आदेश देते जाते थे।

हिन्दी अनुवाद—

विरा०— अमात्य आवेग मत कीजिए। यह तो समाचार बतलाया जा रहा है।

राक्ष०— (लम्बी साँस लेकर) दुःख की बात है (कि) यह समाचार है। मेरे द्वारा तो समझा गया वि यह वही समय है। (तलवार छोड़कर) हा राजा नन्द राक्षस के प्रति आपके प्रगाढ़ स्नेह याद करता हूँ। आप युद्ध के समय -

जहाँ यह बादलों के समान काली हाथियों की पंक्ति आगे बढ़ रही है, वहाँ राक्षस चला जाए। च चल जल के ऊपर उठने के समान यह अश्वसेना राक्षस के द्वारा रोकी जाए। पैदल सेना का नाश राक्षस करे। इस प्रकार मुझे आज्ञा देते हुए स्नेह के कारण ऐसा समझते थे कि मानो कुसुमपुर में हजारों राक्षस विद्यमान हों।(१४)

स्पष्टीकरण— प्रस्तुत श्लोक में कवि ने राक्षस के प्रति नन्दों के अतिशय प्रेम का वर्णन अत्यन्त स्वाभाविक एवं काव्यात्मक ढंग से किया है। जिसे मनुष्य योग्य और समर्थ समझता है, उसी से सब कार्य करने को कहता है। वह यह भूल जाता है कि व्यक्ति तो एक ही है और वह एक ही स्थान पर जा सकता है। राजा नन्द राक्षस की योग्यता के प्रति पूर्ण आश्वस्त थे अतः हस्तिसेना, अश्वसेना और पैदल सेना तीनों का नाश करने के लिए राक्षस को ही आदेश देते थे।

उक्त श्लोक में स्रग्धरा छन्द तथा उत्प्रेक्षा अलंकार है।

संस्कृत भावार्थ—

यस्मिन् स्थाने मेघवत् श्यामला शत्रूणाम् एषा गजपंक्तिः अग्रेसरति तस्मिन् स्थाने राक्षसः तद्वारणाय यातु। च चलं यत् जलं तस्य उत्प्लवनम् इव एतत् अश्वसैन्यं राक्षसेन निवार्यताम्। पदातीनां सैन्यमपि राक्षसः नश्यतु। अनेन प्रकारेण स्नेहयोगात्कार्यसहस्रकरणाय माम् आदिशन् अमंस्था यत् कुसुमपुरे राक्षसानां सहस्रम् इव स्थितम्।

विरा०— राक्ष०— ततस्ततः। ततः समन्तादुपरुद्धं कुसुमपुरमवलोक्य बहुदिवसप्रव त्त-मतिमहदुपरोधवैशसमुपरि पौराणां परिवर्तमानमसहमाने तस्यामप्यवस्थायां पौरजनापेक्षया सुरंगमेत्यापक्रान्ते तपोवनाय देवे सर्वार्थसिद्धौ स्वामिविरहात्प्रशिथिलीकृतप्रयत्नेषु युष्मद्बलेषु जयघोषणव्याघातादिसाहसानुमितेष्वन्तर्नगरवासिषु पुनरपि नन्दराज्यप्रत्यानयनाय सुरंगया बहिरपगतेषु युष्मासु चन्द्रगुप्तनिधनाय युष्मत्प्रयुक्तया विषकन्यया घातिते तपस्विनि पर्वतेश्वरे -

राक्ष०— सखे, पश्याश्चर्यम् -

हिन्दी अनुवाद—

इसके पश्चात् क्या हुआ?

तब चारों तरफ से कुसुमपुर को घिरा हुआ देखकर, बहुत दिनों से चली आने वाली महान् नाकाबन्दी के कारण नागरिकों के ऊपर नित्य नए कष्टों को सहन न करने वाले राजा सर्वार्थसिद्धि के उस अवस्था में भी नागरिकों के प्रति प्रीति होने के कारण सुरंग द्वारा तपोवन चले जाने पर स्वामी के अभाव में आपकी सेनाओं द्वारा प्रयत्न शिथिल कर दिए जाने पर कुसुमपुर में रहने वाले नगरवासियों के विजयघोषणा में बाधा इत्यादि डालने जैसे साहसिक कार्यों का पता चल जाने पर, नन्दराज्य को पुनः वापस लाने के लिए आपके द्वारा सुरंग से बाहर चले जाने पर, चन्द्रगुप्त को मारने के लिए आपके द्वारा नियुक्त विषकन्या द्वारा बेचारे पर्वतक को मार दिए जाने पर -

राक्ष०— मित्र आश्चर्य की बात देखो।

कर्णेनेव विषांगनैकपुरुषव्यापादिनी रक्षिता
हन्तुं शक्तिरिवार्जुनं बलवती या चन्द्रगुप्तं मया।
सा विष्णोरिव विष्णुगुप्तहतकस्यात्यन्तिकश्रेयसे
हैडिम्बेयमिवैत्य पर्वतन पं तद्वध्यमेवावधीत्।।१५।।

अन्वय— कर्णेनेव मया अर्जुनम् इव चन्द्रगुप्तं हन्तुमेकपुरुषव्यापादिनी बलवती शक्तिरिव या विषांगना रक्षिता सा विष्णोरिव विष्णुगुप्तहतकस्यात्यन्तिकश्रेयसे तद्वध्यम् हैडिम्बेयमिव पर्वतन पम् एव एत्य अवधीत्।

सन्दर्भ— राक्षस द्वारा नियुक्त विषकन्या के द्वारा जब चन्द्रगुप्त के स्थान पर पर्वतक मारा जाता है तो राक्षस अत्यधिक आश्चर्य चकित होता हुआ विराधगुप्त से कहता है।

हिन्दी अनुवाद—

कर्ण के समान मेरे द्वारा अर्जुन के समान चन्द्रगुप्त को मारने के लिए, एक पुरुष को मारने वाली शक्तिशाली शक्ति के समान जो विषकन्या सुरक्षित की गई थी, उसने कृष्ण के समान द ष्ट चाणक्य के अत्यधिक कल्याण के लिए उसके द्वारा वध्य हिडिम्बा के पुत्र घटोत्कच के समान पर्वतों के राजा (पर्वतक) को ही प्राप्त करके मार डाला। (१५)

स्पष्टीकरण— यहाँ कर्ण और राक्षस में समानता बतलाई गई है। इन्द्र ने प्रसन्न होकर कर्ण को एक ऐसी अमोघ शक्ति प्रदान की थी जो केवल एक पुरुष को ही मार सकती थी। कर्ण ने वह अपने सबसे बड़े शत्रु को मारने के लिए सुरक्षित की थी परन्तु कृष्ण की धूर्तता से उसे उसका प्रयोग हिडिम्बा के पुत्र घटोत्कच को मारने के लिए करना पड़ गया जिसे श्रीकृष्ण स्वयं मारना चाहते थे।

इसी प्रकार राक्षस ने चन्द्रगुप्त को मारने के लिए एक विषकन्या नियुक्त की परन्तु चाणक्य की कुटिलबुद्धि के कारण उसके द्वारा पर्वतक मारा गया जिसे चाणक्य स्वयं मारना चाहता था क्योंकि वह चन्द्रगुप्त के आधे राज्य का भागीदार था।

उक्त श्लोक में कर्ण की राक्षस से, अर्जुन की चन्द्रगुप्त से, शक्ति की विषकन्या से, हिडिम्बापुत्र की पर्वतक से तथा श्रीकृष्ण की चाणक्य से तुलना की गई है।

प्रस्तुत श्लोक में शार्दूलविक्रीडित छन्द तथा उपमा अलंकार है।

संस्कृत भावार्थ—

कर्णेन इव मया राक्षसेन अर्जुनम् इव चन्द्रगुप्तं व्यापादयितुम् अमोघा एकपुरुषघातिनी शक्तिःइव या विषकन्या नियुक्ता सा श्रीकृष्णस्य इव दुष्टचाणक्यस्य समधिकाभीष्टसिद्ध्ये श्रीकृष्णस्य वध्यं घटोत्कचम् इव चाणक्यस्य वध्यं पर्वतकम् एव प्राप्य घातितवती।

विरा०— अमात्यय, दैवस्यात्र कामचारः किं क्रियताम्।

राक्षस— ततस्ततः?

विरा०— पित वधत्रासादपक्रान्ते कुमारे मलयकेतौ विश्वासिते पर्वतकभ्रातरि वैरोचके प्रकाशिते च चन्द्रगुप्तस्य नन्दभवनप्रवेशे चाणक्यहतकेन आहूयाभिहिताः सर्व एव कुसुमपुरनिवासिनः सूत्रधाराः यथा सांवत्सरिकादेशादर्धारात्रसमये चन्द्रगुप्तस्य नन्दभवनप्रवेशो भविष्यति। ततः पूर्वद्वारात्प्रभ ति संस्क्रियतां राजभवनमिति। ततः सूत्रधारैरभिहितमार्य, प्रथममेव देवस्य चन्द्रगुप्तस्य नन्दभवनप्रवेशमुपलभ्य सूत्रधारेण दारुवर्मणा कनकतोरणन्यासादिभिः संस्कारविशेषैः संस्कृतं प्रथमराजभवनद्वारम्। अस्माभिरिदानीमभ्यन्तरे संस्कार आधेय इति। ततश्चाणक्यबटुना अनादिष्टेनैव सूत्रधारेण दारुवर्मणा संस्कृतं राजभवनद्वारमिति परितुष्टेनेव सुचिरं दारुवर्मणो दाक्ष्यं प्रशस्याभिहितम्-अचिरादस्य दाक्ष्यस्यानुरूपं फलमधिगमिष्यसि दारुवर्मन्निति।

राक्षस— (सोद्वेगम्) सखे, कुतश्चाणक्यबटोः परितोषः। अफलमनिष्टफलं वा दारुवर्मणः प्रयत्नमवगच्छामि। यदनेन बुद्धिमोहादथवा राजभक्तिप्रकर्षान्नियोगकालमप्रतीक्षमाणेन जनितश्चाणक्यबटोश्चेतसि बलवान्विकल्पः। ततस्ततः।

हिन्दी अनुवाद—

विरा०— अमात्य, इस विषय में भाग्य की यही इच्छा थी, क्या किया जाए।

राक्षस— इसके पश्चात् क्या हुआ?

विरा०— तब पिता (पर्वतक) के वध से भयभीत कुमार मलकेतु के भाग जाने पर पर्वतक के भाई वैरोचक को (आधा राज्य देने के लिए) विश्वस्त कर दिए जाने पर और चन्द्रगुप्त के नन्दभवन में प्रवेश करने की घोषणा कर दिए जाने पर, दुष्ट चाणक्य के द्वारा कुसुमपुर में रहने वाले सभी बढई बुलाकर कहे गये कि ज्योतिषों के आदेश से चन्द्रगुप्त का नन्दभवन में प्रवेश आधी रात के समय होगा। अतः मुख्य द्वार से लेकर सारा राजभवन सजा दो। तब बढ़इयों के द्वारा कहा गया – आर्य, राजा चन्द्रगुप्त की नन्दभवन में प्रवेश करने के सूचना पाकर दारुवर्मा नामक बढ़ई के द्वारा पहले ही स्वर्णतोरण के विन्यास आदि विशिष्ट सजावटों से राजभवन का मुख्य द्वार सजा दिया गया है। हमारे द्वारा अब अन्दर की सजावट की जानी है। तब दुष्ट चाणक्य के द्वारा आदेश दिए बिना ही दारुवर्मा बढ़ई के द्वारा राजभवन का मुख्य द्वार सुसज्जित कर दिया गया, इस प्रकार मानों सन्तुष्ट होते हुए चिरकाल तक दारुवर्मा की चातुरी की प्रशंसा करके कहा गया– 'दारुवर्मन्! शीघ्र ही इस दक्षता के अनुरूप फल प्राप्त करोगे।'

राक्ष०— (उद्वेग सहित) – हे मित्र, दुष्ट चाणक्य को सन्तुष्टि कहाँ। दारुवर्मा के प्रयत्न को निष्फल अथवा अनिष्ट फल वाला समझता हूँ जो बुद्धि के मोह के कारण अथवा राजभक्ति के आधिक्य के कारण आदेश के समय की प्रतीक्षा किए बिना दुष्ट चाणक्य के मन में महान् सन्देह उत्पन्न कर दिया। तत्पश्चात् क्या हुआ।

स्पष्टीकरण— पर्वतक को विषकन्या द्वारा मार दिए जाने पर तथा उसके पुत्र मलयकेतु को चाणक्य को योजनानुसार भागुरायण द्वारा भगा दिए जाने पर चाणक्य ने प्रजा को यह विश्वास दिलाने के लिए कि पर्वतक को मारने में चाणक्य का कोई हाथ नहीं था, प्रजा में यह घोषणा करवा दी कि यदि पर्वतक और मलयकेतु नहीं रहे तो कोई बात नहीं। हम उसके हिस्से का आधा राज्य अपने वायदे के अनुसार उसके भाई वैरोचक को दे देंगे।

दारुवर्मा राक्षस का गुप्तचर है जिसे चन्द्रगुप्त को, नन्दभवन में प्रवेश करते समय यन्त्रतोरण गिरा कर मारने के लिए नियुक्त किया गया था। परन्तु बिना आज्ञा पाए ही प्रमुख द्वार सजा देने के कारण उसने चाणक्य के मन में महान् सन्देह उत्पन्न कर दिया। इसी कारण राक्षस कहता है कि उसका प्रयत्न अवश्य ही निष्फल अथवा अनिष्ट फल वाला हो गया होगा।

विरा०— ततश्चाणक्यहतकेनानुकूललग्नवशादर्द्धरात्रसमये चन्द्रगुप्तस्य नन्दभवनप्रवेशो भविष्यतीति शिल्पिनः पौरांश्च ग हीतार्थान् कृत्वा तस्मिन्नेव क्षणे पर्वतेश्वरभ्रातरं वैरोचकमेकासने चन्द्रगुप्तेन सहोपावेश्य कृतः प थ्वीराज्यविभागः।

राक्ष०— किं वातिस ष्टः पर्वतकभ्रात्रे वैरोचकाय पूर्वप्रतिश्रुतः राज्यार्धविभागः।

विरा०— अथ किम्।

राक्ष०— (स्वगतम्) नियममतिधूर्तेन चाणक्यबटुना तस्यापि तपस्विनः कमप्युपांशुवधमाकलय्य पर्वतेश्वरविनाशेन जनितमयशः प्रमार्ष्टुमेषा लोकप्रसिद्धिरुपचिता। (प्रकाशम्) ततस्ततः?

विरा०— ततः प्रथममेव प्रकाशिते रात्रौ चन्द्रगुप्तस्य नन्दभवनप्रवेशे कृताभिषेके किल वैरोचके विमलमुक्तामणिपरिक्षेपविरचितचित्रपटमयवारबाणप्रच्छादितशरीरे मणिमयमुकुटनिबिडनियमितरुचिरतरमौलौ सुरभितकुसुमदामवैकक्ष्यावभासितविपुलवक्षःस्थले परिचिततमैरप्यनभिज्ञायमानाकृतौ चाणक्यहतकादेशाच्चन्द्रगुप्तोपवाह्यां चन्द्रलेखां नाम गजवशामारुह्य चन्द्रगुप्तानुयायिना राजलोकेनानुगम्यमाने देवस्य नन्दस्य भवनं प्रविशति वैरोचके युष्मत्प्रयुक्तेन दारुवर्मणा सूत्रधारेण चन्द्रगुप्तोयमिति मत्वा तस्योपरि पातनाय सज्जीकृतं यन्त्रतोरणम्। अत्रान्तरे बहिर्निग हीतवाहनेषु स्थितेषु चन्द्रगुप्तानुयायिषु न पेषु युष्मत्प्रयुक्तेनैव चन्द्रगुप्तनिषादिना वर्वरकेण कनकदण्डिकान्तर्निहितामसिपुत्रिकामाक्रष्टुकामेनावलम्बिता करेण कनकश ंखलावलम्बिनी कनकदण्डिका।

राक्ष०— उभयोरप्यस्थाने यत्नः।

हिन्दी अनुवाद—

तब दुष्ट चाणक्य के द्वारा 'अनुकूल लग्न के कारण आधी रात के समय चन्द्रगुप्त का नन्द भवन में प्रवेश होगा' इस प्रकार शिल्पियों और नगरवासियों को समझाकर उसी समय पर्वतक के भाई वैरोचक को चन्द्रगुप्त के साथ एक आसन पर बैठाकर प थ्वी के राज्य का विभाजन कर दिया गया।

राक्ष०— क्या पर्वतक के भाई वैरोचक को पहले वायदे के अनुसार राज्य का आधा भाग दे दिया गया?

विरा०— और क्या।

राक्ष०— निश्चित रूप से अत्यन्त धूर्त दुष्ट चाणक्य के द्वारा उस बेचारे का भी किसी रहस्मय ढंग से वध करके पर्वतक के विनाश से उत्पन्न अपयश को पोंछने के लिए लोगों ये यह प्रसिद्धि फैला दी गई। (स्पष्ट रूप से) तत्पश्चात् क्या हुआ?

विरा०— तत्पश्चात् पहले ही रात में चन्द्रगुप्त के नन्दभवन में प्रवेश की घोषणा कर दिए जाने पर, वैरोचक का राज्याभिषेक कर देने पर शुभ्र मोती और मणियों को जड़कर बनाए गए रंग-बिरंगे कवच के द्वारा ढके हुए शरीर वाले, मणियों से युक्त मुकुट के द ढ़तापूर्वक बँधे हुए होने के कारण अत्यन्त सुन्दर मस्तक वाले, सुगन्धित फूलों की मालाओं को यज्ञोपवीत के रूप में पहनने से सुशोभित विशाल वक्षस्थल वाले, अत्यधिक परिचितों के द्वारा भी न पहचानी जाने वाली आकृति वाले वैरोचक के दुष्ट चाणक्य के आदेश से चन्द्रगुप्त की सवारी चन्द्रलेखा नामक हथिनी पर चढ़कर, चन्द्रगुप्त का अनुगमन करने वाले राजसमूह के द्वारा अनुसरण किए जाते हुए, राजा नन्द के भवन में प्रवेश करने पर, आपके द्वारा नियुक्त दारुवर्मा बढ़ई के द्वारा 'यह चन्द्रगुप्त है' ऐसा समझ कर उसके ऊपर गिराने के लिए यन्त्रतोरण तैयार कर लिया गया। इसी बीच अपने वाहनों को रोककर चन्द्रगुप्त के अनुयायी राजाओं द्वारा बाहर रुक जाने पर आप के द्वारा ही नियुक्त चन्द्रगुप्त के महावत वर्वरक के द्वारा सोने की म्यान के अन्दर छिपी हुई छुरी को खींचने की इच्छा से सोने की जंजीर से लटकती हुई सोने की म्यान हाथ में पकड़ ली गई।

राक्ष०— दोनों का ही प्रयत्न अनुचित स्थान पर हुआ।

स्पष्टीकरण— आदेश दिए बिना ही दारुवर्मा बढ़ई द्वारा राजभवन के प्रमुख द्वार को अलंकृत करने की सूचना जब चाणक्य को मिलती है तो वह समझ जाता है कि राक्षस द्वारा चन्द्रगुप्त को मारने का कोई षड्यन्त्र रचा गया है अतः चन्द्रगुप्त को मारने के लिए राक्षस द्वारा नियुक्त व्यक्तियों को भ्रमित करने के लिए वह वैरोचक को मुक्ता, मणि, पुष्पहार, मुकुट इत्यादि के द्वारा इस प्रकार अलंकृत करवा देता है कि कोई भी उसे पहचान नहीं पाता, चन्द्रगुप्त की हथिनी पर उसे बैठा देता है तथा उसका अनुसरण भी वही राजा करते हैं जो चन्द्रगुप्त के पीछे चलते थे। दारुवर्मा को राक्षस ने यन्त्रतोरण गिराकर तथा महावत वर्वरक को छुरी द्वारा चन्द्रगुप्त को मारने के लिए नियुक्त किया गया था। उसका विचार था कि यदि भाग्यवश चन्द्रगुप्त यन्त्रतोरण से नहीं मर पाया तो वर्वरक उसे छुरी से मार देगा। दारुवर्मा और वर्वरक दोनों ही यह नहीं समझ पाए कि वह चन्द्रगुप्त नहीं अपितु वैरोचक था। वे दोनों ही अपना-अपना कार्य करने के लिए तत्पर हो गए। दारुवर्मा यन्त्रतोरण गिराने के लिए और वर्वरक सोने की म्यान से छुरी निकालने के लिए।

विरा०— अथ जघनाभिघातमुत्प्रेक्षमाणा गजवधूरतिजवनतया गत्यन्तरमारूढवती प्रथमगत्यनुरोध-प्रत्याकलितमुक्तेन प्रभ्रष्टलक्ष्यं पतता यन्त्रतोरणेनाकृष्टकृपाणी व्यग्रपाणिरनासादयन्नेव चन्द्रगुप्ताशया वैरोचकं हतस्तपस्वी वर्वरकः। ततो दारुवर्मणा यन्त्रतोरणनिपातना-दात्मवधमाकलय्य पूर्वमेवोत्तुङ्गतोरणस्थलमारूढेन यन्त्रघट्टनबीजं लोहकीलकमादाय हस्तिनीगत एव हतस्तपस्वी वैरोचकः।

राक्ष०— कष्टमनर्थद्वयमापतितम्। न हतश्चन्द्रगुप्तो हतौ वैरोचकवर्वरकौ दैवेन। अथ सूत्रधारो दारुवर्मा कथम्?

विरा०— वैरोचकपुरःसरेण पदातिलोकेनैव लोष्टघातं हतः।

राक्ष०— (सास्रम्) कष्टम्। अहो वत्सलेन सुह दा दारुवर्मणा वियुक्ताः स्मः। अथ तत्रत्येन भिषजा अभयदत्तेन किमनुष्ठितम्।

विरा०— सर्वमनुष्ठितम्।

राक्ष०— (सहर्षम्) किं हतो दुरात्मा चन्द्रगुप्तः?

विरा०— अमात्य, दैवान्न हतः।

राक्ष०— (सविषादम्) तत्किमिदानीं कथयसि सर्वमनुष्ठितमिति।

विराद्द— अमात्य, कल्पितमनेन योगचूर्णमिश्रितमौषध चन्द्रगुप्ताय। तत्प्रत्यक्षीकुर्वता चाणक्यहतकेन कनकभाजने वर्णान्तरमुपलभ्याभिहितश्चन्द्रगुप्तः। व षल, सविषमिदमौषधं न पातव्यमिति।

राक्ष०— शठःखल्वसौ बटुः। अथ स वैद्यः कथम्?

विरा०— तदेवौषधं पायितो म तश्च।

राक्ष०— (सविषादम्) अहो महान्विज्ञानराशिरुपरतः। अथ तस्य शयनाधिकृतस्य प्रमोदकस्य किं व त्तम्?

हिन्दी अनुवाद—

विरा०— इसके पश्चात् जाँघ पर प्रहार की आशंका करती हुई हथिनी अति तीव्र गति से भिन्न गति को (मन्द गति को) प्राप्त हो गई । पहली गति की गणना से पकड़ कर छोड़े गए और अपने लक्ष्य से भ्रष्ट गिरते हुए यन्त्रतोरण द्वारा खींची हुई छुरी को हाथ में लिए ही चन्द्रगुप्त की आशा से वैरोचक को मारे बिना ही बेचारा वर्वरक मार दिया गया। तत्पश्चात् पहले ही तोरण के ऊँचे स्थान पर चढ़े हुए दारुवर्मा के द्वारा यन्त्रतोरण को गिराने से अपने वध की सम्भावना करके यन्त्र को नियन्त्रित करने वाली लोहे की कील निकाल कर बेचारा वैरोचक हथिनी पर बैठे हुए ही मार दिया गया।

राक्ष०— दुःख की बात है। दो अनर्थ एक साथ हो गए। भाग्य के द्वारा चन्द्रगुप्त (तो) मारा नहीं गया वैरोचक और वर्वरक मार दिए गए। दारुवर्मा बढ़ई कैसा है?

विरा०— वैरोचक के आगे पैदल चलने वाले लोगों के द्वारा ही पत्थर मार-मार कर मार दिया गया।

राक्ष०— (आँसू भरकर) कष्ट की बात है। अहो (हम) प्रिय मित्र दारुवर्मा से बिछुड़ गए। अच्छा, वहाँ रहने वाले वैद्य अभयदत्त के द्वारा क्या किया गया।

विरा०— सब कुछ किया गया।

राक्ष०— (प्रसन्न होकर) क्या दुष्ट चन्द्रगुप्त मार दिया गया?

विरा०— अमात्य, भाग्यवश नहीं मारा गया।

राक्ष०— (दुःखी होकर) फिर क्यों कह रहे हो कि सब कुछ किया गया।

विरा०— अमात्य इसके द्वारा योगचूर्ण मिश्रित औषधि चन्द्रगुप्त के लिए तैयार की गई। उसका निरीक्षण करने वाले दुष्ट चाणक्य के द्वारा सोने के पात्र में बदला हुआ रंग देखकर चन्द्रगुप्त से कहा गया - 'व षल विषयुक्त यह औषधि पीने योग्य नहीं है।

राक्ष०— वह ब्राह्मण वास्तव में दुष्ट है। अच्छा वह वैद्य कैसा है।

विरा०— वह औषधि (उसे) पिला दी गई और (वह) मर गया।

राक्ष०— (दुःखपूर्वक) ओह, ज्ञान का महान कोश नष्ट हो गया। अच्छा, उसके शयनागार के अधिकारी प्रमोदक का क्या समाचार है?

स्पष्टीकरण— वर्वरक जैसे ही हथिनी को जंजीर से लटकती हुई सोने की म्यान से छुरी निकालने लगा वैसे ही हथिनी मन्दगति से चलने लगी। दारुवर्मा जो तोरण के ऊँचे स्थान पर चढ़ा

हुआ था, हथिनी की बदली हुई गति को देख नहीं पाया और उसने पहले गणना के अनुमान से ही यन्त्रतोरण गिरा दिया। इस प्रकार चन्द्रगुप्त की आशंका से वैरोचक को जिस समय वहाँ पहुँचना था, उसका महावत वर्वरक ही पहुँच पाया और यन्त्र तोरण उस पर गिर गया और वह वहीं मर गया। जब दारुवर्मा को आभास हुआ कि गलत व्यक्ति मर गया है तो उसने भय के कारण यन्त्रतोरण को नियन्त्रित करने वाली कील हटा दी जिससे पूरा यन्त्रतोरण वैरोचक पर गिर गया और वह भी मार दिया गया।

इस प्रकार एक तरफ तो चाणक्य सबकी द ष्टि में भला भी बना रहा और उसे आधा राज्य भी किसी को नहीं देना पड़ा। परन्तु दूसरी तरफ राक्षस के पक्ष में चन्द्रगुप्त तो मारा नहीं गया अपितु उसके अपने व्यक्ति ही मार दिए गए। यही बात अभयदत्त वैद्य के साथ भी घटित हुई।

विरा०— **यदितरेषाम्।**

राक्ष०— **(सोद्वेगम्) कथमिव?**

विरा०— **स खलु मूर्खस्तं युष्माभिरतिस ष्टं महान्तमर्थराशिमवाप्य महता व्ययेनोपभोक्तुमारब्धवान्। ततः कुतो यं भूयान्धनागम इति प च्छ्यमानो यदा वाक्यभेदान्बहूनगमत्तदा चाणक्यहतकेन विचित्रवधेन व्यापादितः।**

राक्ष०— **(सोद्वेगम्) कथमत्रापि दैवेनोपहता वयम्। अथ शयितस्य चन्द्रगुप्तस्य शरीरे प्रहर्तुमस्मत्प्रयुक्तानां राजग हस्यान्तर्भित्तिसुरंगामेत्य प्रथममेव निवसतां बीभत्सकादीनां को व त्तान्तः।**

विरा०— **अमात्य, दारुणो व त्तान्तः।**

राक्ष०— **(सावेगम्) कथ दारुणो व तान्तः। न खलु विदितास्ते तत्र निवसन्तश्चाणक्यहतकेन।**

विरा०— **अमात्य, अथ किम्। प्राक् चन्द्रगुप्तप्रवेशाच्छयनग हं प्रविष्टमात्रेणैव निपुणमवलोकयता दुरात्मना चाणक्यहतकेन कस्माच्चिद्भित्तिच्छिद्राद्ग हीतभक्तावयवां निष्क्रामन्तीं पिपीलिकापंक्तिमवलोक्य पुरुषगर्भमेतद् ग हमिति ग हीतार्थेन दाहितं तच्छयनग हम्। तस्मिंश्च दह्यमाने धूमावरुद्धद ष्टयः प्रथमवितनिर्गमनमार्गमनधिगम्य द्वारं सर्व एव बीभत्सकादयो ज्वलनमुपगम्य तत्रैव नष्टाः।**

राक्ष०— **(सास्रम्) कष्टं भोः कष्टम्। सखे, पश्य दैवसम्पदं दुरात्मनश्चन्द्रगुप्तहतकस्य। कुतः?**

हिन्दी अनुवाद—

विरा०— जो दूसरों का है।

राक्षस— (घबराकर) किस प्रकार।

विरा०— उस मूर्ख ने आपके द्वारा दी गई उस महान धनराशि को महान् अपव्यय करके भोगना प्रारम्भ कर दिया। तब 'इतने अधिक धन की प्राप्ति कहाँ से हुई इस प्रकार पूछे जाने पर बहुत सी परस्पर विरोधी बातें कहीं। तब दुष्ट चाणक्य द्वारा विचित्र म त्यु द्वारा मरवा दिया।

राक्ष०— (उद्वेग सहित) यह क्या, यहाँ भी हम भाग्य के द्वारा मार दिए गए। अच्छा सोते हुए चन्द्रगुप्त के शरीर पर प्रहार करने के लिए हमारे द्वारा नियुक्त राजभवन की अन्दर की दीवार की सुरंग में पहले से ही निवास करने वाले बीभत्सक आदि का क्या समाचार है?

विरा०— अमात्य, भयंकर समाचार है।

राक्ष०— (घबराकर) भयंकर समाचार किस प्रकार है। कहीं वे वहाँ रहते हुए दुष्ट चाणक्य के द्वारा जान तो नहीं लिए गए

विरा०— अमात्य, और क्या। चन्द्रगुप्त के प्रवेश करने से पूर्व शयनागार में प्रवेश करते ही सावधानीपूर्वक देखते हुए दुष्ट चाणक्य के द्वारा किसी दीवार के छेद से चावल के कण लेकर निकलती हुई चींटियों की पंक्ति को देखकर' यह घर मनुष्यों से युक्त है' ऐसा समझकर उस शयनग ह को जला दिया गया। उसके जलने पर धुएँ से बन्द निकलने के मार्ग को प्राप्त न कर सकने के कारण आग में जल कर वहीं मर गए।

राक्षस— (आँसू भरकर) कितने दुःख की बात है। मित्र, दुरात्मा दुष्ट चन्द्रगुप्त की भाग्य सम्पदा तो देखो। क्योंकि-

स्पष्टीकरण— बीभत्सक आदि राक्षस के ही गुप्तचर थे जो चन्द्रगुप्त के शयनग ह में पहले से ही छिपकर रह रहे थे। परन्तु चावल के कण लेकर निकलती हुई चींटी की पंक्ति को देखकर चाणक्य ने सोचा कि ये चावल के कण यहाँ कहाँ से आए। उसे विश्वास हो गया कि यहाँ अवश्य ही मनुष्य रह रहे हैं अतः उसने पूरा शयनग ह ही जलवा दिया।

कन्या तस्य वधाय या विषमयी गूढं प्रयुक्ता मया
दैवात्पर्वतकस्तया स निहतो यस्तस्य राज्यार्धह्रत्
ये शस्त्रेषु रसेषु च प्रणिहितास्तैरेव ते घातिता
मौर्यस्यैव फलन्ति पश्य विविधश्रेयांसि मन्नीतयः।।१६।।

अन्वय— तस्य वधाय या विषमयी कन्या मया गूढ़ं प्रयुक्त दैवात् तया सः पर्वतकः निहतः यः तस्य राज्यार्धह त्। ये शस्त्रेषु रसेषु च प्राणिहिताः ते तैः एव घातिताः। पश्य मन्नीतयः मौर्यस्येव विविधश्रेयांसि फलन्ति।

सन्दर्भ— जब राक्षस को विराधगुप्त से पर्वतक, वर्वरक, दारुवर्मा, अभयदत्त, प्रमोदक, बीभत्सक इत्यादि की म त्यु का समाचार मिलता है तो वह दुःखी होने के साथ-साथ चन्द्रगुप्त की भाग्यसम्पदा को देखकर आश्चर्यचकित भी होता है क्योंकि चन्द्रगुप्त को मारने के लिए बनाई गई उसकी सभी योजनाएँ असफल ही नहीं प्रत्युत अनिष्ट फल वाली सिद्ध होती हैं।

हिन्दी अनुवाद—

उसके (चन्द्रगुप्त के) वध के लिए जो विषकन्या मेरे द्वारा गुप्त रूप से नियुक्त की गई भाग्य से उसके द्वारा वह पर्वतक मार दिया गया जो उसके आधे राज्य को लेने वाला था। जो शस्त्रों का प्रयोग करने के लिए और विष देने के लिए नियुक्त किए गए वे उन्हीं के द्वारा मार दिए गए। देखो मेरी नीतियाँ चन्द्रगुप्त के लिए ही विविध कल्याणों को देती हैं।(१६)

स्पष्टीकरण— राक्षस द्वारा चन्द्रगुप्त को मारने के लिए बनाई गई योजनाओं से चन्द्रगुप्त का तो अहित होने की अपेक्षा हित हो जाता है और राक्षस का अहित हो जाता है। यथा उसने चन्द्रगुप्त को मारने के लिए विषकन्या नियुक्त की थी। उसकी इस योजना से चन्द्रगुप्त को तीन लाभ हुए—

१ चन्द्रगुप्त नहीं मरा

२. वह पर्वतक मार दिया गया जो उसके आधे राज्य का अधिकारी था और

३. पर्वतक को मारने का अपयश भी राक्षस के ऊपर आ गया। इसी प्रकार वर्वरक, दारुवर्मा, अभयदत्त, प्रमोदक, बीभत्सक आदि सभी म त्यु को प्राप्त हो गए। बीज राक्षस बोता है परन्तु फल चन्द्रगुप्त को मिलता है। यह राक्षस का दुर्भाग्य तथा शत्रुओं का सौभाग्य ही है।

ये सब बातें चाणक्य की दूरदर्शिता एवं सूक्ष्मदर्शिता की परिचायक हैं।)

उक्त श्लोक में शार्दूलविक्रीडित छन्द तथा विषमालंकार है।

संस्कृत भावार्थ—

चन्द्रगुप्तस्य नाशाय या विषकन्या मया राक्षसेन अन्यैरनुपलक्षितं नियुक्ता दुर्भायवशात् तया सः पर्वतकः हतः यः चन्द्रगुप्तस्य अर्द्धराज्यभाक् आसीत् एवमेव ये वर्वरकादारुवर्माभय-दत्तप्रमोदकबीभत्सकादयः चन्द्रगुप्तं प्रति अस्त्रशस्त्रप्रयोगे विषप्रयोगे च व्यापारिताः ते पि तैरेव शस्त्रैश्च विषैश्च हताः। एवं पदे पदे सः तु अक्षतः मदीयाः एव जनाः हताः। पश्य मौर्यस्य नाशार्थं प्रणीताः मम प्रयोगाः तस्यैव इष्टानि प्रतिपादयन्ति न तु मम।

विरा०— अमात्य, तथापि खलु प्रारब्धमपरित्याज्यमेव। पश्य -

प्रारभ्यते न खलु विघ्नभयेन नीचैः
प्रारभ्य विघ्नविहता विरमन्ति मध्याः।
विघ्नैः पुनः पुनरपि प्रतिहन्यमानाः
प्रारम्ब्धमुत्तमजना न परित्यजन्ति।।१७।।

अन्वय— खलु विघ्नभयेन नीचैः न प्रारभ्यते मध्याः प्रारभ्य विघ्नविहताः विरमन्ति। विघ्नैः पुनः पुनः प्रतिहन्यमानाः अपि उत्तमजनाः प्रारब्धं न परित्यजन्ति।

सन्दर्भ— चन्द्रगुप्त को मारने के लिए बनाई गई अपनी सभी योजनाओं के पूर्ण रूप से असफल हो जाने पर जब राक्षस किंचिद् उद्विग्न सा हो जाता है, तब उसका गुप्तचर विराधगुप्त उसे समझाते हुए कहता है।

हिन्दी अनुवाद—

विरा०— अमात्य, तब भी प्रारम्भ किया हुआ कार्य छोड़ा नहीं जाना चाहिए। देखिए-

निस्सन्देह विघ्नों के भय से नीच श्रेणी के मनुष्यों के द्वारा (कार्य) प्रारम्भ (ही) नहीं किया जाता। मध्यम श्रेणी के मनुष्य प्रारम्भ करके विघ्नों से प्रताड़ित किए जाने पर (बीच में ही) छोड़ देते हैं। (परन्तु) विघ्नों के द्वारा बार बार प्रताड़ित किए जाने पर भी उत्तम पुरुष प्रारम्भ किए हुए कार्य को नहीं छोड़ते।(१७)

उक्त श्लोक में वसन्ततिलका छन्द तथा अप्रस्तुतप्रशंसा अलंकार है।

संस्कृत भावार्थ—

अधमाः जनाः विपत्तिशंकया कार्यं नैवारभन्ते। मध्यमजनाः कार्यं तु प्रारभन्ते परन्तु विघ्नैः बाधिताः सन्तः तं परित्यजन्ति परम् उत्तमाः गुणाः येषां ते महापुरुषाः अन्तरायैः वारं वारं प्रताडिताः अपि प्रारब्धं कार्यं नैव त्यजन्ति।

अपि च—

किं शेषस्य भरव्यथा न वपुषि क्ष्मां न क्षिपत्येष यत्
किं वा नास्ति परिश्रमो दिनपतेरास्ते न यन्निश्चलः।
किन्त्वंगीकृतमुत्स जन्कृपणवच्छ्लाघ्यो जनो लज्जते
निर्व्यूढ़ं प्रतिपन्नवस्तुषु सतामेतद्धि गोत्रव्रतम्।।१८।।

अन्वय— किं शेषस्य वपुषि भरव्यथा न यत् एषः क्ष्मां न क्षिपति। वा किं दिनपतेः परिश्रमः नास्ति यत् निश्चलः न आस्ते। किन्तु अंगीकृतं कृपणवत् उत्स जन् श्लाघ्यः जनः लज्जते। हि प्रतिपन्नवस्तुषु निर्व्यूढं एतत् सतां गोत्रव्रतम्।

सन्दर्भ— विराधगुप्त प्रस्तुत श्लोक में शेषनाग तथा सूरज का उदाहरण देकर राक्षस को समझाता है कि प्रारम्भ किया हुआ कार्य त्याज्य नहीं है।

हिन्दी अनुवाद—

और भी -

क्या शेषनाग के शरीर पर भार की पीड़ा नहीं होती जो यह प थ्वी को फेंकता नहीं अथवा क्या सूरज को थकावट नहीं होती जो (यह) स्थिर होकर नहीं बैठता परन्तु स्वीकार किए गए कार्य को कायर के समान छोड़ने में प्रशंसनीय मनुष्य लज्जित होता है। निस्सन्देह, स्वीकार किए गए कार्यो का अन्त तक निर्वाह करना, यह सज्जनों का कुलव्रत है।(१८)

उक्त श्लोक में शार्दूलविक्रीडित छन्द तथा अर्थान्तरन्यास अलंकार है।

संस्कृत भावार्थ—

शेषनागस्य शरीरे यद्यपि प थ्वीभारवहनपीडा भवति तथापि सः तां शिरसः नावतारयति। एवमेव सूर्यः अपि अविरतगमनात् श्रान्तिम् अनुभवति परं तदापि स्थिरः न भवति। वस्तुतस्तु शेष इव सूर्य इव च स्तुत्यः महापुरुषः स्वीकृतं कर्म कापुरुष इव परित्यज्यन् लज्जाम् अनुभवति यतः अंगीकृतवस्तुषु निर्वाहः (समापनम्) एव सज्जनानां कुलधर्मः वर्तते।

राक्ष०— सखे, प्रारब्धमपरित्याज्यमिति प्रत्यक्षमेवैतद्भवताम्। ततस्ततः?

विरा०— ततः प्रभ ति चन्द्रगुप्तशरीरे सहस्रगुणमप्रमत्तश्चाणक्यहतक एभ्य एतदीद शं भवतीत्यन्विष्य निग हीतवान्पुरनिवासिनो युष्मदीयानाप्तपुरुषान्।

राक्ष०— (सोद्वेगम) कथय, के के निग हीताः?

विरा०— प्रथमं तावत्क्षपणको जीवसिद्धिः सनिकारं नगरान्निर्वासितः।

राक्ष०— (स्वगतम्) एतावत्सह्यम्। न निष्परिग्रहं स्थानभ्रंशः पीडयिष्यति। (प्रकाशम्) वयस्य, कमपराधमुद्दिश्य निर्वासितः।

विरा०— एष राक्षसप्रयुक्तया विषकन्यया पर्वतेश्वरं व्यापादितवानिति।

राक्ष०— (स्वगतम्) साधु कौटिल्य, साधु। स्वस्मिन्-

हिन्दी अनुवाद—

राक्ष०— प्रारम्भ किया हुआ कार्य त्याज्य नहीं है यह तो आपके सामने ही है। तत्पश्चात् क्या हुआ?

विरा०— तब से लेकर चन्द्रगुप्त के शरीर पर हजार गुना सावधान दुष्ट चाणक्य ने 'इन (मनुष्यों) से इस प्रकार यह (कार्य) होता है, ऐसा मान कर खोज-खोज कर कुसुमपुर में रहने वाले आपके विश्वसनीय मनुष्यों को पकड़ लिया।

राक्ष०— (उद्वेग सहित) बतलाओ, कौन-कौन पकड़ लिए गए।

विरा०— सर्वप्रथम तो क्षपणक जीवसिद्धि अपमानपूर्वक नगर से निष्कासित कर दिया गया।

राक्ष०— (अपने आप) इतना तो सहनीय है। परिवार रहित का स्थानभ्रष्ट होना दुःखी नहीं करेगा। (स्पष्ट रूप से) किस अपराध के कारण निष्कासित किया गया?

विरा०— इसने राक्षस के द्वारा नियुक्त विषकन्या द्वारा पर्वतक को मार दिया।

राक्ष०— (अपने आप) शाबाश कौटिल्य शाबाश। अपने ऊपर -

परिहृतमयशः पातितमस्मासु च घातितार्धराज्यहरः।
एकमपि नीतिबीजं बहुफलतामेति यस्य तव।।१६।।

अन्वय— (स्वस्मिन्) अयशः परिहृतम् अस्मासु पातितम् च अर्धराज्यहरः घातितः यस्य तव एकम् अपि नीतिबीजं बहुफलतामेति।

सन्दर्भ— राक्षस को जब विराधगुप्त से पता चलता है कि जीवसिद्धि क्षपणक को चाणक्य ने विषकन्या का प्रयोग कर पर्वतक को मारने के अपराध में निष्कासित कर दिया है तो वह चाणक्य की बुद्धि व नीति की प्रशंसा करते हुए कहता है-

हिन्दी अनुवाद—

(अपने ऊपर से) अपयश दूर कर दिया गया, हमारे ऊपर डाल दिया गया और आधे राज्य को लेने वाला (पर्वतक भी) मार दिया गया। जिससे तुम्हारा एक भी नीतिरूप बीज अनेक फलों को प्राप्त होता है।(१६)

उक्त श्लोक में आर्या छन्द तथा काव्यलिंग अलंकार है।

संस्कृत भावार्थ—

जीवसिद्धिं निष्कास्य चाणक्येन स्वस्मिन् पर्वतेश्वरविनाशजनितापकीर्तिः दूरीकृता इत्येकं फलम्। राक्षसे च पातिता इति द्वितीयं फलम्। अपि च चन्द्रगुप्तस्य अर्द्धराज्यभाक् पर्वतको पि घातितः इति त तीयं फलम्। एवं क्षपणकनिर्वासनम् इत्येकेन प्रयोगेण चाणक्येन त्रीणि फलानि साधितानि।

(प्रकाशम्) ततस्ततः?

विरा०— ततश्चन्द्रगुप्तशरीरमभिद्रोग्धुमनेन व्यापारिता दारुवर्मादय इति नगरे प्रख्याप्य शकटदासः शूलमारोपितः।

राक्षसः— (सास्रम्) हा सखे, शकटदास अयुक्तरूपस्तवायमीद शो म त्युः। अथवा स्वाम्यर्थमुपरतो न शोच्यस्त्वम्। वयमेवात्र शोच्या ये नन्दकुलविनाशे पि जीवितुमिच्छामः।

विरा०— अमात्य, स्वाम्यर्थ एव साधयितव्य इति प्रयतसे।

राक्ष०— सखे

अस्माभिरमुमेवार्थमालम्ब्य न जिजीविषाम्।
परलोकगतो देवः कृतघ्नैर्नानुगम्यते।।२०।।

अन्वय— अमुम् एव अर्थम् आलम्ब्य जिजीविषाम् न अस्माभिः कृतघ्नैः परलोकगतः देवः न अनुगम्यते।

सन्दर्भ— राक्षस विराधगुप्त की इस बात का अनुमोदन करता है कि वह राजा नन्दों का कार्य सिद्ध करने के लिए ही जीवित है।

हिन्दी अनुवाद—

(स्पष्ट रूप से) तत्पश्चात् क्या हुआ?

विरा०— तत्पश्चात् चन्द्रगुप्त के शरीर पर आक्रमण करने के लिए इसके द्वारा दारुवर्मा इत्यादि नियुक्त किए गए। इस प्रकार नगर में घोषणा करवा कर शकटदास को फाँसी पर चढ़ा दिया गया।

राक्ष०— (आँसू भरकर) हाय मित्र, शकटदास, तुम्हारे लिए यह इस प्रकार की म त्यु उचित नहीं है। अथवा स्वामी के लिए तुम म त्यु को प्राप्त हुए हो शोचनीय नहीं हो। इस विषय में हम ही शोचनीय हैं जो नन्दवंश का नाश हो जाने पर भी जीना चाहते हैं।

विरा०— अमात्य, स्वामी का ही कार्य किया जाना चाहिए, इसीलिए तो आप प्रयत्न कर रहे हैं।

राक्ष०— हे मित्र -

इसी प्रयोजन का आश्रय लेकर, जीने की इच्छा से नहीं, मुझ कृतघ्न के द्वारा स्वर्गगत राजा नन्द का अनुसरण नहीं किया जाता।(२०)

स्पष्टीकरण— म त्युदण्ड बहुत बड़ा अपराध करने पर ही दिया जाता है परन्तु शकटदास को वह बिना किसी अपराध के कारण ही दिया जा रहा है। इसी कारण राक्षस उसके लिए वैसी म त्यु सर्वथा अनुचित बतलाता है। सम्भवतः विराधगुप्त सिद्धार्थक द्वारा शकटदास को वध्यस्थल से भगा कर ले जाने के विषय में नहीं जानता।

राक्षस जीने की इच्छा से नहीं अपितु शत्रुओं से राजा नन्दों की राजलक्ष्मी वापस लेने के लिए ही जीवित है।

उक्त श्लोक में अनुष्टुब छन्द तथा काव्यलिंग अलंकार है।

संस्कृत भावार्थ—

स्वाम्यर्थसाधनरूपं प्रयोजनमेव आश्रित्य, जीवनेच्छया न, अस्माभिः अकृतज्ञैः स्वर्गगतः राजानन्दः नानुक्रियते।

राक्ष०— कथ्यतामपरस्यापि सुहृद्व्यसनस्य श्रवणे सज्जो स्मि।

विरा०— एतदुपलभ्य चन्दनदासेनापवाहितममात्यकलत्रम्।

राक्ष०— सखे, क्रूरस्य चाणक्यबटोर्विरुद्धमयुक्तमनुष्ठितं तेन।

विरा०— अमात्य, नन्वयुक्ततरः सुह द्द्रोहः।

राक्ष०— ततस्ततः?

विरा०— ततो याच्यमानेनाप्यनेन न समर्पितममात्यकलत्रं यदा तदातिकुपितेन चाणक्यबटुना-

राक्ष०— (सोद्वेगम्) न खलु व्यापादितः।

विरा०— न हि। ग हीतग हसारः सपुत्रकलत्रो बन्धनागारे निक्षिप्तः।

राक्ष०— तत्किं परितुष्टः कथियसि अपवाहितं राक्षस कलत्रमिति। ननु वक्तव्यं संयमितः सपुत्रकलत्रो राक्षस इति।

हिन्दी अनुवाद—

बतलाओ दूसरे मित्र की विपत्ति के विषय में भी सुनने को तैयार हूँ।

विरा०— यह सुनकर (एतदुपलभ्य) चन्दनदास के द्वारा आपका परिवार कहीं और भेज दिया गया (अपवाहितम्)।

राक्ष०— निर्दयी दुष्ट चाणक्य के विरुद्ध (कार्य करके) उसके द्वारा अनुचित (कार्य) किया गया है।

विरा०— अमात्य, निस्सन्देह मित्रद्रोह उससे भी अधिक अनुचित होता।

राक्ष०— फिर क्या हुआ?

विरा०— तत्पश्चात् जब माँगे जाने पर भी आपका परिवार इसके द्वारा नहीं सौंपा गया तब अत्यन्त क्रुद्ध दुष्ट चाणक्य के द्वारा-

राक्ष०— (उद्वेग सहित) कहीं मार तो नहीं दिया गया।

विरा०— नहीं। घर की सारी वस्तुएँ हड़प कर पुत्र और पत्नी सहित कारागार में डाल दिया गया।

राक्ष०— फिर सन्तुष्ट होकर क्यों कह रहे हो कि 'राक्षस का परिवार कहीं और भेज दिया गया। निश्चित रूप से यह कहना चाहिए कि पुत्र और पत्नी सहित राक्षस कारागार में डाल दिया गया।'

स्पष्टीकरण— चन्दनदास राक्षस का परम मित्र था जिसके घर में अपने परिवार को रख कर राक्षस कुसुमपुर से आ गया था। चाणक्य ने चन्दनदास को उसके परिवार सहित इस विचार से कारागार में डलवा दिया था कि जिस प्रकार चन्दनदास राक्षस के लिए सब कुछ करने को तैयार है उसी प्रकार राक्षस भी इसे बचाने के लिए कुछ भी करने को तत्पर हो जाएगा। इसी कारण राक्षस कहता है कि चन्दनदास को परिवार सहित कारागार में डालने का अर्थ यह है कि राक्षस सपरिवार बन्दी बना लिया गया।

(प्रविश्य)

पुरुषः— जयतु अमात्यः। एष खलु शकटदासः प्रतीहारभूमिमुपस्थितः। (जेदु अमच्चो। एसो खु सअडदासो पडिहारभूमिमुवठ्ठिदो।)

राक्ष०— भद्र, अपि सत्यम्?

पुरु०— किमलीकममात्यपादेषु विनिवेदयामि। (किं अलिअं अमच्चपादेसु विणिवेदेमि।)

राक्ष०— सखे, विराधगुप्त कथमेतत्?

विरा०— अमात्य, स्यादेतदेवं यतो भव्यं रक्षति भवितव्यता।

राक्ष०— प्रियंवदक, किमद्यापि चिरयसि। क्षिप्रं प्रवेशयैनम्

पुरु— यदमात्य आज्ञापयति। (इति निष्क्रान्तः) (जं अमच्चो आणवेदि)

(ततः प्रविशति सिद्धार्थकेनानुगम्यमानः शकटदासः)

शक०— (स्वगतम्)

हिन्दी अनुवाद—

(प्रवेश करके)

पुरु०— अमात्य, विजयी हों। यह शकटदास दरवाजे पर खड़े हैं।

राक्ष०— भद्र, क्या यह सच है?

पुरु०— क्या मैं अमात्य के चरणों में झूठ बात बतलाऊँगा।

राक्ष०— मित्र, विराधगुप्त यह किस प्रकार हुआ।

विरा०— अमात्य, यह इस प्रकार हो सकता है क्योंकि भाग्य भावी की रक्षा करता है।

राक्ष०— प्रियंवदक, अब भी विलम्ब क्यों कर रहे हो। इसे (शकटदास को) जल्दी से अन्दर ले आओ।

पुरु०— जैसी अमात्य आज्ञा देते हैं (ऐसा कहकर निकल जाता है)।

(तब सिद्धार्थक के द्वारा अनुगत शकटदास प्रवेश करता है)

शक०— (अपने आप)—

द ष्ट्वा मौर्यमिव प्रतिष्ठितपदं शूलं धरित्र्यास्तले
तल्लक्ष्मीमिव चेतनाप्रमथनीमुन्मुच्य वध्यस्त्रजम्।
श्रुत्वा स्वाम्यपरोपरौद्रविषमानाघाततूर्यस्वनान्
न ध्वस्तं प्रथमाभिघातकठिनं मन्ये मदीयं मनः।।२१।।

अन्वय— मौर्यमिव शूलं धरित्र्याः तले द ष्ट्वा तल्लक्ष्मीमिव चेतनाप्रमथनीम् वध्यस्रजम् उन्मुच्य स्वाम्यपरोपरौद्रविषमान् आघाततूर्यस्वनान् श्रुत्वा (यत्) मदीयं मनः न घ्वस्तं मन्ये प्रथमाभिघातकठिनम्।

सन्दर्भ— शकटदास यहाँ वर्णन करता है कि स्वयं को शूली पर चढ़ाए जाने के लिए उसने अपनी आंखों से जो कुछ भी देखा और कानों से जो कुछ भी सुना, उसे देखकर और सुनकर भी वह तनिक भी विचलित नहीं हुआ क्योंकि उसका हृदय इससे भी अधिक दुःखों को सहते-सहते अत्यन्त कठोर हो चुका था।

हिन्दी अनुवाद—

स्थिर चरणों वाले चन्द्रगुप्त के समान शूली को प थ्वी पर गड़े हुए देखकर, उसकी राज्यलक्ष्मी के समान होशोहवास उड़ाने वाली म त्युमाला को बाँधकर, स्वामी नन्द के पतन के समय (के समान) कठोर और भयंकर म त्यु के नगाड़ों की आवाज सुनकर (भी) जो मेरा मन विदीर्ण नहीं हुआ (इसीलिए) मुझे प्रतीत होता है कि (यह) पहले के आघातों से कठोर हो गया है। (२१)

स्पष्टीकरण— शकटदास का अभिप्राय यह है कि यद्यपि मैं अपनी म त्यु को साक्षात् अपने सामने देख रहा था क्योंकि वध्यस्थल पर शूली को उसी प्रकार द ढ़तापूर्वक गाड़ दिया गया था। जिस प्रकार चन्द्रगुप्त का शासन स्थिर हो गया है। मेरे मस्तक पर होशो-हवास उड़ाने वाली म र्त्युमाला भी बाँध दी गई थी जिस प्रकार चन्द्रगुप्त की राज्यलक्ष्मी नन्दों पर अनुरक्त व्यक्तियों की चेतना को नष्ट कर देती है और जिस प्रकार स्वामी के पतन के समय चन्द्रगुप्त की विजय के उपलक्ष्य में बजाए गए नगाड़ों की आवाज हम सभी के कानों को बहुत कटु और भयंकर प्रतीत हो रही थी उसी प्रकार म त्यु के नगाड़ों की

कठोर और विषम ध्वनि मुझे सुनाई पड़ रही थी तथापि मेरा मन विचलित नहीं हुआ क्योंकि यह पहले सहन की गई अनर्थ परम्पराओं के कारण अत्यन्त कठोर हो चुका था। अनर्थ परम्पराएँ जिनकी तरफ शकटदास संकेत कर रहा है वे सम्भवतः नन्दों का विनाश, चन्द्रगुप्त की राज्य पर प्रतिष्ठा व चन्द्रगुप्त की राज्यलक्ष्मी की स्थिरता है।

उक्त श्लोक में उपमा और उत्प्रेक्षा के योग से संस ष्टि अलंकार तथा शार्दूलविक्रीडित छन्द है।

संस्कृत भावार्थ—

स्थिरराज्यशासनं चन्द्रगुप्तमौर्यमिव प थिव्याः तले बद्धमूलं शूलं द ष्ट्वा, चन्द्रगुप्तस्य राज्यश्रियमिव संज्ञाविलोपिनीम् म त्युमालां धारयित्वा, स्वामिनन्दानां राज्यभ्रंश इव कठोरान् असह्यान च म त्योः पटहध्वनीः श्रुत्वा अपि यत् मम मनः न विदीर्णं तत् अहं मन्ये यदिदं पूर्वानुभूतानर्थपरम्परासहनेन कठोरम् अभूत्।

(अवलोक्य सहर्षम्) अयममात्यराक्षसस्तिष्ठति। य एषः—

अक्षीणभक्तिः क्षीणे पि नन्दे स्वाम्यर्थमुद्वहन्।
प थिव्यां स्वामिभक्तानां प्रमाणे परमे स्थितः।।२२।।

अन्वय— नन्दे क्षीणे पि अक्षीणभक्तिः स्वाम्यर्थम् उद्वहन् प थिव्यां स्वामिभक्तानां परमे प्रमाणे स्थितः।

सन्दर्भ— शकटदास राक्षस की स्वामिभक्ति की भूरि-भूरि प्रशंसा कर रहा है।

हिन्दी अनुवाद—

(पास जाकर, देखकर, हर्षपूर्वक) यह अमात्य राक्षस बैठे हैं जो यह -

नन्दों के नष्ट हो जाने पर भी, नष्ट न हुई भक्ति वाला (यह) स्वामी के कार्य को करता हुआ प थ्वी पर स्वामिभक्तों के श्रेष्ठ उदाहरण के रूप में विद्यमान है।(२२)

स्पष्टीकरण— शकटदास का अभिप्राय यह है कि स्वामी के जीवित होने पर ही लोग अपनी स्वामिभक्ति उसके प्रति दिखलाते हैं परन्तु राक्षस की स्वामिभक्ति अनुपम है जो अपने स्वामी नन्दों के पूर्ण रूप से नष्ट हो जाने पर भी अक्षीणभक्ति से उन्हीं का कार्य कर रहा है। अतः स्वामिभक्तों का परम आदर्श है।

उक्त श्लोक में अनुष्टुप छन्द तथा काव्यलिंग अलंकार है।

संस्कृत भावार्थ—

स्वामिनि नन्दे म ते पि अपरिहीनभक्तिः अयं नन्दस्य कार्यं धारयन् अस्मिन् जगति स्वामिभक्तिपरायणानां प्रथमकोटौ विद्यमानः अस्ति।

(उपस त्य) जयत्वमात्यः

राक्ष०— (विलोक्य सहर्षम्) सखे शकटदास, दिष्ट्या कौटिल्यगोचरगतो पि त्वं द ष्टो सि। तत्परिष्वजस्व माम्।

शक०— (तथा करोति)

राक्ष०— (चिरं परिष्वज्य) इदमासनमास्यताम्

शक०— (नाट्येनोपविष्टः)

राक्ष०— सखे शकटदास, अथ को यं मे ईद शस्य हृदयानन्दस्य हेतुः।

शक०— (सिद्धार्थक निर्दिश्य) अनेन प्रियसुहृदासिद्धार्थकेन घातकान्विद्राव्य वध्यस्थानादपहृतो स्मि।

राक्ष०— (सहर्षम्) भद्र सिद्धार्थक, किं पर्याप्तमिदमस्य प्रियस्य। तथापि ग ह्यताम्। (इति स्वगात्रादवतार्य भूषणानि प्रयच्छति)

सिद्धा०— (ग हीत्वा पादयोर्निपत्य स्वगतम्) अयं खलु आर्योपदेशः। भवतु तथा करिष्यामि। (प्रकाशम्) अमात्य, अत्र मे प्रथमप्रविष्टस्य नास्ति को पि परिचितः यत्रेमममात्यस्य प्रसादं निक्षिप्य निव त्तो भवामि। तस्मादिच्छाम्यहमेतया मुद्रया मुद्रितममात्यस्यैव भाण्डागारे स्थापयितुम्। यदा मे प्रयोजनं तदा ग्रहीष्यामि। (अअं खु अज्जोवदेसो। होदु तह करिस्सं। अमच्च एत्थ मे पढमपविठ्स्सिणत्थि कोवि परिचिदो जत्थ एदं अगच्चस्सं पसादं णिक्खिविअ निव्वुदो भविस्सं। ता इच्छामि अहं इमाए मुद्दाए मुद्दिदं अमच्चरस एव्व भण्डाआरे ठाविदुं। जदा मे पओअणं तदा गेहिस्सं।)

राक्ष०— भद्र को दोषः। शकटदास, एवं क्रियताम्।

शक०— यदाज्ञापयत्यमात्यः। (मुद्रां विलोक्य जनान्तिकम) अमात्य, भवन्नामाङ्कितेयं मुद्रा।

राक्ष०— (विलोक्यात्मगतम्) सत्यं नगरान्निष्क्रामतो मम हस्ताद् ब्राह्मण्या उत्कण्ठाविनोदार्थं ग हीता। तत्कथमस्य हस्तमुपागता। (प्रकाशम्) भद्र सिद्धार्थक, कुतस्त्वयेयमधिगता?

सिद्धा०— अस्ति, कुसुमपुरे मणिकारश्रेष्ठी चन्दनदासो नाम। तस्य गेहद्वारपरिसरे पतिता मयासादिता। (अत्थि कुसुमपुरे मणिआरसेठ्ठी चन्दनदासो णाम। तस्स गेहदुआरपडिसरे पडिदा मए आसादिदा।)

राक्ष०— युज्यते।

सिद्धा— अमात्य, अत्र किं युज्यते। (अमच्च एत्थ किं युज्जई)

राक्ष०— भद्र, यन्महाधनानां ग हे पतितस्यैववंविधस्योपलब्धिरिति।

हिन्दी अनुवाद—

(पास जाकर) अमात्य विजयी हों।

राक्षस— (देखकर हर्षपूर्वक) मित्र शकटदास, सौभाग्य से कौटिल्य के हाथ में पड़ जाने पर भी तुम (मेरे द्वारा) देखे गए हो। इसीलिए मेरा आलिंगन करो।

शक०— (वैसा ही करता है)

राक्ष०— (बहुत समय तक आलिंगन करके) यह आसन है, बैठिए।

शक०— (अभिनयपूर्वक बैठ जाता है)

राक्ष०— मित्र शकटदास, इस प्रकार के मेरे हृदय के आनन्द का कारण कौन है?

शक०— (सिद्धार्थक की तरफ संकेत करके) इस प्रिय मित्र सिद्धार्थक के द्वारा घातकों को भगाकर वध्यस्थल से (यहाँ) लाया गया हूँ।

राक्ष०— (हर्षपूर्वक) भद्र सिद्धार्थक, इस प्रिय कार्य के लिए क्या यह पर्याप्त है अर्थात् नहीं है। फिर भी इसे स्वीकार करो (ऐसा कहकर अपने शरीर से आभूषण उतार कर देता है)

सिद्धा०— (लेकर पैरों पर गिरकर, अपने आप) निस्सन्देह यह आर्य (चाणक्य) का आदेश है। अच्छा, वैसा ही करूंगा। (स्पष्ट रूप से) पहली बार मेरे यहाँ आने के कारण कोई भी परिचित नहीं है जिसके पास अमात्य के इस प्रसाद (उपहार) को रखकर निश्चिन्त हो जाऊँ।

अतः (मैं) इस मुद्रा से मुद्रित (इसे) अमात्य के कोषागार में ही रखना चाहता हूँ। जब मुझे आवश्यकता होगी तब ले लूँगा।

राक्ष०— भद्र, इसमें क्या दोष है। शकटदास, ऐसा ही कर दो।

शक०— अमात्य जैसी आज्ञा देते हैं (अँगूठी देखकर, कान में) अमात्य, यह अँगूठी आपके नाम से चिह्नित है।

राक्ष०— (देखकर अपने आप) सच है। कुसुमपुर से बाहर निकलते समय मेरे हाथ से ब्राह्मणी (मेरी पत्नी) के द्वारा अपनी उत्कण्ठा दूर करने के लिए ले ली गई थी। फिर, इसके हाथ में कैसे आ गई। (स्पष्ट रूप से) भद्र सिद्धार्थक, तुम्हारे द्वारा यह कहाँ से प्राप्त की गई?

सिद्धा०— कुसुमपुर में चन्दनदास नाम का एक जौहरी है। उसके घर के दरवाजे की दहलीज पर गिरी हुई मेरे द्वारा प्राप्त कर ली गई।

राक्ष०— ठीक है।

सिद्धा०— अमात्य, इसमें क्या ठीक है।

राक्ष०— भद्र, धनिकों के घर में इस प्रकार की गिरी हुई वस्तुओं की प्राप्ति।

स्पष्टीकरण— चाणक्य के योजनानुसार ही सिद्धार्थक द्वारा शकटदास को वध्यस्थल से भगाकार राक्षस के पास पहुँचाए जाने पर राक्षस प्रसन्न होकर अपने शरीर से आभूषण उतार कर सिद्धार्थक को दे देता है और सिद्धार्थक उन्हें राक्षस की मुद्रा से मुद्रित करवा कर उसी के कोषागार में रखवा देता है।

शक०— सखे सिद्धार्थक, अमात्यनामांकितेयं मुद्रा। तदितो बहुतरेणार्थेन भवन्तममात्यस्तोषयिष्यति। दीयतामेषा।

सिद्धा०— आर्य, ननु प्रसाद एष यदस्या मुद्राया अमात्यः परिग्रहं करोति। (अज्ज णं पसादो एसो जं इमाए मुद्दाए अमच्चो परिग्गहं करेदि)। (इति मुद्रामर्पयति)

राक्ष०— सखे शकटदास, अनयैव मुद्रया स्वाधिकारे व्यवहर्तव्यं भवता।

शक०— यदाज्ञापयत्यमात्यः।

सिद्धा०— अमात्य किमपि विज्ञापयामि (अमच्च किंपि विण्णवेमि)

राक्ष०— ब्रुहि विश्रब्धम्

सिद्धा०— जानात्येवमात्यो यथा चाणक्यबटुकस्य विप्रियं कृत्वा नास्ति पुनः पाटलिपुत्रे प्रवेश इति तदिच्छाम्यहममात्यस्य चरणे एव शुश्रूषितुम्। (जाणादि एव्वं अमच्चो जह चाणक्कबडुअस्य पिप्पिणं कछुअ णत्थि पुणो पाडलिउत्ते पवेसो त्ति ताइच्छामि अहं अमच्चचलणे एव सुस्सूसिदुम्।)

राक्ष०— भद्र, प्रियं नः। किंतु त्वदभिप्रायापरिज्ञानान्तरितो यमस्मदनुनयः। तदेवं क्रियताम्।

सिद्धा०— (सहर्षम्) अनुग हीतो स्मि। (अनुगिहिदोह्मि।)

राक्ष०— सखे शकटदास, विश्रामय सिद्धार्थकम्।

शक०— तथा (इति सिद्धार्थकेन सह निष्क्रा न्तः)

हिन्दी अनुवाद—

शक०— मित्र सिद्धार्थक, यह अँगूठी अमात्य के नाम से चिह्नित है तो इससे भी अधिक धन देकर अमात्य आपको सन्तुष्ट कर देंगे। यह (इन्हें) दे दो।

सिद्धा०— आर्य, निस्सन्देह यह तो कृपा (प्रसाद) ही है कि अमात्य इस अँगूठी को स्वीकार कर रहे हैं। (ऐसा कहकर अँगूठी दे देता है)

राक्ष०— मित्र शकटदास, इसी अँगूठी के द्वारा अपने अधिकार में आपके द्वारा व्यवहार किया जाना चाहिए।

शक०— जैसी अमात्य आज्ञा देते हैं।

सिद्धा०— अमात्य (मैं) कुछ निवेदन करना चाहता हूँ।

राक्ष०— निस्संकोच कहो।

सिद्धा०— अमात्य जानते हैं कि दुष्ट चाणक्य से शत्रुता करके पाटलिपुत्र में (मेरा) पुनः प्रवेश नहीं है अतः मैं अमात्य के चरणों की सेवा करना चाहता हूँ।

राक्ष०— भद्र, हमें पसन्द है। किन्तु आपके अभिप्राय को न जानने के कारण हम आपसे निवेदन नहीं कर पाए। ऐसा ही करो।

सिद्धा०— (हर्षपूर्वक) मैं कृतार्थ हुआ।

राक्ष०— मित्र शकटदास, सिद्धार्थक को विश्राम करवाओ।

शक०— जो आज्ञा। ऐसा कहकर सिद्धार्थक के साथ निकल जाता है।

स्पष्टीकरण— सिद्धार्थक ने यह अँगूठी चाणक्य की पूर्वयोजनानुसार ही राक्षस को वापस की होगी। चाणक्य ने सम्भवतः निम्न कारणों से अँगूठी वापस करवाई होगी। सर्वप्रथम, निस्संकोच सिद्धार्थक द्वारा अंगूठी वापस कर दिए जाने पर सिद्धार्थक राक्षस का विश्वास आसानी से जीत लेगा। दूसरे, प चम अंक में सिद्धार्थक द्वारा उसकी मुद्रा से मुद्रित पत्र और अलंकार लेकर जाने पर राक्षस इस बात को अस्वीकार नहीं कर पाएगा कि पत्र और आभूषण उसके नहीं हैं क्योंकि अब मुद्रा उसके अधिकार में है अन्यथा वह यह कह सकता था कि मुद्रा शत्रुओं के हाथ में है। और तीसरे, मलयकेतु पंचम अंक में राक्षस की किसी भी बात पर विश्वास नहीं करेगा क्योंकि अँगूठी राक्षस के पास होने के कारण सारी परिस्थितियाँ राक्षस के विरुद्ध ही होंगी।

राक्ष०— सखे विराधगुप्त, वर्णय व त्तशेषम्। अपि क्षमन्ते स्मदुपजापं चन्द्रगुप्तप्रकृतयः।

विरा०— अमात्य, बाढं क्षमन्ते यथाप्रकाशमनुगच्छन्त्येव।

राक्ष०— सखे, किं तत्र प्रकाशम?

विरा०— अमात्य, इदं तत्र प्रकाशम्। मलयकेतोरपक्रमणात्प्रभ ति कुपितश्चन्द्रगुप्तश्चाणक्यस्योपरीति चाणक्यो प्यतिजितकाशितयासहमानश्चन्द्रगुप्तं तैस्तैराज्ञाभंगैश्चन्द्रगुप्तस्य चेतः पीडामुपचिनोतीति। इत्थमपि ममानुभवः।

राक्ष०— (सहर्षम्) सखे विराधगुप्त, गच्छ त्वमनेनैवाहितुण्डिकच्छद्मना पुनः कुसुमपुरम्। तत्र मे प्रियस ह्वैतालिकव्य जनः स्तनकलशो नाम प्रतिवसति। स त्वया मद्वचनाद्वाच्यः यथा चाणक्येन क्रियमाणेष्वाज्ञाभंगेषु चन्द्रगुप्तः समुत्तेजनसमर्थैः श्लोकैरुपश्लोकयितव्यः कार्यं चातिनिभ तं करभकहस्तेन सन्देष्टव्यमिति।

विरा०— यदाज्ञापयत्यमात्यः। (इति निष्क्रान्तः)

हिन्दी अनुवाद—

राक्ष०— मित्र विराधगुप्त, शेष समाचार बतलाओ। क्या चन्द्रगुप्त की प्रजा हमारे द्वारा उत्पन्न की गई भेद की चालों को सहन करती है?

विरा०— हाँ सहन करती है जैसा कि प्रकाश में आई कुछ बातों से पता चलता है।

राक्ष०— मित्र, प्रकाश में क्या आया है?

विरा०— अमात्य, यह बात प्रकाश में आई है (कि) मलयकेतु के भागने से लेकर चन्द्रगुप्त चाणक्य के ऊपर क्रुद्ध है और चाणक्य भी विजय से अत्यन्त घमण्डी होकर चन्द्रगुप्त को सहन न करता हुआ विभिन्न आज्ञाओं का उल्लंघन करके चन्द्रगुप्त के चित्त में पीड़ा उत्पन्न करता है। ऐसा मेरा भी अनुभव है।

राक्ष०— (हर्षपूर्वक) मित्र विराधगुप्त, तुम सपेरे के इसी वेष में पुनः कुसुमपुर जाओ। वहाँ मेरा प्रिय मित्र स्तनकलश वैतालिक के वेष में रहता है। वह तुम्हारे द्वारा मेरी तरफ से कहा जाना चाहिए कि चाणक्य के द्वारा आज्ञाओं का उल्लंघन किए जाने पर उत्तेजित करने में समर्थ श्लोकों द्वारा चन्द्रगुप्त की स्तुति की जानी चाहिए और कार्य को अत्यन्त गुप्त रूप से करभक के हाथों कहलवा देना चाहिए।

विरा०— जैसी अमात्य आज्ञा देते हैं। (ऐसा कहकर निकल जाता है)

स्पष्टीकरण— राक्षस विराधगुप्त से पूछता है कि हमने शत्रु में फूट डालने की जो चालें चली हैं उन्हें चन्द्रगुप्त की प्रजाएँ सहन करती हैं अथवा नहीं, तो विराधगुप्त बतलाता है कि वे सहन करती हैं क्योंकि जबसे भद्रभट, डिंगरात इत्यादि चन्द्रगुप्त को छोड़ कर चले गए हैं तब से प्रजा चाणक्य को कृतघ्न समझने लगी है। प्रजा यह समझती है चाणक्य के कारण ही वे चन्द्रगुप्त को छोड़ गए। चन्द्रगुप्त स्वयं भी चाणक्य से क्रुद्ध हो गया है। क्योंकि वह सोचता है कि मलयकेतु चाणक्य की असावधानी के कारण ही भागा है। दूसरी तरफ चाणक्य भी अपनी अप्रत्याशित विजय के कारण अत्यधिक घमण्डी हो गया है और जब तक चन्द्रगुप्त की आज्ञाओं का उल्लंघन करता रहता है।

राक्षस को जब पता चलता है कि चन्द्रगुप्त और चाणक्य में मनमुटाव रहने लगा है तो वह उनमें और भी अधिक मनमुटाव करवाने के लिए कुसुमपुर में रहने वाले अपने मित्र स्तनकलश को सन्देश भिजवाता है कि जब कभी भी चाणक्य चन्द्रगुप्त की आज्ञा का उल्लंघन करे वह चन्द्रगुप्त को और भी अधिक भड़काने वाले श्लोक गाए।

(प्रविश्य)

पुरुषः— **जयतु अमात्यः। अमात्य शकटदासो विज्ञापयति एते खलु त्रयो लंकारसंयोगा विक्रीयन्ते। तान् प्रत्यक्षीकरोत्वमात्य इति। (जेदु अमच्चो। अमच्च सअडदासो विण्णवेदि एदे खु तिण्णि अलंकारस जौ आ विक्कीअन्दि। ते पच्चक्खीकरेदु अमच्चो।)**

राक्ष०— **(विलोक्यात्मगतम्) अहो महार्हाण्याभरणानि। (प्रकाशम्) भद्र, उच्यतामस्मद्वचनाच्छकटदासः परितोष्य विक्रेतारं गृह्यन्तामिति।**

पुरु०— **तथा। (तह) (इति निष्क्रान्तः)**

राक्ष०— **यावदहमपि कुसुमपुराय करभकं प्रेषयामि। (उत्थाय) अपि नाम दुरात्मनश्चाणक्याच्चन्द्रगुप्तो भिद्येत। अथवा सिद्धमेव नः समीहितं पश्यामि। कुतः?-**

हिन्दी अनुवाद—

(प्रवेश करके)

पुरु०— अमात्य विजयी हों अमात्य, शकटदास निवेदन करते हैं कि ये तीन बहुमूल्य आभूषण बेचे जा रहे हैं। अमात्य इन्हें देख लें।

राक्ष०— (देखकर अपने आप) अहो आभूषण बहुमूल्य हैं। (स्पष्ट रूप से) भद्र हमारी तरफ से शकटदास को कहना 'विक्रेता को सन्तुष्ट करके (इन्हें) ले लो।'

पुरु०— जैसी आज्ञा (ऐसा कहकर निकल जाता है)।

राक्ष०— जब तक मैं भी करभक को कुसुमपुर भेजता हूँ (उठकर) क्या दुष्ट चाणक्य से चन्द्रगुप्त अलग हो जाएगा। अथवा अपने मनोरथ (समीहित) मैं पूर्ण हुआ ही देखता हूँ क्योंकि?-

स्पष्टीकरण— ये तीन आभूषण पर्वतक के वे आभूषण हैं जो प्रथम अंक में श्राद्ध के अवसर पर चाणक्य द्वारा अपने विश्वस्त विश्वावसु इत्यादि तीन भाईयों को दिलवाए गए थे और उसी की योजनानुसार वे उन्हें राक्षस के पास बेच गए।

मौर्यस्तेजसि सर्वभूतलभुजामाज्ञापको वर्त्तते
चाणक्यो पि मदाश्रयादयमभूद्राजेति जातस्मयः।
राज्यप्राप्तिकृतार्थमेकमपरं तीर्णप्रतिज्ञार्णवं
सौहार्दात्कृतकृत्यतैव नियतं लब्धन्तरा भेत्स्यति।।२३।।

अन्वय— सर्वभूतलभुजामाज्ञापकः मौर्यः तेजसि वर्त्तते। चाणक्यो पि मदाश्रयादयम् राजा अभूत् इति जातस्मयः। राज्यप्राप्तिकृतार्थमेकं तीर्णप्रतिज्ञार्णवम् अपरम् कृतकृत्यता लब्धान्तरा एव नियतं सौहार्दात् भेत्स्यति।

सन्दर्भ— राक्षस को जब विराधगुप्त से पता चलता है कि चाणक्य और चन्द्रगुप्त में कुछ मनमुटाव रहने लगा है तो वह उन दोनों के एक दूसरे से शीघ्र ही अलग हो जाने के विषय में पूर्ण रूप से विश्वस्त हो जाता है।

हिन्दी अनुवाद—

सारी प थ्वी के राजाओं को आज्ञा देने वाला चन्द्रगुप्त मौर्य तेज में है अर्थात् तेजस्वी हो गया है। चाणक्य भी 'मेरे आश्रय से यह (चन्द्रगुप्त) राजा बना है' ऐसा सोचकर घमण्डी हो गया है। राज्य प्राप्ति से कृतार्थ एक (चन्द्रगुप्त) को और प्रतिज्ञा रूपी सागर को पारकर लेने पर दूसरे (चाणक्य) की सन्तुष्टि की भावना अवसर पाते ही निश्चित रूप से मित्रता से अलग कर देगी।

स्पष्टीकरण— चन्द्रगुप्त मौर्य और चाणक्य दोनों ही अपने-अपने उद्देश्यों की पूर्ति हो जाने के कारण स्वयं को कृतकृत्य समझने लगे हैं व एक दूसरे की अपेक्षा नहीं रखते। यही कृतकृत्यता की भावना अवसर पाते ही उन दोनों को एक दूसरे की मित्रता से प थक कर देगी।

उक्त श्लोक में शार्दूविक्रीडित छन्द व यथासंख्य अलंकार है।

संस्कृत भावार्थ— चन्द्रगुप्तः सर्वेषां राज्ञां प्रशास्ता सन् प्रतापे तिष्ठति। ममैव आश्रयेण अयं चन्द्रगुप्तः राजा अभूत् इति विचिन्त्य चाणक्यो पि जातगर्वः आस्ते। राज्यलाभेन सफलं चन्द्रगुप्तमौर्यः पूर्णप्रतिज्ञं चाणक्यं च कृतकृत्यता एव प्राप्तावकाशः निश्चितम् उभौ मित्रभावात् विघटयिष्यति।

(इति राक्षसविचारो नाम द्वितीयोंकः)

इस प्रकार राक्षसविचारो नामक द्वितीय अंक समाप्त हुआ।

त तीयो क

(ततः प्रविशति क चुकी)

क चुकी— (सनिर्वेदम्)

रूपादीन्विषयान्निरूप्य करणैर्यैरात्मलाभस्त्वया
लब्धस्तेष्वपि चक्षुरादिषु हताः स्वार्थावबोधक्रियाः।
अंगानि प्रसभं त्यजन्ति पटुतामाज्ञाविधेयानि ते
न्यस्तं मूर्ध्नि पदं तवैव जरया त ष्णे मुधा ताम्यसि।।१।।

अन्वय— त ष्णे रूपादीन् विषयान् निरूप्य यैः करणैः त्वया आत्मलाभः लब्धः तेषु चक्षुरादिषु अपि स्वार्थावबोधक्रियाः हताः। ते आज्ञाविधेयानि अंगानि प्रसभं पटुतां त्यजन्ति। जरया तवैव मूर्ध्नि पदं न्यस्तं मुधा ताम्यसि।

सन्दर्भ— चन्द्रगुप्त का क चुकी वैहीनर अपनी व द्धावस्था के विषय में अत्यधिक दुःखी है क्योंकि उसकी ज्ञानेन्द्रियों तथा कर्मेन्द्रियों सभी ने अपना-अपना कार्य करना छोड़ दिया है।

हिन्दी अनुवाद—

(तत्पश्चात् क चुकी प्रवेश करता है)

कचुकी— (दुःखी होते हुए)

हे त ष्णे, जिन ज्ञानेन्द्रियों के द्वारा रूप इत्यादि विषयों को ग्रहण करके तुम्हारे द्वारा आत्मसन्तुष्टि प्राप्त की जाती थी उन्हीं चक्षु इत्यादि में अपने-अपने विषयों को जानने का कार्य नष्ट हो गया हैं तेरी आज्ञा का पालन करने वाली कर्मेन्द्रियाँ भी क्षमता को शीघ्रता से छोड़ रही है। व द्धावस्था के द्वारा तुम्हारे ही सिर पर पैर रख दिया गया है। (तुम) व्यर्थ में दुःखी हो रही हो।(१)

उक्त श्लोक में शार्दूलविक्रीडित छन्द तथा काव्यलिंग अलंकार है।

संस्कृत भावार्थ—

हे त ष्णे, यै ज्ञानेन्द्रियैः रूपादीन् विषयान् योग्यतयावधार्य त्वया आत्मसन्तुष्टिः प्राप्ता तेषु चक्षुरादिषु ज्ञानेन्द्रियष्वपि स्वस्वविषयग्रहणव्यापाराः नष्टाः। ते निर्देशानुवर्तीनि कर्मेन्द्रियाणि अपि प्रसह्य स्वव्यापारसामर्थ्यं त्यजन्ति। वार्द्धकेन तव शिरसि पदं न्यस्तं त्वं व थैव दुःखमनुभवसि।

(परिक्रम्याकाशे) भो भोः सुगांगप्रसादाधिकृताः पुरुषाः' सुग हीतनामा देवश्चन्द्रगुप्तो वः समाज्ञापयति। प्रव त्तकौमुदीमहोत्सवरमणीयतरं कुसुमपुरमवलोकयितुमिच्छामि। तत्संस्क्रियन्तामस्मद्दर्शनयोग्याः सुगांगप्रासादोपरिभूमय इति। (पुनराकाशे) किं ब्रूथ। आर्य किमविदित एवायं देवस्य कौमुदीमहोत्सव प्रतिषेध इति। आः दैवापहताः किमनेन वः सद्यः प्राणहरेण कथोपोद्घातेन। शीघ्रमिदानीम्—

हिन्दी अनुवाद—

(घूमकर आकाश में) हे हे, सुगांग महल के अधिकारी पुरुषों शुभनामवाले राजा चन्द्रगुप्त आप सबको आज्ञा देते हैं। प्रारम्भ हुए कौमुदीमहोत्सव से कुसुमपुर को और भी अधिक सुन्दर देखना चाहता हूँ। अतः मेरे देखने योग्य सुगांग महल की छत सजा दो। (पुनः आकाश में) क्या कह रहे हो। आर्य क्या महाराज चन्द्रगुप्त को (आर्य चाणक्य द्वारा किया गया) कौमुदी महोत्सव का यह निषेध पता नहीं है। अरे भाग्य के मारो (दौवोपहताः) शीघ्र ही प्राणों को ले लेने वाली इस बात की चर्चा करने से ही क्या लाभ। अब शीघ्र ही -

आलिंगन्तु ग हीतधूपसुरभीन्स्तम्भान्पिनद्धस्रजः
संपूर्णेन्दुमयूखसंहतिरुचां सच्चामराणां श्रियः।
सिंहांकासनधारणाच्च सुचिरं स जातमूर्च्छामिव
क्षिप्रं चन्दनवारिणा सकुसुमः सेको नुग ह्णातु गाम्।।२।।

अन्वय— संपूर्णेन्दुमयूखसंहतिरुचां सच्चामराणां श्रियः ग हीतधूपसुरभीन् पिनद्धस्रजः स्तम्भान् आलिंगन्तु च सुचिरं सिंहांकासनधारणात् स जातमूर्च्छामिव गां सकुसुमः चन्दनवारिणा सेकः क्षिप्रम् अनुग ह्णातु।

सन्दर्भ— प्रस्तुत श्लोक में क चुकी कौमुदी महोत्सव प्रारम्भ हो जाने पर कुसुमपुर को विभिन्न प्रकार से अलंकृत करने का आदेश देता है।

हिन्दी अनुवाद—

सम्पूर्ण चन्द्रमा की किरणों के समूह की शोभा वाले श्रेष्ठ चवरों की शोभा धूप के कारण सुगन्धित (तथा) बँधी हुई मालाओं वाले खम्भों का आलिंगन करें और सिंह से चिह्नित आसन को अर्थात् सिंहासन को चिरकाल तक धारण करने के कारण मूर्च्छित हुई सी प थ्वी को फूलों से युक्त चन्दन का छिड़काव शीघ्र ही अनुग हीत करे।(२)

उक्त श्लोक में शार्दूलविक्रीडित छन्द तथा उत्प्रेक्षा अलंकार है।

संस्कृत भावार्थ—

सम्पूर्णेन्दोः किरणानां समूहस्य इव शोभा येषां तेषां चामराणां शोभाः धूपसौरभान्वितान् माल्यवेष्टितान् च स्तम्भान् उपश्लिष्यन्तु। पुष्पमिश्रितः मलयजजलेन सेचनं बहुकालपर्यन्तं सिंहचिह्नितस्य आसनस्य वहनात् समुत्पन्नमूर्च्छां प थिवीम् शीघ्रं समाश्वासयतु।

किं ब्रूथ। आर्य इदमनुष्ठीयते देवस्य शासनमिति। भद्रास्त्वरध्वम्। अयमागत एव देवश्चन्द्रगुप्तः। य एष-

सुविश्रब्धैरंगैः पथिषु विषमेष्वप्यचलता
चिरं धुर्येणोढा गुरुरपि भुवो यस्य गुरुणा।
धुरं तामेवोच्चैर्नववयसि वोढुं व्यवसितो
मनस्वी दम्यत्वात्स्खलति च न दुःखं वहति च।।३।।

अन्वय— भुवः या गुरुरपि सुविश्रब्धैः अंगै विषमेषु पथिषु अपि अचलता धुर्येण यस्य गुरुणा चिरम् ऊढा तामेव धुरं मनस्वी नववयसि उच्चैः वोढुं व्यवसितः दम्यत्वात् स्खलति च दुःखं न वहति।

सन्दर्भ— प्रस्तुत श्लोक में क चुकी राजानन्द की तुलना एक व षभ से करते हुए चन्द्रगुप्त की युवावस्था होने पर भी उसकी राज्यभार वहन करने की क्षमता की प्रशंसा करता है।

हिन्दी अनुवाद—

क्या कह रहे हो। महाराज की आज्ञा का पालन यह किया ही जा रहा है हे सज्जनों, शीघ्रता करो। यह महाराज चन्द्रगुप्त आ ही गए हैं। जो यह-

(जिस) प थ्वी का जो महान् भार विश्वस्त अंगो के द्वारा, विषम मार्गों में भी स्खलित न होते हुए, राज्यभार वहन करने में समर्थ इसके (चन्द्रगुप्त) के पिता द्वारा चिरकाल तक वहन किया गया उसी को (यह) मनस्वी युवावस्था में ऊँचा उठाने के लिए प्रयत्नशील है। अनुभवहीन होने के कारण (कभी-कभी) लड़खड़ाता तो है परन्तु दुःख का अनुभव नहीं करता। (३)

स्पष्टीकरण— प्रस्तुत श्लोक के दो अर्थ निकलते हैं। एक राजा नन्द और चन्द्रगुप्त के पक्ष में और दूसरा व षभ के पक्ष में।

उक्त श्लोक में शिखरिणी छन्द, समासोक्ति तथा श्लेष अंलकार है।

संस्कृत भावार्थ—

यस्याः प थिव्याः दुर्वहः अपि धूः विश्वसनीयैः राज्यावयवैः स्वाम्यमात्यसुहृत्राष्ट्रकोषदुर्गबलैः व षभपक्षे द ढैः अवयवैः विषमराज्यतन्त्रेषु व षभपक्षे गहनेषु मार्गेषु अपि अस्खलता, राज्यभारनिर्वहणक्षमेण व षभपक्षे व षभेण चन्द्रगुप्तस्य तातेन राजानन्देन बहुकालपर्यन्तं ध ता तामेव धुरम् अयं मनस्वी नवयौवने धारयितुम् उद्यतः अनतिप्रौढ़त्वात् सः कि चित् त्रुटिं करोति परं दुःखं नानुभवति।

राजा— (स्वगतम्) राज्यं हि नाम राजधर्मानुव त्तिपरस्य न पतेर्महदप्रीति स्थानम्। कुतः?-

> **परार्थानुष्ठाने रहयति न पं स्वार्थपरता**
> **परित्यक्तस्वार्थो नियतमयथार्थः क्षितिपतिः।**
> **परार्थश्चेत्स्वार्थादभिमततरो हन्त परवान्।**
> **परायत्तः प्रीतेः कथमिव रसं वेत्ति पुरुषः।।४।।**

अन्वय— परार्थानुष्ठाने स्वार्थपरता न पं रहयति परित्यक्तस्वार्थः नियतमयथार्थः क्षितिपतिः। चेत् परार्थः स्वार्थात् अभिमततरः हन्त परवान् परायत्तः पुरुषः प्रीतेः रसं कथमिव वेत्ति।

सन्दर्भ— राजा चन्द्रगुप्त वास्तविक अर्थो में राजधर्म का पालन करने वाले राजा के लिए राज्य को सुखप्रद न मानकर कष्टप्रद ही मानने का कारण प्रस्तुत श्लोक में बतलाता है।

हिन्दी अनुवाद—

(नेपथ्य में) इधर इधर, महाराज। (तब राजा और प्रतीहारी प्रवेश करते हैं)

राजा— (अपने आप) राजधर्म का पालन करने में तत्पर राजा के लिए राज्य महान् कष्ट का कारण होता है। क्योंकि-

दूसरों का हित करने पर स्वार्थ की भावना राजा को छोड़ देती है। स्वार्थ को छोड़ देने वाला निश्चित रूप से वास्तविक राजा नहीं होता। यदि परार्थ स्वार्थ से अधिक अभीष्ट हो जाता है तो कष्ट की बात है कि (राजा) पराधीन हो जाता है। पराधीन मनुष्य सुख के आनन्द को किस प्रकार जान सकता है। (४)

स्पष्टीकरण— चन्द्रगुप्त का आशय है कि राजा का मुख्य कार्य अपनी प्रजा की भलाई करना ही है परन्तु यदि वह प्रजा की भलाई करने में तत्पर रहता है तो वह स्वार्थपूर्ति के लिए किसी भी प्रकार स्वतन्त्र नहीं रहता। जब राजा स्वार्थपूर्ति ही नहीं कर सकता तो वह क्षितिपति (प थ्वी का स्वामी) किस प्रकार हो सकता है (वह तो प थ्वी का सेवक ही बन जाता है) इतना ही नहीं यदि वह स्वार्थ की अपेक्षा परार्थ को अधिक महत्त्व देता है तो वह पराधीन हो जाता है और पराधीन मनुष्य को तो सपने में भी सुख की प्राप्ति नहीं हो सकती।

प्रस्तुत श्लोक में शिखरिणी छन्द तथा काव्यलिंग अलंकार है।

संस्कृत भावार्थ—

परहितसम्पादने स्वच्छन्दविहारादिविषयभोगः राजानं त्यजति। उत्स ष्टः स्वार्थः येन ताद शः राजा निश्चितम् अयथार्थनामा प थिवीपतिः प थिव्याः पतिः इति। तस्य राजत्वमयथार्थं स्वसुखोपभोगाभावादित्यर्थः। यदि राजधर्मतया परस्य अर्थः स्वार्थात् प्रियतरः तर्हि कष्टं यत् राजा पराधीनः भवति। पराधीनः पुरुषश्च सुखस्य आनन्दं तु केनापि प्रकारेण ज्ञातुमक्षमः।

अपि च— दुराराध्या हि राजलक्ष्मीरात्मवद्भिरपि राजभिः। कुतः?-

तीक्ष्णादुद्विजते म दौ परिभवत्रासान्न सन्तिष्ठते
मूर्खान्द्वेष्टि न गच्छति प्रणयितामत्यन्तविद्वत्स्वपि।
शूरेभ्यो धिकं बिभेत्युपहसत्येकान्तभीरूनहो
श्रीर्लब्धप्रसरेव वेशवनिता दुःखोपचर्या भ शम्।।५।।

अन्वय— तीक्ष्णादुद्विजते म दौ परिभवत्रासात् न सन्तिष्ठते मूर्खान् द्वेष्टि अत्यन्तविद्वत्सु अपि प्रणयितां न गच्छति। शूरेभ्यः अधिकं बिभेति एकान्तभीरून् उपहसति अहो श्रीःलब्धप्रसरा वेशवनिता इव भ शं दुःखोपचर्या।

सन्दर्भ— राजा चन्द्रगुप्त प्रस्तुत श्लोक में लक्ष्मी को स्थिर रखने की कठिनाइयों का वर्णन करता है।

हिन्दी अनुवाद—

और भी— राजलक्ष्मी जितेन्द्रिय राजाओं के द्वारा भी कठिनता से प्रसन्न की जाती है। क्योंकि-

(यह लक्ष्मी) उग्र स्वभाव वाले से उद्विग्न होती है, कोमल स्वभाव वाले के पास अपमान के भय से नहीं ठहरती, मूर्खो से द्वेष करती है (परन्तु) अत्यन्त विद्वान् से भी प्रेम नहीं करती। वीरों से बहुत अधिक डरती है (और) कायरों का उपहास करती है। आश्चर्य है कि राज्यलक्ष्मी व्यापार बढ़ी हुई वेश्या के समान अत्यन्त कठिनाई से सेवा किए जाने योग्य है।(५)

स्पष्टीकरण— राजलक्ष्मी उग्र स्वभाव वाले राजा से यह सोचकर घबराती है कि कहीं यह मुझे नष्ट न कर दे परन्तु कोमल स्वभाव वाले के पास इस भय से नहीं टिकती कि किसी के द्वारा अपमानित किए जाने पर वह उसकी रक्षा नहीं कर पाएगा। राजा को कठोर और म दु दोनों ही होना चाहिए, तभी राजलक्ष्मी स्थिर रह सकती है।

मूर्खों से घ णा करती है परन्तु विद्वान् के पास भी इस भय से नहीं रहती कि यह ज्ञानी होने के कारण सबकी अवहेलना करके दूसरों की शत्रुता को प्राप्त हो जाएगा। डरपोक का मजाक उड़ाती है परन्तु वीरों के पास भी उसके युद्ध में म त्यु को प्राप्त हो जाने के भय से नहीं रहती।

उक्त श्लोक में शार्दूलविक्रीडित छन्द तथा उपमा अलंकार है।

संस्कृत भावार्थ—

उग्रस्वभावात् न पात् लक्ष्मीः माम कदाचित्प्रभ्रशंयेदित्युद्विग्ना भवति, कोमलस्वभावे राजनि मामन्यो बलवान् पराभविष्यतीति तत्र सम्यग् न तिष्ठति। अविवेकिनं दूरतः एव जहाति परम् अतिशयेन पण्डिताः ये भूपाः तेषु अपि प्रीतिं न लभते। सदैव भीतान् उपहसति परं वीरेभ्यो पि अधिकं बिभेति कदा वा समरे म्रियेत् इति। आश्चर्य प्राप्तप्रागल्भ्या वेश्या इव लक्ष्मीः अत्यर्थ दुःखेन सेव्या।

अन्यच्च कृतककलहं कृत्वा स्वतन्त्रेण कि चित्कालान्तरं व्यवहर्तव्यमित्यार्यादेशः। स च कथमपि मया पातकमिवभ्युपगतः।

अथवा शश्वदार्योपदेशसंस्क्रियमाणमतयः सदैव स्वतन्त्रा वयम्। कुतः?

इह हि रचयन्साध्वीं शिष्यः क्रियां न निवार्यते
त्यजति तु यदा मार्गं मोहात्तदा गुरुरंकुशः।
विनयरुचयस्तस्मात्सन्तः सदैव निरंकुशाः
परतरमतः स्वातन्त्र्येभ्यो वयं हि पराङ्मुखाः।।६।।

अन्वय— हि इह साध्वीं क्रियां रचयन् शिष्यः न निवार्यते तु यदा मोहात् मार्गं त्यजति तदा गुरुः अंकुशः। तस्मात् विनयरुचयः सन्तः सदैव निरंकुशाः अतः परतरं स्वातन्त्र्येभ्यः वयं हि पराङ्मुखाः।

सन्दर्भ— चाणक्य द्वारा चन्द्रगुप्त को आदेश दिया गया है कि वह आर्य चाणक्य से झूठा झगड़ा करके कुछ समय तक स्वतन्त्रतापूर्वक कार्य करे। चन्द्रगुप्त ने जैसे तैसे बड़ी कठिनाई से उनका आदेश स्वीकार तो कर लिया है तथापि उसे आर्य चाणक्य के कथन में कोई सार नहीं दिखाई पड़ता क्योंकि वह स्वयं को हमेशा ही स्वतन्त्र समझता था, समझता है और समझता रहेगा। स्वयं को स्वतन्त्र समझने का कारण वह प्रस्तुत श्लोक में स्पष्ट करता है।

हिन्दी अनुवाद—

और भी कृतककलह करके स्वतन्त्रतापूर्वक कुछ समय तक व्यवहार किया जाना चाहिए, ऐसी आर्य चाणक्य की आज्ञा है और वह (आज्ञा) मेरे द्वारा जैसे तैसे स्वीकार कर ली गई है। अथवा निरन्तर आर्य की सलाह से परिष्कृत बुद्धि वाले हम सदैव स्वतन्त्र हैं क्योंकि-

निस्सन्देह इस संसार में उचित कार्य करता हुआ शिष्य (गुरु के द्वारा) निवारित नहीं किया जाता परन्तु जब अज्ञान के कारण (शिष्य) उचित मार्ग छोड़ देता है तब गुरु अंकुश बन जाता है। इस कारण विनम्रता में रुचि रखने वाले सज्जन हमेशा ही अंकुशरहित होते हैं। इससे अधिक स्वतन्त्रता से तो हम निश्चित रूप से विमुख हैं।(६)

स्पष्टीकरण— चन्द्रगुप्त का अभिप्राय यह है कि जब तक शिष्य उचित मार्ग पर चलता है, गुरु उसे कुछ नहीं कहता परन्तु जब वह अज्ञान के कारण उचित मार्ग से भटक जाता है तो गुरु अवश्य उसका नियामक बन जाता है। इस कारण जो शिष्य अनुचित मार्ग पर चले जाने पर गुरु द्वारा की गई रोक टोक का बुरा नहीं मानते वे तो हमेशा ही स्वयं को स्वतन्त्र समझते हैं। इससे अधिक स्वतन्त्रता कि अनुचित मार्ग पर चले जाने पर भी गुरु कुछ न कहे, हम स्वयं भी नहीं चाहते। अतः हम तो स्वयं को हमेशा ही निरंकुश व स्वतन्त्र समझते हैं।

उक्त श्लोक में हरिणी छन्द तथा काव्यलिंग अलंकार है।

संस्कृत भावार्थ—

अस्मिन्लोके न्याय्याचरणं कुर्वन् शिष्यः गुरुणा न नियम्यते परं यदा सः मूढतया सत्पथं जहाति तदा गुरुः तस्य नियामकः भवति। तस्मात् हेतोः विनये रुचिः येषां ताद शाः सज्जनाः सदैव स्वतत्रताः वर्त्तन्ते कदापि गुरुणा न निवार्यन्ते इत्यर्थः। अतः अधिकं स्वातन्त्र्यं तु वयमपि निश्चितं न इच्छामः। वयं तु इदमेव इच्छामः यत् अस्मासु उचितमार्गे सत्सु गुरुः अस्मान् कि चिदपि न कथयतु परं अज्ञानात् अस्मासु अनुचितमार्गे गतेषु सः अस्मान् निश्चितं निवारयतु। एताद क् स्वातन्त्र्यं वयमनुभवामः अतः वयं तु सदैव स्वतन्त्राः स्मः।

(प्रकाशम्) आर्य वैहीनरे, सुगांगमार्गमादेशय।

क चु०— इत इतो देवः (नाट्येन परिक्रम्य) अयं सुगांगप्रासादः। शनैरारोहतु देवः।

(नाट्येनारुह्य दिशो वलोक्य)

राजा— अहो शरत्समयसंभ तशोभानां दिशामतिरमणीयता। कुतः?—

शनैः श्यानीभूताः सितजलधरच्छेदपुलिना
समन्तादाकीर्णाः कलविरुतिभिः सारसकुलैः।
चिताश्चित्राकारैर्निशि विकचनक्षत्रकुमुदैर्
नभस्तः स्यंदन्ते सरित इव दीर्घा दश दिशः।।७।।

अन्वय— शनैः श्यानीभूताः सितजलधरच्छेदपुलिनाः समन्तात् कलविरुतिभिः सारसकुलैः आकीर्णाः निशि चित्राकारैः विकचनक्षत्रकुमदैः चिताः दीर्घा दश दिशः सरितः इव नभस्तः स्यन्दन्ते।

सन्दर्भ— प्रस्तुत श्लोक में चन्द्रगुप्त शरदर्तु में दिशाओं की तुलना नदियों से करता है।

हिन्दी अनुवाद—

(स्पष्ट रूप से) आर्य वैहीनर, सुगांग महल का मार्ग बतलाओ।

क चु०— इधर, इधर महाराज। (अभिनयपूर्वक घूमकर) यह सुगांग महल है। महाराज धीरे से चढ़ें।

राजा०— (अभिनयपूर्वक चढ़कर) अहो, शरदर्तु में बढ़ी हुई शोभा वाली दिशाओं की अत्यधिक रमणीयता है। क्योंकि-

क्रमशः पतली होती हुई, सफेद बादल रूपी रेतीले तटों वाली सब तरह से अव्यक्त लेकिन मधुर ध्वनि करने वाले सारसों के समूह से युक्त, रात में विभिन्न प्रकार के खिले हुए नक्षत्र रूपी कुमुदों से व्याप्त विशाल दश दिशाएँ प्रवाहित होती हुई नदियों के समान आकाश से प्रवाहित हो रही हैं।(७)

स्पष्टीकरण— कवि ने प्रस्तुत श्लोक में शरत्कालीन दिशाओं की तुलना नदियों से की है। दिशाएँ दूर तक देखने पर क्रमशः पतली होती हुई दिखाई पड़ती हैं इसी प्रकार नदियाँ भी दूर तक देखने पर धीरे-धीरे पतली होती सी दिखाई पड़ती हैं। दिशाओं में सफेद बादल हैं तो नदियों पर सफेद रेतीले तट हैं। दिशाओं और नदियों दोनों में ही सारस पक्षियों का झुण्ड कलरव कर रहा है। रात्रि में दिशाएँ अनेक आकार के खिले हुए तारों से भर जाती हैं तो नदियाँ खिले हुए सफेद कुमुदों से व्याप्त हो जाती हैं।

प्रस्तुत श्लोक में शिखरिणी छन्द, उपमा तथा छेकानुप्रयास अलंकार है।

संस्कृत भावार्थ—

क्रमशः कृशीभूताः, धवलाः, मेघखण्डाः एव सैकतानि यासां ताः, मधुराव्यक्तनिनादैः सारसपक्षिसमूहैः सर्वतः व्याप्ताः, रात्रौ च विविधप्रकारैः प्रफुल्लानि नक्षत्राणि एव कुमुदपुष्पाणि तैः युताः सत्यः विशालाः दश दिशः श्रावणमासात् स्यन्दमानाः नद्य इव आकाशात् निस्सरन्ति।

अपि च—

अपामुद्व त्तानां निजमुपदिशन्त्या स्थितिपदं
दधत्या शालीनामवनतिमुदारे सति फले।
मयूराणामुग्रं विषमिव हरन्त्या मदमहो
कृतः कृत्स्नस्यायं विनय इव लोकस्य शरदा।।८।।

अन्वय— अहो उद्व त्तानाम् अपां निजं स्थितिपदम् उपदिशन्त्या, उदारे फले सति शालीनाम् अवनतिं दधत्या, मयूराणाम् उग्रं मदं विषमिव हरन्त्या शरदा कृत्स्नस्य लोकस्य अयं विनय इव कृत।

सन्दर्भ— शरदर्तु में स्वाभाविक रूप से सम्पन्न होने वाली बातों के द्वारा सब को अपनी मर्यादा में रहने का उपदेश दिए जाने की प्रस्तुत श्लोक में कवि की कल्पना अत्यन्त मौलिक एवं काव्यात्मक है।

हिन्दी अनुवाद—

और भी-

आश्चर्य है (कि) बढ़े हुए जलों को अपनी मर्यादा में रहने का उपदेश देती हुई, अत्यधिक फल होने पर धान के पौधों को नीचे झुकाती हुई, मोरों के भयंकर घमण्ड को विष के समान नष्ट करती हुई शरद् ऋतु के द्वारा मानों सारे संसार को विनम्र बना दिया गया है। (८)

स्पष्टीकरण— वर्षा ऋतु में नदियों में जल मलिन हो जाते हैं व बढ़ जाते हैं, वे शरदर्तु के आते ही स्वच्छ होकर अपने स्थान पर पुनः चले जाते हैं। स्वाभाविक रूप से घटित होने वाली इस घटना में कवि ने कल्पना की है मानो शरदर्तु मर्यादा का उल्लंघन करने वालों को मर्यादा में रहने का पाठ पढ़ा रही है। इसी प्रकार शरदर्तु में धान के पौधे धान से लद जाने के कारण नीचे झुक जाते हैं। इसमें कवि ने कल्पना की कि मानो शरदर्तु सम द्धि की व द्धि होने पर भी मनुष्य को विनम्र रहने का उपदेश दे रही है। इसी प्रकार वर्षा ऋतु में जो जोर जोर-जोर से केका करते थे शरद् के आते ही वे शान्त हो जाते हैं

इसमें कवि ने कल्पना की है मानो शरदर्तु घमण्डियों के घमण्ड को दूर कर रही है और इस प्रकार मानो समस्त संसार को विनम्रता का पाठ पढ़ा रही है।

उक्त श्लोक में शिखरिणी छन्द तथा उत्प्रेक्षा अलंकार है।

संस्कृत भावार्थ—

'आश्चर्यम्! प्रव द्धानां जलानां स्वाभाविकं प्रवाहस्थानं नियोजयन्त्या, धान्यानां प्रभूते फले सति नम्रतां कुर्वत्या, शिखिनाम् असह्यं गर्व गरलमिव दूरीकुर्वत्या शरदा अयं समस्त एव संसारः विनयीकृतः इव।

इमामपि—

भर्तुस्तथा कलुषितां बहुवल्लभस्य
मार्गे कथंचिदवतार्य तनूभवन्तीम्।
सर्वात्मना रतिकथाचतुरेव दूती
गंगां शरन्नयति सिन्धुपतिं प्रसन्नाम्।।६।।

अन्वय— बहुवल्लभस्य भर्तुः तथा कलुषितां गंगां शरत् रतिकथाचतुरा दूती इव कथंचित् मार्गे अवतार्य तनूभवन्तीम् सर्वात्मना प्रसन्नाम् (ताम्) सिन्धुपतिं नयति।

सन्दर्भ— चन्द्रगुप्त सुगांग महल की छत से जब नीचे प्रवाहित होती हुई स्वच्छ जल वाली गंगा को देखता है तो सहसा वह गंगा, शरत् और समुद्र पर नायिका, दूती और नायक का आरोप करते हुए कहता है।

हिन्दी अनुवाद—

इसको भी -

बहुत सी पत्नियों (नदियों) से प्रेम करने वाले अपने पति (समुद्र) से कलुषित गंगा को शरद्, प्रेम वार्ता में चतुर दूती के समान बड़ी कठिनाई से उचित मार्ग पर लाकर, पतली होती हुई तब सब प्रकार से प्रसन्न उसको (गंगा को) समुद्र के पास ले जाती है।(६)

स्पष्टीकरण— प्रस्तुत श्लोक में कवि की कल्पना अनुपम व अत्यन्त काव्यात्मक है। कवि ने गंगा पर रूठी हुई नायिका, शरत् पर प्रेमवार्ता में चतुर दूती तथा समुद्र पर नायक का आरोप किया है। जिस प्रकार जब कोई नायिका अपने पति से बहुत सी पत्नियों से प्रेम करने के कारण क्रुद्ध होकर मुँह फुला लेती है तक दूती अनेक प्रकार से समझा-बुझाकर उसे प्रसन्न करती है व उसके फूले हुए मुँह को सामान्य करके उसे अपने पति के पास ले जाती है इसी प्रकार शरदर्तु भी अपने पति समुद्र से कुद्ध हुई गंगा को जैसे-तैसे समझा बुझाकर उसे समुद्र के पास ले जाती है। वास्तविकता यह है कि वर्षा ऋतु में गंगा का जल मलिन भी हो जाता है और बढ़ भी जाता है इसमें कवि ने उसके क्रोध के कारण फूले हुए मुख की कल्पना की है। जब शरद् आती है तो गंगा का पानी स्वयं ही स्वच्छ हो जाता है और कम भी हो जाता है। इसमें कवि ने कल्पना की है कि मानों शरदर्तु ने प्रेमवार्ता में कुशल दूती के समान उसे प्रसन्न कर (स्वच्छ कर) समुद्र के पास पहुंचा दिया।

उक्त श्लोक में वसन्ततिलका छन्द तथा उपमा अलंकार है।

संस्कृत भावार्थ—

बहवो भार्याः यस्य तस्य भर्तुः सागरस्य प्राव षि कर्दमसम्पर्कात् आविलां वर्षात्ययेन कृशी भवन्तीं स्वच्छसलिलां गंगा भर्तुः समुद्रस्य मार्गे केनापि प्रकारेण अवतार्य शरत् सर्वात्मना समुद्रं नयति यथा नायकापराधेनकुपितां नायिकां प्रसादमुखी कृत्वा नायकं प्रति प्रणयकथाप्रवीणादूती प्रापयति।

(समान्तान्नाट्येनावलोक्य) अये कथमप्रव त्तकौमुदीमहोत्सवं कुसुमपुरम्। आर्य वैहीनरे, अथास्मद्वचनादाघोषितः कुसुमपुरे कौमुदीमहोत्सवः।

क चु०— अथ किम्।

राजा०— तत्किं न ग हीतमस्मद्वचनं पौरैः?

क चु०— (कर्णौ पिधाय) शान्तं पापं, शान्तं पापम्। प थिव्यामस्खलितपूर्वं देवस्य शासनं कथं पौरेषु स्खलिष्यति।

राजा— तत्कथमप्रव त्तकौमुदीमहोत्सवमद्यापि कुसुमपुरम्?

> **धूर्तैरवायमानाः स्फुटचतुरकथाकोविदैर्वेशनार्यो**
> **नालंकुर्वन्ति रथ्याः प थुजघनभराक्रान्तिमन्दैः प्रयातैः।**
> **अन्योन्यं स्पर्द्धमाना न च ग हविभवैः स्वामिनो मुक्तशंकाः**
> **साकं स्त्रीभिर्भजन्ते विधिमभिलषितं पार्वणं पौरमुख्याः।।१०।।**

अन्वय— स्फटचतुरकथाकोविदैः धूर्तैः अवायमानाः वेशनार्यः प थुजघनभराक्रान्तिमन्दैः प्रयातैः रथ्याः नालंकुर्वन्ति। च न ग हविभवैः अन्योन्यं स्पर्द्धमानाः स्वामिनः पौरमुख्याः मुक्तशंका स्त्रीभिः साकम् अभिलषितं पार्वणं विधिं भजन्ते।

सन्दर्भ— प्रस्तुत श्लोक में चन्द्रगुप्त कुसुमपुर में कौमुदीमहोत्सव मनाए जाने के किसी भी लक्षण के न होने का वर्णन करता है।

हिन्दी अनुवाद—

(चारों तरफ अभिनयपूर्वक देखकर) अरे, कुसुमपुर में कौमुदीमहोत्सव किस प्रकार प्रारम्भ नहीं हुआ। आर्य वैहीनर, क्या हमारी आज्ञा से कुसुमपुर में कौमुदी महोत्सव की घोषणा करवा दी गई थी।

क चु०— और क्या।

राजा०— तो नगरवासियों द्वारा हमारी आज्ञा का पालन नहीं किया गया?

कच्चु०— (दोनों कानों को बन्द करके) पाप शान्त हो, पाप शान्त हो। प थ्वी पर कभी स्खलित न होने वाली महाराज की आज्ञा नगरवासियों में किस प्रकार उल्लंघित होगी।

राजा— तो आज भी कुसुमपुर प्रारम्भ न हुए कौमुदीमहोत्सव वाला कैसे है?

स्पष्ट और चतुर कथा करने में कुशल धूर्तों के द्वारा अनुसरण की जाती हुई वेश्याएँ विशाल जाँघों के भार के कारण मन्द गति से गलियों को अलंकृत नहीं कर रही और न ही अपने घर के ऐश्वर्य द्वारा एक दूसरे से स्पर्द्धा करते हुए धन के स्वामी मुख्य नगरवासी भयरहित होकर (अपनी) स्त्रियों के साथ (अपने) इच्छित पूर्णमासी के उत्सव को मना रहे हैं। (१०)

उक्त श्लोक में स्रग्धरा छन्द तथा स्वाभावोक्ति अंलकार है।

संस्कृत भावार्थ—

स्पष्टाः अगूढाः कुशलाः च याः वाचः तासु विचक्षणैः विटैः अनुगम्यमानाः सत्यः वारवनिताः स्थूलजघनस्य यः भारः तस्य आरोपणेन अलसैः पादचारैः राजमार्गान् न शोभन्ते। अपि च ग हसम्पत्तिभिः परस्परम् आधिक्येन दर्शयन्तः स्वं धनमेषामस्तीति स्वामिनः धनिकाः नागरिकवर्य्याः निर्भयाः सन्तः निजवधूभिः सह काङ्क्षितं शरत्पूर्णिमासम्बन्धिनं महोत्सवं न सेवन्ते।

क चु०— एवमेवैतत्

राजा०— किमेतत्?

क चु०— देव, इदम्।

राजा०— स्फुटं कथय।

क चु०— प्रतिषिद्धः कौमुदीमहोत्सवः।

राजा०— (सक्रोधम्) आः केन?

क चु०— देव, नातः परं विज्ञापयितुं शक्यम्।

राजा०— न खलु आर्यचाणक्येनापहृतः प्रेक्षकाणामतिशयरमणीयश्चक्षुषोः विषयः।

क चु०— देव को न्यो जीवितुकामो देवस्य शासनमतिवर्तेत।

राजा०— शोणोत्तरे, उपवेष्टुमिच्छामि।

कच्चु०— देव इदं सिंहासनम्। उपविशतु देवः। (देव एदं सिंहासणं। उपविसदु देवो।)

राजा०— (नाट्येनोपविश्य) आर्य वैहीनरे, आर्यचाणक्यं द्रष्टुमिच्छामि।

क चु०— यदाज्ञापयति देवः। (इति निष्क्रान्तः)

(ततः प्रविशति आसनस्थः स्वभवनगतः कोपानुविद्धां चिन्तां नाटयंश्चाणक्यः)

हिन्दी अनुवाद—

क चु०— यह ऐसा ही है।

राजा०— यह कैसा है।

क चु०— महाराज, यह।

राजा०— स्पष्ट कहो।

क चु०— कौमुदीमहोत्सव का निषेध कर दिया गया है।

राजा०— (क्रोधपूर्वक) आः किसके द्वारा?

क चु०— महाराज, इससे अधिक निवेदन करने में समर्थ नहीं हूँ।

राजा०— कहीं आर्य चाणक्य के द्वारा तो दर्शकों के नेत्रों का अत्यधिक रमणीय विषय नहीं छीन लिया गया।

क चु०— महाराज, जीने का इच्छुक दूसरा कौन महाराज की आज्ञा का उल्लंघन करेगा।

राजा०— शोणोत्तरे, मैं बैठना चाहता हूँ।

क चु०— महाराज यह सिंहासन है। आप बैठें।

राजा०— (अभिनयपूर्वक बैठकर) आर्य वैहीनर, आर्य चाणक्य को देखना चाहता हूँ।

क चु०— जैसी महाराज की आज्ञा। (ऐसा कह कर निकल जाता है)

(तब अपने भवन में आसन पर बैठा हुआ क्रोधयुक्त चिन्ता का अभिनय करता हुआ चाणक्य प्रवेश करता है)

स्पष्टीकरण— इस अंश से स्पष्ट हो जाता है कि चाणक्य के क्रोधी स्वभाव से सभी व्यक्ति कितना अधिक भयभीत रहते थे। इसी कारण क चुकी चन्द्रगुप्त को बतलाने का साहस नहीं कर पाया कि कौमुदी महोत्सव आर्य चाणक्य के द्वारा निषिद्ध किया गया है।

चाण०— कथं स्पर्द्धते मया सह दुरात्मा राक्षसः।

कृतागाः कौटिल्यो भुजग इव निर्याय नगराद्
यथा नन्दान्हत्वा न पतिमकरोन्मौर्यव षलम्।
तथाहं मौर्येन्दोः श्रियमपहरामीति कृतधीः
प्रकर्षं मद्बुद्धेरतिशयितुमेष व्यवसितः।।११।।

अन्वय— यथा कृतागाः कौटिल्यः भुजग इव नगराद्निर्याय नन्दान् हत्वा मौर्य वष लं न पितम् अकरोत् तथा अहं मौयन्दोः श्रियम् अपहरामि इति कृतधीः एषः मद्बुद्धेः प्रकर्षम् अतिशयितुं व्यवसितः।

सन्दर्भ— चन्द्रगुप्त को नष्ट कर उसकी राज्यलक्ष्मी छीनने के लिए प्रयत्नशील राक्षस के दुस्साहस का परिहास करते हुए चाणक्य अपने मन में विचार करता है।

हिन्दी अनुवाद—

चाण०— मेरे साथ दुष्ट राक्षस किस प्रकार स्पर्धा कर रहा है।

जिस प्रकार अपमानित किए जाने पर चाणक्य ने एक साँप के समान कुसुमपुर से निकल कर नन्दों को नष्ट कर चन्द्रगुप्त मौर्य को राजा बना दिया उसी प्रकार मैं (राक्षस) चन्द्रगुप्त से राज्यलक्ष्मी छीन लूँगा, ऐसा निश्चय करके यह (राक्षस) मेरी बुद्धि की प्रकृष्टता का अतिक्रमण करने के लिए प्रयत्नशील है। (११)

स्पष्टीकरण— चाणक्य के अनुसार राक्षस अपनी बुद्धि को चाणक्य की बुद्धि से अधिक मानकर चन्द्रगुप्त से राज्यलक्ष्मी यह सोचकर वापस लेना चाहता है कि जिस प्रकार नन्दों द्वारा भरी सभा में अपमानित किए जाने पर चाणक्य ने उन्हें समूल नष्ट कर दिया उसी प्रकार वह भी चन्द्रगुप्त को नष्ट कर राज्यलक्ष्मी वापस ले लेगा। परन्तु यह राक्षस का केवल भ्रम ही है।

उक्त श्लोक में शिखरिणी छन्द तथा उपमा अलंकार है।

संस्कृत भावार्थ—

यथा आचरितम् अग्रासनाकर्षणरूपः अपराधः यस्मिन् ताद शः सन् चाणक्यः सर्पवत् कुसुमपुरात् बहिर्गत्वा नन्दान् विनाश्य चन्द्रगुप्तं राजानम् अकरोत् तथा अहं (राक्षसः) चन्द्रगुप्तस्य राज्यलक्ष्मीम् अपनयामि अनेन प्रकारेण कृतनिश्चयः एषः राक्षसः मदीयायाः मतेः प्रकृष्टताम् अतिक्रमितुं प्रयतते। परम् अस्य राक्षसस्य मम इव बुद्धिबलं नास्ति। अयं तु मत्सरमात्रेण एव मौर्यापकारमात्राय एव प्रयतते। इदमेव राक्षसस्य दुर्व्यसनमिति।

(आकाशे लक्ष्यं बद्ध्वा) राक्षस, राक्षस, विरम्यतामस्माद्दुर्व्यसनात्।

उत्सिक्तः कुसचिवद ष्टराज्यभारो
नन्दो सौ न भवति चन्द्रगुप्त एषः।
चाणक्यस्त्वमपि च नैव केवलं ते
साधर्म्यं मदनुकृतेः प्रधानवैरम्।।१२।।

अन्वय— उत्सिक्तः कुसचिवद ष्टराज्यभारः असौ नन्दः न भवति एषः चन्द्रगुप्तः। च त्वमपि चाणक्यः नैव केवलं प्रधानवैरं ते मदनुकृतेः साधर्म्यम्।

सन्दर्भ— प्रस्तुत श्लोक में चाणक्य राजा नन्द को चन्द्रगुप्त से तथा राक्षस को स्वयं से हीन बतलाते हुए इस बात की तरफ संकेत करता है कि राक्षस का यह सोचना कि वह चन्द्रगुप्त से राज्यलक्ष्मी छीन कर मलयकेतु को दे देगा, उसका भ्रममात्र ही है।

हिन्दी अनुवाद—

(आकाश में द ष्टि बाँधकर) राक्षस, राक्षस इस व्यर्थ के परिश्रम से रुक जाओ।

घमण्डी और अयोग्य मन्त्रियों द्वारा सम्हाले गए राज्यभार वाला वह नन्द नहीं है। यह तो चन्द्रगुप्त है और तुम भी चाणक्य नहीं हो। केवल 'प्रधान पुरुष से शत्रुता होना' तुम्हारा मेरा अनुकरण करने में समान धर्म (समानता) है।(१२)

स्पष्टीकरण— चाणक्य ने या तो क्रोधावेश में अथवा अपने मन को समझाने के लिए यह कहा है कि राजा नन्द घमण्डी थे व उनका राज्य भार अयोग्य मन्त्रियों द्वारा सम्हाला जाता था क्योंकि वह क्रोध युक्त चिन्ता का अभिनय करता हुआ दिखलाया गया है सम्पूर्ण नाटक में नन्दों के घमण्डी होने का संकेत भी कहीं नहीं है। सम्भवतः चाणक्य ने उनके लिए 'उत्सिक्तः' विशेषण का प्रयोग उनके द्वारा स्वयं को आदर के आसन से हटाए जाने के कारण ही किया होगा। उसके मन्त्रियों की नीतिनिपुणता तथा योग्यता की प्रशंसा तो चाणक्य ने स्वयं ही १.२३ में उन्हें विक्रान्तैः, नयशालिभिः, सुसचिवैः इत्यादि विशेषणों का प्रयोग करके की है। इतना ही नहीं राक्षस के गुणों से तो आकृष्ट होकर ही वह उसे चन्द्रगुप्त का अमात्यपद देना चाहता है।

राक्षस और चाणक्य में एक समानता है और वह यह है कि चाणक्य की शत्रुता भी प्रधानपुरुष अर्थात् राजा नन्द से थी और राक्षस की शत्रुता भी प्रधान पुरुष अर्थात् चन्द्रगुप्त से है।

उक्त श्लोक में प्रहर्षिणी छन्द तथा परिकर अलंकार है।

संस्कृत भावार्थ—

अयं नन्दः न वर्तते यः स्वयं गर्वितः आसीत् यस्य च राज्यतन्त्रम् कुत्सितैः अमात्यैः निरूपितम् आसीत्। अयं तु मया कृतः राजा चन्द्रगुप्तः अस्ति। पुनः त्वमपि कौटिल्यः नासि। केवलं मुख्येन राज्ञा सह यत् वैरं तदेव तव या मदीया अनुकृतिः तस्याः तुल्यता। यथा मम राजा नन्देन सह विरोध आसीत् तथा तवापि राज्ञा चन्द्रगुप्तेन सह विरोधः अस्ति एतन्मात्रमावयोः समता।

(विचिन्त्य) अथवा नातिमात्रमत्र वस्तुनि मया मनः खेदयितव्यम्। कुतः?—

मद्भ त्यैः किल सो पि पर्वतसुतो व्याप्तः प्रविष्टान्तरैर्
उद्युक्ताः स्वनियोगसाधनविधौ सिद्धार्थकाद्याः स्पशाः।
कृत्वा सम्प्रति कैतवेन कलहं मौर्येन्दुना राक्षसं
भेत्स्यामि स्वमतेन भेदकुशलं ह्येष प्रतीपं द्विषः।।१३।।

अन्वय— सः पर्वतसुतः अपि किल प्रविष्टान्तरैः मद्भ त्यैः व्याप्तः सिद्धार्थकाद्याः स्पशाः स्वनियोगसाधनविधौ उद्युक्ताः। सम्प्रति मौर्येन्दुना कैतवेन कलहं कृत्वा (अहं) एषः स्वमतेन भेदकुशलं प्रतीपं राक्षसं द्विषः भेत्स्यामि।

सन्दर्भ— चाणक्य राक्षस और मलयकेतु में फूट डलवाने के लिए जब अपनी योजनाओं पर द ष्टिपात करता है तो उसे अपनी सफलता निश्चित सी जान पड़ती है।

हिन्दी अनुवाद—

(सोचकर) अथवा इस विषय में मेरे द्वारा मन को अत्यधिक दुःखी नहीं किया जाना चाहिए। क्योंकि-

वह पर्वतक पुत्र (मलयकेतु) भी निश्चित रूप से शत्रु के ह्रदय में प्रवेश करने वाले अर्थात् पूर्ण रूप से विश्वास प्राप्त कर लेने वाले मेरे सेवकों द्वारा घेर लिया गया है। सिद्धार्थक इत्यादि गुप्तचर अपने कार्य को निष्पन्न करने में तत्पर हैं। अब चन्द्रगुप्त के साथ बनावटी रूप से झगड़ा करके मैं यह अर्थात् तुरन्त ही, अपनी बुद्धि से शत्रु में फूट डालने में कुशल (तथा) हमारे विरुद्ध आचरण करने वाले राक्षस को शत्रु (मलयकेतु) से अलग कर दूँगा।(१३)

स्पष्टीकरण— चाणक्य सोचता है कि मेरे सभी गुप्तचर अपना-अपना कार्य कुशलतापूर्वक कर रहे हैं। भागुरायण ने मलयकेतु का पूर्ण विश्वास प्राप्त कर लिया है और सिद्धार्थक इत्यादि गुप्तचर भी राक्षस और मलयकेतु में फूट डलवाने के लिए प्रयत्नशील हैं। अब मैं चन्द्रगुप्त से कृतककलह कर शीघ्र ही अपने विरुद्ध आचरण करने वाले राक्षस को मलयकेतु से अलग कर दूँगा जो राक्षस अपनी बुद्धि के अनुसार स्वयं को शत्रु में फूट डालने में कुशल समझता है।

उक्त श्लोक में शार्दूलविक्रीडित छन्द है।

संस्कृत भावार्थ—

सः पर्वतकपुत्रः मलयकेतुः वशीकृतम् अन्तःकरणं यैः ताद शैः मत्सेवकैः भागुरायणादिभिः परिव तः। सिद्धार्थकाद्याः प्रमुखाः चराः अपि निजकर्मणः निष्पादनविषये तत्पराः। भागुरायणादयो मलयकेतौ, सिद्धार्थकादयः राक्षसे व्यापारिता भेदार्थं निपुणं यतमानास्तिष्ठन्ति। इदानीं चन्द्रगुप्तेन सह कृतककलहं कृत्वा अहम् अचिरात् स्वबुद्ध्या भेदारोपणे प्रवीणम्, अस्मासु प्रतिकूलचारिणं राक्षसं शत्रोः मलयकेतोः प थक् करिष्यामि।

(प्रविश्य)

क चु०— कष्टं खलु सेवा—

भेतव्यं न पतेस्ततः सचिवतो राज्ञस्ततो वल्लभाद्
अन्येभ्यश्च वसन्ति ये स्य भवने लब्धप्रसादा विटाः।

दैन्यादुन्मुखदर्शनापलपनैः पिण्डार्थमायस्यतः
सेवां लाघवकारिर्णी कृतधियः स्थाने श्वव त्तिं विदुः।।१४।।

अन्वय— न पतेः ततः सचिवतः ततः राज्ञः वल्लभाद् च अन्येभ्यः ये विटाः लब्धप्रसादा अस्य भवने वसन्ति, भेतव्यम्। दैन्यादुन्मुखदर्शनापलपनैः पिण्डार्थमायस्यतः लाघवकारिर्णी सेवां कृतधियः स्थाने श्वव त्तिं विदुः।

सन्दर्भ— चन्द्रगुप्त द्वारा घोषित कौमुदीमहोत्सव का चाणक्य द्वारा निषेध कर दिए जाने पर चन्द्रगुप्त क चुकी वैहीनर को चाणक्य को बुलाने के लिए भेजता है। क चुकी इस कारण अत्यधिक भयभीत है क्योंकि उसे पता है कि चाणक्य यह सुनते ही क्रोध से आग-बबूला हो जाएगा परन्तु फिर भी सेवक होने के कारण उसे राजा की आज्ञा का पालन न चाहते हुए भी करना पड़ रहा है। अतः वह अत्यन्त दुःखी होता हुआ सेवा को श्वव त्ति के समान बतलाता है।

हिन्दी अनुवाद—

(प्रवेश करके)

क चु०— निस्सन्देह सेवा बहुत दुःखमयी है-

(सेवक को) सर्वप्रथम राजा से फिर अमात्यों से फिर राजा के प्रियजनों से और दूसरों से जो धूर्त हैं (और) कृपा प्राप्त कर इसके महल में रहते हैं, डरना पड़ता है। दीनता के कारण ऊपर मुख कर देखने से (तथा) अपने मनोभावों को छिपाने से पेट भरने के लिए कष्ट उठाते हुए (सेवक) की (उसको) तुच्छ बनाने वाली सेवा को विद्वान् उचित ही कुत्ते की जीविका कहते हैं।(१४)

स्पष्टीकरण— एक सेवक और एक कुक्कर दोनों को अपना पेट भरने के लिए स्वामी के सामने एक समान आचरण करना पड़ता है। दोनों को ही दीनतापूर्वक अपना मुख ऊपर करके अपने स्वामी के मुख पर आए हुए भावों को पढ़कर तदनुसार ही आचरण करना होता है परन्तु अपने मनोभावों को उन्हें छिपाना पड़ता है।

उक्त श्लोक में शार्दूलविक्रीडित छन्द तथा काव्यलिंग अलंकार है।

सस्ंकृत भावार्थ—

सेवकेन सर्वप्रथमं राज्ञः भेतव्यं कदा वा कुप्येदिति। तदन्तरं अमात्यात् भेतव्यं सो पि राजेव निग्रहे धिकारी भवति। तदन्तरं राज्ञः प्रियजनात् भेतव्यं स हि रुष्टः राजानं विज्ञापयेत् इति। एतदतिरिक्तं प्राप्तानुग्रहाः ये धूर्ता अस्य राज्ञः प्रासादे निवसन्ति तेभ्यः अपि तेन सेवकेन भेतव्यम्। ते पि राज्ञे निवेद्य अप्रियं कर्तुं शक्ताःइति। दीनभावात् मुखम् उन्नम्य्य यानि वीक्षितानि मनोगतभावान् च निलीय यानि च चाटुवचनानि तैः करणैः उदरपूर्त्यर्थं क्लिश्यामानस्य सेवकस्य नीचत्वविधायिनी शुश्रूषाम् विद्वांसः युक्तम् एव कुक्करजीविकां कथयन्ति।

(परिक्रम्यावलोक्य च) इदमार्यचाणक्यग हम्। यावत्प्रविशामि।
(प्रविश्यावलोक्य च) अहो राजाधिराजमन्त्रिणो विभूतिः।

तथाहि—

उपशकलमेतद् भेदकं गोमयानां
बटुभिरुपह्वतानां बर्हिषां स्तूपमेतत्।

शरणमपि समिद्भिः शुष्यमाणाभिराभिर्
विनमितपटलान्तं द श्यते जीर्णकुड्यम्।।१५।।

अन्वय— गोमयानां भेदकम् एतद् उपशकलम् बटुभिः उपहृतानां बर्हिषाम् एतत् स्तूपम्। शुष्यमाणाभिराभिः समिद्भिः विनमितपटलान्तं च जीर्णकुड्यम् शरणमपि द श्यते।

सन्दर्भ— क चुकी राजाधिराज महाराज चन्द्रगुप्त के मुख्यमंत्री आर्य चाणक्य के वीतरागी होने का तथा उनके द्वारा अत्यधिक सादे जीवन को व्यतीत किए जाने का वर्णन करता है।

हिन्दी अनुवाद—

(घूमकर और देखकर) यह आर्य चाणक्य का घर है। तो मैं प्रवेश करता हूँ (प्रवेश करके और देखकर) अहो सम्राट् (चन्द्रगुप्त) के मंत्री का ऐश्वर्य (तो देखो) -

उपलों को तोड़ने वाला यह पत्थर का टुकड़ा है। शिष्यों द्वारा लाई गई कुशा घास का यह ढेर है। सुखाई जाती हुई इन समिधाओं से झुके हुए किनारों वाली छत वाला तथा टूटी-फूटी दीवारों वाला(यह) घर भी दिखाई दे रहा है।(१५)

स्पष्टीकरण— वस्ततः क चुकी चाणक्य के अत्यधिक सादे जीवन को देखकर व्यंग्य करता हुआ कहता है कि सब राजाओं के राजा महाराज चन्द्रगुप्त के मुख्यमंत्री का वैभव तो देखो कि कहीं गोबर के उपलों को तोड़ने के लिए पत्थर हैं तो कहीं कुशा घास का ढेर है। घर भी इतना जीर्ण-शीर्ण है कि इसके छत के किनारे समिधाओं के भार से झुक गए हैं और दीवारें भी टूटी-फूटी हैं। चाणक्य यदि चाहता तो ऐशो आराम की जिन्दगी व्यतीत कर सकता था। परन्तु वह वीतराग पुरुष होने के साथ-साथ सादे जीवन में भी विश्वास रखता था।

उक्त श्लोक में मालिनी छन्द तथा स्वाभावोक्ति अलंकार है।

संस्कृत भावार्थ—

करीषाणां विदारकम् एतद् प्रस्तरखण्डम् द श्यते। शिष्यभूतैः ब्राह्मणकुमारैः आनीतानां कुशानाम् एषा राशिः द श्यते। आतपे शोषं गच्छन्तीभिः पुरोवर्तिनीभिः यज्ञीयकाष्ठैः अतिनमितः छदिप्राप्तः यस्य ताद शं कालध्वस्तं भित्तिः यस्य च ताद शम् आर्यचाणक्यस्य ग हमपि लक्ष्यते।

तत्स्थाने खल्वस्य व षलो देवश्चन्द्रगुप्तः कुतः।

स्तुवन्ति श्रान्तास्याः क्षितिपतिमभूतैरपि गुणैः
प्रवाचः कार्पण्याद्यदवितथवाचो पि पुरुषाः।
प्रभावस्त ष्णायाः स खलु सकलः स्यादितरथा
निरीहाणामीशस्त णमिव तिरस्कारविषयः।।१६।।

अन्वय— अवितथवाचोअपि पुरुषाः यत् कार्पण्याद् प्रवाचः अभूतैरपि गुणैः क्षितिपतिं श्रान्तास्याः स्तुवन्ति सः सकलः खलु त ष्णायाः प्रभावः स्यात् इतरथा निरीहाणाम् ईशः त णम् इव तिरस्कार विषयः।

सन्दर्भ— क चुकी चाणक्य के अत्यन्त सीधे सादे जीवन को देखकर चाणक्य द्वारा राजा चन्द्रगुप्त को 'व षल' कहे जाने में कोई अनौचित्य नहीं समझता क्योंकि एक निःस्प ह और कर्मठ व्यक्ति के लिए राजा तिनके के समान अमहत्त्वपूर्ण ही होता है। जो व्यक्ति राजा से कुछ

आशा रखते हैं, वही राजा की चापलूसी करते हैं। प्रस्तुत श्लोक में क चुकी ने अपने स्वामी के प्रति साधारण व्यक्तियों द्वारा किए जाने वाले और एक वीतरागी द्वारा किए जाने वाले व्यवहार में अति सुन्दर ढंग से अन्तर स्पष्ट किया है।

हिन्दी अनुवाद—

सदा सच बोलने वाले मनुष्य भी जो दीनतावश बहुत बोलते हैं (और) प्राप्त न होने वाले गुणों के लिए भी राजा की मुँह थकने तक प्रशंसा करते हैं, वह सारा निस्सन्देह त ष्णा का ही तो प्रभाव है अन्यथा इच्छा से रहितों के लिए (तो) राजा तिनके के समान तिरस्कार का विषय होता है।(१६)

स्पष्टीकरण— क चुकी का आशय यह है कि सत्यवादी मनुष्य भी अपनी स्वार्थपूर्ति के लिए ही राजा की बढ़ चढ़ कर उन गुणों के लिए भी भूरि भूरि प्रशंसा करते हैं जो राजा में विद्यमान नहीं हैं। इसके विपरीत वीतरागियों के लिए तो राजा अन्य व्यक्तियों के समान एक साधारण मनुष्य ही होता है। उनकी द ष्टि में उसका विशेष महत्व नहीं होता।

प्रस्तुत श्लोक में विरोधाभास तथा उपमा का योग होने से संस ष्टि अलंकार तथा शिखरिणी छन्द है।

संस्कृत भावार्थ—

सत्यवचनशीलाः अपि पुरुषाः यत् दैन्यात् वाचालाः सन्तः बहुभाषणे पि श्रमरहिताः भूत्वा अविद्यमानैः अपि गुणैः राजानम् उपश्लोकयन्ति निश्चितं सः सम्पूर्णः लोभस्यैव महिमा। अन्यथा धनत ष्णारहितानां तु राजा त णमिव अवज्ञायाः पात्रं भवेत् यथा चन्द्रगुप्तश्चणक्यस्य। चाणक्यः निस्प ह त्वात् राजानमपि त णीकृत्य भ त्यवत् व्यपदिशति इत्यर्थः।

(विलोक्य सभयम्) अये तदयमार्यचाणक्यस्तिष्ठति।

यो नन्दमौर्यन पयोः परिभूय लोकम्
अस्तोदयौ प्रतिदिशन्नविभिन्नकालम्।
पयार्यपातितहिमो ष्णमसर्वगामि
धाम्नातिशाययति धाम सहस्त्रधाम्नः।।१७।।

अन्वय— यः लोकम् परिभूय नन्दमौर्यन पयोः अस्तोदयौ अविभिन्नकालं प्रतिदिशन् धाम्ना असर्वगामि पयार्यपातितहिमोष्णं सहस्त्रधाम्नः धाम अतिशाययति।

सन्दर्भ— प्रस्तुत श्लोक में क चुकी चाणक्य को उसके प्रताप के कारण सूर्य से भी अधिक प्रभावशाली एवं तेजस्वी बतलाता है।

हिन्दी अनुवाद—

(देखकर भयपूर्वक) अरे यह आर्य चाणक्य बैठे हैं।

जो (चाणक्य) समस्त संसार को परास्त कर राजा नन्द और राजा चन्द्रगुप्त का अस्त और उदय एक ही समय में दिखाने के कारण अपने प्रताप से सर्वत्र न जाने वाले (और) क्रम से सर्दी गर्मी करने वाले सूर्य के तेज को परास्त कर रहा है। (१७)

स्पष्टीकरण— क चुकी चाणक्य के तेज को सूर्य के तेज से अधिक उत्कृष्ट बतलाता है क्योंकि चाणक्य ने सारे संसार पर अपना आधिपत्य एक साथ ही जमा लिया जबकि सूर्य के तेज का आधिपत्य एक तरफ दिन व एक तरफ रात होने के कारण आधे लोक में ही

होता है। इसके अतिरिक्त चाणक्य के तेज ने एक ही समय में राजा नन्द का अस्त व चन्द्रगुप्त का उदय कर दिया है जबकि सूर्य का तेज सर्दी गर्मी एक साथ न कर क्रमानुसार ही करता है।

उक्त श्लोक में व्यतिरेकालंकार तथा वसन्ततिलका छन्द है।

संस्कृत भावार्थ—

यः आर्यचाणक्यः निखिलं भुवनं स्वाधीनं कृत्वा समकालमेव न परस्य नन्दस्य तिरोभावं न परस्य मौर्यस्य च अविर्भावं कुर्वन् स्वतेजसा निखिलं भुवनं न व्याप्नोति यत् ताद शं, कालक्रमेण निर्मितम् अवतारितं वा शीतम् आतपश्च येन ताद शं सूर्यस्य, तेजः अतिशेते।

(जानुभ्यां भूमौ निपत्य) जयत्वार्यः।

चाण०— वैहीनरे, किमागमनप्रयोजनम्?

क चु०— आर्य, प्रणतिससंभ्रमोच्चलितभूमिपालमौलिमालामाणिक्यशकलशिखापिशंगीकृतपादपद्मयुगलः सुग हीतनामधेयो देवश्चन्द्रगुप्त आर्यं शिरसा प्रणम्य विज्ञापयति-अकृतक्रियान्तरायमार्यं द्रष्टुमिच्छामीति।

चाण०— व षलो मां द्रष्टुमिच्छति। वैहीनरे, न खलु व षलस्य श्रवणपथं गतो यं मत्कृतः कौमुदीमहोत्सवप्रतिषेधः।

क चु०— आर्य, अथ किम्।

चाण०— (सक्रोधम्) आः केन कथितम्।

क चु०— (सभयम्) प्रसीदत्वार्यः। स्वयमेव सुगांगप्रासादगतेन देवेनावलोकितमप्रव त्तकौमुदीमहोत्सवं पुरम्।

चाण०— आः ज्ञातम्। ततो भवद्भिरन्तरा प्रोत्साह्य कोपितो व षलः। किमन्यत्।

(क चुकीभयं नाट्यंतूष्णीमधोमुखस्तिष्ठति)

क चु०— अहो राजपरिजनस्य चाणक्यस्योपरि प्रद्वेषपक्षपातः। अथ क्व व षलः।

चाण०— (भयं नाटयन्) आर्य, सुगागंगतेन देवेनाहनार्यपादमूलं प्रेषितः।

क चु०— (उत्थाय) सुगागंमार्गमादेशय।

चाण०— इत इत आर्यः। (उभौ परिक्रामतः)

क चु०— एष सुगांगप्रासादः। शनैरारोहत्वार्यः।

चाण०— (नाट्येनावह्यावलोक्य च) अये सिंहासनमध्यास्ते व षलः। साधु-साधु।

हिन्दी अनुवाद—

(दोनों घुटनों से प थ्वी पर गिरकर) आर्य विजयी हों।

चाण०— वैहीनर, आने का क्या प्रयोजन है।

क चु०— आर्य, शीघ्रता से प्रणाम करने के कारण हिलते हुए राजाओं के मुकुटों की पंक्ति में (जड़ित) रत्न खण्डों की किरणों से रंगे हुए चरण कमल वाले (तथा) शुभ नाम वाले राजा चन्द्रगुप्त आपको सिर से प्रणाम करके विनम्र निवेदन करते हैं कि किसी कार्य में बाधा न होने पर आर्य को देखना चाहता हूँ।

चाण०— व षल मुझे देखना चाहता है। वैहीनर, कहीं मेरे द्वारा किए गए कौमुदीमहोत्सव के निषेध की बात व षल के कान में तो नहीं पड़ गई।

क चु०— आर्य, और क्या

चाण०— आः किसके द्वारा कही गई।

क चु०— (भयपूर्वक) आर्य प्रसन्न हों। सुगांग महल पर चढ़े हुए महाराज के द्वारा स्वयं ही कुसुमपुर को प्रारम्भ न हुए कौमुदीमहोत्सव वाला देखा गया।

चाण०— आः पता चल गया। तत्पश्चात् आपके द्वारा बीच में भड़का कर व षल क्रोधित कर दिया गया। इसके अतिरिक्त और क्या।

(क चुकी भय का अभिनय करता हुआ चुपचाप नीचा मुख किए हुए खड़ा रहता है)

क चु०— अहो राजसेवकों का चाणक्य के प्रति द्वेषविषयक पक्षपात। अच्छा व षल कहाँ है।

चाण०— (भय का अभिनय करते हुए) आर्य, सुगांग महल पर स्थित महाराज के द्वारा मैं आपके चरणों में भेजा गया था।

क चु०— (उठकर) सुगांग महल का मार्ग दिखाओ।

चाण०— इधर इधर आर्य। (दोनों घूमते हैं)

क चु०— यह सुगांग महल है। आर्य धीरे से चढ़ें।

चाण०— (अभिनयपूर्वक उठकर और देखकर) अरे व षल सिंहासन पर आसीन है। बहुत अच्छा बहुत अच्छा।

स्पष्टीकरण— क चुकी चाणक्य के क्रोध से इतना अधिक भयभीत है कि वह चाणक्य द्वारा अपने ऊपर किए गए इस दोषारोपण का कि क चुकी ने चन्द्रगुप्त को भड़का कर और भी अधिक क्रोधित कर दिया, खण्डन भी नहीं कर पाता और चुपचाप नीचा मुँह किए हुए खड़ा रहता है।

नन्दै र्वियुक्तमनपेक्षितराजराजैर्
अध्यासितं च व षलेन व षेण राज्ञाम्।
सिंहासनं सद शपार्थिवसङ्गतं च
प्रीतिं परां प्रगुणयन्ति गुणा ममैते।।१८।।

अन्वय— अनपेक्षितराजराजैःनन्दैःवियुक्तं च राज्ञां व षेण व षलेन अध्यासितं सिंहासनं सद शपार्थिवसङ्गतं च एते गुणाः मम परां प्रीतिं प्रगुणयन्ति।

सन्दर्भ— चन्द्रगुप्त को नन्दों के सिंहासन पर विराजमान देखकर चाणक्य के मन में हर्षातिरेक उत्पन्न होता है।

हिन्दी अनुवाद—

कुबेर का (भी) तिरस्कार करने वाले नन्दों से रहित और राजाओं में श्रेष्ठ व षल के द्वारा अधिष्ठित सिंहासन अपने योग्य राजा से युक्त हो गया है। ये सब शुभ घटनाएँ मेरी प्रसन्नता को अत्यधिक बढ़ाती हैं। (१८)

स्पष्टीकरण— चाणक्य का अभिप्राय यह है कि कुबेर के समान अत्यन्त धनी राजा नन्दों को नष्ट कर दिया गया तथा उनके सिंहासन पर उनसे भी अधिक योग्य राजा चन्द्रगुप्त को

प्रतिष्ठित कर दिया गया। इस प्रकार यह सिंहासन अपने ही अनुरूप राजा से युक्त हो गया। (१) राजा नन्दों का सिंहासन विहीन हो जाना (२) चन्द्रगुप्त का सिंहासन पर आसीन हो जाना तथा (३) सिंहासन का योग्य राजा से युक्त हो जाना, ये सब शुभ घटनाएँ मुझे अत्यधिक प्रसन्न कर रही हैं।

प्रस्तुत श्लोक में सम अलङ्कार तथा वसन्ततिलका छन्द है।

संस्क त भावार्थ— अनाद तःकुबेरःयैःताद शैःराजानन्दैःविरहितं च राज्ञां श्रेष्ठेन चन्द्रगुप्तेन अधिष्ठितं राज्यसिंहासनम् आत्मानुरूपेण न पेण युक्तम्। एते उक्तास्त्रयः शुभाव्यापराः समम उत्क ष्टां प्रसन्नतां वर्द्धयन्ति।

(उपस त्य) विजयतां व षलः।

राजा०— (आसनादुत्थाय) आर्य, चन्द्रगुप्तः प्रणमति।

(इति पादयोः पतति)

चाण०— (पाणौ ग हीत्वा) उत्तिष्ठोत्तिष्ठ वत्स।

आ शैलेन्द्राच्छिलान्तस्खलितसुरनदीशीकरासारशीतात्
तीरान्तान्नैकरागस्फुरितमणिरुचो दक्षिणस्यार्णवस्य।
आगत्यागत्य भीतिप्रणतन पशतैः शश्वदेव क्रियन्तां
चूडारत्नांशुगर्भास्तव चरणयुगस्याङ्गुलीरन्ध्रभागाः।।१६।।

अन्वय— शिलान्तस्खलितसुरनदीशीकरासारशीतात् आ शैलेन्द्रात् नैकरागस्फुरितमणिरुचः दक्षिणस्य अर्णवस्य तीरान्तात् आगत्य आगत्य भीतिप्रणतन पशतैः तव चरणयुगस्य अङ्गुलीरन्ध्रभागाः शश्वदेव चूडारत्नांशुगर्भाः क्रियन्ताम्।

सन्दर्भ— चन्द्रगुप्त द्वारा प्रणाम किए जाने पर चाणक्य उसे चक्रवर्ती सम्राट् होने का आशीर्वाद देता है।

हिन्दी अनुवाद—

(पास जाकर) व षल विजयी हो।

राजा— (आसन से उठकर) आर्य, चन्द्रगुप्त प्रणाम करता है। (ऐसा कहकर पैरों पर गिरता है।)

चाण०— (दोनों हाथों से उठाकर) उठो पुत्र उठो- चोटियों के अन्दर खेलती हुई आकाशगङ्गा के जलकणों की ठण्डी बौछारों से शीतल हिमालय पर्वत से लेकर, अनेक रंग की चमकती हुई मणियों की शोभा वाले दक्षिणी समुद्र के तटों से बार बार आकर, भय से सिर झुकाते हुए सैकड़ों राजाओं के द्वारा तुम्हारे दोनों पैरों की अङ्गुलियों के खाली स्थान हमेशा ही मुकुटों के रत्नों की किरणों से भरे जाते रहें। (१६)

स्पष्टीकरण— चाणक्य चन्द्रगुप्त को आशीर्वाद देता है कि उत्तर में हिमालय पर्वत से लेकर और दक्षिण सिर में समुद्रों के तट से आकर अर्थात् उत्तर से लेकर दक्षिण तक के सभी राजा बार बार तुम्हारे चरणों में सिर झुकाएँ तथा झुकाते समय उनके मुकुटों में जड़ित मणियों की चमक से तुम्हारे पैर की अङ्गुलियों के खाली स्थान भरते रहे। दक्षिणी समुद्र मणियों व मोतियों के लिए प्रसिद्ध है।

प्रस्तुत श्लोक में उल्लास अलङ्कार तथा स्रग्धरा छन्द है।

संस्क त भावार्थ—

प्रस्तरखण्डानां मध्ये क्रीडन्त्याः देवसरित्गङ्गायाः जलकणानां यद् वर्षणं तेन शीतलात् आ हिमालयात्, बहुभिःवर्णैःद्योतमानाःरत्नभासः यस्मिन् ताद शस्य दक्षिणसागरस्य कूलान्तात् पौनः पुन्येन समेत्य भयेन प्रणामार्थं नम्रीभूतानां न पाणां शतैः तव (चन्द्रगुप्तस्य) पादद्वयस्य अङ्गुलीनां विवरप्रदेशाः सदैव चूडास्थितानां रत्नानाम् अंशवः मध्ये येषां ताद शाः मौलिमणिकिरणपूरिताः आपद्यन्ताम्।

राजा०— आर्यप्रसादादनुभूयत एव सर्वम्। तदुपविशत्वार्यः (उभौ यथोचितमुपविष्टौ)

चाण०— व षल, किमर्थं वयमाहूताः।

राजा०— आर्यस्य दर्शनेनात्मानमनुग्राहयितुम्।

चाण०— (सस्मितम्) अलमनेन प्रश्रयेण। न निष्प्रयोजनमधिकारवन्तः प्रभुभिराहूयन्ते।

राजा०— आर्य, कौमुदीमहोत्सवप्रतिषेधस्य कि फलमार्यः पश्यति।

चाण०— (स्मितं क त्वा) उपालब्धुं तर्हि वयमाहूताः।

राजा०— शान्तं पापं, शान्तं पापम्। न हि न हि, विज्ञापयितुम्।

चाण०— यद्येवं तर्हि विज्ञापनीयानामवश्यं शिष्येण स्वैर्रुचयो न निरोद्धव्याः।

राजा०— एवमेतत्कः सन्देहः। किं तु न कदाचिदार्यस्य निष्प्रयोजना प्रव त्तिरित्यस्ति नः प्रश्नावकाशः।

चाण०— व षल, सम्यग्ग हीतवानसि न प्रयोजनमन्तरा चाणक्यः स्वप्ने पि चेष्टत इति।

राजा०— आर्य, अत एव शुश्रुषा मां मुखरयति।

चाण०— व षल, श्रूयताम्। इह खल्वर्थशास्त्रकारास्त्रिविधां सिद्धिमुपवर्णयन्ति राजायत्तां सचिवायत्तामुभयत्तां चेति। ततः सचिवायत्तसिद्धेस्तव किं प्रयोजनान्वेषणेन। यतो वयमेवात्र नियुक्ता वत्स्यामः।

(सकोपं मुखं परावर्तयति)

(नेपथ्ये वैतालिकौ पठतः)

हिन्दी अनुवाद—

आर्य की क पा से सब कुछ अनुभव किया जा रहा है अर्थात् भोगा जा रहा है। तो आर्य बैठे। (दोनों यथायोग्य बैठ गए)

चाण०— व षल, हमें किसलिए बुलाया गया है।

राजा०— आर्य के दर्शन कर स्वयं को अनुग हीत करने के लिए ।

चाण०— (मुस्कुराकर) इस विनम्रता को रहने दो। अधिकारी अर्थात् सेवक राजाओं द्वारा बिना प्रयोजन के नहीं बुलाए जाते।

राजा०— कौमुदी महोत्सव के निषेध का आर्य क्या लाभ देखते हैं।

चाण०— तो हम उलाहना देने के लिए बुलाए गए हैं?

राजा०— पाप शान्त हो, पाप शान्त हो। निस्सन्देह नहीं, निस्सन्देह नहीं। विनम्रतापूर्वक पूछने के लिए

चाण०— यदि ऐसा है तो गुरुओं की अपनी इच्छाओं पर शिष्य द्वारा रोक-टोक नहीं लगाई जानी चाहिए।

राजा०— यह तो है (इसमें) क्या सन्देह है। किन्तु आर्य का (कोई भी) कार्य कभी भी बिना प्रयोजन के नहीं होता इसी कारण हमें प्रश्न करने का अवसर मिला।

चाण०— व षल, (तुमने) ठीक समझा है। प्रयोजन के बिना चाणक्य स्वप्न में भी कार्य नहीं करता।

राजा०— आर्य, इसी कारण सुनने की इच्छा (शुश्रुषा) मुझे बोलने के लिए प्रेरित कर रही है।

चाण०— व षल, सुनो। इस संसार में अर्थशास्त्रकार तीन प्रकार की सिद्धि का वर्णन करते हैं-राजा के अधीन, मन्त्री के अधीन और दोनों के अधीन। इसीलिए मन्त्री के आधीन सिद्धि वाले तुम्हें प्रयोजन को खोजने से क्या लाभ। क्योंकि हम ही इस विषय में नियुक्त हुए हैं अतः अपनी इच्छानुसार कार्य करेंगे।

राजा०— (क्रोध पूर्वक मुँह फेर लेता है)

(नेपथ्य में दो वैतालिक पढ़ते हैं)

स्पष्टीकरण— पूर्वयोजनानुसार क तककलह का प्रारम्भ करने के लिए चाणक्य चन्द्रगुप्त के किसी भी प्रश्न का सीधा उत्तर न देकर इस प्रकार उत्तर देता है जो किसी को भी क्रोधित करने में समर्थ हैं। इसी कारण चन्द्रगुप्त द्वारा यह पूछे जाने पर कि कौमुदीमहोत्सव का निषेध करने में आर्य क्या लाभ देखते हैं चाणक्य उत्तर देता है कि मन्त्री के अधीन सफलता वाले उसे (चन्द्रगुप्त को) चाणक्य द्वारा किए गए कार्यों का प्रयोजन जानने का कोई अधिकार नहीं है। यह स्वाभाविक ही है कि राजा क्रोधपूर्वक मुँह फेर लेता है। तभी तेपथ्य से दो वैतालिक गाते हैं जिनमें से एक राक्षस का गुप्तचर स्तनकलश है।

एकः—

आकाशं काशपुष्पच्छविमभिभवता भस्मना शुक्लयन्ती
शीतांशोरंशुजालैर्जलधरमलिनां क्लिश्नती क त्तिमैभीम्।
कापालीमुद्वहन्ती स्रजमिव धवलां कौमुदीमित्यपूर्वा
हास्यश्रीराजहंसा हरतु तनुरिव क्लेशमैशी शरद्वः।।२०।।

अन्वय— काशपुष्पच्छविमभिभवता भस्मना आकाशं शुक्लयन्ती शीतांशोरंशुजालैर्जलधरमलिनाम् ऐभीं क त्तिं क्लिश्नती कौमुदीमिव धवलां कापालीं स्रजम् उद्वहन्ती राजहंसा हास्यश्रीः अपूर्वा शरद् इव ऐशी तनुःवःक्लेशं हरतु।

सन्दर्भ— प्रथम वैतालिक भगवान् शिव के शरीर की तुलना शरदर्तु से करता हुआ सबके कष्टों का निवारण करने की प्रार्थना करता है।

हिन्दी अनुवाद—

एक— काश के फूलों की शोभा को (भी) पराजित करने वाली भस्म से आकश को सफेद करता हुआ, चन्द्रमा की किरणों के समूह से बादलों के समान काली गजचर्म की कालिमा को नष्ट करता हुआ, चाँदनी के समान सफेद मुण्डों की माला को धारण करता हुआ, राजहंसों के समान अट्टहास को शोभा को (धारण करने वाला), अद्भुत शरद् ऋतु के समान भगवान शिव का शरीर आप सबके कष्टों को दूर करे। (२०)

स्पष्टीकरण-यहाँ भगवान शिव के शरीर की तुलना शरदर्तु से की गई है। शरद् ऋतु में सर्वत्र काश के फूल खिल जाते हैं जो सफेद रङ्ग के होते हैं। भगवान् शिव ने भी अपने शरीर पर सफेद रङ्ग की भस्म लपेटी हुई है। शरदर्तु में वर्षा कालीन कालिमा

चन्द्रमा की किरणों से नष्ट कर दी जाती है और शिव के द्वारा धारण की गई गजचर्म की कालिमा उनके मस्तक पर विद्यमान चन्द्रमा की किरणों के द्वारा दूर की जा रही है। शरदर्तु में धवल चांदनी सर्वत्र व्याप्त हो जाती है और भगवान् शिव ने शुभ्र नरमुण्डों की माला धारण की हुई है। शरदर्तु के आते ही श्वेतवर्ण राजहंस मानसरोवर में वापस आ जाते हैं। भगवान् शिव का अट्टाहास भी सफेद दन्तपंक्ति दिखाई देने के कारण राजहंसों की शोभा को धारण कर रहा है। इस प्रकार लोकोत्तर गुणों से युक्त शरदर्तु के समान भगवान् शिव का शरीर मलयकेतु और राक्षस के आक्रमणों के कारण उत्पन्न आपके कष्टों को दूर करे।

उक्त श्लोक में उपमा अलङ्कार तथा स्रग्धरा छन्द है।

संस्क त भावार्थ—

काशपुष्पस्य कान्तिं तिरस्क र्वता ततो पि धवलेन इत्यर्थः भूत्या नीलं नभः धवलयन्ती मस्तके विद्यमानस्य चन्द्रस्य किरणसमूहैः मेघ इव श्यामां गजासुरसम्बन्धिनीं चर्म विवर्णयन्ती ज्योत्स्नामिव शुभ्रां नरकपालकल्पितां मालां धारयन्ती, राजहंस इव अट्टहासस्य शोभा अस्ति यस्यां ताद शी अत एव पूर्वविलक्षणा लोकोतरगुणाभिरामा इत्यर्थः शरद इव शाम्भवं वपुः मलयकेतुराक्षसाभियोगजनितं युष्माकं दुःखम् अपनयतु।

अपि च—

प्रत्यग्रोन्मेषजिह्मा क्षणमनभिमुखी रत्नदीपप्रभाणाम्
आत्मव्यापारगुर्वी जनितजललवा ज म्भितैः साङ्गभङ्गै।
नागाङ्गं मोक्तुमिच्छोः शयनमुरुफणाचक्रवालोपधानं
निद्राच्छेदाभिताम्रा चिरमवतु हरेद ष्टिराकेकरा वः।।२१।।

अन्वय— प्रत्यग्रोन्मेषजिह्मा रत्नदीपप्रभाणां क्षणमनभिमुखी आत्मव्यापारगुर्वी ज म्भितैः साङ्गभङ्गैः जनितजललवा निद्राच्छेदाभिताम्रा फणाचक्रवालोपधानं नागाङ्गम् उरुशयनं मोक्तुमिच्छोः हरेः आकेकरा द ष्टिः वः चिरमवतु।

सन्दर्भ— प्रथमवैतालिक भगवान् शिव की स्तुति करने के पश्चात् भगवान् विष्णु की स्तुति करता है जिसमें विष्णु के जागने का अत्यन्त स्वभाविक एवं काव्यात्मक वर्णन है।

हिन्दी अनुवाद—

और भी— अभी-अभी खुलने के कारण कुटिल, रत्नदीप के प्रकाश को क्षण भर के लिए सहन न कर सकने वाली, अपना कार्य करने में अर्थात् देखने में अलसाई हुई, जम्हाइयों और अंगड़ाइयों के कारण उत्पन्न हुई जल की बूँदों वाली, नींद के खुलने से लाल, फणों के मण्डल के तकिए वाली शेषनाग की विशाल शय्या को छोड़ने के इच्छुक भगवान् विष्णु की आधी बन्द आँख आप सबकी चिरकाल तक रक्षा करे। (२१)

स्पष्टीकरण— भगवान् विष्णु जब शेषनाग की विशाल शय्या को छोड़ना चाह रहे हैं जिमसें शेषनाग के फणों का मण्डल ही तकिए का कार्य कर रहा है तब उनकी आधी बन्द आँख से सबकी रक्षा करने की प्रार्थना की गई है। आँख के पाँच विशेषण है-

१ अभी-अभी खुलने के कारण वह किसी भी वस्तु को लगातार नहीं देख पा रही अतः कुटिल है।

२. रत्नदीप की तेज रोशनी को पल भर के लिए सहन नहीं कर पा रही क्योंकि जागते ही यदि तेज प्रकाश आँख पर पड़े तो वह चकाचौंध के कारण बन्द हो जाती है। शेषनाग के फणों की मणियाँ ही रत्नदीप हैं।

३. वहअपना कार्य करने में अलसाई हुई है अर्थात् किसी भी वस्तु को स्पष्ट रूप से नहीं देख पा रही

४. उठते समय जम्हाई तथा अंगड़ाई लेने के कारण उसमें जल की बूँदें उत्पन्न हो गई हैं और

५. वह अत्यधिक लाल है।

संस्क त भावार्थ—

निद्राच्छेदानन्तरोन्मीलनेन कुटिला, मुहूर्त्तमात्रं दीपरूपाणां शेषशिरोमणीनां पराङ्मुखी तेभ्यः व्याव त्ता इत्यर्थः निजकर्मणि दर्शनकर्मणि इत्यर्थः असमर्था, अङ्गभङ्गसहितैः निद्रालस्यापहारकमुखव्यादानात्मकव्यापारैः संजाताश्रुकणा, शयनावसाने रक्ता, फणानां मण्डलमेव शिरोधानं यस्मिन् ताद शं सर्पराजशरीररूपं महत् शयनं त्यक्तुम् कामयमानस्य विष्णोः अर्धनिमीलिता चक्षुः युष्मान् बहुकालपर्यन्तं रक्षत्।

द्वितीयः—

सत्त्वोत्कर्षस्य धात्रा निधय इव क ताः कस्यापि हेतोः
जेतारः स्वेन धाम्ना मदसलिलमुचां नागयूथेश्वराणाम्।
दंष्ट्राभङ्गं म गाणामधिपतय इव व्यक्तमानावलेपा
नाज्ञाभगं सहन्ते न वर न पतयस्त्वाद शाः सार्वभौमाः।।२२।।

अन्वय— न वर सार्वभौमाः त्वाद शाः न पतयः (ये) धात्रा कस्यापि हेतोः सत्त्वोत्कर्षस्य के पि निधय इव क ताःस्वेन धाम्ना मदसलिलमुचां नागयूथेश्वराणां जेतारः व्यक्तमानावलेपाः आज्ञाङगं न सहन्ते इव म गाणामधिपतयः दंष्ट्राभङ्गं (न सहन्ते)।

सन्दर्भ— दूसरा वैतालिक जो वस्तुतः राक्षस का स्तनकलश नामक गुप्तचर है और वैतालिक के वेष में कुसुमपुर में रहता है, राक्षस की इस आज्ञा से कि 'जब कभी चाणस्य चन्द्रगुप्त की आज्ञा का उल्लंघन करे, वह (स्तनकलश) चन्द्रगुप्त को और भी अधिक भड़काने में समर्थ श्लोक गाए' स्तनकलश कौमुदीमहोत्सव के निषेध को लेकर चाणक्य और चन्द्रगुप्त में प्रारम्भ हुए क तककलह में चन्द्रगुप्त की क्रोधाग्नि में घी के समान कार्य करने वाले श्लोकों को गाता है। उनमें से प्रस्तुत प्रथम श्लोक में वह इस बात पर बल देता है कि चन्द्रगुप्त जैसे चक्रवर्ती सम्राट् को किसी भी अवस्था में अपनी आज्ञा के उल्लंघन को सहन नहीं करना चाहिए।

हिन्दी अनुवाद—

दूसरा— हे मनुष्यों में श्रेष्ठ, सारी प थ्वी पर शासन करने वाले तुम्हारे जैसे राजा (जो) ब्रह्मा के द्वारा किसी विशेष प्रयोजन (शत्रु को नष्ट करने के लिए) से उत्क ष्ट पराक्रम के विशेष कोष से बनाए गए हैं, (जो) अपने प्रताप से मदजल बहाने वाले हाथियों के समूह को रखने वाले राजाओं को भी जीत लेते हैं, (जो) प्रसिद्ध स्वाभिमान और घमण्ड वाले हैं, आज्ञा के उल्लंघन को (उसी प्रकार) सहन नहीं करते जिस प्रकार पशुओं का राजा शेर अपनी दाढ़ के भंग को सहन नहीं करता जो शेर ब्रह्मा के द्वारा किसी विशेष प्रयोजन

से उत्क ष्ट पराक्रम के विशेष खज़ाने से बनाए गए हैं, जो अपने प्रताप से मदजल बहाने वाले हाथियों के स्वामी को भी जीते लेते हैं और जिनका स्वाभिमान और घमण्ड सर्वविदित है। (२२)

प्रस्तुत श्लोक में उपमा अलङ्कार तथा स्रधरा छन्द है।

संस्क त भावार्थ–

हे नरश्रेष्ठ सर्वभूमीश्वराः भवाद शाः नरेश्वराः ये वेधसा कस्मैचिदपि प्रयोजनाय विपक्षक्षपणायेर्त्थः सत्त्वकोत्कर्षस्य बलातिशयस्थ्य इत्यर्थः विशिष्टाशयाः इव निर्मिताः, ये च निजतेजसा दानवारि मु चन्ति ये ताद शानां करिकुलपतीनामपि जयिनः, येषां स्वाभिमानं गर्वश्च सर्वविदितः कदापि आज्ञाव्याघातं तथैव न सहन्ते यथा सिंहाः दन्तत्रुटिं कदापि न सहन्ते।

अपि च–

भूषणाद्युपभोगेन प्रभुर्भवति न प्रभुः।
परैरपरिभूताज्ञस्त्वमिव प्रभुरुच्यते।।२३।।

अन्वयः– भूषणाद्युपभोगेन प्रभुः प्रभुः न भवति परैरपरिभूताज्ञस्त्वमिव प्रभुः उच्यते।

सन्दर्भ– उपर्युक्त।

हिन्दी अनुवाद–

और भी– आभूषण इत्यादि का उपभोग करने से राजा, राजा नहीं होता। दूसरों के द्वारा अनुल्लंघनीय आज्ञा वाला तुम्हारे जैसा ही राजा कहा जाता है। (२३)

स्पष्टीकरण– राक्षस के गुप्तचर स्तनकलश के कहने का तात्पर्य यह है कि केवल आभूषण इत्यादि पहनने पर ही राजा राजा नहीं कहा जाता। यद्यपि ये उसके लिए आवश्यक हैं तथापि उसका राजा बनना तभी सार्थक है जब उसकी आज्ञा का उल्लंघन न किया जाए। अतः यदि आप (चन्द्रगुप्त) वास्तव में राजा कहलाना चाहते हैं तो अपनी आज्ञा के उल्लंघन को कदापि सहन न कीजिए।

संस्क त भावार्थ–

आभूषणादीनाम् उपभोगेन राजा यथार्थः राजा न सम्पद्यते। भूषणाद्युपभोगः राज्ञे आवश्यकं परम् असौ प्रभुत्वस्य हेतुर्न। अन्यैः अतिरस्क तः आदेश यस्य ताद शः भवानिव राजा उच्यते। आज्ञाया अव्याघात एव राज वे कारणमित्यर्थः।

चाण०– **(आकर्ण्य, स्वगतम्) प्रथमं तावद्विशिष्टदेवतास्तुतिरूपेण प्रव त्तशरद्गुणप्रख्यापनमाशीर्वचनम्। इदमपरं किमिति नावधारयामि। (विचिन्त्य) आः ज्ञातम्। राक्षसस्यायं प्रयोगः। दुरात्मन् राक्षस, द श्यसे भोः जागर्ति खलु कौटिल्यः।**

राजा०– **आर्य वैहीनरे, आभ्यां वैतालिकाभ्यां सुवर्णशतसहस्रं दापय।**

क चु०– **यदाज्ञापयति देवः। (इति उत्थाय परिक्रामति)**

चाण०– **(सक्रोधम्) वैहीनरे, तिष्ठ न गन्तव्यम्। व षल, किमयमस्थाने महानर्थोत्सर्गः।**

राजा०– **(सकोपम्) आर्येणैवं सर्वत्र निरुद्धचेष्टाप्रसरस्य मे बन्धनमिव राज्यं न राज्यमिव।**

चण०– **व षल, स्वयमनभियुक्तानां राज्ञामेते दोषाः संभवन्ति। तद्यदि न सहसे ततः स्वयमभियुज्यस्व।**

राजा०– **एते स्वकर्मण्यभियुज्यामहे।**

चाण०— प्रियं नः। वयमपि स्वकर्मण्यभियुज्यामहे।

राजा०— यद्येवं तर्हि कौमुदीमहोत्सवप्रतिषेधस्य तावत्प्रयोजनं श्रोतुमिच्छामि।

चाण०— व षल, कौमुदीमहोत्सवानुष्ठानस्य किं प्रयोजनमित्यहमपि श्रोतुमिच्छामि।

राजा०— प्रथमं तावन्ममाज्ञा व्याघातः।

चाण०— व षल, ममापि तवाज्ञाव्याघात एव कौमुदीमहोत्सवप्रतिषेधस्य प्रथमं प्रयोजनम्। कुतः?

हिन्दी अनुवाद—

(सुनकर, अपने आप) पहली (प्रशंसा) तो विशेष देवता की स्तुति रूप में प्रारम्भ हुई शरदर्तु के गुणों का वर्णन तथा आशीर्वाद के वचन हैं। यह दूसरा क्या है, यह नहीं समझ पा रहा। (सोचकर) आ, पता चल गया। यह राक्षस की चाल है। दुरात्मन् राक्षस, तुम देख लिए गए हो। अरे चाणक्य जाग रहा है।

राजा०— आर्य वैहीनर, इन दोनों वैतालिकों को सौ हजार अर्थात् एक लाख स्वर्ण मुद्राएँ दिलवा दो।

क चु०— जैसी महाराज आज्ञा देते हैं। (ऐसा कह कर उठ कर घूमता है)

चाण०— (क्रोधपूर्वक) वैहीनर रुको, मत जाओ। व षल अनुचित स्थान पर इतने अधिक धन का व्यय किसलिए।

राजा०— (क्रोधपूर्वक) आर्य के द्वारा इस प्रकार सर्वत्र रोक-टोक की गई गतिविधि वाले मेरे लिए राज्य बन्धन के समान है राज्य के समान नहीं।

चाण०— व षल, अपने आप कार्यभार न सम्हालने वाले राजाओं में ये दोष उत्पन्न हो जाते हैं। तो यदि (तुम यह) सहन नहीं करते तब स्वयं अपना कार्यभार सम्हालो

राजा०— ये हम अपने कार्य में तत्पर हो गए।

चाण०— हमारे लिए अच्छा है। इस भी अपने कार्य में संलग्न होते हैं।

राजा०— यदि ऐसा है तो कौमुदीमहोत्सव के प्रतिषेध का प्रयोजन सुनना चाहता हूँ।

चाण०— व षल, कौमुदी महोत्सव को मनाने का क्या प्रयोजन है, यह मैं भी सुनना चाहता हूँ।

राजा०— सबसे पहले मेरी आज्ञा का उल्लंघन न होना।

चाण०— व षल तेरी आज्ञा का उल्लंघन करना ही कौमुदीमहोत्सव को रोकने का मेरा प्रथम प्रयोजन था। क्योंकि-

अम्भोधीनां तमालप्रभवकिसलयश्यामवेलावनानाम्
आपारेभ्यश्चतुर्णां चटुलतिमिकुलक्षोभितान्तर्जलानाम्।
मालेवाज्ञा सपुष्पा तव न पतिशतैरुह्यते या शिरोभिः
सा मय्येव स्खलन्ती कथयति विनयालंक तं ते प्रभुत्वम्।।२४।।

अन्वय— तमालप्रभवकिसलयश्यामवेलावनानाम् चटुलतिमिकुलक्षोभितान्तर्जलानाम् चतुर्णाम् अम्भोधीनाम् आपारेभ्यः न पतिशतैः या तवाज्ञा सपुष्पा मालेव शिरोभिः उह्यते सा एव मयि स्खलन्ती ते विनयालङ्क तं प्रभुत्वं कथयति।

सन्दर्भ— चन्द्रगुप्त द्वारा घोषित कौमुदीमहोत्सव का निषेध करने का प्रथम कारण चाणक्य प्रस्तुत श्लोक में बतलाता है।

हिन्दी अनुवाद—

तमालव क्ष से उत्पन्न पत्तों के कारण काले रंग के तटों से युक्त वनों वाले (तथा) च चल तिमि मछलियों के समूह द्वारा विक्षुब्ध (विलोड़ित) अन्तर्जल वाले चारों समुद्रों के तटों से (आने वाले) सैकड़ों राजाओं द्वारा जो तुम्हारी आज्ञा फूलों से युक्त माला के समान सिरों पर धारण की जाती है वही मेरे में स्खलित होती हुई अर्थात् मेरे द्वारा उल्लंघित की जाने पर तुम्हारे विनम्रता से अलङ्क त प्रभुत्व को सूचित करती है। (२४)

स्पष्टीकरण—

चाणक्य का अभिप्राय यह है कि राजा चन्द्रगुप्त की आज्ञा का उल्लंघन करने का साहस चाणक्य के अतिरिक्त किसी में नहीं है। अन्य सभी राजा तो उसकी आज्ञा को उसी प्रकार शिरोधार्य करते हैं जिस प्रकार पुष्पों की माला को किया जाता है। परन्तु चाणक्य में उसकी आज्ञा उल्लंघन करने का साहस है। यदि चाणक्य द्वारा किए गए अपनी आज्ञा के उल्लंघन को चन्द्रगुप्त चक्रवर्ती सम्राट् बनने के पश्चात् भी सहन कर लेता है तो इसका अर्थ यह होगा कि वह अब भी विनम्र है। परन्तु यदि वह उसे सहन नहीं कर पाता है तो इसका तात्पर्य यह होगा कि राजा बनने के पश्चात् वह घमण्डी हो गया है। इसी बात की परीक्षा लेने के लिए ही चाणक्य ने कौमुदीमहोत्सव का निषेध कर दिया।

प्रस्तुत श्लोक में उपमा अलङ्कार तथा स्रग्धरा छन्द है।

संस्क त भावार्थ—

तमालेभ्यः प्रभवन्तीति यद्वा तमालः प्रभवो येषामिति तमालप्रभवपल्लवैः क ष्णानि तटकाननानि येषां ताद शानाम् अपि चपलं यत तिमिकुलं तेन विक्षुब्धं अन्तःस्थितं जलं येषां ताद शानां चतुर्णां सागरणां तटेभ्यः आगतैः न पतीनां शतैः या तव आज्ञा पुष्पाणां माला इव शिरोभिः धार्यते सा तव गुरौ चाणक्ये एव व्याहता सती तव विनयेन सुशोभितम् आधिपत्यं सूचयति।

अथ त्वमपरमपि प्रयोजनं श्रोतुमिच्छसि तदपि कथयामि।

राजा०— कथयताम्।

चाण०— शोणोत्तरे, मद्वचनात्कायस्थमचलं ब्रूहि यत्तद् भद्रभटप्रभ तीनां (इतोपरागादपक्रम्य मलयकेतुमाश्रितानां) लेख्यपत्रं तत्तावद्दीयतामिति।

प्रती०— यदार्य आज्ञापयति। (इति निष्क्रम्य पुनः प्रविश्य) आर्य, इदं पत्रकम्। (जं अज्जो आणवेदि उज्ज इमं पत्तअम)

चाण०— (ग हीत्वा) व षल, श्रूयताम्।

राजा०— दत्तावधानो स्मि।

चाण०— (वाचयति) स्वस्ति सुग हीतनामधेयस्य देवस्य चन्द्रगुप्तस्य सहोत्थायिनां प्रधानपुरुषाणामितो पक्रम्य वध्यमलयकेतुमाश्रितानां प्रमाणलेख्यपत्रमिदम्। तत्र प्रथमं तावद् गजाध्यक्षो भद्रभटः अश्वाध्यक्षः पुरुषदत्तः महाप्रतीहारस्य चन्द्रभानोर्भागिनेयो डिङ्गरातः देवस्य स्वजनगन्धी महाराजो बलगुप्तः देवस्यैव कुमारसेवको राजसेनः सेनापतेः सिंहबलस्य कनीयान्भ्राता भागुरायणो मालवराजपुत्रो लोहिताक्षः क्षत्रगणमुख्यो विजयवर्मेति।

राजा०— अथैतेषामपरागहेतन्विज्ञातुमिच्छामि।

चाण०— **व षल, श्रूयताम्। अत्र यावेतौ गजाध्यक्षाश्वाध्यक्षौ भद्रभटपुरुषदत्तनामानौ तौ खलु स्त्रीमद्यम गयाशीलौ हस्त्यश्वावेक्षणे नभियुक्तौ मयाधिकाराभ्यामवरोप्य स्वजीवनमात्रेणैव स्थापिताविति परपक्षे स्वेन स्वेनाधिकारेण गत्वा मलयकेतुमाश्रितौ। यावेतौ डिङ्गरातबलगुप्तौ तावप्यत्यन्तलोभाभिभूतौ त्वद्दतं जीवनमबहुमन्यमानौ तत्र बहु लभ्यत इत्यपक्रम्य मलयकेतुमाश्रितौ। यो प्यसौ भवतः कुमारसेवको राजसेन इति, सो पि तव प्रसादादतिप्रभूतकोशहस्त्यश्वं सहसैव तन्महदैश्वर्यमवाप्य पुनरुच्छेदशङ्कयापक्रम्य मलयकेतुमाश्रितः। यो यमपरः सेनापतेः सिंहबलस्य कनीयान्भ्राता भागुरायणो सावपि तत्र काले पर्वतकेन सह समुत्पन्नसौहार्दस्तत्प्रीत्या च पिता ते चाणक्येन व्यापादित इत्युत्पाद्य रहसि त्रासयित्वा मलयकेतुमपवाहितवान्। ततो भवदपथ्यकारिषु चन्दनदासादिषु स्वदोषशङ्कयापक्रम्य मलयकेतुमाश्रितः। तेनाप्यासौ मम प्राणरक्षक इति क तज्ञतामनुवर्तमानेनात्मनो नन्तरममात्यपदं ग्राहितः। यौ तौ लोहिताक्षविजयवर्माणौ तावप्यतिमानिनत्वात्स्वदायादेभ्यस्त्व दीयमानं मानसहमानौ मलयकेतुमाश्रितौ। इत्येषामपरागहेतवः।**

राजा०— **एवमेतेषु परिज्ञातापरागहेतुषु क्षिप्रमेव कस्मान्न प्रतिविहितमार्येण?**

चाण०— **व षल, न पारितं प्रतिविधातुम्।**

राजा०— **किमकौशलादुत प्रयोजनापेक्षया।**

चाण०— **कथमकौशलं भविष्यति। प्रयोजनापेक्षयैव।**

राजा०— **प्रयोजनमिदानीं श्रोतुमिच्छामि।**

हिन्दी अनुवाद—

चाण०— यदि दूसरा प्रयोजन भी सुनना चाहते हो तो वह भी बतलाता हूँ।

राजा०— कहिए।

चाण०— शोणोत्तरे, मेरी तरफ से अचल नामक कायस्थ से कहना (विरक्ति के कारण यहाँ से भागकर मलयकेतु का आश्रय लेने वाले) भद्रभट इत्यादि का जो लिखा हुआ पत्र (लेख्यपत्रं) है, वह जरा दे दे।

प्रती०— जैसी आर्य आज्ञा देते हैं (ऐसा कहकर निकलपर पुनः प्रवेश करके) आर्य, यह पत्र है।

चाण०— (लेकर) व षल, सुनो।

राजा— मैं सावधान हूँ।

चाण०— (पढ़ता है) कल्याण हो, शुभ नाम वाले राजा चन्द्रगुप्त के साथ उठने वाले अर्थात् उसकी सहायता करने वाले (तथा) यहाँ से भागकर दुष्ट मलयकेतु का आश्रय लेने वाले प्रधान व्यक्तियों का यह प्रमाण रूप से लिखा गया पत्र है। उनमें से सर्वप्रथम हस्तिसेना का अध्यक्ष भद्रभट, अश्वसेना का अध्यक्ष पुरुषदत्त, मुख्य द्वारपाल चन्द्रभानु का भानजा डिङ्गरात, महाराज का अपना सम्बंधी (स्वजनगन्धी) महाराज बलगुप्त, महाराज का ही बचपन का सेवक राजसेन, सेनापति सिंहबल का छोटा भाई भागुरायण मालवदेश का राजकुमार लोहिताक्ष तथा क्षत्रियवर्ग का मुख्य विजयवर्मा है।

राजा— अब इनकी विरक्ति के कारणों को जानना चाहता हूँ।

चाण०— व षल, सुनो। इनमें से ये जो दो भद्रभट और पुरुषदत्त नाम के गजाध्यक्ष और अश्वाध्यक्ष हैं, वे दो निश्चित रूप से स्त्री, मद्य और शिकार के व्यसनी हो गए थे, हाथी और घोड़ों

की देखभाल करने में लापरवाह थे (अतः) मेरे द्वारा उन्हें अधिकारों से अलग कर केवल अपनी जीविकामात्र से रख दिया गया (परन्तु) शत्रुपक्ष में अपने अधिकार से जाकर अर्थात् उसी पद पर जाकर (वे दोनों) मलयकेतु के आश्रित हो गए। ये जो दो डिङ्गरात और बलगुप्त हैं वे भी अत्यधिक लोभ के वशीभूत होकर आपके द्वारा प्रदत्त जीविका को पर्याप्त न मानते हुए 'वहाँ बहुत मिलेगा' ऐसा सोचकर (यहाँ से) भागकर मलयकेतु के आश्रित हो गए। जो आपका बचपन का सेवक राजसेन है वह भी आपकी क पा से प्रभूत कोश, हाथी और घोड़ों से युकत उस महान् ऐश्वर्य को अचानक ही पाकर पुनः छिन जाने की आशङ्का से (यहाँ से) भागकर मलयकेतु के आश्रित हो गया। यह जो दूसरा सेनापति सिंहबल का छोटा भाई भागुरायण है वह भी उस समय पर्वतक के साथ उत्पन्न मित्रता वाला हो गया था। उसी (पर्वतक) के प्रेम के कारण 'तेरा पिता चाणक्य को द्वारा मारा गया है' इस प्रकार उसने मजयकेतु को समझाकर (और) एकान्त में डराकर भगवा दिया। तत्पश्चात् आपका अहित करने वाले चन्दनदास इत्यादि के पकड़े जाने पर अपने अपराध से भयभीत (यहाँ से) भागकर मलयकेतु के आश्रित हो गया। उसके (मलयकेतु के) द्वारा भी 'वह मेरे प्राणों की रक्षा करने वाला है' इस प्रकार क तज्ञता प्रकट करते हुए अपने तुरन्त बाद अर्थात् सन्निकट अमात्यपद स्वीकार करवा दिया गया। ये जो दो लोहिताक्ष और विजयवर्मा हैं वे भी अत्यधिक घमण्डी होने के कारण आपके द्वारा अपने सम्बन्धियों को दिए गए सम्मान को सहन न करते हुए मलयकेतु के आश्रित हो गए। ये इनकी विरक्ति के कारण हैं।

राजा०— इस प्रकार विरक्ति के इन कारणों को जानने पर भी आपके द्वारा शीघ्र ही उपाय क्यों नहीं किया गया?

चाण०— व षल, उपाय करना सम्भव नहीं था।

राजा०— अयोग्यता के कारण अथवा (किसी विशेष) प्रयोजन के कारण?

चाणक्य— अयोग्यता कैसे होगी। प्रयोजन के कारण ही (उपाय नहीं किया गया)।

राजा०— अब मैं प्रयोजन सुनना चाहता हूँ।

चाण०— **श्रूयतामवधर्यतां च। इह खलु विरक्तानां प्रक तीनां द्विविधं प्रतिविधानमनुग्रहो निग्रहश्च। अनुग्रहस्तावदाक्षिप्ताधि- कारयोर्भद्रभटपुरुषदत्तयोः पुनरधिकारारोपणमेव। अधिकारश्च ताद शेषु व्यसनयोगादनभियुक्तेषु पुनरारोप्यमाणः सकलमेव राज्यस्य मूलं हस्त्यश्वमवसादयेत्। डिङ्गरातबलगुप्तयोरतिलुब्धयोः सकलराज्यप्रदानेनाप्यपरितुष्यतोर-नुग्रहः कथं शक्यः। राजसेनभागुरायणयोस्तु धनप्राणाशभीतयोः कुतोनुग्रहस्यावकाशः। लोहिताक्षविजयवर्मणोरपि दायादमानमसहमानयोरतिमानिनोः कीद शो नुग्रहः प्रीतिं जनयिष्यतीति परिह तः पूर्वः पक्षः। उत्तरो पि खलु वयमचिरादधिगतनन्दैश्वर्याः सहोत्थायिनं प्रधानपुरुषवर्गमुग्रेण दण्डेन पीड्यन्तो नन्दकुलानुरक्तानां प्रक तीनामविश्वास्या एव भवाम इत्यतः परिह त एव। तदेवमनुग हीतास्मतपक्षो राक्षसोपदेशप्रवणो महीयसा म्लेच्छबलेन परिव तः पित वधामर्षी पर्वतकपुत्रो मलयकेतुरस्मानभियोक्तुमुद्यतः। सोयं व्यायामकालो नोत्सवकाल इति दुर्गसंस्कारे प्रारब्धव्ये किं कौमुदीमहोत्सवेनेति प्रतिषिद्धः।**

हिन्दी अनुवाद—

चाण०— सुनो और ध्यान में भी रखो। इस संसार में (इह) विरक्त हुई प्रजा का दो प्रकार से प्रतीकार हो सकता है-अनुग्रह अर्थात् उन पर क पा कर देना और निग्रह अर्थात् उनको

दण्ड देना। अधिकार से हटाए गए भद्रभट और पुरुषदत्त को पुनः स्थापित कर देना ही अनुग्रह होता। और व्यसन के कारण असावधान उन जैसों को अधिकार पर पुनः आरोपित करना सम्पूर्ण राज्य की मूल हस्तिसेना और अवश्वसेना को नष्ट कर देता। सम्पूर्ण राज्य को दे देने से भी सन्तुष्ट न होने वोले अत्यधिक लालची डिङ्गरात और बलगुप्त पर अनुग्रह करना किस प्रकार सम्भव था। धन और म त्यु से भयभीत राजसेन और भागुरायण के प्रति तो अनुग्रह का अवसर ही कहाँ था। सम्बन्धियों के सम्मान को सहन न करने वाले अत्यन्त घमण्डी लोहिताक्ष और विजयवर्मा को भी किस प्रकार का अनुग्रह प्रसन्न करेगा-ऐसा सोचकर पहला पक्ष अर्थात् अनुग्रह करना छोड़ दिया गया। अभी अभी नन्द का ऐश्वर्य प्राप्त करने वाले हम अपना साथ देने वाले मुख्य पुरुषवर्ग को कठोर दण्ड देकर कष्ट पहुँचाते हुए, नन्दवंश में स्नेह रखने वाली प्रजाओं के अविश्सनीय ही हो जाते, इसी कारण उत्तर पक्ष (निग्रह) भी छोड़ दिया गया। तो इस प्रकार हमारे पक्ष (के व्यक्तियों) पर अनुग्रह करने वाला, राक्षस की सलाह से कार्य करने वाला, महान म्लेच्छ सेना से युक्त पिता के वध को सहन न करने वाला पर्वतक पुत्र मलयकेतु हमारे ऊपर आक्रमण करने के लिए तैयार है। (अत:) यह तैयारी करने का समय है, उत्सव मनाने का नहीं ऐसा सोचकर (और) दुर्ग की मरम्मत इत्यादि प्रारम्भ किए जाने के अवसर पर कौमुदीमहोत्सव से क्या लाभ? ऐसा सोचकर (इसे) रोक दिया गया।

राजा— **आर्य, बहु प्रष्टव्यमत्र।**

चाण०— **व षल विश्रब्धं प च्छ। ममापि बह्वाख्येयमत्र।**

राजा— **सोप्यस्य सर्वस्यानर्थस्य हेतुर्मलयकेतुः कस्मादपक्रामन्नुपेक्षितः।**

चाण०— **व षल, अनुपेक्षणे द्वयी गतिः। निग ह्येत वा प्रतिश्रुतं राजयार्द्धं प्रतिपाद्यते वा। निग्रहे तावत्पर्वतको स्माभिरेव व्यापादित इति क तघ्नतायाः स्वहस्तो दत्तः स्यात्। प्रतिश्रुतराज्यार्द्धप्रतिपादने पि पर्वतविनाशः केवलं क तघ्नतामात्रफलः स्यादिति मलयकेतुरपक्रामन्नुपेक्षितः।**

राजा— **अत्र तावदेवम्। राक्षसः पुनरिहैव वर्तमान आर्येणोपेक्षित इत्यत्र किमुत्तरमार्यस्य?**

चाण०— **राक्षसो पि स्वामिनि स्थिरानुरागित्वात्सुचिरमेकत्र वासाच्च शीलज्ञानां नन्दानुरक्तानां प्रक तीनामत्यन्तविश्वास्यः प्रज्ञापुरूषकाराभ्यामुपेतः सहायसंपदाभियुक्तः कोशवानिहैवान्तर्नगरे वर्तमानः खलु महान्तमन्तः कोपमुत्पादयेत्। दूरीकत स्तु वाह्यकोपमुत्पादयन्नपि कथमप्युपायैर्वशयितुं शक्य इत्ययमत्रस्थ एव ह दयेशयः शंकुरिवोद्ध त्य दूरीक तः।**

राजा— आर्य, कस्माद्विक्रम्य न ग हीतः।

चाण०— राक्षसः खल्वसौ। विक्रम्य ग ह्यमाणो युष्मद्बलानि बहूनि नाशयेत्स्वयं वा विनश्येत्। एवं सत्युभयथापि दोषः। पश्य -

हिन्दी अनुवाद—

राजा— आर्य, इस विषय में बहुत पूछना है।

चाण०— व षल, विश्वस्त होकर पूछो। मुझे भी इस विषय में बहुत बतलाना है।

राजा— इस सारे अनर्थ का कारण भागता हुआ वह मलयकेतु किस कारण से उपेक्षित किया गया।

चाण०— व षल, उपेक्षा न करने पर दो रास्ते थे। पकड़ लिया जाता अथवा वायदे के अनुसार आधा राज्य दे दिया जाता। पकड़ लिए जाने पर 'पर्वतक हमारे द्वारा ही मारा गया है' इस क तघ्नता का प्रमाण (स्वहस्तः) (हमारे द्वारा) दे दिया जाता। पूर्व प्रतिज्ञा के अनुसार आधा राज्य दे देने पर पर्वतक का नाश केवल क तघ्नतामात्र फल वाला होता। इसीलिए भागता हुआ मलयकेतु उपेक्षित कर दिया गया।

राजा— इस विषय में तो ऐसा है। परन्तु यहीं (कुसुमपुर में) रहता हुआ (वर्तमानः) राक्षस आर्य के द्वारा उपेक्षित कर दिया गया, इस विषय में आर्य का क्या उत्तर है।

चाण०— राक्षस भी स्वामी (नन्दों) के प्रति द ढ़ भक्ति वाला होने के कारण (स्थिरानुरागित्वात्) और बहुत समय तक एक ही स्थान पर रहने के कारण चरित्र को जानने वाली, नन्द पर स्नेह करने वाली प्रजाओं को अत्यन्त विश्वासपात्र है, बुद्धि और बल से युक्त है, सहायक रूपी संपदा से युक्त है, कोश वाला है, यहीं नगर के अन्दर रहता हुआ महान् आन्तरिक विद्रोह उत्पन्न कर देता। दूर कर दिए जाने पर बाह्य विद्रोह उत्पन्न करने पर भी जैसे तैसे उपायों के द्वारा वश में किया जा सकता है, ऐसा सोचकर यहाँ रहता हुआ ह दय में चुभते हुए काँटे के समान उखाड़ कर दूर कर दिया गया।

राजा— आर्य सेना का प्रयोग करके (विक्रम्य) क्यों नहीं पकड़ा गया।

चाण०— वह निस्सन्देह राक्षस है। सेना का प्रयोग करके पकड़े जाने पर तुम्हारी बहुत सी सेना को नष्ट कर देता अथवा स्वयं नष्ट हो जाता। ऐसा होने पर दोनों प्रकार से हानि होती। दे खो-

स हि भ शमभियुक्तो यद्युपेयाद्विनाशं
ननु व षल वियुक्तस्ताद शेनासि पुंसा।
अथ तव बलमुख्यान्घातयेत्सापि पीडा
वनगज इव तस्मात्सो भ्युपायैर्विनेयः।।२५।।

अन्वय— भ शम् अभियुक्तः यदि सः विनाशम् उपेयात् व षल ननु ताद शेन पुंसा वियुक्तः असि अथ तव बलमुख्यान्धातयेत् सापि पीडा तस्मात सः वनगज इव अभ्युपायैः विनेयः।

सन्दर्भ— चाणक्य उक्त श्लोक में चन्द्रगुप्त को बतलाता है कि किस कारण सेना का प्रयोग करके राक्षस को वश में किया जाना सम्भव नहीं था।

हिन्दी अनुवाद—

अत्यधिक पीड़ित किए जाने पर यदि वह विनाश को प्राप्त हो जाता (तो) व षल निस्सन्देह (तुम) उस जैसे व्यक्ति से व चित हो जाते और यदि (वह) तुम्हारी सेना के प्रमुख व्यक्तियों को मार देता तो वह भी कष्ट की बात थी। इस कारण उसे जंगली हाथी के समान उपायों द्वारा वश में किया जाना चाहिए।

स्पष्टीकरण— राक्षस को वश में करने के लिए सेना का प्रयोग करने से दो बातें हो सकती थीं। या तो राक्षस स्वयं मर जाता अथवा चन्द्रगुप्त की सेना के प्रमुख व्यक्तियों को मार देता। दोनों ही परिस्थितियों में हानि चन्द्रगुप्त की ही होती। पहली स्थिति होने पर चन्द्रगुप्त प्रज्ञा, विक्रम और भक्ति जैसे दुर्लभ गुणों से युक्त योग्य राक्षस से विहीन हो जाता जबकि दूसरी स्थिति में चन्द्रगुप्त की अपनी सेना नष्ट हो जाती। अतः जिस प्रकार जंगली हाथी को पकड़ने के लिए बहुत सूझ-बूझ से काम करना पड़ता है उसी प्रकार

राक्षस को वश में करने के लिए चाणक्य को भी अत्यन्त सूझ-बूझ व उपायों का आश्रय लेना पड़ रहा है।

विशेष— वस्तुतः यह सम्पूर्ण नाटक ही उपायों के ताने बाने से बुना गया है। यथा राक्षस को मलयकेतु से अलग कर देना भेद नामक उपाय है, चन्दनदास को फाँसी पर लटका देना व राक्षस के अन्य गुप्तचारों को मारना देना दण्ड नामक उपाय है। चन्दनदास को नगर सेठ बना देना, मलयकेतु को राज्य पर पुनः स्थापित कर देना इत्यादि दान नामक उपाय है। राक्षस को अमात्यपद दे देना साम नामक उपाय है।

प्रस्तुत श्लोक में उपमा अलङ्कार तथा मालिनी छन्द है।

संस्क त भावार्थ—

अस्मद्बलैः अत्यंतपीडितः सन् यदि सः राक्षसः म त्युं प्राप्नुयात् तदा हे व षल। त्वम् प्रज्ञाविक्रमभक्तिशालिना ताद ग्गुणवता कार्यधुरन्धरेण पुरुषेण च विरहितः असि। अथ यदि सः भवतः सेनानायकान् हन्यात् सापि अस्माकमेव क्षतिः। तस्मात् कारणात् सः राक्षसः आरण्यक गज इव सामदानादिभिरुपायैः एव वशीकरणीयः नान्यथा।

राजा— न शक्नुमो वयमार्यस्य वाचा वाचमतिशयितुम्। सर्वथा अमात्यराक्षस एवात्र प्रशस्यतरः।

चाण०— (सक्रोधम्) न भवानिति वाक्यशेषः। भो व षल, तेन किं क तम्।

राजा— यदि न ज्ञायते तदा श्रूयताम्। तेन खलु महात्मना -

हिन्दी अनुवाद—

राजा— हम वाणी के द्वारा आर्य की वाणी का अतिक्रमण नहीं कर सकते (परन्तु) इस विषय में सभी प्रकार से अमात्य राक्षस ही अधिक प्रशंसनीय हैं।

चाण०— (क्रोधपूर्वक) 'आप नही' यह वाक्य का शेष भाग है। हे व षल उसके द्वारा क्या किया गया।

राजा०— यदि आपको नहीं पता तो सुनिए। निस्सन्देह उस महात्मा के द्वारा -

लब्धायां पुरि यावदिच्छमुषितं क त्वा पदं नो गले
व्याघातो जयघोषणादिषु बलादस्मद्बलानां क तः।
अत्यर्थं विपुलैः स्वनीतिविभवैः संमोहमापादिता
विश्वास्येष्वपि विश्वसन्ति मतयो न स्वेषु वर्गेषु नः।।३६।।

अन्वय— लब्धायां पुरि नो गले पदं क त्वा यावदिच्छम् उषितम् अस्मद् बलानां जयघोषणादिपु बलात् व्याघातः क तः विपुलैः स्वनीतिविभवैः अत्यर्थं संमोहमापादिता न मतयः स्वेषु विश्वास्येषु वर्गेषु अपि न विश्वसन्ति।

सन्दर्भ— चन्द्रगुप्त उक्त श्लोक में राक्षस द्वारा किए गए उन कार्यो और उसकी उन सफलताओं का वर्णन करता है जिनके कारण वह राक्षस को चाणक्य से भी अधिक प्रशंसनीय मानता है।

हिन्दी अनुवाद—

(हमारे द्वारा) जीती गई नगरी में हमारे गले पर पैर रखकर जब तक चाहा, रहा। हमारी सेनाओं द्वारा की गई विजयघोषणा इत्यादि में बलपूर्वक बाधा डाली। (उसके) महान्

नीति रूपी ऐश्वर्य से मोह को प्राप्त हुई हमारी बुद्धि अपने विश्वसनीय व्यक्तियों पर भी विश्वास नहीं कर रही।

स्पष्टीकरण—

यद्यपि कुसुमपुर चन्द्रगुप्त द्वारा अपने अधिकार में कर लिया गया था तथापि राक्षस वहाँ अपनी इच्छानुसार केवल रहा ही नहीं बल्कि रौब से रहा और चन्द्रगुप्त की सेनाओं द्वारा की गई विजयघोषणा में भी बाधा उत्पन्न की और अब उसकी नीतियों के द्वारा वह और चाणक्य इतने किंकर्तव्यविमूढ़ हो गए कि भागुरायण, सिद्धार्थक, भद्रभट इत्यादि अपने ही विश्वसनीय व्यक्तियों पर विश्वास नहीं कर पा रहे। इन सब कारणों से राक्षस ही अधिक प्रशंसनीय है। चन्द्रगुप्त क तककलह के कारण ही राक्षस की प्रशंसा करता है वास्तव में नहीं।

उक्त श्लोक में उदात्त अलंङ्कार तथा शार्दूलविक्रीडित छन्द है।

संस्क त भावार्थ—

अस्माभिः जितायां नगर्याम् अस्माकं कण्ठे चरणं निधाय अस्मान् विधूय इत्यर्थः यथारुचि स्थितम्। न केवलं स्थितो सौ परं स्थितेन तेन अस्माकं सैन्यानां जयघोषणादिषु हठात् विघ्नः अपि उत्पादितः सः अवस्थित इति वयं विजयं प्रख्यापयितुं न शक्ताः अतः महात्मा सः किल। तस्य महद्भि नीतिकौशलैः किंकर्त्तविमूढ़तां प्रापिताः अस्माकं बुद्धयः स्वकीयेषु विश्वासयोग्येषु पक्षेषु अपि (भद्रभटप्रभ तिषु) संशयं कुर्वन्ति।

चाण०— (विहस्य) एतत्क तं राक्षसेन। व षल मया पुनर्ज्ञात नन्दमिव भवन्तमुद्ध त्य भवानिव भूतले मलयकेतुः राजाधिराजपदे नियोजित इति।

राजा— अन्येनैवेदमनुष्ठितं किमत्रार्यस्य।

चाण०— हे मत्सरिन्—

आरूह्यारूढकोपस्फुरणविषमिताग्राङ्गुलीमुक्तचूडां
लोकप्रत्यक्षमुग्रां सकलरिपुकुलोत्सादादीर्घां प्रतिज्ञाम्।
केनान्येनावलिप्ता नवनवतिशतद्रव्यकोटीश्वरास्ते
नन्दाः पर्यायभूताः पशव इव हताः पश्यतो राक्षसस्य।।२७।।

अन्वय— लोकप्रत्यक्षम् आरूढकोपस्फुरणविषमिताग्राङ्गुलीमुक्तचूडाम् उग्रां सकलरिपुकुलोत्साददीर्घां प्रतिज्ञाम् आरुह्य केन अन्येन अवलिप्ता नवनवतिशतद्रव्यकोटीश्वराः ते नन्दाः राक्षसस्य पश्यतः एव पर्यायभूताः पशवः इव हताः।

सन्दर्भ— क तककलह के प्रसङ्ग में चन्द्रगुप्त द्वारा राक्षस की प्रशंसा किए जाने पर चाणक्य अपने द्वारा किए गए महान् कार्यो की प्रशंसा करते हुए तथा राक्षस का उपहास करते हुए स्वयं को राक्षस से अधिक श्रेष्ठ व प्रशंसनीय बतलाता है।

हिन्दी अनुवाद—

चाण०— (हँसकर) यह किया गया राक्षस के द्वारा। व षल मेरे द्वारा तो यह समझा गया (कि) नन्द के समान आपको उखाड़ कर आपके समान प थ्वी पर मलयकेतु को राजाधिराज के पद पर प्रतिष्ठित कर दिया गया।

राजा— यह तो किसी अन्य के द्वारा ही किया गया है। आर्य का इसमें क्या?

चाण०— हे ईर्ष्यालु -

सारे संसार के सामने, बढ़े हुए क्रोध के आवेश से काँपती हुई अङ्गुलियों के अग्रभाग से खोली गई शिखा वाली, भयङ्कर (तथा) सारे शत्रुवंश का नाश करने से कठिन प्रतिज्ञा को करके किस दूसरे के द्वारा घमण्डी निन्यानवे सौ करोड़ धन के स्वामी वे नन्द राक्षस के देखते हुए ही क्रमानुसार (एक-एक करके) पशुओं के समान मार दिए गए।

स्पष्टीकरण— चाणक्य ने नन्दों द्वारा अपमानित होने पर सारे संसार के सामने जो प्रतिज्ञा की वह तीन विशेषताओं से युक्त थी - ऽ

१ प्रतिज्ञा करते समय अत्यधिक क्रोध के कारण चाणक्य की अङ्गुलियाँ काँप रही थीं जिनसे उसने अपनी चोटी को खोला था

२. शत्रु के प्राणों को हरने के कारण वह भयङ्कर थी और

३. समस्त शत्रुवंश का विनाश किए जाने के कारण वह दुःसाध्य थी।

उक्त श्लोक में उपमा अलंकार तथा स्रग्धरा छन्द है।

संस्क त भावार्थ—

जगतः समक्षं प्रव द्धस्य कोपस्य आवेशेन कम्पितानाम् अङ्गुलीनाम् अग्रभागेन अपनीतबन्धना शिखा यस्यां ताद शीम्, प्राणहरत्वात् भयङ्करां सकलस्य शत्रुवंशस्य च उच्छेदेन कठोरां प्रतिज्ञां क त्वा मदतिरिक्तेन अपरेण केन द प्ताः नवनवतिशतानां द्रव्यकोटीनां स्वामिनः प्रभूतैश्वर्यशालिनः इत्यर्थः ते प्रसिद्धाः नन्दाः पश्यन्तं राक्षसमनाद त्य बलिकर्मणि एकरज्जुनिबद्धाः पशव इव क्रमेण व्यापादिताः। मयैव नान्येन केनापि इत्यर्थः।

अपि च—

ग धैराबद्धचक्रं वियति विचलितैर्दीर्घनिष्कम्पपक्षैर्
धूमैर्ध्वस्तार्कभासां सघनमिव दिशां मण्डलं दर्शयन्तः।
नन्दैरानन्दयन्तः पित वननिलयान्प्राणिनः पश्य चैतान्
निर्वान्त्यद्यापि नैते स्रुतबहलवसावाहिनो हव्यवाहाः।।२८।।

अन्वय— वियति आबद्धचक्रम् विचलितैदीर्घनिष्कम्पपक्षैः ग धैः धूमैः ध्वस्तार्कभासां दिशां मण्डलं सघनमिव दर्शयन्तः नन्दैः पित वननिलयान् एतान् प्राणिनः आनन्दयन्तः सुतबहलवसावाहिनः एते हव्यवाहाः पश्य अद्यापि न निर्वान्ति।

सन्दर्भ— क तककलह के प्रसङ्ग जब चन्द्रगुप्त राक्षस को चाणक्य से भी अधिक प्रशंसनीय बतलाता है तो चाणक्य अत्यधिक क्रोधित होते हुए उन चिताओं की अग्नियों की तरफ उसका ध्यान आकर्षित करता है जो नन्दों की चर्बी से युक्त होने के कारण आज भी नहीं ब्रुझ रहीं ताकि चन्द्रगुप्त को चाणक्य द्वारा नन्दवंश को नष्ट जिए जाने जैसे महान् कार्य का तथा उसके पौरुष का स्मरण हो सकें।

हिन्दी अनुवाद—

और भी- आकाश में मण्डल बना कर चक्कर काटते हुए फैले हुए और निश्चल पङ्खों वाले गिद्ध रूपी धुँएं के द्वारा ध्वस्त सूर्य के प्रकाश वाली दिशाओं के मण्डल को बादलों से युक्त सा दिखलाती हुई, नन्दों (की चर्बी) के द्वारा श्मशान में रहने वाले इन प्राणियों को प्रसन्न

करती हुई, डाली गई अत्यधिक चर्बी से युक्त चिताओं की ये अग्नियां, देखो आज भी बुझ नहीं रहीं।

स्पष्टीकरण— श्मशान में पंख फैलाकर गोलाकार चक्कर काटते हुए काले गिद्धों पर धुएँ का आरोप किया गया है क्योंकि जिस प्रकार धुआँ सूर्य के तेज को ध्वस्त कर दिशाओं को बादलों से युक्त सा दर्शाता है उसी प्रकार गिद्धों के पङ्खों द्वारा सूर्य का प्रकाश मद्धिम कर दिया गया है। जलने से बची हुई नन्दों की चर्बी से श्मशान में रहने वाले (प्रेत, श्र गाल) इत्यादि त प्त हो रहे हैं। सम्पूर्ण नन्द वंश का नाश करने के कारण वे चिताएँ इतनी अधिक चर्बी से युक्त हैं कि आज भी उनकी अग्नि बुझ नहीं रही है।

उक्त श्लोक में रूपक और उत्प्रेक्षा अलङ्कार तथा स्रग्धरा छन्द है।

संस्क त भावार्थ—

आकाशे विरचितमण्डलं यथा भ्रमद्भिः आयताः निश्चलाश्च पक्षाः येषां तैः ग ध्रैरेव धूमैः निरस्ताः सूर्यस्य कान्तयः यासु तासां दिशां मण्डलं मेघाच्छन्नमिव अवभासयन्तः, बहुलवसावशेषैः नन्दैः श्मशानवासिन एतान् प्रेतव कादीन् प्राणिनः प्रीणयन्तः, पातिताः प्रचुराः वसाः धारयन्ति ये ताद शाः श्मशानाग्नयः, पश्य अद्यापि न शाम्यन्ति। एतान्द ष्ट्वा मन्ये मत्पौरुषं स्मरिष्यसि। अपि न नन्दकुलनिर्दहेन मम क्रोधो द्यापि न शान्तः इत्यर्थः यदि त्वमसम्बद्धं वक्ष्यसि तदा त्वमपि हनिष्यसे इत्यपि चाणक्यस्याभिप्रायः।

राजा— **अन्येनैवेदमनुष्ठितम्।**

चाण०— **आः केन।**

राजा— **नन्दकुलविदेषिणा दैवेन।**

चाण०— **दैवमविद्वांसः प्रमाणयन्ति।**

राजा— **विद्वांसो प्यविकत्थना भवन्ति।**

चाण०— **(सकोपम्) वषल, भ त्यमिव मामारोढुमिच्छसि।**

शिखां मोक्तुं बद्धामपि पुनरयं धावति करः
(भूमौ पादं प्रह त्य)
प्रतिज्ञामारोढुं पुनरपि चलत्येष चरणः।
प्रणाशान्नन्दानां प्रशममुपयातं त्वमधुना
परीतः कालेन ज्वलयसि मम क्रोधदहनम्।।२६।।

हिंदी अनुवाद—

राजा— यह अन्य के द्वारा ही किया गया है।

चाण०— आः किसके द्वारा?

राजा— नन्दकुल से द्वेष रखने वाले भाग्य के द्वारा।

चाण०— मूर्ख व्यक्ति भाग्य को प्रमाण मानते हैं।

राजा— विद्वान भी आत्मप्रशंसक नहीं होते।

चाण०— व षल नौकर के समान मुझ पर चढ रहा है अर्थात् नौकर के समान जो मन में आ रहा है, कहे चले जा रहा है।

(लगभग) बँधी हुई चोटी को खोलने के लिए पुनः यह हाथ दौड़ रहा है (जमीन पर पैर पटक कर) पुनः प्रतिज्ञा करने के लिए यह चरण भी आगे बढ़ रहा है। नन्दों के नाश से शान्ति को प्राप्त हुई मेरी क्रोध रूपी अग्नि को म त्यु के द्वारा वश में किया गया (तू) आज भड़का रहा है।

स्पष्टीकरण— वदन्ति। यद्यपि नन्दों का नाश कर चाणक्य ने अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण कर ली है तथापि उसने अपनी चोटी को बाँधा नहीं है क्योंकि राक्षस को वश में किए बिना वह अपनी प्रतिज्ञा को पूर्ण नहीं समझता। इसके अतिरिक्त राक्षस को चन्द्रगुप्त का अमात्यपद ग्रहण करवा देने के पश्चात्, नाटक की समाप्ति पर चाणक्य कहता है- 'पूर्ण प्रतिज्ञेन मया केवलं बध्यते शिखा'। अतः यहाँ बद्धां शिखां का तात्पर्य है 'लगभग बँधी हुई'।

उक्त श्लोक में रूपक अलङ्कार तथा शिखरिणाी छन्द है।

संस्क त भावार्थ—

बद्धप्रायामपि चूडाम् अपगतबन्धां कर्तुम् एषः करः प्रसरति। अयं पादश्च प्रतिज्ञां कर्तुं पुनः चलति। नन्दानां विनाशात् शान्तिं प्राप्तं मम क्रोधाग्निं म त्युना वशीक तः त्वम् अद्य उद्दीपयसि। दाह्याभावात् शान्तस्य कोपवह्नेः त्वमात्मानं दाह्यत्वेन उपस्थापयसि इति भावः।

राजा— **(सावेगमात्मगतम्) अये कथं सत्यमेयवार्यः कुपितः। तथाहि—**

संरम्भस्पन्दिपक्ष्मक्षरदमलजलक्षालनक्षामयापि
भ्रूभङ्गोद्भेदधूमं ज्वलितमिव पुरः पिङ्गया नेत्रभासा।
मन्ये रुद्रस्य रौद्रं रसमभिनयतस्ताण्डवेषु स्मरन्तया
स जातोग्रप्रकम्पं कथमपि धरया धारितः पादघातः।।३०।।

अन्वय— संरम्भस्पन्दिपक्ष्मक्षरदमलजलक्षालनक्षामया अपि पिङ्गया नेत्रभासा भ्रूभङ्गोद्भेदधूमं पुरः ज्वलितम् इव। मन्ये ताण्डवेषु रौद्रं रसम् अभिनयतः रुद्रस्य स्मरन्त्या धरया स जातोग्रप्रकम्पं पादघातः कथमपि धारितः।

सन्दर्भ— क तककलह के प्रसङ्ग में चाणक्य ने चन्द्रगुप्त से क्रोधित होने का इतना सफल अभिनय किया कि चन्द्रगुप्त को स्वयं यह आशङ्का होने लगी कि कहीं आर्य चाणक्य वास्तव में ही तो क्रुद्ध नहीं हो गए क्योंकि क्रोधावस्था में आँखों से आँसू बहना, क्रोध से उनका जलना तथा पैरों को पटकना, ये सब इतनी स्वाभाविक क्रियाएँ हैं कि चाणक्य का क्रोध क त्रिम नहीं अपितु वास्तविक ही प्रतीत होता है।

हिन्दी अनुवाद—

राजा०— (घबराकर अपने आप) अरे। क्या आर्य वास्तव में ही क्रुद्ध हो गए। जैसे कि-

क्रोध के आवेश से ऊपर उठी हुई पलकों से बहते हुए निर्मल जल से धुल जाने के कारण रुक्ष होने पर भी लाल नेत्रों की अग्नि के द्वारा भवों का विकार रूपी निकलता हुआ धुआँ मानो सामने प्रदीप्त हुआ है। मुझे प्रतीत होता है कि ताण्डव न त्य में रौद्र रस का अभिनय करने वाले रुद्र का स्मरण करती हुई प थ्वी के द्वारा भयङ्कर कम्पन से युक्त होकर (इनके) पैरों का प्रहार सहन किया गया होगा।

स्पष्टीकरण— क्रोधावेश में चाणक्य की आँखों से पानी बहने लगा और क्रोध की अग्नि से वे लाल हो गई जिनमें भवों का विकार ही धुँए के समान प्रतीत हो रहा था। जिए प्रकार ताण्डव

न त्य करते समय शिवजी का पादप्रहार भयङ्कर कम्पन से युक्त होकर प थ्वी के द्वारा सहन किया जाता है इसी प्रकार चाणक्य द्वारा पैर पटके जाने पर प थ्वी को रुद्र की याद आ गई होगी और इनका चरणाघात भी इसके द्वारा बहुत कठिनाई से सहन किया गया होगा।

प्रस्तुत श्लोक में उत्प्रेक्षा, रूपक तथा स्मरण अलङ्कार तथा स्रग्धरा छन्द है।

संस्क त भावार्थ—

क्रोधावेशेन उच्चलितानि यानि नेत्रलोमानि तेभ्यः गलता विशदक्रोधाश्रुणा यत्क्षालनं तेन रुक्षया अपि अरुणया नयनकान्त्या क्रोधजनितभ्रूविकारविशेषः स एव धूमो यस्मिन्कर्मणि तद्यथा तथा पुरोभागे दीप्तमिव। सम्भावयामि यत् ताण्डवेषु क्रोधात्मकं रौद्रं रसम् अभिनीय दर्शयतः शिवस्य स्मरन्तया प थिव्या उत्पन्नः भयङ्करः प्रकम्पो यत्र तत् यथा तथा कथमपि क च्छ्राद् आर्यस्य चरणप्रहारः सोढः।

चाण०— **(क तककोपं संह त्य) व षल, व षल, अलमुत्तरोत्तरेण। यद्यस्मत्तो गरीयान्राक्षसो वगम्यते तदिदं शस्त्रं तस्मै दीयताम्। (इति शस्त्रमुत्स ज्योत्थाय चाकाशे लक्ष्यं बद्ध्वा स्वगतम्) राक्षस राक्षस एष भवतः कौटिल्यबुद्धिविजीगीषोर्बुद्धेः प्रकर्षः।**

चाणक्यतश्चलितभक्तिमहं सुखेन
जेष्यामि मौर्यमिति सम्प्रति यः प्रयुक्तः।
भेदः किलैष भवता सकलः स एव
संपत्स्यते शठ तवैव हि दूषणाय।।३१।।

(इति निष्क्रान्तः)

अन्वय— चाणक्यतः चलितभक्तिं मौर्यम् अहं सुखेन जेष्यामि इति संप्रति यः भेदः भवता प्रयुक्तः शठ किल सः सकलः एव तवैव दूषणाय हि संपत्स्यते।

सन्दर्भ— क तककलह सफलतापूर्वक अभिनीत हो जाने पर चाणक्य को राक्षस को वश में किए जाने की योजना सफल होती हुई प्रतीत होती है। अतः वह प्रसन्नता का अनुभव करते हुए राक्षस को सम्बोधित करते हुए अपने मन में सोचता है कि राक्षस ने उसमें और चन्द्रगुप्त में भेद उत्पन्न करने के लिए जो चाल चली थी वह राक्षस को ही मलयकेतु से अलग कर देगी।

हिन्दी अनुवाद—

चाण०— (बनावटी क्रोध को रोकते हुए) व षल व षल, उत्तर प्रत्युत्तर से बस करो। यदि हमसे श्रेष्ठ राक्षस समझा जाता है तो यह शस्त्र उसे दे दो (ऐसा कहकर शस्त्र छोड़कर उठकर आकाश में द ष्टि बाँधकर अपने आप) राक्षस राक्षस, चाणक्य की बुद्धि को जीतने के इच्छुक तुम्हारी बुद्धि का यह प्रकर्ष है (अर्थात्) इतने से तो तुम चाणक्य की बुद्धि को जीत नहीं सकते)

चाणक्य से विमुख भक्ति वाले चन्द्रगुप्त मौर्य को मैं आसानी से जीत लूँगा, यह सोचकर अब जो यह फूट डलवाने की चाल आपके द्वारा चली गई थी हे दुष्ट, निस्सन्देह वह पूर्ण रूप से तुम्हारे ही भेद के लिए होगी।

स्पष्टीकरण— (ऐसा कहकर निकल जाता है) चाणक्य का अभिप्राय यह है कि राक्षस ने स्वयं को अत्यन्त नीपिटटु एवं बुद्धिमान समझते हुए चाणक्य और चन्द्रगुप्त में भेद उत्पन्न करने का प्रयास किया था ताकि चाणक्य से प थक हुए चन्द्रगुप्त को आसानी से जीता जा सके। परन्तु चाणक्य उससे कहीं अधिक चतुर है। उसने चन्द्रगुप्त से क तककलह करके ऐसी चाल चली है जो राक्षस और मलयकेतु में ही भेद उत्पन्न कर देगी।

प्रस्तुत श्लोक में विषम अलङ्कार तथा वसन्ततिलका छन्द है।

संस्क त भावार्थ—

चाणक्यात् विमुखभक्तिं चन्द्रगुप्तमौर्यमहं भेदप्रवणः राक्षसः अनायासेन वशीकरिष्यामि इति निश्चित्य अधुना त्वया य एषः भेदः प्रयुक्तः सः सम्पूर्णः एव निश्चितं तवैव मलयकेतोर्भेदाय भविष्यति।

राजा— आर्य वैहीनरे, अतः प्रभ त्यनाद त्य चाणंक्यं चन्द्रगुप्तः स्वयमेव राज्यं करिष्यतीति ग हीतार्थाः क्रियन्तां प्रक तयः।

क चु०— (आत्मगतम्) कथं निरुपपदमेव चाणक्यमिति नार्यचाणक्यमिति। हन्त संग हीतो धिकारः। अथवा न खल्वत्रवस्तुनि देवदोषः। कुतः-

स दोषः सचिवस्यैव यदसत्कुरुते न पः।
याति यन्तुः प्रमादेन गजो व्यालत्ववाच्यताम्।।

अन्वय— सः सचिवस्यैव दोषः यत् न पः असत्कुरुते यन्तुः प्रमादेन गजः व्यालत्ववाच्यतां याति।३२।।

सन्दर्भ— चन्द्रगुप्त द्वारा चाणक्य का अपमान किए जाने पर उसे 'आर्य चाणक्य' न कह कर केवल 'चाणक्य' कहे जाने पर क चुकी चन्द्रगुप्त को दोषी न मानकर चाणक्य को ही इसका दोषी समझता है। इसका कारण प्रस्तुत श्लोक में दिया गया है।

हिन्दी अनुवाद—

राजा— आर्य वैहीनर, आज से लेकर चाणक्य की उपेक्षा करके चन्द्रगुप्त स्वयं ही राज्य करेगा, इस प्रकार राजा को सूचित कर दो।

क चुकी— (अपने आप) यह क्या? बिना किसी आदरसूचक विशेषण के ही 'चाणक्य को', 'आर्य चाणक्य को नहीं'। कष्ट की बात है कि अधिकार छीन लिया गया। अथवा इस विषय में महाराज का दोष नहीं है। क्योंकि -

वह मन्त्री का ही दोष होता है जो राजा (उसका) अनादर करता है। महावत की लापरवाही से ही हाथी 'दुष्ट हाथी' होने की निन्दा को प्राप्त करता है।

स्पष्टीकरण— चन्द्रगुप्त प्रथम बार चाणक्य को 'आर्य चाणक्य' न कह कर केवल 'चाणक्य' कहता है। क चुकी का ध्यान तुरन्त इस बात पर जाता है। परन्तु इसका दोषी वह चाणक्य को ही समझता है। जिस प्रकार जब महावत हाथी की उचित प्रकार से देखभाल नहीं करता, उसे शिक्षा नहीं देता तो उस हाथी की 'दुष्ट हाथी' कहकर निन्दा की जाती है। इसी प्रकार मंत्री जब राजा के साथ शिष्ट व्यवहार नहीं करता और तब यदि राजा उसे कुछ कह देता है तो इसमें दोष राजा का नहीं अपितु मंत्री का ही होता है। यहाँ हाथी की समानता राजा से व यन्ता की समानता मन्त्री से की गई है।

प्रस्तुत श्लोक में द ष्टान्त अलङ्कार तथा अनुष्टुब् छन्द है।

संस्क त भावार्थ—

सः अमात्यस्यैव अपराधः न तु न परस्य यत् राजा तम् अमात्यं नाद्रियते। हस्तिपस्य अनवधानतया एव गजः दुष्टगजत्वेन निन्दां लभते न स्वतः।

राजा— आर्य, किं विचारयसि?

क चुकी— देव, न कि चित्। दिष्ट्या देव इदानीं देवः संव त्तः। (निष्क्रांतः)

राजा— (आत्मगतम्) एवमस्मासु ग ह्यमाणेषु स्वकार्यसिद्धिकामः सकामोः भवत्वार्यः। (प्रकाशम) शोणोत्तरे, अनेन शुष्ककलहेन शिरोवेदना मां बाधते। शयनग हमादेशय।

प्रती— एतु एतु देवः। (एदु एदु देवो)

राजा— (आत्मगतम्)—

आर्याज्ञयैव मम लंघितगौरवस्य
बुद्धिः प्रवेष्टुमिव भूविवरं प्रव त्ता।
ये सत्यमेव हि गुरूनतिपातयन्ति
तेषां कथं नु ह दयं न भिनत्ति लज्जा।।३३।।

अन्वय— आर्याज्ञयैव लंघितगौरवस्य मम बुद्धिः भूविवरं प्रवेष्टुमिव प्रव त्ता। ये सत्यमेव हि गुरून् अतिपातयन्ति तेषां नु ह दयं लज्जा कथं न भिनत्ति।

सन्दर्भ— चन्द्रगुप्त ने क तककलह के प्रसङ्ग में यद्यपि आर्य चाणक्य के कहने से ही उनके प्रति कटु शब्दों का प्रयोग किया था तथापि वह अत्यधिक आत्मग्लानि का अनुभव कर रहा है जैसा कि प्रस्तुत श्लोक से स्पष्ट है।

हिन्दी अनुवाद—

राजा— आर्य क्या सोच रहे हो?

क चुकी— महाराज कुछ नहीं। सौभाग्य से (दिष्ट्या) महाराज आज महाराज हो गए (निकल जाता है)।

राजा— (अपने आप) इस प्रकार हमारे स्वीकार कर लिए जाने पर अपने कार्य की सफलता के इच्छुक आर्य (चाणक्य) पूर्ण मनोरथ वाले होवें। (स्पष्ट रूप से) शोणोत्तरे, इस व्यर्थ के झगड़े से सिर की पीड़ा मुझे व्यथित कर रही है। शयनग ह का मार्ग दिखलाओ।

प्रती०— इधर इधर महाराज।

राजा— (अपने आप)-

आर्य— (चाणक्य की) आज्ञा से ही उचित सम्मान का उल्लंघन करने वाले मेरी बुंद्धि प थ्वी में प्रविष्ट होने के लिए तत्पर हो रही है। जो वास्तव में ही गुरूओं का तिरस्कार करते हैं, उनके ह दय को लज्जा किस प्रकार नहीं बींध देती।

स्पष्टीकरण— क चुकी के कथन से ही स्पष्ट है कि चाणक्य और चन्द्रगुप्त का झगड़ा बहुत स्वाभाविक ढंग से हुआ।

यद्यपि चन्द्रगुप्त ने आर्य चाणक्य के आदेशानुसार ही उनके प्रति अशिष्ट व्यवहार किया है तथापि वह इतना अधिक लज्जित हो रहा है कि वह चाहता है कि भूमि फट जाए

और वह उसमें समा जाए। इससे चन्द्रगुप्त के गुरु भक्त, विनम्र व शिष्ट होने का संकेत प्राप्त होता है।

प्रस्तुत श्लोक में अर्थापत्ति अलंकार तथा वसन्ततिलका छन्द है।

संस्कृत भावार्थ–

आचार्यचाणक्यस्य आदेशेन एव न तु निजमत्या अतिक्रान्तं सम्मानं येन ताद शस्य मम धीः प थिव्याः रन्ध्रं गन्तुम् इव तत्परा। ये जनाः यथार्थ गुरून् अवजानन्ति लज्जा तेषां हृदयं कथं न विदारयति।

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे)

(सब निकल जाते है।)

इति कृतककलहो नाम त तीयोंकः।

इस प्रकार कृतककलह नामक तीसरा अंक समाप्त।

चतुर्थो ङ्क

(ततः प्रविशत्यध्वगवेषः पुरुषः)

पुरु०— **आश्चर्यमाश्चर्यम्। (ही हीमाणहे हीमाणहे।)**

योजनशतं समधिकं को नाम गतागतमिह करोति।
अस्थागमगनगुर्वी प्रभोराज्ञा यदि न भवति।।
जो अणसअसमहिअं को णाम गआगअमिह करेइ।
अठ्ठाण गमणगुव्वी पहुणो अण्णा जइ ण होइ।।१।।

अन्वय— इह योजनशतं समधिकं को नाम गतागतम् करोति यदि अस्थानगमनगुर्वी प्रभोराज्ञा न भवति।

सन्दर्भ— द्वितीय अङ्क में राक्षस ने विराधगुप्त द्वारा करभक को यह सन्देश भिजवाया था कि वह पाटलिपुत्र में वैतालिक के वेष में रहने वाले स्तनकलश को राक्षस का सन्देश दे तथा पाटलिपुत्र का समस्त समाचार जान कर अत्यन्त गोपनीय ढंग से उसके पास आए। अतः करभक पथिक के वेष में राक्षस के पास आता है और इस बात पर आश्चर्य प्रकट करता है कि किस प्रकार स्वामी की आज्ञा के कारण ही मनुष्य अपनी इच्छा के विरुद्ध भी कार्य करने को तत्पर हो जाता है।

हिन्दी अनुवाद—

(तब पथिक के वेष में पुरुष प्रवेश करता है।

पुरु०— आश्चर्य है आश्चर्य है।

इस संसार में सौ योजन या इससे भी अधिक कौन जाना आना करेगा यदि अनुचित स्थान में जाने की महान् स्वामी की आज्ञा न होती।

स्पष्टीकरण—

करभक अपने विषय में सोच रहा है कि वह अमात्य राक्षस की आज्ञा के कारण ही इतनी दूर अनुचित स्थान अर्थात् शत्रु की नगरी में भी चला गया।

प्रस्तुत श्लोक में काव्यलिङ्ग अलङ्कार तथा आर्या छन्द है।

संस्क त भावार्थ—

अस्मिन् संसारे को पि जनः योजनशतं अथवा ततो पि अधिकं गमनम् आगमनं च न करिष्यति यदि अनुचितस्थानगमनादपि गुरुतरः स्वामिनः आदेशः न भवति।

यावदमात्यराक्षसस्यैतद् गेहं गच्छामि। (श्रान्तवत्परिक्रम्य) को त्र दौवारिकाणाम्। निवेदय भर्त्रे मात्यराक्षसाय एष करभकस्त्वरयन्पाटलिपुत्रादागत इति। (जाव अमच्चरक्खसस्स एदं गेहं गच्छामि। को एत्थ दुवारिआणं। णिवेदेह भट्टिणो अमच्चरक्खसस्स एसो करभओ तुवरन्तो पाटलिपुत्रआदो आगदेत्ति।)

(प्रविश्य)

दौवारिकः— भद्र मा उच्चैः मन्त्रयस्व। एषो मात्यः कार्यचिन्ताजनितेन जागरेण

समुत्पन्नशीर्षवेदनो द्यापि शयनं न मु चति। तस्मात्तिष्ठ मुहूर्त्तम्। लब्धावसरस्तवागमनं निवेदयामि। (भद्द मा उच्चं मन्तेहि। एसो अमच्चो कज्जचिन्ताजणिदेण जाअरेण समुप्पण्णसीसवे अणो अज्जवि सअणं ण मु चदि। ता चिठ्ट मुहुत्तअं। लद्धावसरो तुह आअमण णिवेदेमि।)

करभकः— भद्रमुख, तथा कुरू। (भद्दमुह तह करेहि।)

(ततः प्रविशति शयनग हगत आसनस्थः शकटदासन सह सचिन्तो राक्षसः)

राक्ष०— (आत्मगतम्)

हिन्दी अनुवाद—

अब अमात्य राक्षस के इस (सामने दिखाई देने वाले) घर में प्रवेश करता हूँ (थके हुए के समान घूमकर) द्वारपालों में से कौन यहाँ है। स्वामी अमात्य राक्षस से निवेदन कर दो कि यह करभक शीघ्रता करता हुआ पाटलिपुत्र से आया है।

(प्रवेश करके)

द्वारपाल— भद्र, जोर से मत बोलो। यह अमात्य कार्यो की चिन्ता से उत्पन्न शिरोवेदना से युक्त अब भी शय्या को छोड़ नहीं रहे। इसीलिए कुछ देर रूको। अवसर प्राप्त होने पर तुम्हारे आगमन को सूचित कर दूँगा।

करभक— भद्रमुख, वैसा (ही) करो।

(तब शयनागार में शकटदास के साथ आसन पर बैठा हुआ चिन्तित राक्षस प्रवेश करता है)

राक्ष०— (अपने आप)

मम विम शतः कार्यारम्भे विधेरविधेयताम्
अपि च कुटिलां कौटिल्यस्य प्रचिन्तयता मतिम्।
अथ च विहिते मत्क त्यानां निकाममुपग्रहे
कथमिदमिहेत्युन्निद्रस्य प्रयात्यनिशं निशा।।२।।

अन्वय— कार्यारम्भे विधेः अविधेयताम् विम शतः अपि च कौटिल्यस्य कुटिलां मतिं प्रचिन्तयता अथ च मत्क त्यानां निकामम् उपग्रहे विहिते इह इदम् कथम् इति उन्निद्रस्य अनिशं मम निशा प्रयाति।

सन्दर्भ— प्रस्तुत श्लोक में राक्षस बतलाता है कि किन कारणों से वह निरन्तर चिन्तित रहता है और उसकी रात्रि भी जागते हुए व्यतीत हो जाती है।

हिन्दी अनुवाद—

कार्य के प्रारम्भ में भाग्य की प्रतिकूलता के बारे में विचार करने पर और भी चाणक्य की कुटिल बुद्धि के विषय में सोचने पर और मेरे कार्यों के पूर्ण रूप से विफल कर दिए जाने पर, इस अवस्था में यह किस प्रकार होगा, इस प्रकार जागते हुए ही मेरी रात, रात न हुई के समान बीत जाती है।

स्पष्टीकरण—

राक्षस का अभिप्राय यह है कि जब मैं भाग्य की विपरीतता और चाणक्य की कुटिल बुद्धि के के साथ-साथ इस बात पर भी द ष्टिपात करता हूँ कि किस प्रकार मेरी सारी

योजनाएँ विषकन्या का प्रयोग, दारूवर्मा, वर्वरक, अभयदत्त इत्यादि के द्वारा किए गए सभी प्रयत्न पूरी तरह विफल हो गए तो मैं चिन्तित हो जब सारी परिस्थितयाँ ही हमारे प्रतिकूल हैं, तो मेरे द्वारा सोचा गया कार्य किस प्रकार पूर्ण होगा और इसी चिन्ता में जागते हुए ही मेरी रातें व्यतीत हो जाती हैं।

प्रस्तुत श्लोक में समुच्चय अलङ्कार तथा हरिणी छन्द है।

संस्क त भावार्थ—

कार्यारम्भप्रभ ति दैवस्य प्रतिकूलतां चिन्तयतः तथा चाणक्यस्य वक्रतया दुरधिगमं बुद्धिप्रभावं विशेषेण चिन्तयतः अथ च मम विषकन्यादिकपटकार्याणां सर्वथा निरोधे क ते सति मया प्रारब्धं कार्य केन प्रकारेण भविष्यति इति अनया रीत्या जागरितस्य मम अविद्यमाना निशा यस्मिन् कर्मणि तत् तथा रात्रिः प्रयाति।

अपि च—

कार्योपक्षेपमादौ तनुमपि रचयंस्तस्य विस्तारमिच्छन्
बीजानां गर्भितानां फलमतिगहनं गूढमुद्भेदयंश्च।
कुर्वन्बुद्ध्या विमर्शं प्रस तमपि पुनः संहरन्कार्यजातं
कर्त्ता वा नाटकानामिममनुभवति क्लेशमस्मद्विधो वा।।३।।

अन्वय— आदौ तनुमपि कार्योपक्षेपं रचयन् तस्य विस्तारम् इच्छन् बीजानां गर्भितानाम् अतिगहनं गूढं च फलम् उद्‌भेदयन् बुद्ध्या विमर्शं कुर्वन् प्रस तम् अपि कार्यजातं पुनः संहरन् नाटकानां कर्त्ता वा अस्मद्विधो इमं क्लेशम् अनुभवति।

सन्दर्भ— प्रस्तुत श्लोक में राक्षस एक नाटककार तथा एक राजनीतिज्ञ द्वारा अनुभव की जाने वाली समान कठिनाइयों का वर्णन करता है। यह श्लोक द्वयर्थक है। एक अर्थ नाटककार के पक्ष में लगता है तो दूसरा राजनीतिज्ञ के पक्ष में लगता हैं।

हिन्दी अनुवाद—

और भी- प्रारम्भ में थोड़ा सा भी कार्य का सङ्केत देता हुआ (फिर) उसके विस्तार को चाहता हुआ, फिर बीजों के अङकुरित हो जाने पर (उनके) अत्यन्त गहन और गूढ़ फलों को खोजता हुआ, बुद्धि के द्वारा विचार विमर्श करता हुआ इधर उधर बिखरे हुए कार्यसमूह को पुनः इकठ्टा करता हुआ नाटकों का कर्ता अथवा हमारे जैसा (राजनीतिज्ञ) इस कष्ट को अनुभव करता है।

स्पष्टीकरण— नाटककार के पक्ष में उक्त श्लोक का अर्थ है कि एक नाटककार को अपना नाटक लिखते समय बीज-बिन्दु-पताका-प्रकरी और कार्य इन पाँच अर्थप्रक तियों तथा आरम्भ-यत्न-प्राप्यशा, नियताप्ति और फलागम इन पाँच अवस्थाओं तथा इन पाँच अर्थप्रक तियों और अवस्थाओं से निष्पन्न होने वाली मुख - प्रतिमुख - गर्भ - अवमर्श और निर्वहण इन पाँच सन्धियों का निर्वाह करना होता है।

इसी प्रकार एक राजनीतिज्ञ को भी पाँच अवस्थाओं का ध्यान रखना पड़ता है। सर्वप्रथम उसे इस बात का निश्चय होना चाहिए कि उसका लक्ष्य क्या है। मुद्राराक्षस नाटक में चाणक्य और राक्षस दोनों का ही लक्ष्य निशिचित है। चाणक्य राक्षस को चन्द्रगुप्त का अमात्यपद स्वीकार करवाना चाहता है तो राक्षस शत्रुओं का नाश कर अपने दिवंगत स्वामियों को प्रसन्न करना चाहता है। यह मुखसन्धि है। दोनों ही अपने उद्देश्यों की पूर्ति

के लिए विभिन्न योजनाएँ बनाते है। यह प्रतिमुखसन्धि है। तत्पश्चात् वे दोनों ही देखते है कि उनकी योजनाएँ कहाँ तक सफल हुई। राक्षस की सभी योजनाएँ विफल हो जाती हैं जबकि चाणक्य की योजनाएँ एक एक करके सफल होती चली जाती है। यह गर्भ सन्धि है। तत्पश्चात् चाणक्य द्वारा सभी योजनाओं के प थक प थक् फल को एकत्रित कर अपने लक्ष्य प्राप्ति की तरफ प्रव त्त किया जाना अवमर्श सन्धि है और अन्त में चन्द्रगुप्त को अमात्यपद राक्षस को स्वीकार करवा देना निर्वहण सन्धि है।

प्रस्तुत श्लोक में श्लेष अलंकार तथा स्रग्धरा छन्द है।

संस्क त भावार्थ—

आदौ प्रारम्भे मुखसन्धौ अभीष्टस्य कार्यस्य स्वल्पमपि बीजन्यासम् उद्भावयन् ततः उप्ते बीजे प्रतिमुखसन्धौ तस्य प्रचयम् इच्छन् बीजप्रचयार्थम् उपायं चिंन्तयन् इति अर्थः ततः उप्ते स जातगर्भाणां बीजानाम् अतिदुर्बोधं गूढ च फलं गर्भसन्धौ अन्विष्यत् ततः अवमर्शसन्धौ स्वमत्या विचारं कुर्वन् यथायथं प्रकीर्णमपि मुखसन्ध्याद्यर्थजातम् अन्ते निर्वहणसन्धौ ऐकार्थ्यमुपनयन् नाटकानां रचयिता अस्मद्विधो मन्त्री वा महान्तम् आयासम् अनुभवति इत्यर्थः।

तदपि नाम दुरात्मा चाणक्यबटुः—

(उपस त्य)

दौवारिकः— जयतु (जेदु)

राक्ष०— अतिसन्धातुं शक्यः स्यात्।

दौवा०— अमात्यः (अमच्चो)

राक्ष०— (वामाक्षिस्पन्दनं सूचयित्वा आत्मगतम) दुरात्मा चाणक्य बटुर्जयत्वतिसन्धातुं शक्यः स्यादमात्य इति वागीश्वरी वामाक्षिस्पन्दनेन प्रस्तावगता प्रतिपादयति। तथापि नोद्यमस्त्याज्यः। (प्रकाशम्) भद्र, किमसि वक्तुकामः।

दौवा०— अमात्य, करभको द्वारि तिष्ठति। (अमच्च करभओ दुआरे चिठ्टदि।)

राक्ष०— शीघ्रं प्रवेशय।

दौवा०— तथा (इति निष्क्रम्य पुरुषमुपस त्य) भद्र उपसर्प अमात्यम् (तह। भद्द उपसप्प अमच्चम) (इति निष्क्रान्तः)

कर०— (उपस त्य) जयत्वमात्यः। (जेटः अमच्चो)।

राक्ष०— भद्र, उपविश।

कर०— यदमात्य आज्ञापयति। (जं अमच्चो आणवेदि) (इति भूमावुपविष्टः)

राक्ष०— (आत्मगतम्) कस्मिन्प्रयोजने मयायं प्रहित इति प्रयोजनानां बाहुल्यान्न खल्ववधारयामि।

(इति चिन्तां नाटयति)

(ततः प्रविशति वेत्रपाणिर्द्वितीयः पुरुषः)

पुरुषः— अपसरत आर्या अपसरत। अपेत मानवा अपेत। किं न पश्यथ। (ओसलेह अज्जा ओसलेह। अवेह माणहे अवेह। किं ण पेक्खह।)

हिन्दी अनुवाद—

क्या वह दुष्ट चाणक्य—

(पास जाकर)

द्वारपाल— विजयी हो

राक्ष०— वश में किया जा सकता है।

द्वारपाल— अमात्य

राक्ष०— (बाई आँख का फड़कना देखकर अपने आप) 'दुष्ट चाणक्य विजयी हो (और) अमात्य (राक्षस) वश में किया जा सकता है' इसे प्रकरण में आई हुई वाणी देवी बाई आँख के फड़कने से सूचित कर रही है फिर भी उद्यम नहीं छोड़ा जाना चाहिए। (स्पष्ट रूप से) भद्र, कुछ कहना चाहते हो।

द्वारपाल— अमात्य, करभक द्वार पर खड़ा है।

राक्ष०— जल्दी अन्दर ले आओ।

द्वारपाल— जैसी आज्ञा (ऐसा कहकर निकल कर पुरुष के पास जाकर) भद्र, अमात्य के पास जाओ (ऐसा कह कर निकल जाता है)

कर०— (पास जाकर) अमात्य विजयी हों।

राक्ष०— भद्र, बैठो।

कर०— जैसी अमात्य आज्ञा देते हैं। (ऐसा कह कर जमीन पर बैठ जाता है)

राक्ष०— (अपने आप) किस कार्य के लिए मेरे द्वारा यह नियुक्त किया गया था, यह (मैं) कार्यों की अधिकता के कारण याद नहीं कर पा रहा। (ऐसा कह कर चिन्ता का अभिनय करता है)

(तब बेंत की छड़ी हाथ में लिए हुए दूसरा पुरुष प्रवेश करता है)

पुरु०— हटो सज्जनों हटो। हटो मनुष्यों हटो। क्या तुम देख नहीं रहे।

दूरं प्रत्यासत्तिदर्शनमपि दुर्लभमधन्यैः।
कल्याणकुलधराणां देवानामिव मनुष्यदेवानाम्।।४।।

दूले पच्चासती दंदणमवि दुल्लहं अधण्णेहिं।
कल्लाणकुलहलाणं दे आणं विअ मणुस्सेआणं ।।४।।

अन्वय— प्रत्यासत्तिः दूरम् अधन्यैः देवानाम् इव कल्याणकुलधारणां मनुष्यदेवानां दर्शनम् अपि दुर्लभम्।

सन्दर्भ— राजकुमार मयलकेतु के आने पर उसका सेवक मनुष्यों को मार्ग से हटाता है।

हिन्दी अनुवाद—

समीपता तो दूर की बात है। भाग्यहीनों के लिए तो देवताओं के समान ऊँचे कुल में उत्पन्न मनुष्यों में देवताओं के समान अर्थात् राजाओं का दर्शन भी दुर्लभ है।(४)

स्पष्टीकरण— भाग्यहीन व्यक्तियों के लिए राजा के पास जाने का तो प्रश्न ही नहीं उठता प्रत्युत उनके लिए तो उसका दर्शन पाना भी दुर्लभ है।

उक्त श्लोक में दीपक अलंकार तथा आर्या छन्द है।

संस्कृत भावार्थ—

उपसर्पणस्य तु कथा दूरे तिष्ठतु भाग्यहीनैस्तु देवानाम् इव महोन्नतवंशोत्पन्नानां नरदेवतानाम् राज्ञाम् इत्यर्थः अवलोकनम् अपि दुष्प्रापम्।

(आकाशे) आर्या; किं भणथ किं निमित्तमपसारणा क्रियते इति। आर्या एष खलु कुमारो मलयकेतुः समुत्पन्नशीर्षवेदन- ममात्यराक्षसं प्रेक्षितुमित एवागच्छति। तस्मादपसारणा क्रियते। (इति निष्क्रान्तः पुरुषः) (अज्जा किं भणाह किं णिमित्तं ओसालणा करीअदित्ति। अज्जा एसो क्खु कुमालो मयलकेदू समुप्पण्णसीसवे अणं अमच्चरक्खसं पेक्खिदुं इदो एव आअच्छदि। ता ओसालणा करीअदि।)

(ततः प्रविशति भागुरायणेन क चुकिना चानुगम्यमानो मलयकेतुः)

मलयकेतुः— (निःश्वस्यात्मगतम्) अद्य दशमो मासस्तातस्योपरतस्य। न चास्माभिर्व्थापुरुषाभिमानमुद्व-हद्भिस्तमुद्दिश्य तोया जलिरप्यावर्जितः। प्रतिज्ञातमेतत्पुरस्तात्-

हिन्दी अनुवाद—

(आकाश में) सज्जनों क्या कह रहे हो? किस कारण लोगों को हटाया जा रहा है सज्जनों, यह कुमार मलयकेतु शिरोवदना से युक्त अमात्य राक्षस को देखने के लिए इधर ही आ रहे हैं अतः लोगों को हटाया जा रहा है। (ऐसा कहकर पुरुष चला जाता है।)

(तब भागुरायण और क चुकी द्वारा अनुसरण किया जाता हुआ मयलकेतु प्रवेश करता है)

मयलकेतु— (लम्बी साँस लेकरअपने आप) आज पिता को मरे हुए दसवाँ महीना है और व्यर्थ ही पुरुष का अभिमान करने वाले हमारे द्वारा उनके लिए जला जलि भी नहीं दी गई (क्योंकि) यह पहले ही (मेरे द्वारा) प्रतिज्ञा की गई थी -

वक्षस्ताडनभिन्नरत्नवलयं भ्रष्टोत्तरीयांशुकं
हा हेत्युच्चरितार्त्तनादकरुणं भूरेणुरुक्षालकम्।
ताद ङ्मात जनस्य शोकजनितं सम्प्रत्यवस्थान्तरं
शत्रुस्त्रीषु मया विधाय गुरवे देयो निवापा जलिः।।५।।

अन्वय— सम्प्रति शोकजनितं मात जनस्य वक्षस्ताडनभिन्नरत्नवलयं भ्रष्टोत्तरीयांशुकं हा हा इति उच्चरितार्त्तनादकरुणं भूरेणुरुक्षालकं ताद ङ् अवस्थान्तरं शत्रुस्त्रीषु मया विधाय गुरवे निवापा जलिः देयः।

सन्दर्भ— यद्यपि मलयकेतु के पिता पर्वतक की म त्यु हुए दस महीने हो गए उसने अपने पिता को तोया जलि अर्पित नहीं की क्योंकि उसने शत्रुओं को नष्ट करने के पश्चात् ही अपने पिता को तोया जलि देने की प्रतिज्ञा की थी।

हिन्दी अनुवाद—

अब शोक से उत्पन्न मेरी माताओं की वक्षस्थल को पीटने से टूटे हुए रत्नों के हार वाली, नीचे गिरे हुए आँचल वाली, हाय हाय का उच्चारण दुःख भरे स्वर से किए जाने के कारण दयनीय तथा जमीन की धूल से धूसरित बालों वाली (जो अवस्था है), वैसी ही परिवर्तित अवस्था शत्रुस्त्रियों में करके मेरे द्वारा पिता को तोया जलि दी जाएगी।(५)

स्पष्टीकरण— मयलकेतु का अभिप्राय यह है कि मेरे पिता की म त्यु से मेरी माताओं को वैधव्य का असहनीय दुःख सहना पड़ा। छाती पीटने से उनके हार टूट गए, उन्हें अपने वस्त्रों का भी होश नहीं रहा, हाय हाय का ह दयविदारक शब्द वे करने लगीं और प थ्वी पर लोटने से उनके बाल भी धूल-धूसरित हो गए। उनकी इस अवस्था को देखकर ही मैंने प्रतिज्ञा की थी कि शत्रुओं को मार कर उनकी स्त्रियों को वैधव्य के दुःख से पीड़ित करके ही मैं पिता का श्राद्ध इत्यादि करूँगा परन्तु दस महीने व्यतीत हो गए और दोनों में से कोई भी कार्य नहीं हो पाया अतः मैं व्यर्थ ही पुरुष होने के अभिमान को धारण कर रहा हूँ।

प्रस्तुत श्लोक में निदर्शना अलंकार तथा शार्दूलविक्रीडित छन्द है।

संस्कृत भावार्थ—

इदानीम् अम्बानां भर्तुर्वियोगदुःखेन उत्पन्नम् उरसः करप्रहारेण भग्नानि रत्नकंकणानि यस्मिन्, अपि च स्वस्थानात् च्युतम् उत्तरीयवस्त्रं यस्मिन्, हा हा इत्यनेन प्रकारेण निरस्स तेन आर्त्तनादेन दीनम्, धरायाः धूलिभिः धूसराः केशाः यस्मिन् तथाविधं दशाविपर्ययम् अरिवनितासु उत्पाद्य तासां वैधव्यं घटयित्वा इत्यर्थः मया पित्रे पिण्डदानस्य अ जलिः आवर्जनीयः। शत्रुं हत्वा पित श्राद्धं करिष्यामि इत्येतद् तातस्य निधनकाले मया प्रतिज्ञातम्। ततः आरभ्य दशमासाः व्यतीताः। न शत्रुः हतः न श्राद्धं कृतम् अतः धिक् पुरुषाभिमानमस्माकम् इत्याशयः।

किमत्र बहुना—

उद्यच्छता धुरमकापुरुषानुरूपां
गन्तव्यमाजिनिधनेन पितुः पथा वा।
आच्छिद्य वा स्वजननीजनलोचनेभ्यो
नेयो मया रिपुवधूनयनानि वाष्पः।।६।।

अन्वय— मया अकापुरुषानुरूपां धुरम् उद्यच्छता आजिनिधनेन पितुः पथा वा गन्तव्यम् वा स्वजननीजनलोचनेभ्यः वाष्पः आच्छिद्य रिपुवधूनयनानि नेयः।

सन्दर्भ— युद्ध में लड़ते-लड़ते स्वयं म त्यु को प्राप्त हो जाना अथवा शत्रु को मार देना, ये दो विकल्प ही मलयकेतु प्रस्तुत श्लोक में अपने लिए निर्धारित करता है।

हिन्दी अनुवाद—

इस विषय में अधिक क्या कहूँ -

मेरे द्वारा वीर पुरुष के अनुरूप भार को वहन करते हुए युद्ध में मरकर या तो पिता के मार्ग पर चला जाना चाहिए अथवा अपनी माताओं के नेत्रों से आँसू छीनकर शत्रुस्त्रियों के नेत्रों में ले जाए जाने चाहिए।(६)

स्पष्टीकरण— मलयकेतु वीर पुरुष के अनुरूप केवल उद्योग करना ही अपना लक्ष्य मानता है। वह युद्ध में लड़ते-लड़ते या तो वीरगति को प्राप्त हो जाना चाहता है अथवा शत्रुओं को नष्ट कर उनकी स्त्रियों को अश्रुपूरित नेत्रों वाला कर देना चाहता है।

प्रस्तुत श्लोक में विरोधाभास अलंकार तथा वसन्ततिलका छन्द है।

संस्कृत भावार्थ—

वीरोचितां भारम् उद्वहता वीरोचितं कर्म कुर्वता इत्यर्थः युद्धे म त्युना तातस्य मार्गेण

यातव्यम् मया वा शत्रून् जित्वा नेत्रजलम् आत्मनः मात वर्गस्य नयनेभ्यः आकृष्य शत्रुस्त्रीणां नेत्राणि प्रापणीयः। पतिविहीनाः शत्रुस्त्रियः रोदननिरताः मातरश्च रोदनविरताः कार्याः। तदर्थं शरीरं वा पातयेयं कार्यं वा साधयेयम् इति भावः।

(प्रकाशम्) आर्य जाजले, एक एवाहममात्यराक्षसस्यातर्कितगमनेन प्रीतिमुत्पादयितुमिच्छामि। तदुच्यन्तामस्मद्व चनादनुयायिनो राजानः कृतमनुगमनक्लेशेनेति।

क चु०— यदाज्ञापयति कुमारः। (इति परिक्रम्याकाशे) भो भो राजानः! कुमारः समाज्ञापयति न खल्वहं केनचिदनुगन्तव्य इति (विलोक्य सहर्षं) कुमारस्याज्ञानन्तरमेव सर्वे राजानः प्रतिनिव त्ताः। पश्यतु कुमारः -

हिन्दी अनुवाद—

(स्पष्ट रूप से) आर्य जाजले, मैं अकेला ही अमात्य राक्षस के पास अप्रत्याशित रूप से जाकर (उन्हें) प्रसन्न करना चाहता हूँ अतः मेरी तरफ से (मेरा) अनुसरण करने वाले राजाओं को पीछे आने का कष्ट न करने के लिए कह दो।

क चु०— कुमार जैसी आज्ञा देते हैं (इसप्रकार घूमकर आकाश में) हे हे राजाओं, कुमार आज्ञा देते हैं कि 'मैं किसी के द्वारा अनुस त नहीं कियाजाना चाहिए।' (देखकर हर्षपूर्वक) कुमार की आज्ञा के तुरन्त बाद ही अर्थात् कुमार की आज्ञा सुनते ही सब राजा वापस चले गए हैं। कुमार देखें -

सोत्सेधैः स्कन्धदेशैः खरतरकविकाकर्षणात्यर्थभुग्नैर्
अश्वाः कैश्चिन्निरुद्धाः खमिव खुरपुटैः खण्डयन्तः ुरस्तात्।
केचिन्मातंगमुख्यैर्विहतजवतया मूकघण्टैर्निव त्ता
मर्यादां भूमिपाला जलधय इव ते देव नोल्लंघयन्ति।।७।।

अन्वय— खरतरकविकाकर्षणात्यर्थभुग्नैः सोत्सेधैः स्कन्धदेशैः खुरपुटैः पुरस्तात् खं खण्डयन्तः इव अश्वा कैश्चित् निरुद्धाः। केचित् विहतजवतया मूकघण्टैः मातगंमुख्यैः निव त्ताः देव जलधय इव भूमिपालाः ते मर्यादां न उल्लंघयन्ति।

सन्दर्भ— मलयकेतु की आज्ञा पाते ही समस्त राजा किस प्रकार तुरन्त वापस जाने के लिए तत्पर हो गए, इसका वर्णन प्रस्तुत श्लोक में क चुकी द्वारा किया गया है।

हिन्दी अनुवाद—

कठोर लगाम के खींचने से अत्यधिक झुकी हुई परन्तु मध्य भाग से ऊँची उठी हुई गर्दनों वाले (तथा) (अपने) खुरों से सामने आकाश को तोड़ते हुए से घोड़े कुछ (राजाओं) के द्वारा रोक लिए गए हैं। कुछ (राजा) रुकी हुई गति के कारण मूक घण्टियों वाले राजकीय हाथियों के साथ वापस लौट गए हैं। हे राजन्, समुद्र के समान राजा आपकी आज्ञा का उल्लंघन नहीं करते।(७)

स्पष्टीकरण— मलयकेतु की आज्ञा पाते ही राजाओं ने अपने घोड़ो को रोकने के लिए लगाम खींची तो उनकी गर्दनें नीचे झुक गई परन्तु मध्य भाग से ऊँची उठ गईं व कुछ राजाओं ने अपने राजकीय हाथी रोक लिए जिससे उनके गले में पड़ी हुई घण्टियाँ शान्त हो गई। जिस प्रकार समुद्र अपनी मर्यादा का उल्लंघन नहीं करते उसी प्रकार राजा भी आपकी आज्ञा का उल्लंघन नहीं करते।

उक्त श्लोक में उपमा अलंकार तथा स्रग्धरा छन्द है।

संस्कृत भावार्थ—

अतिकठोरखलिनसंग्रहेण भ शं नमितैः अतएव मध्यभागोन्नतैः ग्रीवाभागैः शफाग्रभागैः अग्रतः आकाशं विदारयन्त इव अश्वाः कैश्चित् न पैः संयताः। इतरे भूमिपालाः निरुद्धवेगतया निःशब्दघण्टारवैः राजगजैः सह प्रतिगताः। अतः हे राजन्! सागराः इव भूमिपालाः ते आज्ञाम् न अतिक्रामन्ति। सागराः यथा वेलां प्राप्य निवर्तन्ते तथा राजानः अपि भवतः आज्ञाम् श्रुत्वैव निव त्ता इत्यर्थः।

मल०— आर्य, त्वमपि सपरिजनो निवर्तस्व। भागुरायण एको मामनुगच्छतु।

क चु०— यदाज्ञापयति कुमारः। (इति सपरिजनो निष्क्रान्तः)

मल०— सखे भागुरायण, विज्ञप्तो हमिहागच्छद्भिर्भद्रभटप्रभ तिभिर्यथा न वयममात्यराक्षसद्वारेण कुमारमाश्रयणीयामाश्रयामहे किन्तु कुमारस्य सेनापति शिखरसेनं द्वारीकृत्य दुष्टामात्यपरिग हीताच्चन्द्रगुप्तापरक्ताः कुमारमाभिरामिकगुण योगादाश्रयणीयमाश्रयामह इति। तन्न मया सुचिरमपि विचारयता तेषां वाक्यार्थो वधारितः।

भागु०— कुमार, न दुर्बोधोयमर्थः। विजीगीषुमात्मगुणसम्पन्नं प्रियहितद्वारेणाश्रयणीयमाश्रयेदिति ननु न्यायृय एवायमर्थः।

मल०— सखे भागुरायण, नन्वमात्यराक्षसो स्माकं प्रियतमो हिततमश्च।

भाग०— एवमेतत्। किन्त्वमात्यराक्षसश्चाणक्ये बद्धवैरो न चन्द्रगुप्ते। तद्यदि कदाचिच्चाणक्य-मतिजितकाशिनमसहमानः स साचिव्यादवरोपयेत्ततो नन्दकुलभक्त्या नन्दान्वय एवायमिति सुह ज्जनापेक्षया चामात्यराक्षसश्चन्द्रगुप्तेन सह सन्दधीत। चन्द्रगुप्तो पि पित पर्यायागत एवायमिति सन्धिमनुमन्येत्। एवं सत्यस्मासु कुमारो नाविश्वसेदित्ययमेषां वाक्यार्थः।

मल०— युज्यते। अमात्यस्य ग हमादेशय।

भागु०— इत इतः कुमारः। (उभौ परिक्रामतः) इदममात्यग हम्। प्रविशतु कुमारः।

मल०— एष प्रविशामि।

राक्ष०— (आत्मगतम्) अये स्म तम्। (प्रकाशम्) भद्र, अपि द ष्टस्त्वया कुसुमपुरे स्तनकलशः।

पुरु०— अमात्य, अथ किम। (अमच्च अह इं।)

मल०— (आकर्ण्य) भागुरायण, कुसुमपुरव त्तान्तः प्रस्तूयते। न तत्र तावदुपसर्पामः। श्रुणुमस्तावत्। कुत :-

हिन्दी अनुवाद—

मल०— आर्य, तुम भी सेवकों सहित लौट जाओ।

क चु०— जैसी कुमार आज्ञा देते हैं। (ऐसा कह कर सेवकों के साथ निकल जाता है)

मल०— मित्र भागुरायण, यहाँ आने वाले भद्रभट इत्यादि के द्वारा मुझसे निवेदन किया गया है कि हम 'अमात्यराक्षस के माध्यम से आश्रय लेने योग्य कुमार मलयकेतु का आश्रय नहीं ले रहे परन्तु कुमार के सेनापति शिखरसेन के माध्यम से दुष्ट अमात्य (चाणक्य) की सलाह से कार्य करने वाले चन्द्रगुप्त से विरक्त होकर प्रशस्त गुणों के कारण आश्रय लेने योग्य कुमार का आश्रय ले रहे हैं। तो चिरकाल तक विचार करने पर भी उनके कहने का अभिप्राय मेरे द्वारा नहीं समझा गया।

भाग०— कुमार यह समझना दुर्बोध नही। विजय के इच्छुक तथा आत्मगुणसम्पन्न आश्रय लेने योग्य (व्यक्ति) का आश्रय प्रिय और हित चाहने वाले के माध्यम से ही ले, निस्सन्देह यह बात उचित ही है।

मल०— मित्र भागुरायण, निस्सन्देह अमात्य राक्षस हमारे सबसे अधिक प्रिय व हित चाहने वाले हैं।

भाग०— यह तो ठीक है। परन्तु अमात्य राक्षस की शत्रुता चाणक्य से है चन्द्रगुप्त से नहीं। तो यदि कभी अपनी विजय से अति घमण्डी चाणक्य को सहन न करता हुआ वह (चन्द्रगुप्त) इसे अमात्यपद से हटा दे तो उस समय नन्दवंश में भक्ति के कारण 'यह नन्दवंश का ही है' ऐसा सोचकर अपने मित्रों की आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए अमात्य राक्षस चन्द्रगुप्त के साथ सन्धि कर सकता है। चन्द्रगुप्त भी यह (राक्षस) पित -परम्परा से प्राप्त हुआ है यह सोचकर इस सन्धि को स्वीकार कर ले। ऐसा हो जाने पर कुमार मलयकेतु हम पर अविश्वास न करें, यह इनके कहने का अभिप्राय है।

मल०— ठीक है। अमात्य का घर दिखलाओ।

मल०— इधर-इधर कुमार (दोनों घूमते हैं) यह अमात्य का घर है। कुमार प्रवेश करें।

मल०— यह मैं प्रवेश करता हूँ।

राक्ष०— (अपने आप) अरे याद आया। (स्पष्ट रूप से) भद्र क्या तुम्हारे द्वारा कुसुमपुर में स्तनकलश देखा गया था अर्थात् क्या तुम स्तनकलश से मिले थे।

पुरु०— अमात्य, और क्या।

मल०— (सुनकर) भागुरायण कुसुमपुर का समाचार बतलाया जा रहा है। हम वहाँ नहीं जाते, सुनते हैं। क्योंकि—

सत्त्वभंगभयाद्राज्ञां कथयन्त्यन्यथा पुरः।
अन्यथा विव तार्थेषु स्वैरालापेषु मन्त्रिणः।।८।।

अन्वय— मन्त्रिणः राज्ञां पुरः सत्त्वभंगभयात् अन्यथा कथयन्ति। विव तार्थेषु स्वैरालापेषु अन्यथा (कथयन्ति)।

सन्दर्भ— प्रस्तुत श्लोक में मलयकेतु भागुरायण को बतलाया है कि वह छिप कर राक्षस और करभक की बातें किस कारण से सुनना चाहता है।

हिन्दी अनुवाद—

मन्त्री राजा के सामने (राजा का) उत्साह नष्ट हो जाने के भय से अन्य प्रकार से बोलते हैं परन्तु स्पष्ट रूप से (खुल कर) अपने इच्छानुसार किए जाने वाले वार्त्तालापों में दूसरी प्रकार से बोलते हैं।(८)

स्पष्टीकरण— मलयकेतु का आशय यह है कि राजा के साथ बातचीत करते समय मन्त्री अरुचिकर बातों को यह सोचकर छिपा जाते हैं कि कहीं राजा का उत्साह नष्ट न हो जाए परन्तु अन्य व्यक्तियों से बातचीत करते समय वे खुलकर स्पष्ट रूप से सत्य बात ही करते हैं।

उक्त श्लोक में काव्यलिंग अलंकार तथा अनुष्टुप् छन्द है।

संस्कृत भावार्थ—

सचिवाः न पाणां समक्षं तेषाम् उत्साहभंगभीत्या प्रकारान्तरेण भाषन्ते परं परस्परविस्पष्टार्थेषु स्वेच्छालापेषु अन्येन प्रकारेण कथयन्ति।

भागु०— यदाज्ञापयति कुमारः।

राक्ष०— भद्र, अपि तत्कार्यं सिद्धम्?

पुरु०— अमात्यप्रसादेन सिद्धम्।

मल०— सखे भागुरायण, किं तत्कार्यम्?

भागु०— कुमार, गहनः सचिवव त्तान्तः। नैतावता परिच्छेतुं शक्यते। अवहितस्तावच्छ्रोतुमर्हति कुमारः।

राक्ष०— भद्र विस्तरेण श्रोतुमिच्छामि।

पुरु०— श्र णोत्वमात्यः। अस्ति तावदहममात्येनाज्ञप्तो यथा 'करभक' कुसुमपुरं गच्छ, मम वचनेन भण वैतालिकं स्तनकलशं - यथा चाणक्यहतकेन तेषु तेष्वाज्ञाभंगेष्वनुष्ठीयमानेषु चन्द्रगुप्त उत्तेजनसमर्थैः श्लोकैरुपश्लोकयितव्य इति। (सुणाादु अमच्चो) अत्थि दाव अहं अमच्चेणाण्णत्तो जह करभअ कुसुमपुरं गच्छ मह व अणेण भण वे आलिंअ त्थणकलसं जह चाणक्वहदएण तेसु तेसु अण्णभंगेसु अणुचिठ्ठी अमाणेसु चन्दउतो उत्ते अण समत्थेहिं सिलोएहिं उवसिलोअइदव्वो त्ति।)

राक्ष०— भद्र, ततस्ततः?

कर०— ततो मया पाटलिपुत्रं गत्वा श्रावितः अमात्यसन्देशं वैतालिकः स्तनकलशः। अत्रान्तरे नन्दकुलविनाशदूनस्य पौरजनस्य परितोषं समुत्पदायता राज्ञा घोषितः कौमुदीमहोत्सवः। स च चिरकालपरिवर्तमानो जनितपरिचयो भिमतवधूजनसागम इव सस्नेहं बहुमानितो नगर जनेन। (तदो मए पाडलिउत्तं गदुअ सुणाविदो अमच्चसन्देसं वेआलिओ त्थणकलसो। एत्थन्तरे णन्दउलविलासदूणस्य पोरजणस्य परितोसं समुप्पाद अन्तेण रण्णा आघोसिदी कौमुदीमहोस्सवो। सो उ चिरकालपिरवट्टमाणो जणिदपरिचओ अभिमदवधूजणसमागमो विअससिणेहं बहु माणिदो णअरजणेण)।

राक्ष०— (सवाष्पम्) हा देव नन्द।

हिन्दी अनुवाद—

भागु०— जैसी कुमार आज्ञा देते हैं।

राक्ष०— भद्र, क्या वह कार्य सम्पन्न हुआ?

कर०— अमात्य की कृपा से सम्पन्न हो गया।

मल०— मित्र भागुरायण, वह क्या (कौन-सा) कार्य है?

भागु०— कुमार, अमात्य की बातें अत्यन्त गूढ़ हैं। इतने से निश्चित करना सम्भव नहीं है। कुमार ध्यान देकर सुनें।

राक्ष०— भद्र विस्तार से सुनना चाहता हूँ।

पुरु०— अमात्य सुनें। आपके द्वारा मुझे आदेश दिया गया कि 'करभक' कुसुमपुर जाओ। मेरी ओर से वैतालिक स्तनकलश से कहो कि दुष्ट चाणक्य के द्वारा उन-उन अर्थात् विभिन्न

आज्ञाओं का उल्लंघन किए जाने पर चन्द्रगुप्त को उत्तेजित करने में समर्थ श्लोकों के द्वारा स्तुति की जानी चाहिए।

राक्ष०— भद्र, फिर क्या हुआ।

कर०— तब मेरे द्वारा पाटलिपुत्र जाकर अमात्य का सन्देश वैतालिक स्तनकलश को सुना दिया गया। इसके पश्चात् नन्दवंश के विनाश से दुःखी नगरवासियों की प्रसन्नता को उत्पन्न करने वाले राजा के द्वारा कौमुदीमहोत्सव की घोषणा कर दी गई। बहुत समय पश्चात् आने के कारण अर्थात् मनाए जाने के कारण तथा (नगरवासियों का) पूर्वपरिचित होने के कारण अभीष्ट वधू के साथ मिलने के समान नगरवासियों के द्वारा स्नेहपूर्वक (उसका) स्वागत किया गया।

राक्ष०— (आँसू भरकर) हाय राजा नन्द!

कौमुदी कुमुदानन्दे जगदानन्दहेतुना।

कीद शी सति चन्द्रे पि न पचन्द्र त्वया विना।।६।।

अन्वय— न पचन्द्र। कुमुदानन्दे चन्द्रे सति अपि जगदानन्दहेतुना त्वया विना कौमुदी कीद शी।

सन्दर्भ— करभक के मुख से कुसुमपुर में कौमुदीमहोत्सव मनाए जाने की बात सुनते ही राक्षस को पुनः राजा नन्दों की याद आ जाती है और वह अत्यन्त दुःखी होते हुए कहता है-

हिन्दी अनुवाद—

हे राजाओं में चन्द्रमा! कुमुदों के आनन्द चन्द्र के होने पर भी जगत के आनन्द के हेतु आपके बिना कौमुदी किस प्रकार हो सकती थी।(६)

स्पष्टीकरण— यह श्लोक द्वयर्थक है। राक्षस का अभिप्राय यह है कि चन्द्रमा तो केवल कुमुदों को ही आनन्द प्रदान करता है परन्तु राजा सारे नन्द सारे संसार के आनन्द के कारण थे। अतः उनके बिना कौमुदी कैसे हो सकती है।

इसका दूसरा अर्थ यह है कि चन्द्रगुप्त तो केवल प थ्वी के अर्थात् अपने नगरवासियों को ही प्रसन्न कर सकता है परन्तु राजा नन्द तो सारे संसार को ही प्रसन्नता प्रदान करते थे। अतः उनके बिना कौमुदीमहोत्सव किस प्रकार मनाया जा सकता है।

उक्त श्लोक में श्लेष अलंकार तथा अनुष्टुप् छन्द है।

संस्कृत भावार्थ—

न पेषु चन्द्र इव हे राजन् नन्द! कुवलयानाम् आनन्दजनके विकाशके इत्यर्थः चन्द्रमसि स्थिते पि सकलस्य संसारस्य हर्षस्य यः हेतुः ताद शा त्वया विना ज्योत्स्ना कथम्भूता।

पक्षान्तरे— चन्द्र इव हे राजन् नन्द। कौ प थिव्यां मुदं हर्षम् आनन्दयति वर्धयति इति समग्रायाः धरायाः आनन्दजनके चन्द्रगुप्ते सति अपि सकलस्य संसारस्य हर्षस्य यः हेतुः ताद शा त्वया विना कौमुदीमहोत्सवः कीद शः व्यर्थः एव इत्यर्थः।

कर०— **ततः स लोकलोचनानन्दभूतो निच्छत एव तस्य निवारितचाणक्यहतकेन। अत्रान्तरे स्तनकलशेन चन्द्रगुप्तसमुत्तेजिका श्लोकपरिपाटी प्रवर्तिता। (तदो सो लोअलोअणाणन्द भूदो अणिच्छन्तस्स एव तस्स णिवारिदो चाणक्कहदएण। एत्थन्तरे त्थणकलसेण चनदउत्तसमुत्ते जिला सिलोअपरिपाटी पवट्टिदा।)**

राक्ष० - **कीद शी सा?**

पुरुषः— (सत्त्वोद्रेकस्येत्यादि पूर्वोक्तं पठति)

राक्ष०— (सहर्षम्) साधु स्तनकलश, साधु। काले भेदबीजमुप्तवश्यं फलमुपदर्शयति। कुतः—

हिन्दी अनुवाद—

कर०— तत्पश्चात् लोगों के नेत्रों का आनन्दस्वरूप वह (कौमुदीमहोत्सव) उसके (चन्द्रगुप्त के) न चाहने पर भी दुष्ट चाणक्य के द्वारा रोक दिया गया है। इसी के बीच स्तनकलश द्वारा चन्द्रगुप्त को उत्तेजित करने वाले श्लोक गाए गए।

राक्ष०— वे किस प्रकार के थे?

पुरुष— (सत्त्वोद्रेकस्य इत्यादि पूर्वोक्त श्लोक पढ़ता है)

राक्ष०— (हर्षपूर्वक) शाबाश स्तनकलश, शाबाश। समय पर बोया गया भेद का बीज अवश्य फल दिखाएगा। क्योंकि -

सद्यः क्रीडारसच्छेदं प्राकृतो पि न मर्षयेत्।
किमु लोकाधिकं तेजो बिभ्राणः प थिवीपतिः।।१०।।

अन्वय— प्राकृतः अपि सद्यः क्रीडारसच्छेदं न मर्षयेत् लोकाधिकं तेजः बिभ्राणः प थिवीपतिः किमु।

सन्दर्भ— चन्द्रगुप्त को चाणक्य के विरूद्ध भड़काने में समर्थ स्तनकलश द्वारा गाए जाने वाले श्लोकों को करकभ के मुख से सुनकर राक्षस अत्यधिक प्रसन्न होता है क्योंकि उसे इस बात का निश्चय हो जाता है कि अब चन्द्रगुप्त और चाणक्य में अवश्य फूट पड़ जाएगी।

हिन्दी अनुवाद—

साधारण मनुष्य भी अचानक उत्सव के आनन्द में बाधा को सहन नहीं कर सकता तो फिर सारे संसार से अधिक तेज को धारण करने वाले राजा का तो कहना ही क्या।(१०)

उक्त श्लोक में अर्थापत्ति अलंकार तथा अनुष्टुव् छन्द है।

संस्कृत भावार्थ—

साधारणः जनः अपि हठात् उत्सवस्य आनन्दस्य यः भंगः तं न सहेत। लोकात् अधिकं प्रभावं धारयन् क्षितीशः तु तं कथं मर्षयेत्। कदापि नैव सहेत्।

मल०— एवमेतत्।

राक्ष०— ततस्ततः?

कर०— ततश्चन्द्रगुप्तेनाज्ञाभंगकलुषितेन प्रसंगसूचितममात्यगुणं प्रशस्यापभ्रंशितो धिकाराच्चाणक्यहतकः। (तदो चन्दउत्तेण अण्णाभंगकलुसिदेण पसंगसूचिदं अमच्चगुणं पसंसिअ अपब्भंसिदो अहिआरादो चाणक्कहदओ।)

मल०— सखे भागुरायण, गुणप्रशंसया दर्शितश्चन्द्रगुप्तेन राक्षसे भक्तिपक्षपातः।

भागु०— न तथा गुणप्रशंसया यथा चाणक्यबटोर्निराकरणेन।

राक्ष०— किमयमेवैकः कौमुदीमहोत्सवप्रतिषेधश्चन्द्रगुप्तस्य चाणक्यं प्रति कोपाकारणामुतान्यदप्यस्ति।

मल०— सखे, चन्द्रगुप्तस्यापरकोपकारणान्वेषणेन किं फलमेष पश्यति?

भागु०— कुमार मतिमांश्चाणक्यो न निष्प्रयोजनमेव चन्द्रगुप्तं कोपयिष्यति न च कृतवेदी चन्द्रगुप्त एतावता गौरवमुल्लघंयिष्यति। सर्वथा चाणक्यचन्द्रगुप्तयोः पुष्कलात्कारणाद्यो विश्लेष उत्पद्येत स आत्यन्तिको भविष्यतीति।

कर०— अस्त्यन्यदपि चन्द्रगुप्तस्य कोपकारणम्। उपेक्षितो नेनापक्रामन्मलयकेतु अमात्यराक्षसश्चेति। (अत्थि अण्णं वि चन्दउत्तस्य कोवकारणं। उवेक्खिदो अणेण अवक्कमन्तो मलअकेदू अमच्चरख्खसो अत्ति।)

राक्ष०— (सहर्षम्) सखे शकटदास हस्ततलगतो मे सम्प्रति चन्द्रगुप्तो भविष्यति। इदानीं चन्दनदासस्य बन्धनान्मोक्षस्तव च पुत्रदारैः सह सहागमः।

मल०— सखे भागुरायण, हस्ततलगत इति व्याहरतः को स्याभिप्राय?

भागु०— किमन्यत्। चाणक्यादपकृष्टस्य चन्द्रगुप्तस्योद्धरणान्न किंचित्कार्यमवश्यं पश्यति।

राक्ष०— भद्र, हताधिकारः क्व साम्प्रतमसौ बटुः?

कर०— तदेव पाटलिपुत्रमधिवसति (तहिं एव्व पाडलिउत्ते अहिवसदि।)

राक्ष०— (सावेगम्) भद्र तत्रैव प्रतिवसति। तपोवनं न गतः प्रतिज्ञां वा पुनर्न समारूढवान्?

कर०— अमात्य, तपोवनं गच्छतीति श्रूयते। (अमच्च तपोवणं गच्छदि त्ति सुणीअदि।)

राक्ष०— शंकटदास, नेदमुपपद्यते। पश्य -

हिन्दी अनुवाद—

मल०— यह तो ठीक है।

राक्ष०— तत्पश्चात् क्या हुआ?

कर०— तब आज्ञा के उल्लंधन से रुष्ट चन्द्रगुप्त के द्वारा प्रसंगवश अमात्य (राक्षस) के गुणों की प्रशंसा करके दुष्ट चाणक्य अधिकार से भ्रष्ट कर दिया गया अर्थात् अमात्य पद से हटा दिया गया।

मल०— मित्र भागुरायण, गुणों की प्रशंसा करके चन्द्रगुप्त के द्वारा राक्षस के प्रति भक्ति का पक्षपात दिखला दिया गया।

भागु०— क्या यह एक कौमुदीमहोत्सव का निषेध ही चन्द्रगुप्त के चाणक्य के प्रति क्रोध का कारण है अथवा अन्य कोई भी है।

मल०— मित्र, चन्द्रगुप्त के क्रोध के दूसरे कारणों को खोजने में यह (राक्षस) क्या लाभ देखा रहा है?

भागु०— कुमार, बुद्धिमान् चाणक्य बिना प्रयोजन के ही चन्द्रगुप्त को क्रुद्ध नहीं करेगा और न ही कृतज्ञ चन्द्रगुप्त इतने से शिष्टाचार का उल्लंघन करेगा। चाणक्य और चन्द्रगुप्त में अनेक कारणों से जो भेद उत्पन्न होगा वह चिरस्थायी होगा।

कर०— चन्द्रगुप्त के क्रोध का अन्य कारण भी है। इसके (चाणक्य के) द्वारा भागते हुए मलयकेतु और अमात्य राक्षस की उपेक्षा कर दी गई।

राक्ष०— (हर्षपूर्वक) मित्र शकटदास, अब चन्द्रगुप्त मेरे हाथ में आया हुआ (मुट्ठी में आया हुआ) ही हो जाएगा। अब चन्दनदास की कारगार से मुक्ति और तुम्हारा पुत्र और पत्नी के साथ मिलन हो जाएगा।

मल०— मित्र भागुरायण, 'हाथ में आया हुआ'। इसका (राक्षस का) ऐसा कहने का क्या अभिप्राय है?

भागु०— अन्य क्या। चाणक्य से अलग हुए चन्द्रगुप्त को नष्ट करने में (यह) कोई आवश्यक लाभ नहीं देखता।

राक्ष०— भद्र अधिकारभ्रष्ट वह दुष्ट (चाणक्य) अब कहाँ है?

कर०— वहीं पाटलिपुत्र में रह रहा हैं।

राक्ष०— (आवेगपूर्वक) भद्र वहीं रह रहा है। न तपोवन गया और न ही पुनः प्रतिज्ञा की।

कर०— अमात्य, तपोवन जाएगा, ऐसा सुना जा रहा है।

राक्ष०— शकटदास, यह उचित नहीं है। देखो -

स्पष्टीकरण— जैसे ही करभक राक्षस को बतलाता है कि चन्द्रगुप्त ने राक्षस की प्रशंसा कर चाणक्य को अमात्यपद से हटा दिया वैसे ही मलयकेतु भागुरायण से कहता है कि राक्षस के गुणों की प्रशंसा करके चन्द्रगुप्त ने अपनी भक्ति राक्षस के प्रति प्रदर्शित कर दी। इसके द्वारा वह अप्रत्यक्ष रूप से भागुरायण की पूर्वकथित बात का समर्थन करता है कि चन्द्रगुप्त और राक्षस में सन्धि हो सकती है। भागुरायण उसे और भी अधिक सन्देहयुक्त करता हुआ यह कह देता कि चन्द्रगुप्त के द्वारा राक्षस के लिए चाणक्य को हटाकर सचिव पद भी सुरक्षित कर दिया गया है। राक्षस चाणक्य के प्रति चन्द्रगुप्त के क्रोध के अन्य कारणों को जानने का इच्छुक है क्योंकि यदि बहुत से कारणों से उन दोनों से झगड़ा हुआ है तो उन दोनों में पुनः मित्रता होने की सम्भावना नहीं रहेगी और चाणक्यविरहित चन्द्रगुप्त को जीतना राक्षस के लिए सरल हो जाएगा परन्तु भागुरायण इसे अन्यथा बतला कर कि अनेक कारणों से उत्पन्न क्रोध चाणक्य को चन्द्रगुप्त से हमेशा-हमेशा के लिए प थक् कर देगा और तब राक्षस के लिए चन्द्रगुप्त का अमात्यपद स्वीकार करना और भी अधिक आसान हो जाएगा, मलयकेतु के मन में राक्षस के प्रति सन्देह और भी अधिक द ढ़ कर देता है।

राक्षस पदभ्रष्ट चाणक्य द्वारा न तो तपोवन जाने और न ही राजा नन्द के समान चन्द्रगुप्त को नष्ट करने की प्रतिज्ञा किए जाने से आवेग युक्त है क्योंकि उसे भय है कि कहीं चाणक्य और चन्द्रगुप्त पुनः सन्धि न कर लें।

देवस्य येन प थिवीतलवासवस्य
स्वाग्रासनापनयनान्निकृतिर्न सोढा।
सो यं स्वयंकृतनराधिपतेर्मनस्वी
मौर्यात्कथं नु परिभूतिमिमां सहेत।।११।।

अन्वय— येन प थिवीतलवासवस्य देवस्य स्वाग्रासनापनयनान्निकृतिः न सोढा सः अयं मनस्वी स्वयंकृतनराधिपतेः मौर्यात् इमां परिभूतिं कथं नु सहेत।

सन्दर्भ— जब राक्षस को पता चलता है कि पदभ्रष्ट चाणक्य न तो तपोवन ही गया और न ही उसने चन्द्रगुप्त को नष्ट करने की प्रतिज्ञा की तो वह अत्यधिक आश्चर्यचकित होता है। उसके आश्चर्य का कारण प्रस्तुत श्लोक में दिया गया है।

हिन्दी अनुवाद—

जिसके द्वारा प थ्वी पर इन्द्र के समान महाराज (नन्द) के स्वयं को आदर के आसन से हटाए जाने के अपमान को सहन नहीं किया गया वही यह मनस्वी (चाणक्य) अपने द्वारा बनाए गए राजा मौर्य से इस अपमान को किस प्रकार सहन कर लेगा।(११)

स्पष्टीकरण— राजा नन्द ने तो चाणक्य को केवल आदर के आसन से ही हटाया था तब भी चाणक्य ने अत्यन्त कुपित होकर उन्हें समूल नष्ट करने की प्रतिज्ञा कर ली और अब चन्द्रगुप्त

के द्वारा ही जिसे चाणक्य ने ही राजा बनाया है, चाणक्य को अमात्यपद से हटा दिया गया और उसने चन्द्रगुप्त को नष्ट करने की प्रतिज्ञा नहीं की।

उक्त श्लोक में अर्थापत्ति अलंकार तथा वसन्ततिलका छन्द है।

संस्कृत भावार्थ—

येन चाणक्येन महीप ष्ठे इन्द्र इव यः राजा नन्दः तेन कृता आत्मनः यत् वरपीठं तस्मात् यत् निष्कासनं ततः या अवमानना सा न मर्षिता स एव मानी अयं चाणक्यः आत्मना विहितः यः न पतिः तस्मात् चन्द्रगुप्तमौर्यात् अधिकारापनयनरूपम् अपमानं केन प्रकारेण मर्षयेत्। न कथमपि असौ प्रतिज्ञां नारूढः न च तपोवनं गतः तत्रैव पाटलिपुत्रे वसति इति न उचितम्। अतो त्र कश्चिद् गूढो हेतुरस्तीति भावः।

मल०— सखे, चाणक्यस्य वनगमने पुनः प्रतिज्ञारोहणे वा कास्य स्वार्थसिद्धिः?

भागु०— नात्यन्तदुर्बोधो यमर्थः। यावद्यावच्चाणक्यहतकश्चन्द्रगुप्ताद्दूरीभवति तावत्तवादस्य स्वार्थसिद्धिः।

शक०— अमात्य, अलमन्यथा विकल्प्य। उपपद्यत एवैतत्। पश्यत्वमात्यः -

हिन्दी अनुवाद—

मल०— मित्र, चाणक्य के तपोवन में जाने में अथवा पुनः प्रतिज्ञा करने में इसका क्या स्वार्थ सिद्ध होता है?

भाग०— यह बात समझना तो अत्यन्त कठिन नहीं है। दुष्ट चाणक्य जितना-जितना चन्द्रगुप्त से दूर होता है उतना-उतना इसका स्वार्थ सिद्ध होता है।

शक०— अमात्य अन्यथा न सोचें। यह उचित ही है। अमात्य देखें -

स्पष्टीकरण— राक्षस चाणक्य के तपोवन में न जाने से अथवा चन्द्रगुप्त को मारने की प्रतिज्ञा न करने से इस कारण चिन्तित है कि कहीं चाणक्य और चन्द्रगुप्त का मनमुटाव उसे भ्रमित करने के लिए न हो और वे दोनों पुनः सन्धि कर लें परन्तु भागुरायण इसकी अन्यथा व्याख्या करते हुए मयलकेतु को समझा देता है कि चाणक्य और चन्द्रगुप्त की दूरी जितनी बढेगी, राक्षस के लिए चन्द्रगुप्त का अमात्यपद स्वीकार करने के अवसर उतने ही प्रशस्त हो जाएंगे।

इधर शकटदास राक्षस को समझाने का प्रयत्न करता है कि चन्द्रगुप्त का चाणक्य को अमात्यपद से हटा देना तथा चाणक्य का चन्द्रगुप्त को नष्ट करने की प्रतिज्ञा न किया जाना, ये दोनों बातें ही सर्वथा उचित हैं। और उन दोनों का झगड़ा बनावटी न होकर वास्तविक ही है।

राज्ञां चूडामणीन्दुद्युतिखचितशिखे मूर्ध्नि विन्यस्तपादः
स्वैरेवोत्पाद्यमानं किमिति विषहते मौर्य आज्ञाविघातम्।
कौटिल्यः कोपनो पि स्वयमभिचरणे ज्ञातदुःखः प्रतिज्ञां
दैवात्पूर्णप्रतिज्ञः पुनरपि न करोत्यायतिग्लानिभीतः।।१२।।

अन्वय— चूड़ामणीन्दुद्युतिखचितशिखे राज्ञां मूर्ध्नि विन्यस्तपादः मौर्यः स्वैः एव उत्पाद्यमानम् आज्ञाविघातं किमिति विषहते। प्रतिज्ञाम् अभिचरणे स्वयं ज्ञातदुःखः दैवात्पूर्णप्रतिज्ञः आयतिग्लानिभीतः कौटिल्यः कोपनो पि पुनरपि (प्रतिज्ञाम्) न करोति।

सन्दर्भ— प्रस्तुत श्लोक में शकटदास राक्षस की इस दुविधा का कि कहीं चाणक्य और चन्द्रगुप्त का झगड़ा कृत्रिम ही न हो क्योंकि चाणक्य न तो तपोवन ही गया ओर न ही उसने चन्द्रगुप्त को मारने की ही प्रतिज्ञा की प्रत्युत वहीं कुसुमपुर में रह रहा है, बहुत समीचीन एवं तर्कसंगत ढंग से समाधान कर देता है

हिन्दी अनुवाद—

चन्द्रमा के समान चमचमाती हुई मुकुटों की मणियों से युक्त शिखा वाले राजाओं के सिरों पर पैर रखने वाला चन्द्रगुप्त मौर्य अपने ही (लोगों द्वारा) किए गए आज्ञा के उल्लंघन को किस प्रकार सहन करेगा। प्रतिज्ञा को पूरा करने के कष्टों को स्वयं जानने वाला, भाग्यवश पूर्ण हुई प्रतिज्ञा वाला, भविष्य में असफलता से भयभीत हुआ चाणक्य क्रोधित होने पर भी दुबारा (प्रतिज्ञा) नहीं करता।(१२)

स्पष्टीकरण— शकटदास राक्षस को समझा देता है कि चन्द्रगुप्त और चाणक्य दोनों ही अपने-अपने स्थान पर ठीक हैं। चन्द्रगुप्त चक्रवर्ती सम्राट है, सब राजाओं का शासक है अतः चाणक्य द्वारा उसकी आज्ञा का उल्लंघन किए जाने पर उसका कुपित हो जाना स्वाभाविक ही है और दूसरी तरफ चाणक्य का चन्द्रगुप्त को नष्ट करने की प्रतिज्ञा न किया जाना भी उचित है क्योंकि चाणक्य ने नन्दों के नाश की प्रतिज्ञा तो भावावेश में कर ली परन्तु उसे पूर्ण करने में सहन किए गए कष्टों को उसने स्वयं अनुभव कर लिया। वह प्रतिज्ञा तो सौभाग्यवश पूरी हो गई परन्तु अब पुनः प्रतिज्ञा करने से कहीं वह असफल न हो जाए और नन्दों को नष्ट कर प्रतिज्ञा पूर्ण करने का जो यश उसने अर्जित किया है, वह भी कहीं मिट्टी में न मिल जाए, इस भय से चाणक्य क्रोधित होने पर भी चन्द्रगुप्त को नष्ट करने की प्रतिज्ञा नहीं कर रहा। शकटदास का यह तर्क सर्वथा न्याय संगत होने के कारण राक्षस को पूर्ण रूप से सन्तुष्ट कर देता है।

प्रस्तुत श्लोक में काव्यलिंग अलंकार तथा स्रग्धरा छन्द है।

संस्कृत भावार्थ—

चूडायां निबद्धाः मणयः इति चूडामणयः चन्द्र इव तेषां कान्तिभिः संश्लिष्टा शिखा यस्य यस्मिन् वा तथाविधे न पाणां शिरसि स्थापितचरणः तेषां शासिता इत्यर्थः चन्द्रगुप्तः निजैरेव जनैः विधीयमानम् आज्ञाभगं केन प्रकारेण मर्षयति। तत् उपपद्यते किल यत् तत्त्वत एव न हि कृतकतया चाणक्यस्योपरि कुपितश्चन्द्रगुप्त तमधिकारादवारोपयत्। इतः आत्मना अनुभूतः क्लेशः यस्यां ताद शीं, भाग्यात् पूर्णा च या ताद शीं प्रतिज्ञां चाणक्य क्रुद्धो पि उत्तरे काले या निष्फलता तस्याः शकिंत सन् भूयो पि चन्द्रगुप्तविनाशाय प्रतिज्ञां न करोति।

राक्ष०— सखे शकटदास एवमेतत्। गच्छ, विश्रामय करभकम्।

शक०— यथाज्ञापयत्यमात्यः। (इति करभकेण सह निष्क्रान्तः)

राक्ष०— अहमपि कुमारं द्रष्टमिच्छामि।

मल०— (उपस त्य) अहमेवार्यं द्रुष्टुमागतः।

राक्ष०— (नाट्येनावलोक्य) अये कुमारः। (आसनादुत्थाय) इदमासनम्। उपवेष्टुमर्हति कुमारः।

मल०— अयमुपविशामि उपविशत्वार्यः (यथार्हमुपविष्टौ) आर्य, अपि सह्या शिरोवेदना।

राक्ष०— कुमार, कुमारस्याधिराजशब्देनातिरस्कृते कुमारशब्दे कुतो मे शिरोवेदनायाः सह्यता।

मल०— **ऊरीकृतमेतदार्येण न दुष्प्रापं भविष्यति। तत्कियन्तं कालमस्माभिरेवं संभ तबलैरपि शत्रुव्यसनमुदीक्षमाणैरुदासितव्यम्।**

राक्ष०— **कुमार कुतो द्यापि कालहरणस्यावकाशः। प्रतिष्ठस्व विजयाय।**

मल०— **आर्य, शत्रुव्यसनमुपलब्धम्।**

राक्ष०— **उपलब्धम्।**

मल०— **कीद शं तत्?**

राक्ष०— **सचिवव्यसनं किमन्यत्। अपकृष्टश्चाणक्याच्चन्द्र गुप्तः।**

मल०— **आर्य, सचिवव्यसनमव्यसनमेव।**

राक्ष०— **अन्येषां भूपतीनां कदाचिदमात्यव्यसनमव्यसनं स्यात्। न पुनश्चन्द्रगुप्तस्य।**

मल०— **आर्य, नैतदेवम्। चन्द्रगुप्तप्रकृतीनां चाणक्यदोषा एवापरागहेतवस्तस्मिंश्च निराकृते प्रथममपि चन्द्रगुप्ते नुरक्ताः सम्प्रति सुतरामेव तत्रानुरागं दर्शयिष्यन्ति।**

राक्ष०— **मा मैवम्। ताः खलु द्विप्रकाराः प्रकृतयश्चन्द्रगुप्तसहोत्थायिन्यो नन्दानुरक्ताश्च। तत्र चन्द्रगुप्तसहोत्थायिनीनां चाणक्यदोषा एव विरागहेतवो न नन्दकुलानुरक्तानाम्। तास्तु खलु नन्दकुलमनेन पित भूतं घातितमित्यपरागामर्षाभ्यां विप्रकृताः सत्यः स्वाश्रयमलभमानाश्चन्द गुप्तमेवानुवर्तन्ते। त्वाद शं पुनः प्रतिपक्षोद्धरणे संभावितशक्तिमभियोक्तारमासाद्य क्षिप्रमेनं परित्यज्य त्वामेवाश्रयिष्यन्ते। अत्र निदर्शनं वयमेव।**

मल०— **आर्य, किमेतदेकमेव सचिवव्यसनमभियोगकारणं चन्द्रगुप्तस्याहोस्विदन्यदप्यस्ति?**

राक्ष०— **किमन्यैर्बहुभिपि एतद्धि प्रधानतमम्।**

मल०— **आर्य कथमिव प्रधानतमम्। किमिदानीं चन्द्रगुप्तः स्वकार्यधुरामन्यत्र मंत्रिण्यात्मनि वा समासज्य स्वयं प्रतिविधातुमसमर्थः?**

राक्ष०— **बाढमसमर्थः। कुतः। स्वयात्तसिद्धिषूभयत्तसिद्धिषु वा भूमिपालेषु तत्सम्भवति। चन्द्रगुप्तस्तु दुरात्मा नित्यं सचिवायत्तसिद्धावेव स्थितश्चक्षुर्विकल इवाप्रत्यक्षलोकव्यवहारः कथमिव स्वयं प्रतिविधातुं समर्थः स्यात्?**

हिन्दी अनुवाद—

राक्ष०— मित्र शकटदास, यह तो ठीक है। जाओ करभक को विश्राम करवाओ।

कर०— जैसी अमात्य आज्ञा देते हैं। (ऐसा कहकर करभक के साथ निकल जाता है।)

राक्ष०— मैं भी कुमार को देखना चाहता हूँ।

मल०— (पास जाकर) मैं ही आर्य को देखने के लिए आ गया।

राक्ष०— (अभिनयपूर्वक देखकर) अरे कुमार (आसन से उठकर) यह आसन है। कुमार बैठें।

मल०— यह मैं बैठता हूँ। आर्य बैंठें (दोनों यथास्थान बैठ जाते हैं) आर्य क्या शिरोवेदना सहनीय है?

राक्ष०— कुमार, कुमार के कुमार शब्द के अधिराज शब्द द्वारा तिरस्कृत कर दिए जाने तक मेरी शिरोवेदना की सहनीयता कहाँ से होगी (अर्थात् जब तक मैं आपको कुमार से अधिराज नहीं बना देता तब तक मेरी शिरोवेदना सहनीय नहीं होगा।)

मल०— आर्य के द्वारा स्वीकृत यह कठिनता से प्राप्त करने योग्य नहीं होगा। तो कितने समय तक इस प्रकार सेना से युक्त होने पर भी शत्रुव्यसन की प्रतीक्षा करते हुए हमारे द्वारा उदासीन रहा जाएगा।

राक्ष०— अब भी विलम्ब करने का अवसर कहाँ से है। विजय के लिए प्रस्थान करो।

मल०— आर्य, शत्रुव्यसन प्राप्त हो गया?

राक्ष०— प्राप्त हो गया।

मल०— वह किस प्रकार का है?

राक्ष०— सचिवव्यसन है, और क्या। चन्द्रगुप्त चाणक्य से अलग हो गया।

मल०— आर्च, सचिवव्यसन तो व्यसन ही नही है।

राक्ष०— दूसरे राजाओं के लिए कभी सचिवव्यसन व्यसन न हो परन्तु चन्द्रगुप्त के लिए ऐसा नहीं है।

मल०— आर्य, यह ऐसा नहीं है। चाणक्य के दोष ही चन्द्रगुप्त की प्रजा की विरक्ति के कारण थे और उसको हटा दिए जाने पर पहले से ही चन्द्रगुप्त पर स्नेह रखने वाली प्रजा उसके प्रति अब और भी अधिक स्नेह दिखलाएगी।

राक्ष०— नहीं ऐसा नहीं है। निश्चित रूप से वे प्रजाएँ दो प्रकार की हैं - चन्द्रगुप्त का साथ देने वाली और नन्दों पर स्नेह रखने वाली। उनमें से चन्द्रगुप्त का साथ देने वाली (प्रजा) के लिए ही चाणक्य के दोष विरक्ति के कारण हैं, नन्दकुल में अनुरक्त के लिए नहीं है। वे तो 'पिता तुल्य नन्दवंश इसके द्वारा मारा गया है ऐसा सोचकर विरक्ति और क्रोध से विमुख हुई अपने आश्रय (राजा) को प्राप्त न करती हुई चन्द्रगप्त का ही अनुसरण कर रही हैं परन्तु शत्रुपक्ष को नष्ट करने में पर्याप्त शक्ति युक्त तुम्हारे जैसे आक्रमक को पाकर शीघ्र ही इसे (चन्द्रगुप्त को) छोड़ कर तुम्हारा ही आश्रय ले लेगी। इस विषय में हम ही उदाहरण हैं।

मल०— आर्य, क्या यह एक सचिव व्यसन ही चन्द्रगुप्त पर आक्रमण करने का कारण है अथवा अन्य भी है।

राक्ष०— अन्य बहुतों से क्या लेना। निश्चित रूप से यही सबसे प्रमुख है।

मल०— आर्य सबसे प्रमुख किस प्रकार है। क्या अब चन्द्रगुप्त अपने कार्यभार को किसी अन्य मन्त्री पर अथवा अपने ऊपर डाल कर (हमारे द्वारा किए गए आक्रमण का) प्रतीकार करने में समर्थ नहीं है।

राक्ष०— हाँ असमर्थ है क्योंकि अपने अधीन सिद्धि वाले अथवा दोनों (मन्त्रीं और राजा) के अधीन सिद्धि वाले राजाओं में वह सम्भव है परन्तु दुष्ट चन्द्रगुप्त तो हमेशा ही सचिव के अधीन सिद्धि वाला है, अन्धे के समान स्थिति हैं और लौकिक व्यवहारों से अनभिज्ञ (वह) अपने आप प्रतीकार करने में कैसे समर्थ हो सकता है?

स्पष्टीकरण— राक्षस जब मलयकेतु को बतलाता है कि 'अब हमारे लिए चन्द्रगुप्त पर आक्रमण करने का उचित अवसर है' क्योंकि चन्द्रगुप्त चाणक्य से प थक् हो गया है तो मलयकेतु आशंका प्रकट करते हुए कहता है कि तब तो हमारे लिए आक्रमण करना उचित नहीं है क्योंकि चन्द्रगुप्त की प्रजाएँ चाणक्य के दोषों के कारण ही चन्द्रगुप्त से विमुख थीं। अब जब उसे हटा दिया गया है तब तो प्रजाएँ चन्द्रगुप्त पर और भी अधिक अनुरक्त हो जाएगीं। यहाँ

मयलकेतु का संकेत राक्षस की ओर है क्योंकि भागुरायण ने पहले ही मलयकेतु को विश्वास दिला दिया था कि राक्षस की शत्रुता चाणक्य से है चन्द्रगुप्त से नहीं और चाणक्य के अलग हो जाने पर राक्षस और चन्द्रगुप्त परस्पर सन्धि कर सकते हैं।

अत्युच्छ्रिते मन्त्रिणि पार्थिवे व विष्टभ्य पादावुपतिष्ठते श्रीः।
सा स्त्रीस्वभावादसहा भरस्य तयोर्द्वयोरेकतरं जहाति।।१३।।

अन्वयः— मन्त्रिणि पार्थिवे च अत्युच्छ्रिते श्रीः पादौ विष्टभ्य उपतिष्ठते स्त्रीस्वभावाद् भरस्य असहा सा तयोः द्वयो एकतरम् ज़हाति।

सन्दर्भ— राक्षस मलयकेतु को बतलाता है कि उभयायत्त सिद्धि राजा किस प्रकार विनाश को प्राप्त हो जाता है।

हिन्दी अनुवाद—

मन्त्री और राजा के अत्युन्नत हो जाने पर राजलक्ष्यमी पैरों को (दोनों पर) टिका कर खड़ी होती है (परन्तु) स्त्री स्वभाव के कारण भार को सहन न करने के कारण वह उन दोनों में से एक को छोड़ देती है। (१३)

स्पष्टीकरण— मलयकेतु ने राक्षस से प्रश्न किया था कि क्या चन्द्रगुप्त अन्य मन्त्री पर भार डाल कर अथवा स्वयं हमारे आक्रमण का प्रतीकार नहीं कर सकता तो राक्षस कहता है कि वह बात स्वायत्त सिद्धि वाले राजाओं में ही सम्भव होती है। उभयायत्तसिद्धि अथवा सचिवायत्त सिद्धि वाले राजाओं में वह असम्भव है। प्रस्तुत श्लोक में राक्षस बतलाता है कि उभयायत्त सिद्धि वाले राजाओं में वह सम्भव क्यों नहीं है। उसके अनुसार राज्यलक्ष्मी राजा और मन्त्री दोनों के समान रूप से ऊँचा उठ जाने पर अपना एक एक पैर दोनों के कन्धों पर टिका कर खड़ी होती है। परन्तु स्त्री होने के कारण स्त्रीजनोचित दुर्बलता के कारण अपने शरीर के भार को बहुत समय तक इस अवस्था में नहीं सम्हाल पाती और उन दोनों में एक को छोड़कर अपने दोनों पैर दूसरे पर टिका देती है चाहें वह अमात्य हो अथवा राजा। परन्तु अन्त में जिस का भी आश्रय लेती है, उसके पतन के साथ स्वयं भी नष्ट हो जाती है जिस प्रकार एक नर्तकी समान ऊँचाई वाले दो बाँसों का सहारा लेकर न त्य करती है। परन्तु जब उन दोनों में विषमता आ जाती है तो उस समय लड़खड़ाकर अपने शरीर के भार को सहन न करती हुई एक बाँस का सहारा ले लेती है और अन्त में उस आश्रय लिए हुए बाँस के गिरने के साथ स्वयं भी जमीन पर गिर जाती है। इस प्रकार उभयायत्तसिद्धि राजा का पतन अवश्यंभावी है।

प्रस्तुत श्लोक में समासोक्ति अलङ्कार तथा उपजाति छन्द है।

संस्क त भावार्थ—

उभयायत्तसिद्धेः भूपस्य राजलक्ष्यमीः अत्युन्नते अमात्ये च न पे एकैकस्मिन् एकैकं पादं निधाय तयोः समीपस्था भवति। किन्तु ताद शावस्थानं स्त्रीणां चिरं न सुकरम् अतः नारी प्रक त्या स्त्रीजनोचितदुर्बलतया इत्यर्थः स्वदेहभरस्य अक्षमा मन्त्रिपार्थिवयोः अन्यतरं कमपि एकं त्यजाति। एकं परित्यज्य अन्यस्मिन् सुस्थिरा भवति। कचित्कालं प्रभुमात्रमाश्रित्य मन्त्रिमात्रमाश्रित्य वा वर्तमानापि अन्ते तथैव नश्यति यथा काचन् नर्तकी उच्छ्रितौ समौ वंशस्तम्भौ पादाम्यां द ढमवष्टभ्य सुस्थिरा तिष्ठति तयोर्वैषम्ये विसंष्ठुलपदतया देहभरं वोढुमसहा एकं हित्वान्यतरमलम्बमाना तेन सह स्वयमपि पतति।

न पो पक ष्टः सचिवात्तदर्पणः स्तनन्धयो त्यन्तशिशुः स्तनादिव।
अद ष्टलोकव्यवहारमन्दधीर्मुहूर्तमप्युत्सहते न वर्तितुम्।।१४।।

अन्वयः— तदर्पणः अद ष्टलोकव्यवहारमन्दधीः (च) सचिवात् अपक ष्टः न पः स्तनात् (अपक ष्टः) स्तनन्धयो त्यन्तशिशुः इव मुहूर्तमपि वर्तितुम् न उत्सहते।

सन्दर्भ— प्रस्तुत श्लोक में राक्षस मलयकेतु को बतलाता है कि चन्द्रगिुप्त सचिवायत्तसिद्धि राजा है अतः चाणक्य के प थक् हो जाने पर वह स्वयं हमारे द्वारा किए गए आक्रमण का प्रतीकार नहीं कर पाएगा।

हिन्दी अनुवाद—

उस पर अर्थात् मन्त्री पर ही सब कुछ अर्पित कर देने वाला, लौकिक व्यवहार को न जानने के कारण मन्दबुद्धि (तथा) मन्त्री (चाणक्य) से अलग हुआ राजा, स्तन से अलग हुए स्तनपान करने वाले बहुत छोटे बच्चे से समान क्षण भर के लिए भी व्यवहार करने में अर्थात् राज्य संचालन में समर्थ नहीं है। (१४)

हिन्दी अनुवाद—

इससे पूर्व के श्लोक में राक्षस ने मलयकेतु को बतलाया कि उभयायत्तसिद्धि राजा राज्य के संचालन में असमर्थ क्यों है और अब प्रस्तुत श्लोक में वह बतलाता है कि सचिवायत्त सिद्धि राजा अपने मन्त्री पर ही सारा राज्य भार सौंप देता है। स्वयं सांसारिक व्यवहारों को नहीं जानता अतः मन्दबुद्धि होता है। यदि वह मन्त्री से प थक् हो जाता है तो क्षण भर के लिए भी स्वतंत्रतापूर्वक कार्य उसी प्रकार नहीं कर पाता जिस प्रकार स्तनपान करने वाला शिशु माँ से अलग नहीं रह पाता। चन्द्रगुप्त भी सचिवायत्त सिद्धि राजा होने के कारण चाणक्य से अलग हो स्वयं राज्यभार चलाने में सर्वथा असमर्थ है। इस प्रकार राक्षस ने इस श्लोक में मलयकेतु के इस प्रश्न का उत्तर भी दे दिया कि चन्द्रगुप्त स्वयं उनके आक्रमण का प्रतीकार क्यों नहीं कर सकता।

उक्त श्लोक में उपमा अलङ्कार तथा वंशस्थ छन्द है।

संस्क त भावार्थ— सचिवे सर्वं राज्यतन्त्रम् अर्पयतीति तथाभूतः' सचिवायत्तसिद्धिरित्यर्थः अतएव अविदितः संसारस्य आचारः यस्य ताद शः तेन च हेतुना मूढमतिः राजा अमात्यात् प थक्भूतः, मात स्तनात् अपक ष्टः स्तनपायी अतिबालः इव क्षणमपि व्यवहर्तुं न शक्नोति।

मल०— (आत्मगतम्) दिष्ट्या न सचिवायत्ततन्त्रो स्मि। (प्रकाशम्) यद्यप्येवं तथापि बहुष्वभियोगकारणुषु सत्सु व्यसनमभियु जानस्य शुत्रुमभियोक्तुरैकान्तिकी कार्यसिद्धिर्भवति।

राक्ष०— ऐकान्तिकीमेव कार्यसिद्धिमवगन्तुमर्हति कुमारः। कुतः-

हिन्दी अनुवाद—

मल०— (अपने आप) सौभाग्य से मैं मन्त्री के अधीन सफलता वाला नहीं हूँ। (स्पष्ट रूप से) यद्यपि यह ऐसा है तथापि आक्रमण के बहुत से कारण होने पर व्यसन को खोजते हुए शत्रु पर आक्रमण करने वाले की निश्चित रूप से कार्य सिद्धि होती है।

राक्ष०— कुमार, कार्यसिद्धि को निश्चित ही समझें। क्योंकि -

त्वय्युत्क ष्टबले भियोक्तरि न पे नन्दानुरक्ते पुरे
चाणक्ये चलिताधिकारविमुखे मौर्ये नवे राजनि।

स्वाधीने मयि (इत्यर्द्धोक्ते लज्जां नाटयन) मार्गमात्रकथनव्या-
पारयोगोद्यमेत्वद्वा छान्तरितानि संप्रति विभो तिष्ठन्ति साध्यानि नः।।१५।।

अन्वयः— उत्कृष्टबले त्वयि अभियोक्तरि न पे पुरे नन्दानुरक्ते चाणक्ये चलिताधिकारविमुखे मौर्ये नवे राजनि मार्गमात्रकथनव्यापारयोगोद्यमे मयि स्वाधीने विभो संप्रति नः साध्यानि त्वद्वा छान्तरितानि तिष्ठन्ति।

सन्दर्भ— प्रस्तुत श्लोक में राक्षसं मलयकेतु का ध्यान तथ्यों की तरफ आकर्पित करता है जिनके कारण वह चन्द्रगुप्त पर तुरन्त ही आक्रमण कर देना चाहता है।

हिन्दी अनुवाद—

उत्क ष्ट सेना से युक्त आपके आक्रमणकारी राजा होने पर, कुसुमपुर के नन्दों में अनुरक्त होने पर चाणक्य के अधिकार से च्युत हो जाने के कारण उदासीन होने पर, चन्द्रगुप्त मौर्य के नए राजा होने पर, केवल मार्ग बतलाने के कार्य के उपाय में यत्नशील मेरे आपके अधीन होने पर अथवा आपकी सचिव रूप से सेवा करने पर हे स्वामी अब हमारे अभीप्सित कार्य आपकी इच्छा के कारण ही रुके हुए हैं। (१५)

स्पष्टीकरण— मलयकेतु ने राक्षस से कहा था कि सचिवव्यसन के साथ-साथ शत्रु पर आक्रमण करने के यदि अन्य कारण भी हों तभी हमारी विजय सुरक्षित हो सकती है। इसका प्रत्युत्तर देते हुए राक्षस उसे बतलाता है कि हमारी विजय निश्चित ही है क्योंकि सभी बातें हमारे पक्ष में हैं। सर्वप्रथम आप जैसा योग्य आक्रमणकारी राजा है जिसके पास उत्क ष्ट सेना है, दूसरे प्रजा अभी नन्दों पर स्नेह रखती है, तीसरे चाणक्य राज्य स चालन में कोई रुचि नहीं ले रहा क्योंकि चन्द्रगुप्त ने उसे अमात्यपद से हटा दिया है, चौथे चन्द्रगुप्त नया राजा है अतः अनुभवहीन है और पाँचवें मैं भी आपके अधीन हूँ। इतना कह कर राक्षस इस आशङ्का से कि वह आत्मप्रशंसा कर रहा है, थोड़ा लज्जित हो जाता है परन्तु वाक्य को पूरा करते हुए कहता है कि मैं आपका मार्ग निर्देशन मात्र करूँगा। अब आप तुरन्त ही आक्रमण करने की आज्ञा दीजिए ताकि हमारा साध्य पूर्ण हो सके। राक्षस का साध्य मलयकेतु को राजसिंहासन पर बैठाना है।

उक्त श्लोक में समुच्चयालङ्कार तथा शार्दूलविक्रीडित छन्द है।

संस्क त भावार्थ—

प्रशस्यं सैन्य यस्य तथाविधे त्वयि योद्धुम् उद्यते न पे सति, कुसुमपुरे नन्दस्नेहिनि सति, मन्त्रिपदच्युते चाणक्ये प्रतीकारपराङ्मुखे सति, चन्द्रगुप्ते नूतने न पे सति अतएव प्रतीकानारभिज्ञे सति, कुसुमपुरवर्त्मनः प्रदर्शने यो व्यापारयोगः स एव उद्यमः ताद शे मयि तवैव अधीने सति अस्माकम् अभीप्सितानि त्वदिच्छामात्रान्तर्हितानि वर्तन्ते।

मल०— **यद्येवमभियोगकालमार्यः पश्यति ततः किमास्यते।**

उत्तुङ्गास्तुङ्गकूलं स्रुतुमदसलिलाः प्रस्यन्दिसलिलं
श्यामाः श्यामोपकण्ठद्रुममलिमुखराः कल्लोरमुखरम्।
स्रोतः खातावसीदत्तटमुरुदशनैरुत्सादिततटाः
शोणं सिन्दुरशोणा मम गजपतयो पास्यन्तु शतशः।।१६।।

(इति भागुरायणेन सह निष्क्रान्तो मलयकेतुः)

अन्वय— उत्तुङ्गा स्रुतमदसलिलाः श्यामाः अलिमुखराः उरुदशनैरुत्सादिततटाः सिन्दूरशोणाः मम शतशः गजपतयः तुङ्गकूलं प्रस्यन्दिसलिलं श्यामोपकण्ठद्रुमम् कल्लोरमुखरम् स्रोतः खातावसीदत्तटम् शोणम् अपास्यन्तु।

सन्दर्भ— प्रस्तुत श्लोक में मलयकेतु शत्रु पर आक्रमण करने के लिए तत्पर होते हुए अपने हाथियों का काव्यात्मक ढंग से वर्णन करता है।

हिन्दी अनुवाद—

मल०— यदि आर्य इस प्रकार आक्रमण करने का समय देख रहे हैं तो (हमारे द्वारा) हाथ पर हाथ रखकर क्यों बैठा जा रहा है।

विशालकाय, मदजल को बहाने वाले, क ष्णवर्ण, भौंरो से शब्दायमान, विशाल दाँतों से तटों को उखाड़ने वाले (और) सिन्दूर से लाल मेरे सैंकड़ों हाथी ऊँचे तटों वाली, प्रवाहित जल से युक्त, तटों पर विद्यमान काले व क्षों वाली, लहरों से शब्दायमान (और) अपने प्रवाह से उखाड़े गए तथा गिरते हुए तटों वाली शोण नदी को आलोड़ित करें। (१६)

प्रस्तुत श्लोक में यथासंख्य अलंकार तथा सुवदना छन्द है।

संस्क त भावार्थ—

महाप्रमाणाः, प्रवाहितं दानवारि यैः ताद शाः क्षरद्दानवारयः, क ष्णवर्णाः, भ्रमरैः, गु जन्तः, ब हद्भिः दन्तैः पाटितं तटं यैः तथाविधाः, सिन्दूरैः रक्तवर्णाश्च मम अनेकशः गजतपयः उन्नततटं, प्रवहमाणजलं, श्यामवर्णाः तटप्रदेशे द्रुमाः यस्य तथाविधमुपतटश्यामव क्षं, वीचिभिः महाशब्दयुतं प्रवाहेण विशीर्णम् अतएव अवसीदत् तटम् यस्य तथाविधं प्रवाहखातभ्रंश्यत्तीरं शोणाख्यं नदम् विधुन्वन्तु।

अपि च—

गम्भीरगर्जितरवाः स्वमदाम्बुमिश्रम्
आसारवर्षमिव शीकरमुद्गिरन्त्यः।
विन्ध्यं विकीर्णसलिला इव मेघमाला
रुन्धन्तु वारणघटा नगरं मदीयाः।।१७।।

अन्वयः— गम्भीरगर्जितरवाः स्वमदाम्बुमिश्रं शीकरम् आसारवर्षमिव उद्गिरन्त्यः मदीयाः वारणघटा नगरं रुन्धन्तु इव गम्भीरगर्जितरवाः विर्कीणसलिलाः मेघमालाः विन्ध्यं रुन्धन्ति।

सन्दर्भ— मलयकेतु पुनः युद्ध के लिए प्रयाण करते हुए अपने हाथियों की पंक्ति की तुलना मेघपंक्ति से करता है।

हिन्दी अनुवाद—

और भी- गम्भीर गर्जन की आवाज करने वाली, अपने मदजलसे मिश्रित जलकणों की बौछार को वर्षा के समान गिराती हुई मेरे हाथियों की पंक्तियाँ कुसुमपुर को घेर लें जिस प्रकार गम्भीर गर्जन की आवाज करने वाली (और) जल बरसाने वाली मेघों की पंक्ति विन्ध्याचल को घेर लेती है।(१७)

(ऐसा कहकर भागुरायण के साथ मलयकेतु निकल जाता है)

स्पष्टीकरण— हाथी और मेघ दोनों ही गम्भीर गर्जना कर रहे हैं व दोनों ही वर्षा की बौछार कर रहे हैं। हाथियों ने शोण नदी का जल पिया था उसी को वे अपने मदजल से मिश्रित

कर वर्षा की बौछार के रूप में अपनी सूँड से बाहर निकाल रहे हैं और दूसरी तरफ बादल वर्षा कर रहे हैं।

प्रस्तुत श्लोक में उपमा अलङ्कार तथा वसन्ततिलका छन्द है।

संस्क त भावार्थ—

मन्द्रः ब ंहितध्वनिः यासां ताद श्यः अपि च स्वकीयैः दानजलैः युक्तं जलकणराशिं धारासम्पातमिव उद्वमन्त्यः मम गजपंक्तयः कुसुमपुरं निरुद्धं कुर्वन्तु यथा व ष्यमाणं जलं याभिः ताद श्यः घनपंक्तयः विन्ध्यपर्वतं रुन्धन्ति।

राक्ष०— कः कोत्र भोः?

पुरुष— (प्रविश्य) आज्ञापयतु अमात्यः। (आणवेदु अमच्चो।)

राक्ष०— प्रियंवदक, ज्ञायतां सांवत्सरिकाणां द्वारि कस्तिष्ठति?

पुरु०— यदमात्य आज्ञापयति। (निष्क्रम्य पुनः प्रविश्व) अमात्य एष खलु सांवत्सरिकः क्षपणकः- (जं अमच्चो आणवेदि। अमच्च एसो खु संवच्छिरिओ क्खवअणो)

राक्ष०— (आत्मगतम् अनिमित्तं सूचयित्वा) कथं प्रथममेव क्षपणकः।

पुरु०— जीवसिद्धिः (जीवसिद्धी।)

राक्ष०— (प्रकाशम्) अबीभत्सदर्शनं क त्वा प्रवेशय।

पुरु०— तथा (तह)। (इति निष्क्रान्तः)

क्षपणकः— (प्रविश्य)

हिन्दी अनुवाद—

राक्ष०— अरे यहाँ कौन है?

पुरु०— (प्रवेश करके) अमात्य आज्ञा दें।

राक्ष०— प्रियंवदक, पता करो ज्योतिषों में से कौन दरवाजे पर है?

पुरु०— अमात्य जो आज्ञा देते हैं। (निकल कर पुनः प्रवेश करके) अमात्य यह ज्योतिष क्षपणक-

राक्ष०— (अपने आप, अपशकुन का अभिनय करके) यह क्या पहले ही क्षपणक।

पुरु०— जीवसिद्धि।

राक्ष०— (स्पष्ट रूप से) बीभत्स दर्शन से रहित करके ले आओ।

पुरु०— जैसी आज्ञा। (यह कह कर निकल जाता है)

क्षपणक— प्रवेश करके -

शासनमर्हतां प्रतिपद्यध्वं मोहव्याधिवैद्यानाम्।
ये मुहूर्त्तमात्रकटुकं पश्चात्पथ्यमुदिशन्ति।।१८।।
सासणलिहन्तताणं पडिवज्जह मोहवाहिवेज्जाणं।
जे मुत्तमात्तकडुअं पच्छा पत्थं उवदिसन्ति।।१८।।

अन्वय— मोहव्याधिवैद्यानाम् अर्हतां शासनं प्रतिपद्यध्वं ये मुहूर्तमात्रकटुकं पश्चात्पथ्यमुपदिशान्ति।

सन्दर्भ— प्रस्तुत श्लोक में जीवसिद्धि नामक क्षपणक सबको अर्हतों का हितकारी उपदेश ग्रहण करने के लिए सुझाव देता है।

हिन्दी अनुवाद—

अज्ञान रूपी रोग का उपचार करने वाले अर्हतों के उपदेश को स्वीकार करो जो क्षण भर के लिए कड़वा परन्तु बाद में हितकारी उपदेश देते हैं। (१८)

स्पष्टीकरण— जैन मतानुयायियों के अनुसार कठोर तपस्या करना, सिर मुँडवा देना, सांसारिक विषय भोगों का त्याग करना इत्यादि निर्वाण प्राप्ति के साधन हैं। इस कारण अर्हतों का उपदेश यद्यपि क्षणभर के लिए तो अरुचिकर होगा तथापि बाद में हितकारी होगा। उनके ज्ञानरूपी उपदेश से अज्ञान को दूर करो।

इसका गूढार्थ यह है कि अभी जो कुछ राक्षस के सामने आ रहा है वह यद्यपि प्रारम्भ में उसे अरुचिकर होगा तथापि अन्त में उसके लिए रुचिकर होगा।

इसका दूसरा गूढार्थ यह है कि चाणक्य के आदेश का पालन करो जो प्रारम्भ में चाहें कठोर लगे परन्तु बाद में लाभप्रद होगा।

प्रस्तुत श्लोक में रूपक अलङ्कार तथा आर्या छन्द है।

संस्क त भावार्थ—

मोह एव व्याधिः तस्य अज्ञानस्य रोगस्य ये चिकित्सकाः तेषां जैनसन्यासिनाम् उपदेशं ग हणीत ये क्षणमात्रं ग्रहणकाले एव विरसं परं परिणामे हितकरं शिक्षयन्ति। अनेन गाथार्थेन सम्प्रति स्वेन वक्ष्यमाणं वचनमापाततो रुक्षमपि परिणामे राक्षसस्य पथ्यमिति सूचितम्।

(उपस त्य) धर्मसिद्धिर्भवतु श्रावकाणाम्। (धम्मसिसिद्ध होदु सावगाणम्)।

राक्ष०— भदन्त, निरूप्यतां तावदस्मत्प्रस्थानदिवसः।

क्षप०— (नाट्येन चिन्तयित्वा) श्रावक, निरूपिता मया मध्यान्ह्नान्निर्व त्तसर्वकल्याणा तिथि सम्पूर्णचन्द्रा पौर्णमासी। युष्माकमुत्तरस्यां दिशो दक्षिणां दिशं प्रस्थितानां च दक्षिणं नक्षत्रम्। अपि च— (सावगा णिरूविदा मए आमज्झण्णादो णिव्वुत्तसव्वकल्लाणा तिही संपुण्णचन्दा पुण्णमासी। तुह्माणं उत्तलाए दिसाए दक्खिणां दिसं पत्थिदाणं दस्खिणे णक्खत्ते अवि अ -)

हिन्दी अनुवाद—

(पास जाकर) श्रावकों की धर्मसिद्धि हो।

राक्ष०— भदन्त, हमारे प्रस्थान करने का दिन बतलाइए।

क्षप०— (अभिनयपूर्वक सोचकर) श्रावक, मेरे द्वारा दोपहर के पश्चात् सम्पूर्ण चन्द्रमा से युक्त सब प्रकार से कल्याणकारी पौर्णमासी की तिथि निश्चित की गई है। उत्तर दिशा से दक्षिण दिशा की तरफ प्रस्थान करने वाले आपके लिए नक्षत्र भी शुभ है। और भी-

स्पष्टीकरण— पूर्णमासी का दिन यद्यपि यात्रा करने के लिए अशुभ माना गया है तथापि क्षपणक कहता है कि पूर्णिमा दोपहर के बाद सभी प्रकार से कल्याणकारी है विशेष रूप से उत्तर दिशा से दक्षिण दिशा की ओर प्रस्थान करने वालो के लिए। जैसा कि अगले श्लोक से भी स्पष्ट है।

अस्ताभिमुखे सूर्ये उदिते संपूर्णमण्डले चन्द्र।
गमनं बुधस्य लग्ने उदितास्तमिते च केतौ।।१६।।

अत्थाहिमुहे सूरे उदिए संपुण्णमण्डले चन्दे।
गमण बुधस्सलग्ने उदिदत्थमिदे च केदुमि।।१६।।

अन्वय— सूर्ये अस्ताभिमुखे संपूर्णमण्डले चन्द्रे उदिते केतौ च उदितास्तमिते बुधस्य लग्ने गमनम्।

सन्दर्भ— प्रस्तुत श्लोक में क्षपणक राक्षस को चन्द्रगुप्त पर आक्रमण करने के लिए प्रस्थान करने का निश्चित समय बतलाता है।

हिन्दी अनुवाद—

सूर्य के अस्तोन्मुख होने पर, सम्पूर्ण वाले चन्द्रमा के उदित होने पर और केतु के उदित और अस्त होने पर बुध के लग्न में जाना चाहिए।(१६)

स्पष्टीकरण— क्षपणक राक्षस को बतलाता है कि पूर्णमासी की सन्ध्या आपके प्रयाण के लिए सर्वथा शुभ है जब साँयकाल में सूर्य अस्त हो रहा हो, १६ कलाओं से युक्त चन्द्रमा उदित हो रहा हो और केतु उदित और अस्त हो रहा हो। केतु एक ही नक्षत्र है जिसका शरीर साँप की आक ति का माना गया है। उसका सिर का भाग राहु तथा पूँछ का भाग केतु कहलाता है। जयोतिषशास्त्र के अनुसार जब एक भाग उदित होता है तो दूसरा भाग स्वयं ही अस्त हो जाता है।

प्रस्तुत श्लोक का गूढार्थ यह है कि शूरवीर राक्षस के (सूर्ये-शूरे) के चन्द्रगुप्त के मंत्री पद की तरफ अभिमुख होने पर, सम्पूर्ण मण्डल वाले (स्वामी, अमात्य, राष्ट्र कोष, दुर्ग, बल और सुह त् इन सात अङ्गों में सम द्ध) चन्द्रगुप्त के अभ्युदय की तरफ अग्रसर होने पर और मलयकेतु के पहले उदित होने पर परन्तु बाद में अस्त हो जाने पर (अर्थात् मलयकेतु चन्द्रगुप्त पर आक्रमण करते समय स्वयं को विजयी समझने लगेगा परन्तु अन्त में उसकी पराजय होगी) चाणक्य के साथ सम्बंध हो जाने पर जाना चाहिए।

उक्त श्लोक में श्लेष अलङ्कार तथा आर्या छन्द है।

संस्क त भावार्थ—

आदित्ये अस्ताचलं गच्छति सम्पूर्णं मण्डलं यस्य तथाविधे परिपूर्णबिम्बे चन्द्रमसि आविर्भूते केतुग्रहे च द ष्टनष्टे सति बुधग्रहाधिष्ठितस्य मिथुनराशेः लग्ने यात्रा प्रशस्ता।

अस्य गूढार्थो यं यत् बुधस्य चाणक्यस्य सम्पर्के मलयकेतौ उत्थाय एव पतिते तेन च हेतुना चन्द्रगुप्ते सम्पूर्णमण्डले सुप्रतिष्ठिते इत्यर्थः शूरवीरे राक्षसे अर्थाभिमुखे मौर्यसाचिव्योन्मुखे गन्तव्यम् मौर्यसाचिव्यमङ्गीकर्तव्यम् इति।

राक्ष०— भदन्त तिथिरेव न शुध्यति।

क्षप०— श्रावक (सावगा)—

एकगुणाभवति तिथिश्चतुर्गुणं भवति नक्षत्रम्
चतुः षष्टिगुणं लग्नमेष ज्योतिषशास्त्रसिद्धान्तः।।२०।।

एक्कगुणा होइ तिथि चउग्गुणे होइ णक्खत्ते।
चउसत्तिगुणे लग्गे एसे जोइसतन्तसिद्धन्ते।।२०।।

अन्वय— तिथिः एकगुणा भवति नक्षत्रं चतुर्गुणं भवति लग्नं चतुःषष्टिगुणम् एष ज्योतिषशास्त्रसिद्धान्तः।

सन्दर्भ— राक्षस जब कहता है कि पूर्णमासी की तो तिथि ही यात्रा के लिए शुभ नहीं है तो क्षपणक प्रस्तुत श्लोक में उसे तिथि, नक्षत्र और लग्न की शक्ति बतलाता है।

हिन्दी अनुवाद—

राक्ष०— भदन्त तिथि ही शुद्ध नहीं है।

क्षप०— श्रावक -

तिथि एक गुणा होती है, नक्षत्र चार गुणा होता है और लग्न चौंसठ गुणा होता हे, यह ज्योतिष शास्त्र का सिद्धान्त है। (२०)

स्पष्टीकरण— पूर्णमासी के दिन यात्रा पर जाने का निषेध है- 'चतुर्दश्यां प चदश्यां गमनं नैव कारयेत्' अतः राक्षस क्षपणक द्वारा बतलाए गए पूर्णमासी के दिन पर ही आपत्ति करता है तो क्षपणक कहता है कि तिथि की शक्ति तो एक गुणा ही होती है। यदि नक्षत्र और लग्न शुभ हों तो यात्रा करने में कोई हानि नहीं है।

संस्क त भावार्थ—

तिथिः एको गुणः यस्याः सा एकगुणा भवति तिथ्यपेक्षया नक्षत्रस्य चतुर्गुणफलदायित्वेन चतुर्गुणत्वमपेक्षितं लग्नं च स चःषष्टिः गुणं भवति एषः ज्योतिषशास्त्रस्य सिद्धान्तः।

लग्नं भवति सुलग्नं सौम्ये ग्रहे यद्यपि दुर्लग्नम्।
वहसि दीर्घां सिद्धिं चन्द्रस्य बलेन गच्छन्।।२१।।

लग्गे होइ सुलग्गे सोमम्मि गहम्मि जइवि दुल्लग्गे
वहेसि दीहं सिद्धिं चन्दस्स बलेण गच्छन्ते।।२१।।

अन्वय— लग्नं यद्यपि दुर्लग्नं सौम्ये ग्रह सुलग्नं भवति चन्द्रस्य बलेन गच्छन् दीर्घां सिद्धिं वहसि।

सन्दर्भ— क्षपणक पुनः राक्षस को बतलाता है कि तिथि की अपेक्षा लग्न और नक्षत्र का महत्त्व कहीं अधिक है अतः आप निश्चिन्त होकर युद्ध के लिए प्रस्थान करें।

हिन्दी अनुवाद—

लग्न यद्यपि अशुभ लग्न ही क्यों न हो, सौम्य ग्रह के योग में शुभ लग्न हो जाता है। चन्द्र बल से जाते हुए चिरस्थायी सफलता को प्रापत करोगे। (२१)

स्पष्टीकरण— क्षपणक राक्षस को पुनः समझाता है कि लग्न चाहें अशुभ भी क्यों न हो, सौम्य ग्रह के साथ योग होने पर शुभ हो जाता है और आपके विषय में तो बुध लग्न भी शुभ है और चन्द्र ग्रह भी शुभ है। इसके अतिरिक्त पूर्णमासी की तिथि भी मध्याह्न काल के पश्चात् शुभ हो जाती है क्षपणक का अभिप्राय यह है कि आपके पक्ष में तो तिथि, नक्षत्र और लग्न सभी मङ्गलकारी हैं। अतः सभी शङ्काओं से मुक्त होकर आप तुरन्त प्रयाण करें और विजयश्री को प्राप्त करें।

परन्तु इस श्लोक का गूढार्थ यह है कि चन्द्रगुप्त की सेना (भद्रभट इत्यादि) की शक्ति से जाते हुए चाणक्य और चन्द्रगुप्त से मिलकर आप चिरस्थायी सिद्धि अर्थात् चन्द्रगुप्त के सचिवपद को प्राप्त करोगे।

उक्त श्लोक में श्लेष अलङ्कार तथा आर्या छन्द है।

संस्क त भावार्थ—

लग्नं यद्यपि दुर्लग्नं सौम्यग्रहयोगे निर्दोषं जायते दुर्लग्नमिति शुध्यति। इन्दोः बलेन गच्छन् स्थिरां जयश्रियं लप्स्यसे। अस्य श्लोकस्य गूढार्थो यं यत् चन्द्रगुप्तस्य बलेन (भद्रभटादिना) गच्छंस्त्वं चिरमनपायिनीं चन्दगुप्तस्य साचिव्यसिद्धिं वहसि। इति राक्षसं प्रति गूढाभिसन्धिवचनम्।

राक्ष०— भदन्त, अपरैः : सांवत्सरिकैः सह संवाद्यताम्।

क्षप०— संवादयतु श्रावकः, अहं पुनर्गमिष्यामि। (संवादेदु सावगो। अहं उण गमिस्स।)

राक्ष०— न खलु कुपितो भदन्तः?

क्षप०— कुपितो न युष्माकं भदन्तः (कुविदेण तुह्माणं भदन्ते।)

राक्ष०— कस्तर्हि?

क्षप०— भगवान्क तान्तः। येनात्मनः पक्षमुज्झित्वा परपक्षः प्रमाणीक्रियते (भअवं कअन्तो। जेण अत्तणो पक्खं उज्झिअ परपक्खो प्पमाणीकरी अदि!)

(इति निष्क्रान्तः क्षपणकः)

राक्ष०— प्रियवंदक, ज्ञायतां का वेला वर्तत इति?

प्रियं— अस्ताभिलाषी भगवान्सूर्यः। (अत्थाहिलासी भअवं सूरो।)

राक्ष०— (उत्थाय विलोक्य) अये अस्ताभिलाषी भगवान्भास्करः। सम्प्रति हि -

हिन्दी अनुवाद—

राक्ष०— भदन्त, दूसरे ज्योतिषों के साथ परामर्श कर लो।

क्षप०— श्रावक, परामर्श करें। मैं तो जा रहा हूँ।

राक्ष०— भदन्त कहीं कुपित तो नहीं हो गए?

क्षप०— भदन्त तुमसे कुपित नहीं है।

राक्ष०— तब कौन है?

क्षप०— भगवान यमराज। जिसके द्वारा अपना पक्ष छोड़कर पर पक्ष को प्रमाण माना जा रहा है (अर्थात् मुझे छोड़कर दूसरे ज्योतिषों को प्रमाण माना जा रहा है। परन्तु इसका गूढार्थ यह है कि तुम अपने नन्दवंशी चन्द्रगुप्त को छोड़कर दूसरे पक्ष के मलयकेतु को प्रमाण मान रहे हो)

(ऐसा कहकर क्षपणक निकल जाता है)

राक्ष०— प्रियंवदक, पता करो क्या समय है?

प्रियं० - भगवान सूर्य अस्त होने की इच्छा वाले हैं।

राक्ष०— अरे भगवान सूर्य अस्त होने की इच्छा वाले हैं। अब निस्सन्देह -

आविर्भूतानुरागाः क्षणमुदयगिरेरुज्जिहानस्य भानोः
पर्णच्छायैः पुरस्तादुपवनतरवो दूरमाश्वेव गत्वा।
एते तस्मिन्निव त्ताः पुनरपरगिरिप्रान्तपर्यस्तबिम्बे
प्रायो भ त्यास्त्यजन्ति प्रचलितविभवं स्वामिनं सेवमानाः।।२२।।

अन्वय– उदयगिरेः उज्जिहानस्य भानोः पुरस्तात् पर्णच्छायैः आशु एव दूरं गत्वा क्षणम् आविर्भूतानुरागाः एते उपवनतरवः पुनः अपरगिरिप्रान्तपर्यस्तबिम्बे तस्मिन् निव त्ताः प्रायः सेवमानाः भ त्याः प्रचलितविभवं स्वामिनं त्यजन्ति।

सन्दर्भ– साँयकाल अस्तोन्मुख सूर्य से दूर होते हुए तथा प्रातःकाल उदित होते हुए सूर्य की तरफ बढ़ते हुए व क्षों की तुलना राक्षस प्रस्तुत श्लोक में ऐश्वर्यविहीन तया ऐश्वर्ययुक्त स्वामी की सेवा करने वाले सेवकों से करता है।

हिन्दी अनुवाद–

उदयाचल से उदित होते हुए सूर्य के सामने पत्तों की छाया द्वारा तुरन्त ही दूर तक जाकर, पल भर के लिए उत्पन्न अनुराग वाले ये उपवन के व क्ष बाद में (उसके) अस्ताचल के प्रान्त भाग पर अस्त बिम्ब वाला होने पर उससे विमुख हो गए। प्रायः सेवा करने वाले सेवक नष्ट धन वाले स्वामी को छोड़ देते हैं। (२२)

स्पष्टीकरण– प्रातः काल जैसे ही सूर्योदय होता है, वह पूर्व से पश्चिम की तरफ जाता है और व क्षों की छाया भी पश्चिम की तरफ पड़ती है। इससे कवि ने कल्पना की है कि ये उपवन के व क्ष चढ़ते हुए (ऐश्वर्य से युक्त) सूर्य के स्वाभिभक्त अनुचर हैं परन्तु साँयकाल में सूर्य जब पश्चिम में अस्त होने लगता है तो व क्षों की छाया पूर्व में पड़ती है और वे सूर्य से दूर होते जाते हैं। इससे कवि ने कल्पना की है कि ऐश्वर्यविहीन स्वामी को छोड़कर सेवक उससे दूर चले जाते हैं स्वामी के अभ्युदय में सेवकों की उसके प्रति अगाध भक्ति होती है परन्तु अवनति में वे उससे विमुख हो जाते हैं।

उक्त श्लोक में अर्थान्तरन्यास अलङ्कार तथा स्रग्धरा छन्द है।

संस्क त भावार्थ–

मुहूर्त्तमात्रम् आविर्भूतो नुरागो येषां ते स जातप्रीतयः इमं आरामव क्षाः उदयाचलात् उदयमानस्य सूर्यस्य समक्षं पुरोगामिसेवकवदित्यर्थः पत्रच्छायारूपेण शीघ्रमेव दूरं गत्वा पश्चात् अपराह्णे इत्यर्थः अस्ताचलस्य सीमनि अवलम्बितं मण्डलं यस्य ताद शे तस्मिन् भानौ सति पराव त्ताः। यावत् प्रतापः तावत् पुरस्तात् उपसर्पणं प्रतापक्षये तु पश्चादपसर्पणम् इत्येषा क तघ्नता। एवमेव अस्मिन् लोके बाहुल्येन द श्यते यत् उपरचन्तः सेवकाः विनष्टैश्वर्यं स्वामिनं जहति।

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे)

(सब निकल जाते हैं)

(इति राक्षसोद्योगो नाम चतुर्थोऽङ्कः)

राक्षसोद्योग नाम चतुर्थ अङ्क समाप्त हुआ।

प चमो ङ्कः

(ततः प्रविशति लेखमलङ्करणस्थगिकां मुद्रितामादाय सिद्धार्थकः)

सिद्धार्थकः— आश्चर्यमाश्चर्यम्! (ही हीमाणहे हीमणहे!)

बुद्धिजलनिर्झरैः सिच्यमाना देशकालकलशैः।
दर्शयिष्यति कार्यफलं गुरुकं चाणक्यनीतिलता।।१।।

बुद्धिजलणिज्झरेहिं सि चन्ती देसकालकलसेहिं।
दंसिस्सदि कज्जफलं गुरुअं चाणक्कणीदिलदा।।१।।

अन्वय— देशकालकलशैः बुद्धिजलनिर्झरैः सिच्यमाना चाणक्यनीतिलता गुरुकं कार्यफलं दर्शयिष्यति।

सन्दर्भ— चाणक्य के गुप्तचर सिद्धार्थक ने आर्य चाणक्य के कथनानुसार सारा कार्य सम्पन्न कर दिया। उसे विश्वास है कि अब चाणक्य की नीति अवश्य ही फल प्रकट करेगी। प्रस्तुत श्लोक में वह उस कारण की तरफ निर्देश करता है जिससे चाणक्य की नीतिरूपी लता पल्लवित तथा पुष्पित होगी।

हिन्दी अनुवाद—

(तब पत्र और (राक्षस की) मुद्रा से मुद्रित आभूषणों की पेटी लेकर सिद्धार्थक प्रवेश करता हैं।)

सिद्धार्थक— आश्चर्य है आश्चर्य है-

उचित स्थान और समय रूपी कलशों द्वारा बुद्धि रूपी जल के झरनों से सींची जाती हुई चाणक्य की नीति रूपी लता महान् फल दिखलाएगी।(१)

स्पष्टीकरण— जिस प्रकार उचित स्थान उचित समय पर बोई गई और उचित मात्रा में पानी देकर सींची गई लता अवश्य ही फल और फूलों से युक्त हो जाती है इसी प्रकार चाणक्य की नीतियाँ स्थान और समय के अनुकूल बुद्धिमत्तापूर्वक बनाई गई हैं। अतः वे अवश्य ही सफल होगी।

राक्षस को चन्द्रगुप्त का अमात्यपद ग्रहण करवाने में ही चाणक्य की नीति की सफलता निहित है।

उक्त श्लोक में रूपक अलङ्कार तथा आर्या छन्द है।

संस्क त भावार्थ—

समुचितं स्थानं योग्यः समयः तौ एव घटौ येषां ताद शैः बुद्धिरूपं यत् जलं तस्य प्रवाहैः अभ्युक्ष्यमाणा या चाणक्यस्य नीतिरूपा लता सा राक्षसग्रहणरूपस्य कर्मणः महत् फलं प्रकटयिष्यति।

तद् ग हीतो मयार्यचाणक्येन प्रथमलेखितो मात्यराक्षस्य मुद्राला छितो यं लेखस्तस्यैव मुद्राला छितेयमाभरणपेटिका। चलितो स्मि किल पाटलिपुत्रम्। यावद् गच्छामि। (परिक्रम्यावलोक्य च) कथं क्षपणक आगच्छति। यावदस्याशकुनभूतं दर्शनं मम संमतमेव

तस्मान्न परिहरामि। (ता गहीतो मए मुद्दालंच्छिओ अज्जचाणक्केण पढमलिहिदो अमच्चरक्खसस्स अअं लेहो तस्स ज्जेव्व मुद्दालंछिआ इअं आहरणपेडिओ। चलिदोह्मि किल पाडलिउत्तं। जाव गच्छामि। कहं खवणओ आअच्छदि। जाव से असउणभूदं दंसणं मह संमदं एव्व ता ण पडिहरामि।)

क्षपणकः— (प्रविश्य)

हिन्दी अनुवाद—

इसी कारण मेरे द्वारा आर्य चाणक्य के द्वारा पहले लिखवाया गया (तथा) अमात्य राक्षस की मुद्रा से मुद्रित यह पत्र ले लिया गया (और) उसी की मुद्रा से मुद्रित यह आभूषणों की पेटी है। मैं वास्तव में पाटलिपुत्र जा रहा हूँ। अच्छा तो मैं जाता हूँ। (घूमकर और देखकर) यह क्या क्षपणक आ रहा है। तब तो इसका अपशकुन रूप दर्शन मेरे लिए अनुकूल ही है इसीलिए (इससे) बचता नहीं।

क्षपणक— प्रवेश करके -

स्पष्टीकरण— सिद्धार्थक के हाथ में वही पत्र है जो प्रथम अङ्क में चाणक्य ने शकटदास से लिखवाया था और राक्षस की मुद्रा से मुद्रित कर दिया था तथा आभूषण वही हैं जो द्वितीय अङ्क में राक्षस ने शकटदास को वध्यस्थल से बचाने की प्रसन्नता में सिद्धार्थक को उपहास्वरूप दिए थे और जिन्हें सिद्धार्थक ने राक्षस की मुद्रा से मुद्रित कर उसके भाण्डागार में रखवा दिया था।

आर्हतानां प्रणमामि ये ते गम्भीरतया बुद्धेः।
लोकोत्तरैर्लोके सिद्धिं मार्गैर्गच्छन्ति।।२।।
अलहन्ताणं पणमामि जे दे गम्भलदाए बुद्धीए।
लोउत्तलेहिं लोए सिद्धिं मग्गेहिं गच्छन्दि।।२।।

अन्वय— आर्हतानां प्रणमामि ये ते बुद्धेः गम्भीरतया लोकोत्तरैः मार्गैः लोके सिद्धिं गच्छन्ति।

सन्दर्भ— क्षपणक अर्हतों के प्रति अपनी श्रद्धा प्रकट करता है।

हिन्दी अनुवाद—

(मैं) अर्हतों को प्रणाम करता हूँ जो वे बुद्धि की गम्भीरता के कारण अलौकिक मार्गों के द्वारा संसार में सफलता प्राप्त करते हैं। (२)

प्रस्तुत श्लोक में अप्रस्तुतप्रशंसा अलङ्कार तथा आर्या छन्द है।

संस्क त भावार्थ—

बौद्धशास्त्रगुरुन् जैनगुरून् वा मान्यान् वा नमस्करोमि ये ज्ञानस्य धियाश्च दुरवगानीयतया आलोकिकैः मार्गैः अस्मिन् संसारे मोक्षं स्वकार्यसिद्धिं च प्रानुवन्ति।

सिद्धा०— भदन्त, वन्दे। (भदन्त वन्दामि।)

क्षप०— श्रावक, धर्मसिद्धिर्भवतु। (निवर्ण्य) श्रावक प्रस्थानसमुद्वहने क तव्यवसायमिव त्वां पश्यामि। (सावगा धम्मसिद्धी होदु। सावगा पत्थणसमुव्वहणे किदव्ववसाअं विअ तुमं पेक्खामि।)

सिद्धा०— कथं भदन्तो जानाति। (कहं भदन्तो जाणादि।)

क्षप०— श्रावक, किमत्र ज्ञातव्यम्। एष ते मार्गादेशकुशलः शकुनः करगतो लेखश्च सूचयति। (सावगा किं एत्थ जाणिदव्वं। एसो दे मग्गादेसकुसलो सउणो करगदो लेहो अ सूअदि।)

सिद्धा०— ज्ञातं भदन्तेन। देशान्तरं प्रस्थितो स्मि। तस्मात्कथयतु भदन्तः कीद शो द्य दिवसः। (जाणिदं भदन्तेण। देसन्तरं पत्थिदोह्मि। वा कहेदु भदन्तो कीदिसो अज्ज दिवसोत्ति।)

क्षप०— (विहस्य) श्रावक, मुण्डितमुण्डो नक्षत्राणि प च्छसि। (सावगा मुण्डि अमुण्डो णक्खत्ताइ पुच्छसि।)

सिद्धा०— भदन्त, सांप्रतमपि किं जातम्। कथय प्रस्थानस्य यद्यनुकूलं भविष्यति तदा गमिष्यामि। अन्यथा निवर्तिष्ये। (भदन्त, सप्पदं वि किं जादं। कहेहि पत्थाणस्य जइ अणुकूलं भविस्सदि तदो गमिस्सं। अण्णधा निवत्तिस्सं।)

क्षप०— श्रावक, न सांप्रतमेतस्मिन्मलयकेतुकटके नुकूलं भविष्यति। (सावणा ण संपदं एदस्सिं मलअकेदुकडए अणुकूलं भविस्सदि।)

सिद्धा०— भदन्त, कथय कुत एतत्। (भदन्त कहेहि कुदो एदम्।)

क्षप०— श्रावक, निशामय। प्रथमं तावदत्र कटके लोकस्यानिवारितो निर्गमप्रवेश आसीत्। इदानीमितः प्रत्यासन्ने कुसुमपुरे न को प्यमुद्राला छितो निर्गन्तुं प्रवेष्टुं वानुमोद्यते। तद्यदि भागुरायणस्य मुद्राला छितस्तदा गच्छ विश्रब्धो न्यथा तिष्ठ। मा गुल्माधिकारिकैः संयमितकरचरणो राजकुलं प्रवेश्यसे। (सावगा णिसामेहि। पुठमं दाव एत्थ कडए लोअस्म अणिवारिदो णिग्गमप्पवेसो आसी। दार्णी इदो पच्चासण्णे कुसुपपुले ण कोवि अमुद्दालंच्छिओ णिग्गमिदुं पवेठ्ठुं वा अणुमोदीअदि। ता जदि भउराणस्य मुद्दालंच्छिओ तदो गच्छ विस्सद्धो अण्णहा चिट्ठ। मा गुम्माहिआरिएहिं अ जमिअकलचलणो रअकुलं पवेसीअसिं।)

सिद्धा०— किं न जानाति भदन्तो अमात्यराक्षसस्य सन्निहित इति। तदमुद्राला छितमपि मां निष्क्रामन्तं कस्य शक्तिर्निवारयितम्। (किं ण जाणादि भदन्तो अमच्चरक्खसमस्स सणणिहिदो त्ति। ता अमुद्दालंच्छिदं वि मं णिक्कमन्तं कस्स सत्ती णिवारेदुं।)

क्षप०— (सावेगम्) श्रावक, राक्षस्य पिशाचस्य वा भव न पुनरमुद्राला छितस्येतो निष्क्रमणोपायः। (सावगारक्खसस्स, पिसाचस्स वा होहि ण उण अमुद्दालंच्छिदस्स दहो णिक्कमणोवाओ।)

सिद्धा०— भदन्त, मा कुप्य मे कार्यसिद्धिर्भवत्। (भदन्त मा कुप्य में कज्जसिद्धि होदु।)

क्षप०— श्रावक, गच्छ भवतु ते कार्यसिद्धिः। अहमपि भागुरायणान्मुद्रां याचे। (सावणा गच्छं होदु दे कज्जसिद्धि! अहं वि भाउराअणादो मुद्दं जाचेमि।)

(इति निष्क्रान्तौ)

(इति प्रवेशकः)

हिन्दी अनुवाद—

सिद्धा०— भदन्त, नमस्कार करता हूँ।

क्षप०— साधक, धर्मसिद्धि हो। (देखकर) श्रावक प्रस्थान करने की तैयारी करने की तैयारी में निश्चय किया हुआ सा तुमको देख रहा हूँ।

सिद्धा०— भदन्त किस प्रकार जानते हैं अर्थात् आपने कैसे जाना।

क्षप०— श्रावक, इसमें जानने योग्य क्या बात है। तुम्हारा मार्गदर्शन करने में कुशल यह शकुन और हाथ में लिया हुआ पत्र (ही) बतला रहा है।

सिद्धा०— भदन्त के द्वारा जान लिया गया है। मैं परदेश जा रहा हूँ। इसीलिए भदन्त बतलाएँ (कि) आज कैसा दिन है।

क्षप०— (हँसकर) श्रावक, सिर मुँडवा लेने पर नक्षत्र पूछते हो।

सिद्धा०— भदन्त, अब भी क्या गया है। बतलाइए यदि जाने के लिए अनुकूल होगा तब जाऊँगा नहीं तो लौट जाऊँगा।

क्षप०— साधक, अब मलयकेतु के इस शिविर में (कुछ भी) अनुकूल नहीं होगा।

सिद्धा०— भदन्त बतलाइए, यह कैसे।

क्षप०— साधक सुनो। पहले तो यहाँ शिविर में लोगों को बे रोक-टोक जाना-आना था। अब यहाँ से कुसुमपुर के समीप होने पर किसी को भी मुद्रापत्र (आज्ञापत्र) के बिना जाने की अथवा आने की अनुमति नहीं दी जाती। तो यदि भागुरायण का मुद्रापत्र है तब तो निश्चिन्ततापूर्वक जाओ अन्यथा रुक जाओ। कहीं गुल्म अधिकारियों के द्वारा हाथ पैर राजकुल में पहुँचा दिए जाओ।

सिद्धा०— क्या भदन्त को पता नहीं (कि मैं) अमात्य राक्षस का व्यक्तिगत सेवक हूँ। अतः मुद्रापत्र लिए बिना भी बाहर जाते हुए मुझे रोकने की किसकी शक्ति है।

क्षप०— (आवेगपूर्वक) साधक, राक्षस के हो अथवा पिशाच के परन्तु मुद्रापत्र लिए बिना यहाँ से निकलने का (कोई) उपाय नहीं है।

सिद्धा०— भदन्त, क्रोध मत करो। मेरे कार्य की सिद्धि हो।

क्षप०— साधक जाओ। तुम्हारी कार्यसिद्धि हो। मैं भी भागुरायण से मुद्रा माँगता हूँ। (यह कह कर दोनों निकल जाते है।)

(प्रवेशक समाप्त हुआ)

स्पष्टीकरण— क्षपणक वस्तुतः चाणक्य का सहाध्यायी इन्दुशर्मा नाम का ब्राह्मण है। वह सम्भवतः चाणक्य के प्रत्येक गुप्तचर के विषय में जानता है और उनके क्रिया कलापों पर पूर्ण निगरानी रखता है। इसी कारण उसे सिद्धार्थक के पाटलिपुत्र जाने के विषय में भी पता होगा। परन्तु चाणक्य के अन्य गुप्तचर उसे केवल एक जैन साधु ही समझते हैं जो राक्षस का परम मित्र है। प्रथम अङ्क में चाणक्य ने उसके लिए कहा था - 'तेनेदानीं महत्कार्यमनुष्ठेयं भविष्यति' और वह महान् कार्य करने का समय अब उपस्थित हो गया है।

(ततः प्रविशति पुरुषेणानुगम्यमानो भागुरायणः)

भागु०— (स्वगतम) अहो वैचित्र्यमार्यचाणक्यनीतेः—

मुहुर्लक्ष्योद्भेदा मुहुरधिगमाभावगहना
मुहुः संपूर्णाङ्गी मुहुरतिकशा कार्यवशतः।
मुहुर्नश्यद्बीजा मुहुरपि बहुप्रापितफले-
त्यहो चित्राकारा नीतिरिव नीतिर्नयविदः।।3।।

अन्वय— इत्यहो मुहुर्लक्ष्योद्‌भेदा मुहुरधिगमाभावगहना मुहुः संपूर्णांगी मुहुः कार्यवशतः अतिक शा मुहुर्नश्यद्‌बीजा मुहुरपि बहुप्रापितफला नयविदः नीतिः नियतिरिव चित्राकाराः।

सन्दर्भ— उक्त श्लोक में भागुरायण चाणक्य की नीति की विचित्रता की तुलना भाग्य की विचित्रता से करता है।

हिन्दी अनुवाद—

(तब पुरुष के द्वारा अनुसरण किया जाता हुआ भागुरायण प्रवेश करना है)

भागु०— (अपने आप) आर्य चाणक्य की नीति की विचित्रता आश्चर्यजनक है-

यह आश्चर्य जनक है (कि) कभी प्रकट अङ्कुर वाली, कभी समझ न आने के कारण गहन, कभी सम्पूर्ण अङ्गों वाली, कभी कार्य की आवश्यकतानुसार अत्यन्त सूक्ष्म, कभी नष्ट बीज वाली (और) कभी बहुत फल प्राप्त करने वाली नीतिज्ञ (आर्य चाणक्य) की नीति भाग्य के समान विविध रूपों वाली है। (३)

स्पष्टीकरण— यहाँ भागुरायण चाणक्य की नीति की विविधता की तुलना भाग्य से करते हुए नाटक में प्राप्त होने वाली पाँच सन्धियों की तरफ भी निर्देश करता है। 'मुहुर्लक्ष्योद्‌भेदा' से निपुणक को राक्षस की अँगूठी प्राप्त होना, भद्रभट इत्यादि का कुसुमपुर से भागकर मलयकेतु की शरण में चले जाने इत्यादि की तरफ संकेत है। यह चाणक्य की नीति के बीजों का उद्‌भेद है। 'मुहुरधिगमाभावगहना' से चाणक्य द्वारा शकटदास से पत्र लिखवाकर राक्षस की मुद्रा से मुद्रित करने, वध्यस्थल से शकटदास को सिद्धार्थक द्वारा भगा दिए जाने, विश्वासवसु इत्यादि के द्वारा पर्वतक के आभूषण ग्रहण किए जाने तथा भागुरायण इत्यादि को मलयकेतु की शरण में आए हुए काफी दिन हो जाने पर भी कोई महत्त्वपूर्ण घटना घटित न होने की तरफ सङ्केत है क्योंकि इन सब घटनाओं का प्रयोजन स्पष्ट होने के कारण चाणक्य की नीति गहन हो गई।

'संपूर्णाङ्गी' से उस अवस्था की तरफ सङ्केत है जब सिद्धार्थक शकटदास को वध्यस्थल से भगाकर राक्षस के पास पहुँचा देता है, राक्षस से उपहार ग्रहण कर उसी की मुद्रा से मुद्रित कर उसी के भाण्डागार में रखवा देता है व उसी की सेवा में रत हो जाता है, विश्वासु इत्यादि पर्वतक के आभूषण राक्षस के पास बेच जाते हैं। 'अतिक शा कार्यवशतः' से भागुरायण द्वारा मलयकेतु के मन में धीरे धीरे राक्षस के प्रति सन्देह के बीज उत्पन्न करने की तरफ तथा सिद्धार्थक और क्षपणक जीवसिद्धि द्वारा धीरे धीरे राक्षस का विश्वास जीत लेने इत्यादि की तरफ सङ्केत है। परिस्थितियों को देखते हुए चाणक्य के गुप्तचरों को यह कार्य बहुत सावधानीपूर्वक धीरे धीरे करना पड़ा ताकि मलयकेतु और राक्षस के मन में किसी प्रकार की सन्देह उत्पन्न न हो जाए। 'महुर्नश्यद्‌बीजा' से उस अवस्था की तरफ सङ्केत है जब स्तनकलश ने चाणक्य और चन्द्रगुप्त में फूट डालने का प्रयत्न किया परन्तु चाणक्य की जागरूकता और प्रत्युत्पन्न बुद्धि के कारण ही उसकी योजना का बीज नष्ट होने से बच गया। उसने जान लिया कि वह सारी राक्षस की ही चाल थी। इसी प्रकार चतुर्थ अङ्क में चाणक्य और चन्द्रगुप्त में फूट पड़ जाने का समाचार पाकर राक्षस को चाणक्य के न तो तपोवन जाने पर और न ही चन्द्रगुप्त को मारने की प्रतिज्ञा करने पर दाल में काला नज़र आता है और वह शकटदास से कहता भी है- 'नेदमुपपद्यते'। उस समय चाणक्य की नीति निष्फल हुई सी प्रतीत होती है परन्तु शकटदास राक्षस को समझाकर उसे सन्तुष्ट कर देता है।

'बहुप्रापतिफले' से उस अवस्था की तरफ सङ्केत है जब मलयकेतु भागुरायण के साथ छिपकर करभक और राक्षस की बातें सुन लेता है और भागुरायण मलयकेतु मे मन में राक्षस के प्रति सन्देह के बीज बो देता है।

जिस प्रकार भाग्य की गति का समझना कठिन है उसी प्रकार आर्य चाणक्य की नीति को भी समझना अत्यन्त दुष्कर कार्य है।

उक्त श्लोक में उपमा अलङ्कार तथा शिखरिणी छन्द है।

संस्क त भावार्थ—

चाणक्यनीतेर्लोकोत्तरतां वर्णयन्नहो बारं बारं द श्यः अङ्कुरोद्गमः यस्याः ताद्शी, पुनरपि उपलब्धेः विरहात् अनुपलब्धतया इत्यर्थः दुर्बोधा। क्षणं स्पष्टं प्रतीयमाना क्षणमपि सुतरामद श्या इत्याश्चर्यम्। क्षणे क्षणे प्रचितावयवा पुनरपि प्रयोजननुरोधेन सुसूक्ष्मा। कदाचित् तिरोभवत् उद्योगो यस्याः ताद शी विफलेव द श्यमाना इत्यर्थःपुनरपि प्रचुरं यथा तथा दापितं फलं यया ताद शी भूरिप्रसवा च। क्षणं विशीर्णा क्षणमपि परिपूर्णफला इत्यप्याश्चर्यम्। अनेन प्रकारणे नीतिज्ञस्य चाणक्यस्य नयः दैवगतिरिव आश्चर्यरूपाः इत्याश्चर्यम्।

(प्रकाशम्) भद्र भासुरक, न मां दूरीभवन्तमिच्छति कुमारः। अतो स्मिन्नेवास्थानमण्डपे न्यस्यतामासनम्।

पुरु०— एतदासनम्। उपविशत्वार्यः। (एदं आसणं। उपविशदु अज्जो।)

भागु०— (उपविश्य) भद्र, यः कश्चिन्मुद्रार्थी मां द्रष्टुमिच्छति स त्वया प्रवेशयितव्यः।

पुरु०— यदार्य आज्ञापयति। (जं अज्जो आणवेदि)। (इति निष्क्रान्तः)

भागु०— (स्वगतम्) कष्टमेवमप्यस्मासु स्नेहवान्कुमारो मलयकेतुरतिसन्धातव्य इत्यहो दुष्करम्। अथवा-

हिन्दी अनुवाद—

(स्पष्ट रूप से) भद्र भासुरक, कुमार (मलयकेतु) दूर होते हुए मुझे नहीं देखना चाहते। इसीलिए इसी सभामण्डप में ही आसन रख दो।

पुरु०— यह आसन है। आर्य बैठें।

भागु०— (बैठकर) भद्र, मुद्रा (मद्रापत्र) का इच्छुक जो कोई मुझे देखना चाहे तुम्हारे द्वारा अन्दर लाया जाना चाहिए।

पुरु०— जैसी आर्य आज्ञा देते हैं।

भागु०— (अपने आप) कष्ट की बात है कि इस प्रकार हमारे प्रति स्नेह करने वाले कुमार मलयकेतु को धोखा दिया जाएगा यह करना कितना कठिन कार्य है। अथवा -

स्पष्टीकरण— यह ध्यातव्य है कि चाणक्य के सभी गुप्तचर मानवीय भावनाओं से ओत प्रोत हैं। इसी कारण भागुरायण यह सोचकर अत्यन्त दुःखी है कि उस पर पूर्ण रूप से विश्वास करने वाले मयलकेतु को आर्य चाणक्य के आदेशानुसार धोखा दिए जाने का समय आ गया है। परन्तु दूसरे ही क्षण वह कर्त्तव्य को भावना से अधिक ऊँचा मानते हुए अपना विचार बदल देता है।

कुले लज्जायां च स्वयशसि च माने च विमुखः
शरीरं विक्रीय क्षणिकधनलोभाद्धनवति।

तदाज्ञां कुर्वाणो हितमहितमित्येतदधुना
विचारातिक्रान्तः किमिति परतन्त्रो विम शति।।४।।

अन्वय— क्षणिकधनलोभात् कुले च लज्जायां च स्वयशसि च माने विमुखः धनवति शरीरं विक्रीय तदाज्ञां कुर्वाणो हितमहितमित्येतद् विचारातिक्रान्तः परतन्त्रः अधुना किम् इति विम शति।

सन्दर्भ— भागुरायण यद्यपि इस बात से अत्यन्त दुःखी है कि उसे अपने प्रति अत्यन्त विश्वास एवं स्नेह रखने वाले मलयकेतु को ही धोखा दिया जाना है तथापि इस विषय में अब वह स्वयं को लाचार पाता है क्योंकि क्या अच्छा है और क्या बुरा यह सोचना अब उसके लिए सर्वथा अर्थहीन है।

हिन्दी अनुवाद—

क्षणिक धन के लोभ से कुल, अपने यश और आत्मसम्मान से उदासीन होकर धनवान को शरीर बेचकर उसी का आज्ञा का पालन करता हुआ भले और बुरे के विषय में विचार करने का समय निकल जाने पर एक पराधीन मनुष्य अब क्या सोचेगा। (४)

स्पष्टीकरण— भागुरायण का आशय यह है कि पहले तो मैंने धन के लालच से चन्द्रगुप्त की सेवा करना स्वीकार कर लिया। अब तो मैं उसी के अधीन हूँ। जैसा वह कहेगा वैसा ही मुझे करना पड़ेगा। एक पराधीन मनुष्य के लिए कर्त्तव्य अकर्त्तव्य, लाभ हानि, उचित अनुचित के विषय में विचार करना सम्भव नहीं है। अतः मुझे स्वयं को मलयकेतु को धोखा देना चाहे रुचिकर प्रतीत नहीं हो रहा परन्तु स्वामी की आज्ञा का पालन तो मुझे करना ही पड़ेगा। अतः मैं कुमार, मलयकेतु को धोखा देने को तैयार हूँ।

उक्त श्लोक में काव्यलिंग अलंकार तथा शिखरिणी छन्द है।

संस्कृत भावार्थ—

नश्वरं यत् धनं तस्मिन् यो लोभः तस्मात् हेतोः निजवंशे, त्रपायां, आत्मकीर्तौ, प्रतिष्ठायां च पराङ्मुखः भूत्वा वित्तशालिनि चन्द्रगुप्ते स्वदेहविक्रयं कृत्वा धनवतः तस्यैव आदेशम् परिपालयन् किम् उचितं किं वा अनुचितम् इति विषये अतिक्रान्तविचारसमयः माद शः पराधीनः जनः सम्प्रति कथं विचारयति। विक्रयात् प्रागेव विचारकालः आसीत् न तु परम्। तदेषो हं कुमारस्यातिसन्धाने सज्जो स्मि।

(ततः प्रविशति प्रतीहार्यनुगम्यमानो मलयकेतुः)

मल०— (स्वगतम्) अहो राक्षसं प्रति विकल्पबाहुल्यादाकुला मे बुद्धिर्न निश्चयमधिगच्छति। कुतः?

भक्त्या नन्दकुलानुरागद ढया नन्दान्वयालम्बिना
किं चाणक्यनिराकृतेन कृतिना मौर्येण सन्धास्यते।
स्थैर्यं भक्तिगुणस्य वाधिगणयन्किं सत्यसन्धो भवेद्
इत्यरुश्ढकलालचक्रमिव मे चेताश्चिरं भ्राम्यति।।५।।

अन्वय— किं नन्दकुलानुरागद ढया भक्त्या चाणक्यनिराकृतेन कृतिना नन्दान्वयालम्बिना मौर्येण सन्धास्यते वा किं भक्तिगुणस्य स्थैर्यम् अधिगणयन् सत्यसन्धो भवेत् इति कुलालचक्रम् आरूढ इव मे चेतश्चिरं भ्राम्यति।

सन्दर्भ— मलयकेतु राक्षस के विषय में यह निश्चय नहीं कर पा रहा कि राक्षस चन्द्रगुप्त से सन्धि कर लेगा अथवा उसके (मलयकेतु के) प्रति स्वामिभक्त रहेगा क्योंकि दोनों ही विकल्पों को पुष्ट करने वाले तर्क समान रूप से प्रबल हैं।

हिन्दी अनुवाद—

(तब प्रतीहारी के द्वारा अनुसरण किया जाता हुआ मलयकेतु प्रवेश करता है)

मल०— (अपने आप) अहो! राक्षस के प्रति सन्देहबाहुल्य से व्याकुल मेरी बुद्धि निश्चय नहीं कर पा रही। क्योंकि -

वह राक्षस क्या नन्दवंश में अनुराग होने से द ढ़ भक्ति के कारण, चाणक्य को हटा देने से कृतकृत्य नन्दवंश से (ही) सम्बन्धित चन्द्रगुप्त मौर्य से सन्धि कर लेगा अथवा क्या भक्तिगुण की स्थिरता को अधिक समझता हुआ सत्यप्रतिज्ञ रहेगा। इस प्रकार कुम्हार के चाक पर चढ़े हुए के समान मेरा मन बहुत समय से घूम रहा है।(५)

स्पष्टीकरण— मलयकेतु के मन में राक्षस के प्रति दो विकल्प हैं। प्रथम तो यह है कि वह चन्द्रगुप्त से सन्धि कर सकता है, क्योंकि नन्दवंश के प्रति राक्षस की अटूट भक्ति है। चाणक्य को चन्द्रगुप्त द्वारा अमात्यपद से हटा दिए जाने के कारण राक्षस द्वारा चन्द्रगुप्त का अमात्यपद स्वीकार किए जाने में कोई बाधा भी नहीं है क्योंकि चन्द्रगुप्त नन्दवंश का ही है। परन्तु दूसरा विकल्प यह भी है कि मैं (मलयकेतु) राक्षस के प्रति द ढ़ भक्ति वाला हूँ अतः यह भी सम्भव है कि वह राक्षस मेरी इस द ढ़ भक्ति को देखकर मेरे प्रति की गई इस प्रतिज्ञा को कि 'तुम्हें राजा बनाऊँगा' पूरा करे और स्वयं को सत्यप्रतिज्ञ प्रमाणित करे। जिस प्रकार कुम्हार का चक्र निरन्तर घूमता रहता है उसी प्रकार मेरा मन भी कोई निश्चय न कर पाने के कारण निरन्तर घूम रहा है।

प्रस्तुत श्लोक में उपमा अलंकार तथा शार्दूलविक्रीडित छन्द है।

संस्कृत भावार्थ—

असौ राक्षसः किं नन्दवंशे या श्रद्धा तथा स्थिरा या भक्तिः तया प्रगाढया भक्त्या, कौटिल्यस्य निराकरणेन कृतार्थेन प्राप्तराज्येन इत्यर्थः, नन्दवंशाश्रयिणा चन्द्रगुप्तेन सह सन्धिं करिष्यति अथवा मया क्रियमाणस्य भक्तिगुणस्य दाढ्र्यम् आधिक्येन पश्चय्, पिता पर्वतकेन मयि (राक्षसे) या महती भक्तिः दर्शिता तस्य पुत्रः मलयकेतुस्तामप्यतिशेते इति मन्यमानः यथार्था प्रतिज्ञा सकलनन्दराज्यप्रतिपादनविषया यस्य ताद शः वा स्यात्। अनेन प्रकारेण अधिष्ठितं कुम्भकारचक्रं येन ताद शं मदीयं मनः बहुकालं भ्राम्यति निश्चयं न लभते इत्यर्थः।

(प्रकाशम्) विजये, क्व भागुरायणः।

प्रतीहारी—कुमार, एष खलु कटकान्निष्क्रमितुमानां मुद्रासंपादनमनुतिष्ठति। (कुमार एसो खु कडआदो णिक्कमिदुकामाणं मुद्दसंपदाणं अणुचिट्ठदि।)

मल०— विजये मुहूर्त्तंमस चारा भव यावदस्य पराङ्मुखस्यैव पाणिभ्यां नयने पिदधामि।

प्रती०— यत्कुमार आज्ञापयति। (जं कुमारो आणवेदि)

पुरुषः— (प्रविश्य) आर्य, एष खलु क्षपणको मुद्रानिमित्तमार्यं प्रेक्षितुमिच्छति। (अज्ज एसो खु खवणओ मुद्दाणामित्तं अज्जं पेक्खिदुमिच्छदि।)

भागु०— प्रवेशय।

पुरुषः— तथा। (तह) (इति निष्क्रान्तः)

क्षपणकः— (प्रविश्य) धर्मसिद्धिः श्रावकाणां भवतु। (धम्मसिद्धी सावगाणं होदु।)

भागु०— (अवलोक्य स्वगतम्) अये राक्षसस्य मित्रं जीवसिद्धिः। (प्रकाशम्) भदन्त, न खलु राक्षसस्य प्रयोजनमेव किंचिदुद्दिश्य गम्यते।

क्षप०— (कर्णौ पिधाय) शान्तं पापं शान्तं पापम्। श्रावक, तत्र गमिष्यामि यत्र राक्षसस्य पिशाचस्य वा नामापि न श्रूयते। (सन्तं पावं सन्तं पावं। सावगा तहिं गमिस्सं जहिं रक्खसस्स पिसाचस्स वा णामं वि ण सुणीआदि।)

भागु०— बलवान्सुह दि प्रणयकोपः। तत्किमपराद्धं राक्षसेन भदन्तस्य?

क्षप०— श्रावक, न मे किमपि राक्षसेनापराद्धम्। स्वयमेव मन्दभाग्य आत्मनो पराध्यामि। (सावगा ण मम किंवि रक्खसेण अवरद्धं। सअं जेण्व मन्दभाओ अत्तणो अलवद्धामि।)

भागु०— भदन्त, वर्द्धयसि मे कुतूहलम्। श्रोतुमिच्छामि।

मल०— (स्वगतम्) अहमपि श्रोतुमिच्छामि।

क्षप०— श्रावक, किमनेनाश्रोतव्येन श्रुतेन। (सवागा किं अणेण असुणिदण्वेण सुदेण।)

भागु०— यदि रहस्यं

क्षप०— श्रावक, न रहस्यं किन्त्वतिन शंसम्। (सवागा ण रहस्यं किंदु अदिणिसंसं।)

भागु०— यदि न रहस्यं तत्कथ्यताम्।

क्षप०— श्रावक, न रहस्यमेतत्तथापि न कथयिष्यामि। (सावगा ण रहस्यं एदं तहवि ण कहिंस्सं।)

भागु०— अहमपि मुद्रां न दास्यामि।

क्षप०— (स्वगतम्) युक्तमिदानीमर्थिने कथयितुम्। (प्रकाशम्) का गतिः श्र णोतु श्रावकः। अस्ति तावदहं मन्दभाग्यः प्रथमं पाटलिपुत्रे निवसन् राक्षसेन मित्रत्वमुपगतः। तस्मिन्नवसरे राक्षसेन गूढविषकन्याप्रयोगमुत्पाद्य घातितो देवः पर्वतेश्वरः। (का गदी सुणादु सावेगो। अत्थि दाव अहं मन्दभग्गो पढमं पाडलिउत्ते णिवसमाणे लक्खसेण मित्तत्तणं उवगदे। तहिं अवसले लक्खसेण गूढं विसकण्णआपओअं उप्पादिअ घादिदे देवे पव्वदीसले।)

मल०— (सवाष्पमात्मगतम्) कथं राक्षसेन घातितस्तातो न चाणक्येन।

भागु०— भदन्दत, ततस्ततः?

क्षप०— ततो हं राक्षसस्य मित्रमिति कृत्वा चाणक्यहतकेन सनिकारं नगरान्निर्वासितः। इदानीमपि राक्षसेनानेकाकार्यकुशलेन किमपि ताद शमारभ्यते येनाहं जीवलोकान्निष्कासिष्ये। (ततो हगे लक्खसस्स मित्तं त्ति कदुअ चाणक्कहदएण सणिकालं णअरादो णिव्वसिदे। दाणीं वि लक्खसेण अणेअअकज्जकुसलेण किंवि तालिसं आलहीअदि जेण हगे जीअलोआदो णिक्कासिज्जेमि।)

भागु०— भदन्त, प्रतिश्रुतराज्यार्द्धमयच्छता चाणक्यहतकेनेदमकार्यमनुष्ठितं न राक्षसेनेति श्रुतमस्माभिः।

क्षप०— (कर्णौ पिधाय) शान्तं पापम्। चाणक्येन विषकन्याया नामापि न श्रुतम्। (सन्तं पावं। चाणक्केण विसकण्णाए णामं वि ण सुमद्।)

भागु०— भदन्त, इयं मुद्रा दीयते। एहि, कुमारं श्रावय।

हिन्दी अनुवाद–

(स्पष्ट रूप से) विजया, भागुरायण कहाँ है?

प्रतीहारी– कुमार, यह निस्सन्देह शिविर से बाहर जाने की इच्छा वालों को अनुमति पत्र दे रहे हैं।

मल०– विजया, क्षणभर के लिए गतिहीन (अस चारा) हो जाओ जब तक मैं दूसरी तरफ मुख किए हुए इसकी आँखों को दोनों हाथों से बन्द करता हूँ।

प्रती०– जैसी कुमार आज्ञा देते हैं।

पुरुष– (प्रवेश करके) आर्य, यह क्षपणक अनुमति पत्र के लिए आपको देखना चाहता है अर्थात् आपसे मिलना चाहता है।

भागु०– अन्दर ले आओ।

क्षप०– भक्तों की धर्मसिद्धि हो।

भागु०– (देखकर अपने आप) अरे राक्षस का मित्र जीवसिद्धि (स्पष्ट रूप से) भदन्त, कहीं राक्षस के किसी कार्य को लक्ष्य करके तो नहीं जाया जा रहा।

क्षप०– (दोनों कानों को बन्द करके) पाप शान्त हो, पाप शान्त हो। भक्त (मैं तो) वहाँ जाऊँगा जहाँ राक्षस का अथवा पिशाच का नाम ही नहीं सुना जाता।

भागु०– मित्र पर प्रणयकोप महान् है। राक्षस के द्वारा भदन्त के प्रति क्या अपराध किया गया है।

क्षप०– भक्त, राक्षस के द्वारा मेरे प्रति कोई भी अपराध नहीं किया गया है। (मैं) मन्दभागी स्वयं ही अपने प्रति अपराध कर रहा हूँ।

भागु०– भदन्त, मेरी उत्सुकता बढ़ा रहे हो। (मैं) सुनना चाहता हूँ।

मल०– (अपने आप) मैं भी सुनना चाहता हूँ।

क्षप०– श्रावक, न सुनने योग्य इस बात को सुनने से क्या लाभ?

भागु०– यदि गोपनीय है (रहस्यं) तो रहने दो।

क्षप०– श्रावक, गोपनीय बात नहीं है, परन्तु अत्यन्त क्रूर है।

भागु०– यदि गोपनीय बात नहीं है तो बतला दी जाए।

क्षप०– भक्त, वह गोपनीय बात नहीं है परन्तु फिर भी नहीं बतलाऊँगा।

भागु०– मैं भी अनुमति पत्र नहीं दूँगा।

क्षप०– (अपने आप) अब इच्छुक को बतला देना उचित है। (स्पष्ट रूप से) क्या उपाय है श्रावक सुनें। बात यह है कि मैं मन्दभागी पहले पाटलिपुत्र में रहता हुआ राक्षस के साथ मित्रता को प्राप्त हो गया। उस समय के द्वारा गुप्त रूप से (गूढ़) विषकन्या का प्रयोग करके महाराज पर्वतक को मार दिया गया।

मल०– (आँसू भरकर अपने आप) तो क्या पिता को राक्षस के द्वारा मारा गया, चाणक्य के द्वारा नहीं।

भागु०– भदन्त, उसके बाद क्या हुआ?

क्षप०– तब मैं राक्षस का मित्र हूँ ऐसा मानकर दुष्ट चाणक्य के द्वारा (मैं) अपमान पूर्वक नगर से बाहर निकाल दिया गया। इस समय भी अनेक अनुचित कार्यों को करने में कुशल

राक्षस के द्वारा उसी प्रकार का कुछ (कार्य) प्रारम्भ किया जा रहा है जिसके कारण मैं संसार से ही निकाल दिया जाऊँगा।

भागु०— भदन्त, प्रतिज्ञानुसार आधा राज्य न देने वाले दुष्ट चाणक्य के द्वारा यह अनुचित कार्य किया गया है, राक्षस के द्वारा नहीं। हमारे द्वारा (तो) इस प्रकार सुना गया है।

क्षप०— (दोनों कानों को बन्द करके) पाप शान्त हो। चाणक्य के द्वारा (तो) विषकन्या का नाम भी नहीं सुना गया।

भागु०— भदन्त, यह अनुमतिपत्र दिया जाता है। आओ कुमार को सुनाओ।

क्षपणक भागुरायण को यह बतलाना तो चाहता है कि मलयकेतु का पिता पर्वतक राक्षस द्वारा विषकन्या का प्रयोग करके मारा गया है और अब राक्षस मलयकेतु को भी मरवाना चाहता है परन्तु वह ऐसा अभिनय करता है जैसे कि उसे यह बलताने के लिए विवश किया गया हो ताकि उस पर किसी को किसी प्रकार का सन्देह न हो और उसकी बात पर विश्वास कर लिया जाए।

यह बात सच है कि राक्षस ने ही विषकन्या का प्रयोग किया था और उसने जीवसिद्धि को ही प्रयोग करने के लिए नियुक्त किया था परन्तु वह उसके द्वारा चन्द्रगुप्त को मारना चाहता था, पर्वतक को नहीं परन्तु चाणक्य ने अपनी कुटिल बुद्धि से उसका प्रयोग पर्वतक के प्रति करवा कर उसे मरवा दिया और इसका दोषारोपण राक्षस पर कर दिया। सम्भवतः मलयकेतु तक यह बात पहुँचने से पहले ही भागुरायण उसे कुसुमपुर से यह कहकर भगा लाया था कि उसका पिता पर्वतक चाणक्य के द्वारा मारा गया है और यदि वह वहाँ रहा तो उसे भी मरवा दिया जाएगा।

प्रथम अंक में चाणक्य द्वारा जीवसिद्धि नामक क्षपणक वेषधारी अपने मित्र इन्दुशर्मा द्वारा जिस महान् कार्य किए जाने की घोषणा की गई थी, वही महान् कार्य अब इस अंक में उसके द्वारा किया गया है। मलयकेतु के मन में राक्षस के प्रति सन्देह के बीज तो पहले ही उत्पन्न हो चुके थे। अब क्षणपक जीवसिद्ध की इस बात से उसका पिता पर्वतक राक्षस के द्वारा मारा गया है और अब पुनः वह राक्षय मलयकेतु को भी मरवाना चाहता है, मलयकेतु राक्षस के प्रति पूर्ण रूप से अविश्वस्त हो जाता है।

मल०— (उपस त्य)

> **श्रुतं सखे श्रवणविदारणं वचः**
> **सुहृन्मुखाद्रिपुमधिकृत्य भाषितम्।**
> **पितुर्वधव्यसनमिदं हि येन मे**
> **चिरादपि द्विगुणमिवाद्य वर्धते।।६।।**

अन्वय— सखे सुह न्मुखात् रिपुम् अधिकृत्य भाषितं श्रवणविदारणं वचः श्रुतं येन हि इदं मे पितुर्वधव्यसनं चिरादपि अद्य द्विगुणमिव वर्धते।

सन्दर्भ— राक्षस के परम मित्र क्षपणक जीवसिद्धि के मुख से ही जब मलयकेतु को पता चलता है कि उसका पिता पर्वतक राक्षस के द्वारा मारा गया है, चाणक्य के द्वारा नहीं तो वह और भी अधिक दुःखी हो जाता है।

हिन्दी अनुवाद—

मल०— (पास जाकर)हे मित्र! (राक्षस के) मित्र के मुख से शत्रु (राक्षस) को लक्ष्य करके कहा

गया कानों को बींधने वाला वचन सुन लिया गया है जिससे निस्सन्देह यह मेरा पित वध का दुःख चिरकाल के बाद भी आज दुगुना सा बढ़ रहा है। (६)

स्पष्टीकरण— क्षपणक जीवसिद्धि के मुख से राक्षस द्वारा अपने पिता के वध की बात सुनकर मलयकेतु का दुःख असहनीय हो जाता है क्योंकि राक्षस को तो वह अपने पिता के समान ही पूजनीय समझता था। शत्रु द्वारा किया गया अहित मन को बहुत दुःखी नहीं करता परन्तु अपने परम प्रिय व्यक्ति द्वारा किया गया अहित तो ह दय को ही बींध देता है। राक्षस के परम मित्र क्षपणक ने पर्वतक वध की बात कही है अतः मिथ्या भी नहीं हो सकती।

उक्त श्लोक में उत्प्रेक्षा अलंकार तथा रुचिरा छन्द है।

संस्कृत भावार्थ—

हे मित्र भागुरायण। मदीयं शत्रुं राक्षसम् उद्दिश्य कथितं कर्णविदारकं वचनं राक्षसस्यैव मित्रस्य क्षपणकजीवसिद्धेः मुखात् आकर्णितम् येन श्रवणेन मम पित विनाशजनितदुःखं बहुकालानन्तरम् अपि अस्मिन् क्षणे द्विगुणमिव वर्धते। शत्रुणा चाणक्येन तातः घातितः इति तापकारणं सत्यं किन्तु मित्रवत् पूजितेन राक्षसेन घातित इति तु असह्यम् इति भावः।

क्षप०— **(स्वगतम्) अये श्रुतं मलयकेतुहतकेन। हन्त कृतार्थो स्मि। (इति निष्क्रान्तः)**

मल०— **(प्रत्यक्षवदाकाशे लक्ष्यं बद्ध्वा) राक्षस राक्षस, युक्तं युक्तम्।**

मित्रं ममायमिति निव तचित्तव त्तिं
विश्रम्भतस्त्वयि निवेशितसर्वकार्यम्।
तातं निपात्य सह बन्धुजनाश्रुतोयैर्
अन्वर्थतोपि ननु राक्षस राक्षसो सि ।।७।।

अन्वय— इदं मम मित्रम् इति विश्रम्भतः त्वयि निवेशितसर्वकार्यं निर्व तचित्तव त्तिं तातं बन्धुजनाश्रुतोयैः सह निपात्य राक्षस ननु अन्वर्थतः अपि राक्षसः असि।

सन्दर्भ— राक्षस के मित्र क्षपणक जीवसिद्धि से राक्षस द्वारा अपने पिता पर्वतक का वध किए जाने की बात सुनकर मलयकेतु असहनीय दुःख से युक्त होकर राक्षस को खूब खरी-खोटी सुनाता है।

हिन्दी अनुवाद—

क्षप०— (अपने आप) अरे दुष्ट मलयकेतु के द्वारा सुन लिया गया है। प्रसन्नता की बात है (हन्त) कि मैं कृतकृत्य हो गया। (ऐसा कह कर निकल जाता है)

मल०— (प्रत्यक्ष के समान आकाश में द ष्टि बाँधकर) राक्षस राक्षस, उचित है उचित है।

'यह मेरा मित्र है' यह सोचकर विश्वास के कारण तुम्हें समस्त कार्यभार सौंप देने वाले (तथा) निश्चिन्त चित्तव त्ति वाले (मेरे) पिता को सम्बन्धियों के अश्रुजल के साथ गिराकर राक्षस निस्सन्देह (तुम) अर्थ से भी राक्षस हो।(७)

स्पष्टीकरण— क्षपणक को जब पता चलता है कि मलयकेतु ने भी उसकी बात सुन ली तो वह अत्यधिक प्रसन्न होता है क्योंकि चाणक्य द्वारा जो कार्य सौंपा गया था वह बहुत स्वाभाविक ढंग से भली प्रकार सम्पन्न हो गया। पहले पर्वतक राक्षस का घनिष्ठ मित्र

था परन्तु चाणक्य द्वारा आधे राज्य का प्रलोभन दिए जाने पर वह चाणक्य से मिल गया था।

मलयकेतु का अभिप्राय यह है कि तुम केवल नाम से ही राक्षस नहीं हो अपितु गुणों से भी राक्षस हो। 'यथा नाम तथा गुण' वाली उक्ति तुम्हारे प्रति पूर्ण रूप से चरितार्थ होती है।

प्रस्तुत श्लोक से सहोक्ति अलंकार तथा वसन्ततिलका छन्द है।

संस्कृत भावार्थ—

अयं राक्षसः मम सुह त् इति विश्वासात् त्वयि समर्पितं निखिलं राज्यतन्त्रं येन ताद शं तथा निश्चिन्ता मनोव त्तिः यस्य ताद शं मम जनकं सम्बन्धीनां नेत्रजलैः सह धराशायिनं कृत्वा प्राणैर्वियोज्य इत्यर्थः हे राक्षस! त्वम् योगार्थतो पि राक्षसः असि।

भागु०— (स्वगतम्) रक्षणीया राक्षसस्य प्राणा इत्यार्यादेशः। भवत्वेवं तावत्। (प्रकाशम्) कुमार, अलमावेगेन। आसनस्थं कुमारं किंचिद्विज्ञापयितुमिच्छामि।

मल०— (उपविश्य) सखे, किमसि वक्तुकामः?

भागु०— कुमार, इह खल्वर्थशास्त्रव्यवहारिणामर्थवशरदरिमित्रोदासीनव्यवस्था न लौकिकानामिव स्वेच्छावशात्। यतस्तस्मिन्काले सर्वार्थसिद्धिं राजानमिच्छतो राक्षसस्य चन्द्रगुप्तादपि बलीयस्तया सुग हीतनामा देवः पर्वतेश्वर एवार्थपरिपन्थी महानरातिरासीत्। तस्मिंश्च राक्षसेनेदमनुष्ठितमिति नातिदोषमिवात्र पश्यामि। पश्यतु कुमार :-

हिन्दी अनुवाद—

भागु०— (अपने आप) राक्षस के प्राणों की रक्षा की जानी चाहिए ऐसी आर्य (चाणक्य) की आज्ञा है। अच्छा तो इस प्रकार करता हूँ। (स्पष्ट) रूप से कुमार, आवेश में मत आइए। आसन पर बैठे हुए कुमार से कुछ निवेदन करना चाहता हूँ।

मल०— (बैठकर) मित्र, क्या कहना चाहते हो?

भागु०— इस संसार में राजनीतिज्ञों की कार्यवश शत्रु, मित्र और उदासीन की व्यवस्था होती है, साधरण व्यक्तियों की भान्ति अपनी इच्छानुसार नहीं। क्यांकि उस समय सर्वार्थसिद्धि को राजा बनाने की इच्छा वाले राक्षस के चन्द्रगुप्त से भी अधिक बलवान् शुभ नाम वाले महाराज पर्वतक ही प्रयोजन में बाधक (होने के कारण) महान् शत्रु थे। अतः उनके प्रति राक्षस के द्वारा यह कर दिया गया (तो) इसमें (राक्षस का) बहुत बड़ा अपराध (मैं) नहीं समझता। कुमार देखें-

स्पष्टीकरण— मलयकेतु को राक्षस के प्रति अत्यधिक क्रोधित हुआ देखकर भागुरायण को आशकां होने लगती है कि कहीं मलयकेतु राक्षस को मरवा ही न डाले। अतः वह उसे शान्त करने के लिए कहता है कि राजनीतिज्ञों में शत्रु, मित्र और उदासीन का निर्धारण कार्य की आवश्यकतानुसार ही होता है। जब नन्दवंशीय सर्वार्थसिद्धि जीवित था तब राक्षस उसे ही राजा बनाना चाहता था परन्तु उस समय महाराज पर्वतक उसके इस उद्देश्य की पूर्ति में सबसे बड़े बाधक थे क्योंकि वह चन्दगुप्त से भी अधिक शक्तिशाली थे। ऐसी परिस्थितियों में यदि राक्षस ने उन्हें मरवा दिया तो एक राजनीतिज्ञ होने के कारण उसे इतना बड़ा दोषी नहीं माना जा सकता।

मित्राणि शत्रुत्वमुपानयन्ती मित्रत्वमर्थस्य वशाच्च शत्रून्।
नीतिर्नयत्यस्म तृपूर्वव त्तं जन्मान्तरं जीवत एव पुंसः ।।८।।

अन्वय— अर्थस्य वशात् मित्राणि शत्रुत्वं च शत्रून् मित्रत्वम् उपानयन्ती नीतिः पुंसः जीवत एव अस्म तृपूर्वव त्तं जन्मान्तरं नयति।

सन्दर्भ— राक्षस के प्रति मलयकेतु के क्रोध को शान्त करने के लिए भागुरायण राजनीतिज्ञों में कार्य की आवश्यकतानुसार ही शत्रु, मित्र और उदासीन होने की बात स्पष्ट रूप से बतलाता है जो शतशः सत्य है।

हिन्दी अनुवाद—

स्वार्थ के कारण मित्रों को शत्रु और शत्रुओं को मित्र बनाती हुई राजनीति जीवित मनुष्यों को ही, पहले का व त्तान्त भुला दिए जाने वाले दूसरे जन्म में ले जाती है।(८)

स्पष्टीकरण— भागुरायण मलयकेतु के सामने एक कटु सत्य का उद्घाटन करते हुए कहता है कि जिस प्रकार दूसरा जन्म पाकर मनुष्य पूर्वजन्म की बातों को भूल जाता है उसी प्रकार राजनीति में भी लोग स्वार्थपूर्ति के लिए पहले किए गए अपकारों अथवा उपकारों को भूल जाते हैं। जो पहले मित्र होते हैं वही बाद में शत्रु बन जाते हैं और जो पहले शत्रु होते है वही बाद में मित्र बन जाते हैं। परन्तु दूसरे जन्म और राजनीति में अन्तर यह है कि दूसरा जन्म म त्यु को प्राप्त करके ही होता है परन्तु राजनीति में म त्यु को प्राप्त करने की आवश्यकता नहीं है। जीवित रहते हुए ही मनुष्य पूर्व बातों को भूल जाता है। अतः दोष राक्षस का नहीं अपितु राजनीति का ही है।

उक्त श्लोक में विषमालंकार तथा इन्द्रवज्रा छन्द है।

संस्कृत भावार्थ—

प्रयोजनस्य अनुरोधात् सुह दः रिपुत्वं रिपून् च बन्धुत्वं प्रापयन्ती राजनीतिः म त्युमनधिगतान् पुरुषान् स्म तिपथमनारूढ़ः प्राग्व्यवहारः पूर्वसम्बन्धः इत्यर्थः यस्मिन् तत् अन्यज्जन्म प्रापयति। तद् यदि राक्षसस्तदार्नी मित्रे एव पर्वतेश्वरे अमित्रवदाचरितवान् स दोषः नयप्रयोगस्य, न राक्षसस्य इति पश्यतु कुमारः।

तदत्र वस्तुनि नोपालम्भनीयो राक्षसः। आनन्दराज्यलाभादुपग्राह्यश्च। परतश्च परिग्रहे वा परित्यागे कुमारः प्रमाणम्।

मल०— **एवम्। सखे सम्यग्द ष्टवानसि। यतो मात्यवधे प्रकृतिक्षोभः स्यादेवं च सन्दिग्धो विजयः।**

(प्रविश्य)

पुरुषः— **जयतु कुमारः। आर्य, गुल्मस्थानाधिकृतो दीर्घरक्षो विज्ञापयति। एष खल्वस्माभिः कटकान्निष्क्रामन्नग हीतमुद्रः सलेखः पुरुषो ग हीतः। तत्प्रत्यक्षीकरोत्वेनमार्य इति। (जेद कुमारो। अज्ज गुम्मठ्ठाणधिकिदो दीहरक्खो विण्णवेदि एसो खु अह्मेहिं कडआदो णिक्कमतो अगहीदमुद्दो सलेहो पुरिसो गहीदो। ता पच्चक्खीकरेदु णं अज्जोत्ति।)**

भागु०— **भद्र, प्रवेश्य।**

पुरु०— **यदार्य आज्ञापयति। (जं अज्जो आणवेदि।) (इति निष्क्रान्तः)**

(ततः प्रविशाति पुरुषेणानुगम्यमानः संयतः सिद्धार्थकः)

हिन्दी अनुवाद—

तो इस विषय में (पर्वतकवध में) राक्षस उलाहना के योग्य नहीं है। नन्दराज्य की प्राप्ति होने तक (वह) स्वीकार किया जाना चाहिए और उसके बाद स्वीकार करने में अथवा त्यागने में कुमार प्रमाण हैं।

मल०— ठीक है। मित्र (तुमने) ठीक सोचा है (सम्यग्द ष्टवानसि) क्योंकि अमात्य का वध कर देने पर प्रजा में विद्रोह हो जाएगा और (हमारी) विजय सन्दिग्ध हो जाएगी।

(प्रवेश करके)

पुरुषः— कुमार विजयी हो। आर्य, गुल्माध्यक्ष दीर्घरक्ष निवेदन करता है- 'हमारे द्वारा अनुमति पत्र लिए बिना शिविर से बाहर जाता हुआ पत्र सहित यह पुरुष पकड़ा गया है। इसीलिए आर्य स्वयं इसे देख लें।

भागु०— भद्र, अन्दर ले आओ।

पुरु०— जैसी आर्य आज्ञा देते हैं। (ऐसा कहकर निकल जाता है)

(तब पुरुष द्वारा अनुसरण किया जाता हुआ बँधा हुआ सिद्धार्थक प्रवेश करता है)

स्पष्टीकरण— भागुरायण का यह सुझाव कि नन्द के राज्य की प्राप्ति होने तक राक्षस को रखा जाए, मलयकेतु को स्वीकार्य हो जाता है क्योंकि उसे पता है कि राक्षस के प्रति अनुरक्त कुसुमपुर की प्रजा से उसे हटा देने से विद्रोह हो जाएगा और मलयकेतु के लिए विजय प्राप्त करना अत्यधिक कठिन हो जाएगा। वस्तुतः राक्षस मलयकेतु का अमात्य नहीं था। वह तो नन्दो का तथा कुछ समय तक पर्वतक का अमात्य था। मलयकेतु का अमात्य तो भागुरायण ही है। द ष्टव्य त तीय अंक - आत्मनो नन्तरममात्यपदं ग्राहितः। परन्तु चूंकि सभी राक्षस को अमात्य राक्षस ही कहते हैं अतः मलयकेतु ने भी उसे अमात्य कर दिया।

सिद्धा०— (स्वगतम्)

आनयन्त्यै गुणेषु दोषेषु पराङ्मुखं कुर्वत्यै।
अस्माद शजनन्यै प्रणमामः स्वामिभक्त्यै।।६।।
आणंतीए गुणसु दोसेसु पंरमुंह कुणन्तीए।
आह्मारिसजणणीए पणमामो सामिभत्तीए।।६।।

अन्वय— दोषेषु पराङ्मुखं कुर्वत्यै गुणेषु आनयन्त्यै अस्माद शजनन्यै स्वामिभक्त्यै प्रणमामः।

सन्दर्भ— प्रस्तुत श्लोक में सिद्धार्थक स्वामिभक्ति की विलक्षणता के विषय में बतलाता है।

हिन्दी अनुवाद—

सिद्धा०— (अपने आप) दोषों से विमुख करती हुई (प्रत्युत उन्हें) गुण रूप में परिवर्तित करती हुई हम जैसों की माता स्वामिभक्ति को हम प्रणाम करते हैं (६)

स्पष्टीकरण— सिद्धार्थक का अभिप्राय यह है कि स्वामिभक्ति के कारण सेवक अनुचित कार्य करते हुए भी उसे दोष रूप में नहीं मानता प्रत्युत उसे गुण रूप में ही देखता है जिस प्रकार एक माता अपने बच्चों के दोषों को भी गुण रूप में ही देखती है। यद्यपि सिद्धार्थक को पता है कि उसके द्वारा अब राक्षस को धोखा दिया जाना है जो अनुचित है विशेष रूप से तब जबकि राक्षस की उस पर विशेष कृपा रही है तथापि अपने स्वामी आर्य चाणक्य का ऐसा ही करने का आदेश होने के कारण वह उसे अनुचित नहीं मानता।

चाणक्य के सभी गुप्तचर मानवोचित भावनाओं से युक्त होने पर भी कर्त्तव्य को भावना से ऊँचा स्थान देते हैं। वह मन से न चाहते हुए भी चाणक्य के आदेश का यथाशक्ति पालन करते हैं।

संस्कृत भावार्थ—

दोषवति कार्ये प्रव त्यापि दोषानगणयन्तं विदधत्यै प्रत्युत तान् गुणपक्ष एव प्रापयन्त्यै मद्विधाना सेवकानां मात रूपायै प्रभुपरायणतायै नमस्कुर्मः। यथा जनन्या बालकस्य गुणा एव ग्राह्याः दोषा उपेक्ष्याः तथैव स्वामिभक्तिवशात्स्वा मिकार्यसिद्ध्यर्थमनुचितमपि क्रियमाणं गुणपक्ष एव भवति न पुनर्दोषपक्ष इति भावः।

पुरु०— आर्य, अयं स पुरुषः। (अज्ज अअं सो पुरिसो।)

भागु०— (नाट्येनावलोक्य) भद्र, किमयमागन्तुक आहोस्विदिहैव कस्यचित्परिग्रहः।

सिद्धा०— आर्य, अहं खलु अमात्यराक्षस्य सेवकः। (अज्ज अहं खु अमच्चरक्खसस्स सेवओ।)

भागु०— भद्र तत्किमग हीतमुद्रः कटकान्निष्क्रामसि।

सिद्धा०— आर्य, कार्यगौरवेण त्वरायितो स्मि। (अज्ज कज्जगोरवेण तुवराविदोह्मि।)

भागु०— कीद शं तत्कार्यगौरवं यद्राजशासनमुल्लंघयति?

मल०— सखे भागुरायण, लेखमपनय।

भागु०— (सिद्धार्थकहस्ताद् ग हीत्वा पत्रमुद्रां द ष्ट्वा) कुमार अयं लेखः। राक्षसनामाकितेयं मुद्रा।

मल०— मुद्रां परिपाल्यन्नुद्धाट्य दर्शय।

भागु०— (तथा कृत्वा दर्शयति)

मल०— (वाचयति) ''स्वस्ति यथास्थानं कुतो पि को पि पुरुषविशेषमवगमयति अस्मत्प्रतिपक्षं निराकृत्य दर्शिता कापि सत्यता सत्यवादिना। सांप्रतमेतेषामपि प्रथममुपन्यस्तसन्धीनामस्मत्सुह दां पूर्वप्रतिज्ञातसन्धिपरिपणनप्रोत्साहनेन सत्यसंधः प्रीतिमुत्पादतुमर्हति। एतेप्येवमनुग हीताः सन्तः स्वाश्रयविनाशेनोपकारिणमाश्रयिष्यन्ति। अविस्म तमेतत्सत्यवतः स्मारयामः। एतेषां मध्ये केचिदरेः कोषहस्तिभ्यामर्थिनः केचिद्विषयेणिति। अलकारत्रयं च सत्यवता यदनुप्रेषितं तदुपगतम्। मयापि लेखास्याशून्यार्थं किंचिदनुप्रेषितं तदुपगमनीयम्। वाचिकं चाप्ततमादस्माच्छ्रोतव्यमिति।'' सखे, भागुरायण, कीद शो लेखः।

भागु०— भद्र सिद्धार्थक, कस्यायं लेखः?

सिद्धा०— आर्य, न जानामि। (अज्ज ण जाणामि।)

भागु०— हे धूर्त। लेखो नीयते न ज्ञायते कस्यायमिति। सर्वं तावत्तिष्ठतु, वाचिकं त्वत्तः केन श्रोतव्यम्।

सिद्धा०— (भयं नाटयन्) युष्माभिः। (तुह्मेहिं)

भागु०— किमस्माभिः?

सिद्धा०— मिश्रैर्ग हीतो न जानामि किं भणामीति। (मिस्सेहिं गिहीदो ण आणामि किं भणामि त्ति।)

भागु०— (सरोषम्) एष जानासि। भासुरक, बहिर्नीत्वा तावत्ताड्यतां यावत्कथयति।

पुरु०— यदमात्य आज्ञापयति। (जं अमच्चो आणवेदि।) (इति तेन सह निष्क्रम्य पुनः प्रविश्य)

आर्य इयं मुद्रालाञ्छिता पेटिका तस्य ताड्यमानस्य कक्षातो निपतिता। (अज्ज इअं मुलच्छिा पेडिआ तस्स ताडिअमाणस्स कक्खादो णिवडिदा।)

भागु०— (विलोकय) कुमार, इयमपि राक्षसदामुद्राकिंतैव।

मल०— सखे, अयं लेखस्याशून्यार्थो भविष्यति। इमामपि मुद्रां परिपाल्यन्नुद्घाट्य दर्शय।

भागु०— (तथा कृत्वा दर्शयति)

मल०— (विलोक्य) अये तदिदमाभरणं मया स्वशरीरादवतार्य राक्षसाय प्रेषितम्। व्यक्तं चन्द्रगुप्तस्य लेखः।

भागु०— कुमार, एष निर्णीयत एवं संशयः। भद्र पुनरपि ताड्यताम्।

पुरु०— यदार्य आज्ञापयति। (जं अज्जो आणवेदि) (इति निष्क्रम्य सिद्धार्थकेन सह पुनः प्रविश्य) एष खलु ताड्यमानः कुमारस्यैव निवेदयामीति भणति। (एसो क्खु ताडिअमाणो कुमारस्य एव्व णिवेदमित्ति भणादि)।

मल०— तथा भवतु।

हिन्दी अनुवाद—

पुरु०— आर्य, यह वह पुरुष है।

भागु०— (नाट्य से देखकर) भद्र, क्या यह आगन्तुक है, या नहीं किसी का सेवक है

पुरु०— आर्य, मैं निस्सन्देह अमात्य राक्षस का सेवक हूँ।

भागु०— भद्र, फिर किसलिए अनुमतिपत्र लिए बिना शिविर से बाहर जा रहे थे।

सिद्धा०— आर्य, कार्य की गुरुता के कारण मैं जल्दी में था।

भागु०— कार्य की वह कैसी गुरुता थी जो राजा की आज्ञा का (भी) उल्लंघन करवा रही है।

मल०— मित्र भागुरायण, पत्र ले लो।

भागु०— (सिद्धार्थक के हाथ से लेकर पत्र की मुद्रा को देखकर) कुमार यह पत्र है। यह मुद्रा राक्षस के नाम से चिह्नित है।

मल०— मुद्रा को बचाते हुए खोलकर दिखाओ।

भागु०— (वैसा करके दिखलाता है)

मल०— (पढ़ता है) ''कल्याण हो। कहीं से कोई, किसी विशेष पुरुष को यथास्थान सूचित करता है (कि) हमारे प्रतिपक्षी को पदच्युत करके सत्यवादी के द्वारा कोई विशेष (विलक्षण) सत्यता दिखला दी गई है। अब पहले से तय की गई सन्धि वाले हमारे इन मित्रों की भी, पहले वायदे के अनुसार सन्धि की शर्तों के प्रोत्साहन से सत्यप्रतिज्ञ (आप) प्रीति उत्पन्न करे में समर्थ हैं। ये भी इस प्रकार अनुग हीत होते हुए अपने आश्रय से विनाश से उपकार करने वाले का आश्रय ले लेंगे। (यद्यपि) सत्यवादी को यह भूला नहीं है (तथापि) हम याद दिला रहे हैं। इनके मध्य में कुछ शत्रु के खजाने एवं हाथियों के इच्छुक हैं (और) कुछ राज्य के सत्यवादी के द्वारा जो तीन आभूषण भेजे गए हैं वे प्राप्त कर लिए गए हैं। मेरे द्वारा भी पत्र की अशून्यता के लिए कुछ भेजा जा रहा है, वह स्वीकार कर लिया जाए। मौखिक सन्देश विश्वसनीय इससे सुना जाना चाहिए।'' मित्र भागुरायण (यह) कैसा पत्र है?

भागु०— भद्र सिद्धार्थक यह किसका पत्र है?

सिद्धार्थक— आर्य, (मैं) नहीं जानता।

भागु०— हे धूर्त, पत्र ले जाया जा रहा है (और) नहीं जानता कि यह किसका है। अच्छा, बाकी सब रहने दो। मौखिक सन्देश तुमसे किसके द्वारा सुना जाना है।

सिद्धा०— (भय का अभिनय करता हुआ) आपके द्वारा।

भागु०— क्या हमारे द्वारा?

सिद्धा०— आप लोगों के द्वारा पकड़ लिए जाने पर (मैं) नहीं जानता कि (मैं) क्या कह रहा हूँ।

भागु०— (कोधपूर्वक) अभी जान जाओगे। भासुरक बाहर ले जाकर तब तक पीटो जब तक बतलाता है।

पुरु०— जैसी अमात्य आज्ञा देते हैं। (ऐसा कहकर उसके साथ निकलकर पुनः प्रवेश करके) आर्य, पीटे जाने पर मुद्रा से मुद्रित यह पेटी इसकी बगल से गिर पड़ी।

भागु०— (देखकर) कुमार, यह भी राक्षस की मुद्रा से मुद्रित है।

मल०— मित्र, यह लेख की अशून्यता के लिए होगा। मुद्रा की रक्षा करे हुए इसे भी खोल कर दिखाओ।

भागु०— (वैसा करके दिखलाता है)

मल०— (देखकर) अरे यह आभूषण (तो) मेरे द्वारा अपने शरीर से उतार कर राक्षस के लिए भेजा गया था। स्पष्ट ही (व्यक्तं) (यह) चन्द्रगुप्त को (लिखा गया) पत्र है।

भागु०— कुमार इस संशय का निर्णय भी अभी हुआ जाता हैं भद्र, दुबारा से पीटो।

पुरु०— जैसी आज्ञा देते हैं। (ऐसा कहकर निकल कर सिद्धार्थक के साथ पुनः प्रवेश करके) पीटा जाता हुआ यह कहता है कि कुमार का बतलाऊँगा

मल०— वैसा ही हो।

स्पष्टीकरण— पत्र पर राक्षस की मुद्रा है अतः यह स्पष्ट है कि पत्र राक्षस का है। मलयकेतु पत्र की मोहर को बचाते हुए खोलने को कहता है ताकि बाद में राक्षस के साथ बातचीत करते हुए राक्षस द्वारा इस विषय में अपनी अनभिज्ञता प्रकट किए जाने पर उसे प्रमाण रूप में प्रस्तुत किया जा सके। यह वही पत्र है जो चाणक्य के द्वारा प्रथम अंक में शकटदास के द्वारा उसके जाने बिना ही सिद्धार्थक के माध्यम से लिखवाया गया था और राक्षस की मुद्रा से मुद्रित कर सिद्धार्थक को दे दिया गया था। और फिर चाणक्य द्वारा उसके कान में कुछ कहा गया था। जो बात चाणक्य ने उस समय उसके कान में कही थी वही बात अब सिद्धार्थक के मुख से पाठकों अथवा दर्शकों को पता चलेगी। इस पत्र का पूर्वभाग चाणक्य ने अव्यक्त ही रखा था। पत्र में लिखने वाला का तथा पत्र प्राप्त करने वाला का नाम पता इत्यादि कुछ नहीं लिखा गया है क्योंकि यदि ये लिख दिए जाते तो शकटदास को सब कुछ पता चल जाता। तब वह पत्र नहीं लिखता और ऐसा होने पर चाणक्य की राक्षस और मलयकेतु में फूट डलवाने की योजना निष्फल हो जाती।

पत्र इस दंग से लिखा गया है कि मलयकेतु यह समझे कि यह पत्र राक्षस द्वारा चन्द्रगुप्त के लिए लिखा गया है। राक्षस चन्द्रगुप्त द्वारा चाणक्य को अमात्यपद से हटा दिए जाने पर अत्यन्त प्रसन्न है वे अपने पाँच मित्रों को भी चन्द्रगुप्त से मलयकेतु का कोष, हाथी और राज्य उन्हें देकर प्रसन्न करने को कहता है। इस पत्र से यह भी ध्वनित होता है

कि राक्षस मलयकेतु के मर जाने पर चन्द्रगुप्त का ही आश्रय ले लेगा। जबकि वास्तविकता सर्वथा इसके विपरीत है।

मलयकेतु यह भी समझता है कि तीन आभूषण चन्द्रगुप्त के द्वारा राक्षस के पास उसे (मलयकेतु को) मारने के बदले से पहले से ही भेज दिए गए हैं और राक्षस ने भी पत्र की अशून्यता के लिए कुछ भेजा है जिसके विषय में मलयकेतु अभी नहीं जान पाया है। राजा, देवता और गुरु के प्रति पत्र लिखते समय कुछ भेजे जाने का विधान किया गया है बाद में सिद्धार्थक को पीटे जाने पर उसकी बगल से गिरी हुई पेटिका में वही आभूषण है जो मलयकेतु द्वारा द्वितीय अंक में अपने शरीर से उतार कर राक्षस के लिए भेजा गया था। परन्तु बाद में राक्षस ने प्रसन्न होकर उसे सिद्धार्थक को दे दिया था और सिद्धार्थक ने उसे राक्षस की मुद्रा से मुद्रित करवा कर उसके पास ही रखवा दिया था। राक्षस की मुद्रा होने से यह स्पष्ट हो जाता है कि वह आभूषण पत्र की अशून्यता के लिए राक्षस द्वारा भेजा गया है।

सम्पूर्ण घटना को अत्यधिक स्वाभाविक बनाने के लिए सिद्धार्थक भयभीत होने का, ठीक से उत्तर इत्यादि न देने का अभिनय करता है।

सिदा०— (पादयोर्निपत्य) अभयेन मे प्रसादं करोत्वार्यः। (अभएण मे पसादं करेदु अज्जो।)

मल०— भद्र, अभयमेव परवतो जनस्य। निवेद्यतां यथावस्थितम्।

सिद्धा०— निशामयतु कुमारः। अहं खल्वमात्यराक्षसेनेमं लेखं दत्वा चन्द्रगुप्तसकाशं प्रेषितः। (णिसामेदु कुमारो। अहं खु अमच्चरक्खसेण इमं लेहं देइअ चन्दउत्तसआसं पेसिदो।)

मल०— वाचिकमिदानीं श्रोतुमच्छामि।

सिदा०— कुमार आदिष्टो स्म्यमात्येन यथा - एते मम प्रियवयस्याः प च राजानस्त्वया सह समुत्पन्नस्नेहाः ते यथा कुलूताधिपश्चित्रवर्मा मलयनगराधिप सिंहनादः काश्मीरदेशनाथः पुष्कराक्षः सिन्धुराजः सिन्धुसेनः पारसीको मेघनाद इति। एतेषु प्रथमग हीतास्त्रयो राजानो मलयकेतोर्विषयमिच्छन्त्यपरौ हस्तिबलं कोषं च। तद्यथा चाणक्यं निराकृत महाभागेन मम प्रीतिः समुत्पादिता तथैवैतेषामपि प्रथमभणितो र्थः संपादयितव्य इत्येतावान्वाक्सन्देशः। (कुमाल आदिट्ोह्मि अमच्चेण जहा एदे मह पिअवअस्सा प च राजाणो तुए सह समुप्पण्णसिणेहा। ते जहा कुलूदाहिवो चित्तवम्मो मलअणअराहिवो सिंहणादो कह्मीरदेसणाहो पुक्खरक्खो सिन्धुराओ सिन्धुसेणो पारसीओ मेहणादोत्ति। एदेसु पढमगिहीदा तिण्णि राआणो मलयकेदुणो विसअं इच्छन्ति अवरे हत्थिबलं कोसं अ। ता जहा चाणक्कं णिराकरिअ महाभाएण मह पीदी समुप्पादिदा तहा एदाणं वि पढम पणिदो अत्थो संपादइदव्वेत्ति एत्तिओ वा आसन्देसो।)

मल०— (स्वगतम्) कथं चित्रवर्मादयो पि मामभिद्रुह्यन्ति। अथ वात एव राक्षसे निरतिशया प्रीतिः। (प्रकाशम्) विजये, राक्षसं द्रष्टुमिच्छामि।

प्रती०— यत्कुमार आज्ञापयति (जं कुमारो आणवेदि।)

(इति निष्क्रान्ता)

(ततः प्रविशत्यासनस्थः स्वभवनगतः पुरुषेण सह सचिन्तो राक्षसः)

राक्ष०— (आत्मगतम्) पूर्णमस्मद्बलं चन्द्रगुप्तबलैरिति यत्सत्यं न मे मनसः परिशुद्धिरस्ति। कुतः—

हिन्दी अनुवाद—

सिद्धार्थक— (पैरों पर गिरकर) अभयदान देकर आर्य मेरे ऊपर कृपा करें।

मल०— भद्र पराधीन मनुष्य के लिए (तो) अभय ही है। ठीक ठीक बतलाओ।

सिद्धार्थक— कुमार सुनें। वास्तव में मैं अमात्य राक्षस के द्वारा यह पत्र देकर चन्द्रगुप्त के पास भेजा गया था।

सिद्धा०— कुमार, अमात्य के द्वारा (मुझे) आदेश दिया गया है कि ये मेरे प्रिय मित्र पाँच राजा आपके साथ उत्पन्न स्नेह वाले है। वे इस प्रकार हैं - कुलूत का राजा चित्रवर्मा, मलयदेश का राजा सिंहनाद, काश्मीर देश का राजा पुष्कराक्ष, सिन्धुदेश का राजा सिन्धुसेन तथा पारस का मेघनाद। इनमें से पहले गिनाए गए तीन राजा मलयकेतु के राज्य को चाहते हैं और दूसरे दो हस्तिसेना को और कोष को। तो जिस प्रकार चाणक्य को पदच्युत करके (निराकृत्य) महानुभाव के द्वारा मेरी प्रसन्नता उत्पन्न की गई है उसी प्रकार इन्हें भी पूर्वकथित वस्तुएँ दी जानी चाहिए इतना ही मौखिक सन्देश है।

मल०— (अपने आप) क्या चित्रवर्मा इत्यादि भी मुझसे द्रोह करते हैं। अथवा इसी कारण राक्षस में (इनका) अत्यधिक प्रेम है। (स्पष्ट रूप से) विजये (मैं) राक्षस को देखना चाहता हूँ।

प्रती०— जैसी कुमार आज्ञा देते हैं (ऐसा कहकर निकल जाती है)

(तत्पश्चात् अपने भवन में आसन पर बैठा हुआ पुरुष के साथ चिन्तित राक्षस प्रवेश करता है)

राक्ष०— (अपने आप) वस्तुतः हमारी सेना चन्द्रगुप्त की सेना से भरी हुई है अतः मेरे मन को चैन नहीं है। क्योंकि-

स्पष्टीकरण— सिद्धार्थक ने अत्यधिक कुशलता से मलयकेतु से अपने लिए अभय प्राप्त कर लिया। राक्षस को अब सम्भवतः यह आभास होने लगा है कि भद्रभट, डिगंरात बलभद्र, भागुरायण इत्यादि चन्द्रगुप्त के ही सैनिक हैं जो चाणक्य की योजनानुसार उसकी सेना में सम्मिलित हो गए हैं। अतः वह अत्यधिक चिन्तित व व्याकुल है।

साध्यं निश्चितमन्वयेन घटितं बिभ्रत्सपक्षे स्थितिं
व्याव त्तं च विपक्षतो भवति यत्तत्साधनं सिद्धये।
यत्साध्यं स्वयमेव तुल्यमभयोः पक्षे विरुद्धं च यत्
तस्यांगीकरणेन वादिन इव स्यात्स्वामिनो निग्रहः।।१०।।

अन्वय— तत् साधनं सिद्धये भवति यत् साध्ये निश्चितम् अन्वयेन घटितं सपक्षे स्थितिं बिभ्रत् च विपक्षतः व्याव त्तम् यत् स्वयमेव साध्यम् उभयोः तुल्यम् च यत् पक्षे विरुद्धं तस्यांगीकरणेन स्वामिनः इव वादिनः निग्रहः स्यात्।

सन्दर्भ— ऐसा आभास होने पर कि मलयेकुत की सेना चन्द्रगुप्त की सेना से भरी हुई है, राक्षस अत्यधिक चिन्तित होते हुए एक वादी द्वारा अनुमान को सिद्ध करके विजय प्राप्त करने के लिए तथा एक राजा द्वारा विजय प्राप्त करने के साधन में साम्य स्थापित करता है। यह श्लोक द्वयर्थक है। एक अर्थ अर्थ वादी के पक्ष में लगता है तो दूसरा राजा के पक्ष में।

हिन्दी अनुवाद—

(वादी के पक्ष में) - वह साधन सिद्धि के लिए होता है जिसका साध्य निश्चित हो (जो) अन्वयव्याप्ति से युक्त हो, जो सपक्ष में स्थिति धारण करता हो और विपक्ष से प थक् हो (परन्तु) जो स्वयं ही साध्य है अथवा दोनों सपक्ष और विपक्ष में समान है (अथवा) जो पक्ष में विरुद्ध है उसको स्वीकार करने से तो राजा के समान वादी का निग्रह हो जाता है।

(राजा के पक्ष में)-वही सेना (तत साधन) विजय प्राप्ति के लिए होती है। जिसका विजय प्राप्ति का लक्ष्य निश्चित हो, जो एकता से युक्त हो, जो अपने राजा के पक्ष में स्थिति को धारण करती हो तथा शत्रुपक्ष के राजा से विमुख हो परन्तु जो सेना अपने के लिए राजा के पक्ष में व शत्रुपक्ष के राजा में समान हो (अथवा) जो अपने पक्ष के राजा के विरुद्ध हो उस (सेना) को स्वीकार करने से वादी के समान राजा की पराजय हो जाती है। (१०)

स्पष्टीकरण— विजयप्राप्ति के लिए सर्वप्रथम तो वादी को यह पता होना चाहिए कि उसका साध्य क्या है अर्थात् वह क्या प्रमाणित करना चाहता है। तत्पश्चात् उसे ऐसा साधन (हेतु) देना चाहिए जो उस साध्य को प्रमाणित कर उसे विजय प्राप्त करवाने में समर्थ हो। इस प्रकार का साधन (हेतु) वही हो सकता है जिसमें निम्न तीन विशेषताएँ हों—

(क) तो अन्वयव्याप्ति से युक्त हो

(ख) जो सपक्ष में हो

(ग) जो विपक्ष में न हो। यथा 'पर्वतो वन्हिमान्' यह साध्य है अर्थात् वादी यह प्रमाणित करना चाहता है कि पर्वत पर आग है इसके लिए 'धूमत्वात्'(धूएँ के कारण) यह साधन (हेतु) है। इस हेतु में तीन गुण हैं-

(१) यह अन्वयव्याप्ति से युक्त है। 'यत्र तत्र धूमस्तत्र तत्र वह्नि' अर्थात् जहाँ जहाँ धुआँ है वहाँ वहाँ अग्नि है। यह अन्वयव्याप्ति है। साध्य और साधन का स्वाभाविक सम्बन्ध व्याप्ति कहलाता है- 'साहचर्यनियमो व्याप्तिः'।

(२) यह सपक्ष में है। 'यत्र यत्र धूमस्तत्र तत्र वह्निः यथा महानसे' यह सपक्ष है क्योंकि महानस (रसोई) में धुआँ है अतः वहाँ अग्नि भी है।

(३) यह विपक्ष में नहीं है- 'यथा जलाशये' क्योंकि जलाशय विपक्ष है अतः वहाँ धुआँ नहीं है और इस कारण वहाँ अग्नि भी नहीं हैं।

इस प्रकार इस अनुमान के पूर्ण होने के कारण वादी की विजय निश्चित है। परन्तु यदि उपरिलिखित तीनों गुणों में से एक भी गुण का अभाव साधन (हेतु) में है तो वह 'हेत्वाभास' बन जाऐगा और वादी का निग्रह ही करवा देगा।

इसी प्रकार जिस सेना का विजय प्राप्ति का लक्ष्य निश्चित है, जो पारस्परिक एकता से युक्त है, जो अपने राजा के लिए ही विजय प्राप्त करना चाहती है और जो शत्रु राजा से विमुख है, वही सेना राजा को विजय प्राप्त करवाने में समर्थ है परन्तु इसके विपरीत जो सेना अपने लिए ही विजय प्राप्त करना चाहती हो अथवा अपने राजा दोनों के लिए एक समान हो अथवा अपने पक्ष के राजा से ही विरोध रखती हो तो ऐसी सेना तो राजा को पराजित ही करवाएगी।

राक्षस का आशय यह है कि वस्तुतः हमारी सेना में शत्रुपक्ष की सेना भरी हुई है अतः वह हमारे राजा मलयकेतु का साथ न देकर शत्रुपक्ष के राजा चन्द्रगुप्त का साथ देगी। और इसी कारण विजय प्राप्ति सन्दिग्ध है।

उक्त श्लोक में श्लेष अलङ्कार तथा शार्दूलविक्रीडित छन्द है।

संस्क त भावार्थ—

(वादीपक्षे) यत् धूमरूपं हेतुः सिद्धिविषये पक्षे असन्दिग्धम्, अन्वयव्याप्त्या विशिष्टं, सपक्षे महानसादौ विद्यमानं विपक्षात् जलाशयात् च निव त्तं भवति तदेव धूमरूपं हेतुः वह्न्यनुमाने समर्थं भवति परं यत् साधनं पक्षे अनिश्चितम् अथवा उभयोः स्वपक्षविपक्षयोः तुल्यम उभयत्र वर्तमानमवर्तमानं वा द श्यते अतएव अन्वयेन न घटितं यच्च पक्षे विपरीतं भवति तथाविधस्य साधनस्य स्वीकरणेन राज्ञः इव तार्किकस्य एव निग्रहः स्यात्।

(स्वामिपक्षे)- यत् सैन्यम् अनुष्ठेये अरिविजयादिके निश्चितसामर्थ्यम्, परस्परम् एकतान्वितम्, निजवर्गे अवस्थानं बिभर्ति, शत्रुपक्षतश्च पराङ्मुखं भवति तदेव सैन्यं कार्यसिद्धये सम्पद्यते परं यत् सैन्यं आत्मनैव विजयं काङ्क्षते अथवा यच्च उभयोः सपक्षविपक्षयोः समानादरं भवति अथवा यच्च निजवर्गे अननुकूलं जायते तस्य सैन्यस्य स्वीकरणेन तार्किकस्य इव प्रभोः एव पराभवः स्यात्। स्वार्थसिद्धये उपग हीता एते भद्रभटादयो विजयं प्रति मे मनसि शङ्कां जनयन्ति इति राक्षसस्याशयः।

अथवा विज्ञातापरागहेतुभिः प्राक्परिग हीतोपजापैरापूर्णमिति न विकल्पयितुमर्हामि। (प्रकाशम्) भद्र प्रियंवदक, उच्यन्तामस्मद्वचनात्कुमारानुयायिनो राजानः। संप्रति दिने दिने प्रत्यासीदति कुसुमपुरम्। तत्परिकल्पितविभागैर्भव प्रयाणे प्रयातव्यम्। कथमिति-

हिन्दी अनुवाद—

अथवा विरक्ति (अपराग) का कारण जाने हुए (तथा) पहले से ही हमारी नीतियों को स्वीकार किए हुए (भद्रभट इत्यादि) लोगों से (हमारी सेना) भरी हुई है अतः मुझे सन्देह नहीं करना चाहिए। (स्पष्ट रूप से) भद्र प्रियवंदक, हमारी तरफ से कुमार के अनुयायी राजाओं से कहो 'अब दिन प्रतिदिन कुसुमपुर समीप आ रहा है। अतः विभाग बनाकर (परिकल्पित) आपके द्वारा विजय यात्रा के लिए प्रस्थान किया जाना चाहिए। किस प्रकार—

स्पष्टीकरण— राक्षस पहले तो भद्रभट इत्यादि के प्रति अविश्वस्त होता है परन्तु तुरन्त ही उनके प्रति अपना विचार बदल देता है। इसके दो कारण हैं। प्रथम तो यह कि भद्रभट इत्यादि के चन्द्रगुप्त से प थक् होने के कारणों की जाँच पड़ताल राक्षस ने करवा ली थी और चन्द्रगुप्त के प्रति इनकी विरक्ति वास्तविक थी और दूसरे इन्होंने भी राक्षस की नीतियों को स्वेच्छा से स्वीकार कर लिया था। परन्तु यह राक्षस का भ्रम ही था। वास्वत में ये चन्द्रगुप्त का ही साथ दे रहे थे।

प्रस्थातव्यं पुरस्तात्खसमगधगणैर्मामनु व्यूह्य सैन्यैर्
गान्धारैर्मध्ययाने सयवनपतिभिः संविधेयः प्रयत्नः।
पश्चाद् गच्छन्तु वीराः शकनरपतयः संभ ताश्चीणहूणैः
कौलूताद्यश्च शिष्टः पथि परिव णुयाद्राजलोकः कुमारम्।।११।।

अन्वय— पुरस्तात् खसमगधगणैः सैन्यैः व्यूह्य माम् अनु प्रस्थातव्यम् मध्ययाने गान्धारैः सयवनपतिभिः प्रयत्नः संविधेयः पश्चात् वीराः शकनरपतयः चीणहूणैः संभ ताः गच्छन्तु च शिष्टः कौलूताद्यः राजलोकः पथि कुमारं व णुयात्।

सन्दर्भ— प्रस्तुत श्लोक में कुसुमपुर पर आक्रमण करने के लिए राक्षस अपनी सेना को विभिन्न विभागों में विभाजित करता है ताकि आक्रमण के समय किसी प्रकार की अव्यवस्था न हो जाए।

हिन्दी अनुवाद—

सबसे आगे खस और मगध गण की सेनाओं द्वारा व्यूह बनाकर मेरे पीछे प्रस्थान किया जाना चाहिए। मध्य भाग में गान्धारों के द्वारा यवन राजाओं के साथ प्रयत्न किया जाना चाहिए। प ष्ठ भाग में वीर शक राजा चीन और हूणों से युक्त होकर जाएँ और शेष कुलूत आदि देश के राजाओं का समूह मार्ग में कुमार (मलयकेतु) को घेरे रहें अर्थात् रक्षा करते रहें।(११)

स्पष्टीकरण— विजय यात्रा के लिए प्रयाण करते समय राक्षस ने सेना को तीन टुकड़ियों में बाँटा है। सबसे आगे-आगे राक्षस रहेगा और उसके पीछे खस और मगध के राजाओं की प्रथम टुकड़ी रहेगी। बीच की टुकड़ी में गान्धार और यवन देश के राजा हैं और पिछली टुकड़ी में शक, चीन और हूण देश के राजा हैं। अन्त में राक्षस ने मलयकेतु की रक्षा करने के लिए अपने परम विश्वसनीय पाँच मित्र राजाओं चित्रवर्मा इत्यादि को नियुक्त किया है।

परन्तु विडम्बना यह है कि मलयकेतु सिद्धार्थक के हाथों में तथाकथित राक्षस के पत्र को पाकर राक्षस तथा उसके पाँच मित्रों को अपना शत्रु समझने लगा है क्योंकि उसे ऐसा विश्वास हो गया है कि वे सब मिलकर मलयकेतु को मार देना चाहते हैं। राक्षस द्वारा की गई सेना की इस व्यवस्था से उसका सन्देह और भी अधिक द ढ़ हो जाता है।

उक्त श्लोक में स्वाभावोक्ति अलंकार तथा स्रग्धरा छन्द है।

संस्कृत भावार्थ—

यानमुखे खसानां मगधनां च समूहैः सैनिकैः व्यूहं रचयित्वा मम पश्चात् प्रयातव्यम्। मध्यभागे गान्धारदेशवासिभिः सैन्यैः यवनराजैः सह व्यापारः कर्तव्यः तदनु शूराः शकराजानः चीनैः हूणैश्च परिपुष्टाः यान्तु अवशिष्टाश्च कौलूताद्यः प चराजानः प्रयाणे कुमारमलयकेतुं परिवार्य आपद्भ्यःसंरक्षेयुः।

प्रियं०— तथा। (तहा)। (इति निष्क्रान्तः)

(प्रविश्य)

प्रतीहारी— जयत्वमात्यः। अमात्य इच्छति त्वां कुमारः प्रेक्षितुम्। (जेदु अमच्चो। अमच्च इच्छति तुमं कुमारो पेक्खिदुं।)

राक्ष०— भद्रे, मुहूर्तं तिष्ठ। कः कोत्र भोः?

(प्रविश्य)

पुरुष— आज्ञापयत्वमात्यः। (आणवेदु अमच्चो।)

राक्ष०— उच्यतां शकटदासः। यथा परिधापिताः कुमारेणाभरणानि वयम्। तन्न युक्तमनलंकृतैः कुमारदर्शनमनुभवितुम्। अतो यत्तदलंकरणत्रयं क्रीतं तन्मध्यादेकं दीयतामिति।

पुरु०— **तथा। (इति निष्क्रम्य पुनः प्रविश्य) अमात्य इदमाभरणम्। (तहा। अमच्च इदं आहरणं)**

राक्ष०— **(नाट्येनात्मानमलङ्कृत्योत्थाय च) भद्रे, राजोपगामिनं मार्गमादेशय।**

प्रती०— **एत्वमात्यः। (एदु अमच्चो।)**

राक्ष०— **(आत्मगतम्) अधिकारपदं नाम निर्दोषस्यापि पुरुषस्य महदाशंकास्थानम्। कुतः-**

हिन्दी अनुवाद—

प्रियं०— जैसी आज्ञा। (ऐसा कहकर निकल जाता है।)

(प्रवेश करके)

प्रतीहारी— अमात्य विजयी हों। अमात्य आपको कुमार देखना चाहते हैं।

राक्ष०— भद्रे, क्षणभर के लिए रुको। अरे यहाँ कौन है?

(प्रवेश करके)

पुरुष— अमात्य आज्ञा दें।

राक्ष०— शकटदास से कहो क्योंकि कुमार के द्वारा हमें आभूषण पहनाए गए थे (परिधापिताः) अतः आभूषण के बिना कुमार के दर्शन करना उचित नहीं है। अतः जो वे तीन आभूषण खरीदे गए थे उनमें से एक दे दो।

पुरु०— जो आज्ञा, (ऐसा कहकर निकल कर पुनः प्रवेश करके) अमात्य, यह आभूषण है।

राक्ष०— (अभिनयपूर्वक स्वयं को अलंकृत कर उठकर) भद्रे, राजा के पास जाने वाला मार्ग बतलाओ।

प्रती०— अमात्य आएँ।

राक्ष०— (अपने आप) अधिकारयुक्त पद निस्सन्देह निर्दोष पुरुष के लिए भी महान् भय का स्थान होता है। क्योंकि-

स्पष्टीकरण— ये तीन आभूषण पर्वतक के हैं, जो प्रथम अंक में चाणक्य द्वारा विश्वावसु इत्यादि भाइयों के पर्वतक के श्राद्ध के अवसर पर ग्रहण करवा कर द्वितीय अंक के अन्त में राक्षस के पास बिकवा दिए गए थे। राक्षस यह जाने बिना ही कि ये पर्वतक के आभूषण हैं उनमें से एक आभूषण धारण कर लेता है।

भयं तावत्सेव्यादभिनिविशते सेवकजनं
ततः प्रत्यासन्नाद्भवति हृदये चैव निहितम्।
ततो ध्यारूढानां पदमसुजनद्वेषजननं
गतिः सोच्छ्रायाणां पतनमनुकूलं कलयति।।१२।।

अन्वय— तावत् सेवकजनं सेव्यात् भयम् अभिनिविशते ततः च प्रत्यासन्नाद् (भयं) हृदये निहितम् एव भवति ततः अध्यारूढानां पदम् असुजनद्वेषजननम्। सोच्छ्रायाणां गतिः पतनम् अनुकूलं कलयति।

सन्दर्भ— राक्षस को निकट भविष्य में होने वाले अपने पतन की मानों जैसे पूर्वसूचना सी मिल जाती है। अतः वह प्रस्तुत श्लोक में ऊँचे पद को प्राप्त हुए मनुष्यों के अवश्यम्भावी पतन का कारण स्पष्ट करता है।

हिन्दी अनुवाद—

सबसे पहले सेवक को स्वामी से भय लगा रहता है फिर (राजा के) निकट सम्बन्धियों से (भय) हृदय में विद्यमान ही होता है। पुनः ऊँचे पद पर आसीन व्यक्तियों का पद दुष्ट व्यक्तियों में द्वेष उत्पन्न करने वाला होता है। उच्च पद पर स्थित की अवस्था (अपने) पतन को समीप ही समझती है।(१२)

स्पष्टीकरण— राक्षस का अभिप्राय यह है कि मनुष्य के लिए ऊँचा पद 'काँटो के ताज' के समान है। उच्चपदासीन व्यक्ति को केवल राजा से ही नहीं अपितु उसके चाटुकारों से भी डरना पड़ता है कि कहीं वे उसके विरुद्ध राजा के कान न भर दें। पुनः दुष्ट व्यक्ति बगुलाभक्त की भाँति उसे नीचा दिखाने की ताक में लगे रहते हैं। इस प्रकार जो व्यक्ति ऊँचे पद पर आरूढ़ है उसका पतन भी निकट भविष्य में अवश्यम्भावी है।

प्रस्तुत श्लोक में काव्यलिंग अलंकार तथा शिखरिणी छन्द है।

संस्कृत भावार्थ—

सर्वप्रथमं राज्ञः सकाशाद् भीतिः भ त्यवर्गं सर्वतः प्राप्नोति तदनन्तर च राज्ञः सन्निहितात् जनात् प्राप्तं भयं मनसि सदैव लग्नं तिष्ठति। तदुपरि उन्नतपदस्थानाम् अधिकारिणां स्थानं दुर्जनानाम् असूयाहेतुः भवति। अत्युन्नतानां पुरुषाणाम् स्थितिः अवश्यंभावित्वम् अधः पातं समीपम् एव अवगच्छति।

(परिक्रम्य)

प्रती०— अमात्य, अयं कुमारः। उपसर्पत्वेनममात्यः। (अमच्च अअं कुमारो। उपसप्पदु णं अमच्चो।)

राक्ष०— (विलोक्य) अयं कुमारस्तिष्ठति य एष—

हिन्दी अनुवाद—

(घूमकर)

प्रती०— अमात्य यह कुमार हैं। अमात्य इनके पास जाएँ।

राक्ष०— (देखकर) यह कुमार बैठे हैं जो यह-

पादाग्रे द शमवधाय निश्चलन्तीं
शून्यत्वादपरिग हीततद्विशेषाम्।
वक्त्रेन्दुं वहति करेण दुर्वहाणां
कार्याणां कृतमिव गौरवेण नम्रम्।।१३।।

अन्वय— शून्यत्वात् अपरिग हीततद्विशेषाम् निश्चलन्तीं द शं पादाग्रे अवधाय दुर्वहाणां कार्याणां गौरवेण इव नम्रं कृतं वक्त्रेन्दुं करेण वहति।

सन्दर्भ— राक्षस प्रस्तुत श्लोक में मलयकेतु की विचारमग्न मुद्रा का वर्णन करता है।

हिन्दी अनुवाद—

(यह मलयकेतु) शून्य (में देखने) के कारण किसी विशेष वस्तु को ग्रहण न करने वाली निश्चल द ष्टि को पैर के अग्रभाग पर टिकाकर, दुर्वह कार्यों के भार से मानों नीचे झुके हुए चन्द्रमा रूपी मुख को हाथ से थामे हुए हैं।(१३)

स्पष्टीकरण— हथेली से मुख को थामे हुए तथा स्थिर द ष्टि को पैर के अग्रभाग पर टिकाए हुए मलयकेतु को विचारमग्न मुद्रा में देखकर राक्षस अपनी अनभिज्ञता के कारण सोचता है कि वह किसी दुर्वह कार्य के विषय में सोच रहा है जबकि मलयकेतु 'राक्षस से किस प्रकार बदला लिया जाए' इस बात पर सोच-विचार कर रहा है।

प्रस्तुत श्लोक में उत्प्रेक्षा अलंकार तथा प्रहर्षिणी छन्द है।

संस्कृत भावार्थ—

अयं मलयकेतुः मनोव त्तिराहित्याद् अज्ञाततद्विषयविशेषां स्थिरां च द ष्टिं पादाग्रे चरणागुंलिषु इत्यर्थः संस्थाप्य महतां कृत्यानां भारेण अवनमितम् इव मुखचन्द्रं हस्तेन अवलम्ब्य आस्ते।

(उपस त्य) विजयतां कुमारः

मल०— आर्य, अभिवादये। इदमासनमास्यताम्

राक्ष०— (तथा करोति)

मल०— आर्य, चिरदर्शनेनार्यस्य वयमुद्विग्नाः।

राक्ष०— कुमार, प्रयाणे प्रतिविधानमनुतिष्ठता मया कुमारादयमुपालम्भो धिगतः।

मल०— आर्य, प्रयाणे कथं प्रतिविहितमिति श्रोतुमिच्छामि।

राक्ष०— कुमार, एवमादिष्टा कुमारानुयायिनो राजानः। (प्रस्थातव्यमिति पूर्वोक्तं पठति)

मल०— (स्वगतम्) कथं य एव मद्विनाशेन चन्द्रगुप्तमाराधयितुमुद्यतास्त एव मां परिव ण्वन्ति। (प्रकाशम्) आर्य, अस्ति कश्चिद्यः कुसुमपुरं प्रति गच्छति तत आगच्छति वा।

राक्ष०— अवसितामिदानीं गतागतप्रयोजनम्। अल्पैरहोभिर्वयमेव तत्र गन्तारः।

मल०— (स्वगतम्) विज्ञायते। (प्रकाशम्) यद्येवं ततः किमार्येणायं सलेखः पुरुषः प्रेषितः?

राक्ष०— (विलोक्य) अये सिद्धार्थकः। भद्र किमिदम्?

सिद्धा०— (सवाष्पं लज्जां नाटयन्) प्रसीदत्वमात्यः। ताड्यमानेन मया न पारितं रहस्यं धारयितुम्। (पसीददु अमचो। ताडीअन्तेण मए ण पारिदं रहस्सं धारिदुं।)

राक्ष०— भद्र, कीद शं रहस्यमिति न खल्ववगच्छामि।

सिद्धा०— ननु विज्ञापयामि ताड्यमानेन मया (णं विण्णवेमि ताडिअन्तेण मए) (इत्यर्द्धोक्ते सभयमधोमुखस्तिष्ठति।)

मल०— भागुरायण, स्वामिनः पुरस्ताद्भीतो लल्जितो वा नैष कथयिष्यति। स्वयमेवार्याय कथय।

भागु०— यदाज्ञापयति कुमारः। अमात्य, एष कथयति यथाहममात्येन लेखं दत्त्वा वाचिकं सन्दिश्य चन्द्रगुप्तसकाशं प्रेषित इति।

राक्ष०— भद्र सिद्धार्थक, अपि सत्यम्?

सिद्धा०— (लज्जां नाटयन्) एवमतिताड्यमानेन मया निवेदितम्। (एवं अतिताडिअन्तेन मए णिवेदिदं।)

राक्ष०— अन तमेतत्। ताड्यमानः पुरुषः किमिव न ब्रूयात्।

हिन्दी अनुवाद—

(पास जाकर) कुमार विजयी हों

मल०— आर्य, (मैं) अभिवादन करता हूँ। यह आसन है बैठिए।

राक्ष०— (वैसा ही करता है)

मल०— आर्य, चिरकाल से आपके दर्शन न होने के कारण हम उद्विग्न हो गए थे।

राक्ष०— कुमार, विजय यात्रा की व्यवस्था करने में व्यस्त रहने के कारण मेरे द्वारा कुमार से यह उलाहना प्राप्त किया गया है।

मल०— आर्य, विजय यात्रा के लिए कैसी व्यवस्था की गई है यह (मैं) सुनना चाहता हूँ।

राक्ष०— कुमार, आपके अनुयायी राजाओं को इस प्रकार आदेश दिया गया है (प्रस्थातव्यम् इत्यादि पूर्वोक्त श्लोक को पुनः पढ़ता है)

मल०— (अपने आप) यह क्या, जो मेरे विनाश से चन्द्रगुप्त को प्रसन्न करने के लिए तत्पर हैं वही मुझे घेरे हुए हैं। (स्पष्ट रूप से) आर्य क्या कोई ऐसा है जो कुसुमपुर जा रहा है अथवा वहाँ से आ रहा है।

राक्ष०— अब आने जाने का कार्य समाप्त हो गया। कुछ दिन में हम ही वहाँ पहुँच जाएँगे।

मल०— (अपने आप) (यह तो) भली प्रकार जानता हूँ। (प्रकट रूप में यदि ऐसा है तो आर्य के द्वारा यह पुरुष पत्र सहित क्यों भेजा गया?

राक्ष०— (देखकर) अरे सिद्धार्थक! भद्र यह सब क्या है?

सिद्धा०— (आँसू भरकर लज्जा का अभिनय करता हुआ) अमात्य प्रसन्न हों। पीटे जाने पर मेरे द्वारा रहस्य को छिपाने में समर्थ नहीं हुआ गया अर्थात् मैं रहस्य को छिपा नहीं सका।

राक्ष०— भद्र, कैसा रहस्य यह (मैं) वास्तव में नहीं समझ पा रहा।

सिद्धा०— (मैं) निवेदन तो कर रहा हूँ पीटे जाने पर मेरे द्वारा (ऐसा आधा करकर भयभीत सा नीचा मुख किए हुए खड़ा रहता है)

मल०— भागुरायण, स्वामी के सामने भयभीत हुआ अथवा लज्जित हुआ यह नहीं बतलाएगा। स्वयं ही आर्य को बतला दो।

भागु०— कुमार जैसी आज्ञा देते हैं। अमात्य यह कहता है कि 'मैं अमात्य के द्वारा पत्र देकर (और) मौखिक सन्देश देकर चन्द्रगुप्त के पास भेजा गया था'।

राक्ष०— भद्र सिद्धार्थक, क्या यह सच हे?

सिद्धा०— (लज्जा का अभिनय करता हुआ) बहुत पीटे जाने पर मेरे द्वारा इस प्रकार कह दिया गया।

राक्ष०— यह झूठ है। पीटा जाता हुआ मनुष्य क्या नहीं कह देगा।

(स्पष्टीकरण)— मलयकेतु समझता है कि राक्षस चन्द्रगुप्त के ही किन्हीं कार्यों में व्यस्त था। अतः वह उस पर आक्षेप सा करता है कि वह उससे चिरकाल के पश्चात् मिला है। प्रयाण की व्यवस्था सुनकर और यह जानकर कि कौलूतादि पाँच राजा ही उसकी रक्षा के लिए नियुक्त किए गए हैं, मलयकेतु का राक्षस के प्रति चन्गुप्त के साथ सन्धि करने का सन्देह और भी अधिक द ढ़ हो जाता है क्योंकि वह पत्र में पहले ही पढ़ चुका है कि 'स्वाश्रयविनाशेनोपकारिणमाश्रयिष्यन्ति'। परन्तु जैसा कि पहले ही निर्देश किया जा चुका

है राक्षस ने तो मलयकेतु का हित चाहते हुए ही अपने विश्वस्त मित्रों को उसकी रक्षा के लिए नियुक्त किया था। इसी प्रकार 'वयमेव तत्र गन्तारः' से राक्षस का तात्पर्य था कि हम सभी वहाँ पहुँच जाएंगे क्योंकि हम कुसुमपुर पर आक्रमण करने वाले है। परन्तु मलयकेतु राक्षस के इस कथन को भी अन्यथा ग्रहण कर यह समझता है कि राक्षस चन्द्रगुप्त का अमात्य पद ग्रहण करने और कुछ दिनों में वहाँ पहुँच जाएगा।

मल०— सखे, भागुरायण, दर्शय लेखम्। वाचिकमेष भ त्यः कथयिष्यति।

भागु०— अमात्य, अयं लेखः।

राक्ष०— (वाचयित्वा) कुमार शत्रोः प्रयोग एषः।

मल०— लेखस्याशून्यार्थमार्येणेदमप्याभरणमनुप्रेषितम्। तत्कथं शत्रोः प्रयोग एषः।

राक्ष०—- (आभरणं निर्वर्ण्य) कुमारेणैतन्मह्यमनुप्रेषितम्। मयाप्येतत्कस्मिंश्चित्परितोषस्थाने सिद्धार्थकाय दत्तम्।

भागु०— ईद शस्य विशेषतः कुमारेणात्मगाात्रादवतार्य प्रसादीकृतस्येयं परित्यागभूमिः।

मल०— वाचिकमप्याप्ततमादस्माच्छ्रोतव्यमिति लिखितमार्येण।

राक्ष०— कुतो वाचिकं कस्य वाचिकम्। लेख एवास्मदीयो न भवति।

मल०— इयं तर्हि कस्य मुद्रा?

राक्ष०— कपटमुद्रामुत्पादयितुं शक्नुवन्ति धूर्ताः।

भागु०— कुमार, सम्यगमात्यो विज्ञापयति। भद्र सिद्धार्थक, केनायं लिखितो लेखः?

सिद्धा०— (राक्षसमुखमवलोक्य तूष्णीमधोमुखस्तिष्ठति)

भागु०— भद्र, अलं पुनरात्मानं ताडयित्वा। कथय

सिद्धा०— आर्य शकटदासेन। (अज्ज सअडदासेण।)

राक्ष०— कुमार, यदि शकटदासेन लिखितस्ततो मयैव लिखितः।

मल०— विजये, शकटदासं द्रष्टुमिच्छामि।

प्रती०— यत्कुमार, आज्ञापयति। (जं कुमारो आणवेदि।)

भागु०— (स्वगतम्) न खल्वनिश्चितार्थमार्यचाणक्यप्रणिधयो भिधास्यन्ति। आगत्य शकटदासो वा सोयं लेख इति प्रत्यभिज्ञाय पूर्वव त्तं प्रकाशयेत्। एवं सति सन्दिहानो मलयकेतुरस्मिन्प्रयोगे श्लथादरो भवेत्। भवत्वेवम्। (प्रकाशम्) कुमार, न कदाचिदपि शकटदासो मात्यस्याग्रतो मया लिखितमिति प्रतिपत्यस्यते। अतो न्यलिखितमस्यानीयतां वर्णसंवाद एवैतं विभावयिष्यति।

मल०— विजये, एवं क्रियताम्।

भागु०— कुमारमुद्रामप्यानयत्वियम्।

मल०— उभयमप्यानीयताम्।

प्रती०— यत्कुमार आज्ञापयति। (जं कुमारो आणवेदि) (इति निष्क्रम्य पुनः प्रविश्य) कुमार, इदं तच्छकटदासेन स्वहस्तलिखितं पत्रं मुद्रापि। (कुमार इदं त सअडदासेण सहत्थलिहिदं पत्तअं मुद्दावि।)

मल०— (उभयमपि नाट्येन विलोक्य) आर्य, संवदन्त्यक्षरणि।

राक्ष०— (स्वगतम्) संवदन्त्यक्षराणि। शकटदासस्तु मित्रमिति च विसंवदन्त्यक्षराणि। किं नु शकटदासेन-

हिन्दी अनुवाद—

मल०— मित्र भागुरायण पत्र दिखलाओ। मौखिक सन्देश यह सेवक बतलाएगा।

भागु०— अमात्य, यह पत्र है।

राक्ष०— (पढ़कर) कुमार, यह शत्रु की चाल है।

मल०— लेख की अशून्यता के लिए आर्य के द्वारा यह आभूषण भी भेजा गया था। तो यह शत्रु की चाल कैसे हो सकती है।

राक्ष०— (आभूषण देखकर) कुमार, के द्वारा यह मेरे लिए भेजा गया था। मेरे द्वारा भी किसी अवसर पर प्रसन्न होकर सिद्धार्थक को दे दिया गया था।

भागु०— इस प्रकार के और विशेष रूप से कुमार के द्वारा अपने शरीर से उतार कर उपहारस्वरूप दिए गए (आभूषण) को देने के लिए यह (उचित) पात्र है।

मल०— मौखिक सन्देश भी विश्वसनीय इससे सुना जाना चाहिए, ऐसा आर्य के द्वारा लिखा गया है।

राक्ष०— कहाँ से मौखिक सन्देश, किसका मौखिक सन्देश। पत्र ही हमारा नहीं है।

मल०— फिर यह मुद्रा किसकी है?

राक्ष०— धूर्त नकली मुद्रा बनाने में समर्थ हैं।

भागु०— कुमार, अमात्य ठीक कह रहे हैं। भद्र सिद्धार्थक, यह पत्र किसके द्वारा लिखा गया है?

सिद्धा०— आर्य, शकटदास के द्वारा।

राक्ष०— कुमार, यदि शकटदास के द्वारा लिखा गया है तब तो मेरे द्वारा ही लिखा गया है।

मल०— विजये, शकटदास को देखना चाहता हूँ।

प्रती०— जैसी कुमार आज्ञा देते हैं।

भागु०— (अपने आप) निस्सन्देह आर्य चाणक्य के गुप्तचर अनिश्चित बात नहीं कहेंगे। कहीं शकटदास यहाँ आकर 'यह वही पत्र है' इस प्रकार पहचान कर पहले की बातों को बतला दे ऐसा होने पर संदेह युक्त मलयकेतु इस योजना के प्रति विमुख हो जाएगा। अच्छा तो इस प्रकार करता हूँ। (स्पष्ट रूप से) कुमार, शकटदास अमात्य के सामने मेरे द्वारा लिखा गया है यह स्वीकार नहीं करेगा। अतः इसका दूसरा लेख ले आया जाए वर्णों की समानता ही इसे स्पष्ट कर देगी।

मल०— विजये, ऐसा कर लो।

भागु०— कुमार, यह मुद्रा भी ले आए।

मल०— दोनों ही ले आओ।

प्रती०— जैसी कुमार आज्ञा देते हैं। (ऐसा कहकर निकल कर पुनः प्रवेश करके) कुमार, यह शकटदास द्वारा अपने हाथ से लिखा गया वह पत्र तथा मुद्रा भी है।

मल०— (दोनों को अभिनयपूर्वक देखकर) आर्य, अक्षर मिल रहे हैं।

राक्ष०— (अपने आप) अक्षर मिल रहे हैं (संवदन्ति) परन्तु शकटदास मेरा मित्र है अतः अक्षर नहीं मिल रहे। क्या शकटदास के द्वारा -

स्पष्टीकरण— आभूषण देखकर राक्षस को मलयकेतु को स्पष्ट रूप से बतला देना चाहिए था कि उसने सिद्धार्थक को वह आभूषण किस असवर पर दिया था। ऐसा न बतलाकर उसने मलयकेतु का सन्देह और भी अधिक पुष्ट कर दिया। भागुरायण यह कहकर कि कुमार के द्वारा अपने शरीर से उतारकर भेजे गए इतने बहुमूल्य आभूषण का आपने यही मूल्य आँका कि उसे सिद्धार्थक जैसे साधारण सेवक को दे डाला, आग में घी डालने का कार्य करता है। इसका ध्वनित अर्थ यह है कि राजोचित यह आभूषण ही चन्दगुप्त के लिए भेजा गया होगा।

राक्षस शकटदास के प्रति पूर्ण रूप से विश्वस्त है कि वह इस प्रकार का पत्र कदापि नहीं लिख सकता अतः इसी विश्वास के कारण वह कह देता है कि यदि यह पत्र शकटदास के द्वारा लिखा गया है तो इसे मेरे द्वारा ही लिखा गया समझा जाए 'न खल्वनिश्चितार्थम्' इत्यादि उक्ति भागुरायण की बुद्धिमत्ता तथा प्रत्युत्पन्नमिति की परिचायिका है। यद्यपि उसे यह नहीं पता कि पत्र किसके द्वारा लिखा गया है तथपि उसे सिद्धार्थक का चाणक्य का गुप्तचर होना विदित है। उसे विश्वास है कि सिद्धार्थक ठीक ही कह रहा होगा और यदि शकटदास वहाँ आ जाता है तो वह तुरन्त पहचान जाएगा कि वह पत्र उसने कब, कहाँ और किसके कहने से लिखा था। ऐसा होने पर आर्य चाणक्य की ही सारी योजना निष्फल नहीं हो जाएगी बल्कि उन सब (भागुरायण, सिद्धार्थक, भद्रभट इत्यादि) का जीवन भी संकट में पड़ जाएगा। अतः वह शकटदास को वहाँ न बुलाकर उसकी दूसरी लिखावट मँगवाने का सुझाव देता है और दोनों लेखों के वर्णसाम्य से ही यह निश्चित कर लेने को कहता है कि पत्र शकटदास द्वारा लिखा गया है अथवा नहीं।

परन्तु आश्चर्य यह है कि राक्षस इस सुझाव को किस प्रकार स्वीकार कर लेता है। मलयकेतु द्वारा इतना बड़ा दोषारोपण कर दिए जाने पर भी वह शकटदास को वहाँ बुलवाने का आग्रह नहीं करता। एक साधारण व्यक्ति भी ऐसे अवसर पर शकटदास के व्यक्तिगत रूप से वहाँ होने की आवश्यकता समझ सकता है तो फिर इतना द्व महान् और कुशल राजनीतिज्ञ इसे अनुभव क्यों नहीं कर पाया। यह बात पाठकों को खटकती है।

इसका एकमात्र कारण सम्भवतः यह हो सकता है कि राक्षस अपनी भावुकता के कारण शकटदास को वहाँ बुलाकर और पत्र उसी के द्वारा लिखित सिद्ध हो जाने पर उसे लज्जित न करना चाहता हो।

दोनों लेखों में वर्णसाम्य देखकर राक्षस कहता है कि यद्यपि अक्षर मिल रहे हैं तथापि जब मैं शकटदास की मित्रता के विषय में सोचता हूँ तो मुझे प्रतीत होता है कि अक्षर नहीं मिल रहे।

स्म तं स्यात्पुत्रदाराणां विस्म तस्वामिभक्तिना।
चलेष्वर्थेषु लुब्धेन न यशःस्वनपायिषु।।१४।।

अन्वय— विस्म तस्वामिभक्तिना लुब्धेन चलेषु अर्थेषु पुत्रदाराणां स्म तं स्यात् अनपायिषु यशःसु न।

सन्दर्भ— यद्यपि राक्षस पहले उस कपट पत्र को शकटदास द्वारा लिखित स्वीकार करने को तैयार नहीं होता तथापि शनैः शनैः उसे प्रतीत होने लगता है कि सम्भवतः शकटदास ने पत्र लिख दिया हो। इसका कारण वह प्रस्तुत श्लोक में बतलाता है।

हिन्दी अनुवाद—

स्वामिभक्ति को भुला देने वाले लोभी (शकटदास) के द्वारा नश्वर वस्तुओं में पुत्र और पत्नी का स्मरण किया गया हो, अनश्वर यश का नहीं। (१४)

स्पष्टीकरण— ऐसा प्रतीत होता है कि शकटदास का परिवार उससे अलग कहीं शत्रु की द ष्टि से छिप कर रह रहा था। शत्रुओं ने उसे उसके परिवार से मिलाने का प्रलोभन दिया होगा। इसी कारण शकटदास स्वामिभक्ति को भूलकर अनश्वर यश के प्रति उदासीन हो गया और नश्वर पदार्थों में पुत्र और पत्नी के प्रति आकर्षित हो गया।

इस श्लोक में परिसंख्या अलंकार तथा अनुष्टुब छन्द है।

संस्कृत भावार्थ— नन्दकुलानुरागः विस्म तः येन ताद शेन स जातलोभेन शकटदासेन नश्वरेषु पदार्थेषु पुत्राणां पत्न्याश्च स्मरणं कृतं स्यात् स्थिरेषु कीर्तिषु न। अतएव रिपुभिः सन्धाय इमं भेदविधिम् अनुतिष्ठवान्।

अथवा कः सन्देह—

मुद्रा तस्य करांगुलिप्रणयिनी सिद्धार्थकस्तत्सुहृद्
तस्यैवापरलेख्यसूचितमिदं लेख्यं प्रयोगाश्रयम्।
सुव्यक्तं शकटेन भेदपटुभिः साधय सार्धं परैर्
भर्त्स्नेहपराङ्मुखेन कृपणं प्राणार्थिना चेष्टितम्।।१५।।

अन्वय— मुद्रा तस्य करांगुलिप्रणयिनी सिद्धार्थकः तत्सुहृद् अपरलेख्यसूचितं प्रयोगाश्रयम् इदं लेख्यं तस्यैव सुव्यक्तं भर्त स्नेहपरागङ्मुखेन प्राणार्थिना शकटेन भेदपटुभिः परैः सार्धं साधय कृपणं चेष्टितम्।

सन्दर्भ— प्रस्तुत श्लोक में राक्षस के द्वारा उन कारणों का उल्लेख किया गया है जिनसे उसे पूर्ण विश्वास हो जाता है कि शकटदास ने ही वह पत्र लिखा है।

हिन्दी अनुवाद—

अँगूठी उसके (शकटदास के) हाथ की अंगुली की प्यारी थी अर्थात् सदैव उसके हाथ में रहती थी, सिद्धार्थक उसका मित्र है, दूसरे लेख के द्वारा सूचित समस्त चालों की जड़ यह पत्र उसी का है। स्पष्ट ही स्वामी के स्नेह से विमुख (अपने पुत्र और पत्नी के) प्राणों को चाहने वाले शकटदास के द्वारा फूट डालने में चतुर शत्रुओं के साथ मिल कर यह नीच कार्य किया गया है।(१५)

स्पष्टीकरण— द्वितीय अंक में सिद्धार्थक द्वारा दी गई अँगूठी राक्षस ने शकटदास को देते हुए कहा था कि सभी राजकीय कार्य इसी अँगूठी से करना। यह अँगूठी सदा शकटदास के पास रहती थी अतः उसी ने पत्र मुद्रित किया होगा।

प्रयोग का अर्थ उपाय है। उपाय चार हैं - साम, दान, दण्ड, भेद। यहाँ यह पत्र राक्षस और मलयकेतु के बीच भेद उत्पन्न करने का कारण बनता है और इसी पर शत्रु की सारी योजना निर्भर करती है। 'प्राणार्थिना' पद शकटदास के पुत्र और पत्नी की तरफ

संकेत करता है क्योंकि शकटदास का जीवन तो सुरक्षित है। यह सम्भव है कि वे शकटदास से अलग कहीं शत्रु की द ष्टि से छिपकर रह रहे हों और शत्रुओं ने उसे उनसे मिलाने का आश्वासन दिया हो जैसा कि पूर्वोक्त श्लोक से स्पष्ट होता है।

प्रस्तुत श्लोक में काव्यलिंग अलंकार तथा शार्दूलविक्रीडित छन्द है।

संस्कृत भावार्थ—

इयम् अंगुलिमुद्रा शकटदासस्य करागुंलिषु नित्यं लग्ना अतः शकटदासेन एव मुद्रितो लेखः। सिद्धार्थकः तस्य मित्रम्। तस्यैव अपरेण लेखेन प्रमाणितं यत् शत्रुकृतभेदोपायस्य आधारभूतम् इदं पत्रं शकटदासेन एव लिखितम्। सुस्पष्टमिदं यत् स्वामिभक्तिविमुखेन पुत्रदारादिजीवनमिच्छता शकटदासेन विश्लेषणे निपुणैः शत्रुभिः सह मिलित्वा इदं कुत्सितं कर्म कृतम्।

मल०— (विलोक्य) आर्य, अलंकारत्रयं श्रीमता यदनुप्रेषितं तदुपगतमिति यल्लिखितं तन्मध्यात्किमिदमेकम्। (निर्वर्ण्यात्मगतम्) कथं तातेन ध तपूर्वमिदमाभरणम्। (प्रकाशम्) आर्य, कुतो यमलंकार।

राक्ष०— वणिग्भ्यः क्रयादधिगतः।

मल०— विजये, अपि प्रत्यभिजानासि भूषणमिदम्?

प्रती०— (निवर्ण्य सवाष्पम्) कुमार, कथं न प्रत्यभिजानामि। इदं सुग हीतनामधेयेन पर्वतेश्वरेण धारितपूर्वम्। (कुमार कहं ण पच्चभिजाणामि। इदं सुगिहीदणामधेएण पव्वदीसरेण धारिदपुव्व।)

मल०— (सवाष्पम्) हा तात!

हिन्दी अनुवाद—

मल०— (देखकर) आर्य, जो तीन आभूषण महानुभाव के द्वारा भेजे गए थे वे प्राप्त कर लिए गए हैं इस प्रकार जो (आपके द्वारा पत्र में) लिखा गया है उनमें से क्या यह एक है। (देखकर अपने आप) यह कैसे पिता के द्वारा पहले पहना गया यह आभूषण है। (स्पष्ट रूप से) आर्य, यह आभूषण कहाँ से प्राप्त हुआ?

राक्ष०— व्यापारियों से खरीदकर प्राप्त किया गया है।

मल०— विजये, क्या इस आभूषण को पहचानती हो?

प्रती०— (देखकर आँसू भरकर) कुमार, कैसे नहीं पहचानूँगी। यह शुभ नाम वाले महाराज पर्वतक के द्वारा पहना गया था।

मल०— (आँसू भरकर) हाय, पिताजी!

स्पष्टीकरण— यह वास्तव में पर्वतक का ही आभूषण था जो चाणक्य की योजनानुसार प्रथम अंक में विश्वावसु इत्यादि भाइयों के द्वारा ग्रहण कर के द्वितीय अंक के अन्त में राक्षस के कहने से शकटदास द्वारा खरीद लिए गए थे। अब राक्षस उन्हीं आभूषणों में से एक आभूषण धारण करके आ गया है परन्तु उसे यह नहीं पता था कि यह पर्वतक का आभूषण है।

एतानि तानि तव भूषणवल्लभस्य
गात्रोचितानि कुलभूषण भूषणानि।

यैः शोभितो सि मुखचन्द्रकृतावभासो
नक्षत्रवानिव शरत्समयप्रदोषः।।१६।।

अन्वय— कुलभूषण भूषणवल्लभस्य तव गात्रोचितानि एतानि तानि भूषणानि यैः मुखचन्द्रकृतावभासो नक्षत्रवान् शरत्समयप्रदोष इव शोभितो सि।

सन्दर्भ— राक्षस द्वारा धारण किए गए अपने पिता पर्वतक के आभूषण को देखकर मलयकेतु को एक बार पुनः अपने पिता का स्मरण हो जाता है।

हिन्दी अनुवाद—

हे वंश के आभूषणस्वरूप! आभूषणप्रिय आपके शरीर के योग्य ये वही आभूषण हैं जिनके द्वारा (आप) मुख रूपी चन्द्रमा से अवभासित होकर नक्षत्रों से युक्त शरत्कालीन सन्ध्या के समान सुशोभित होते थे। (१६)

स्पष्टीकरण— उक्त श्लोक में पर्वतक की तुलना शरत्कालीन सन्ध्या से, उसके मुख की तुलना चन्द्रमा से तथा आभूषणों की तुलना नक्षत्रों से की गई है।

उक्त श्लोक में उपमा अलंकार तथा वसन्ततिलका छन्द है।

संस्कृत भावार्थ—

अस्माकं वंशस्य अलंकारस्वरूप तात! अलंकारप्रियस्य भवतः शरीरस्य योग्यानि एतानि तानि एव परिचितानि आभरणानि सन्ति यैः अलंकृतः मुखम् इव चन्द्रः तेन विहितः अवभासः दीप्तिः येन ताद शः भवान् तारकामण्डितः शरत्कालीन सन्ध्या इव शोभते स्म।

राक्ष०— (स्वगतम्) कथं पर्वतेश्वरेण ध तपूर्वाणीत्याह। व्यक्तमेवास्य भूषणानि चाणक्यप्रयुक्तेन वणिग्जनेनास्मासु विक्रीतानि।

मल०— आर्य तातेन ध तपूर्वाणां विशेषतश्चन्द्रगुप्तहस्तगतानां क्रयादधिगमः कथं युज्यते। अथवा युज्यत एवैतत्। कुतः-?

हिन्दी अनुवाद—

(अपने आप) यह क्या 'पर्वतक के द्वारा पहले पहने गए हैं' ऐसा (इसने) कहा हैं स्पष्ट ही इसके (पर्वतक के) आभूषण चाणक्य द्वारा नियुक्त व्यापारियों द्वारा हमें बिकवा दिए गए।

मल०— आर्य, पिता के द्वारा पहले धारण किए गए (और) विशेष रूप से चन्द्रगुप्त के हाथों में गए हुए (आभूषण) खरीद कर प्राप्त किए गए हैं, यह किस प्रकार युक्तिसंगत है। अथवा यह युक्तिसंगत ही है। क्योंकि-

स्पष्टीकरण— मलयकेतु राक्षस के इस कथन से कि 'वणिग्भ्य क्रयादधिगतः' सन्तुष्ट नहीं होता क्योंकि उसके अनुसार यदि चाणक्य ने उसके पिता पर्वतक को मरवाया हे तो आभूषण चन्द्रगुप्त के पास ही गए होंगे। चन्द्रगुप्त द्वारा उन आभूषणों को व्यापारियों को बेचा जाना और व्यापारियों द्वारा उन्हें राक्षस को बेच दिया जाना युक्तिसंगत प्रतीत नहीं होता।

मलयकेतु के इस कथन से 'अथवा युज्यत एवैतत्' यह स्पष्ट है कि या तो वह राक्षस को ही पवर्तक का हत्यारा समझता है अथवा यह सोचता है कि चन्द्रगुप्त ने वे आभूषण राक्षस को मलयकेतु को मारने के बदले में दिए गए हैं जैसा कि अगले श्लोक से भी

स्पष्ट होता है और इसी कारण आभूषणों का राक्षस के पास होना मलयकेतु युक्तिसंगत ही बतलाता है।

परन्तु आश्चर्य इस बात का है कि मलयकेतु यह नहीं समझ पाया कि यदि राक्षस प्रवर्तक को मरवाता अथवा चन्द्रगुप्त मलयकेतु को मरवाने के बदले में वह आभूषण राक्षस के पास भेजता तो राक्षस उस आभूषण को पहन कर उसके पास कदापि नहीं आता।

चन्द्रगुप्तस्य विक्रेतुरधिकं लाभमिच्छतः।
कल्पिता मूल्यमेतेषां क्रूरेण भवता वयम्।।१७।।

अन्वय— अधिकं लाभम् इच्छतः विक्रेतुः चन्द्रगुप्तस्य भवता क्रूरेण वयम् एतेषां मूल्यं कल्पिताः।

सन्दर्भ— मलयकेतु को पूर्ण विश्वास हो जाता है कि राक्षस उसे नष्ट कर चन्द्रगुप्त का अमात्यपद स्वीकार करना चाहता है जैसा कि प्रस्तुत श्लोक से स्पष्ट है।

हिन्दी अनुवाद—

अधिक लाभ की इच्छा से बेचने वाले चन्द्रगुप्त के लिए आप क्रूर के द्वारा हम इनके (आभूषणों के) मूल्य रूप में निर्धारित कर दिए गए हैं।(१७)

स्पष्टीकरण— मलयकेतु का आशय यह है कि चन्द्रगुप्त ने ये आभूषण आपको अमात्य बनाने के रूप में अधिक लाभ की इच्छा से बेच दिए और आपने हमें नष्ट करने का निश्चय करके इन की कीमत चन्द्रगुप्त को चुका दी।

संस्कृत भावार्थ—

प्रकृष्टां व द्धिम् कामयमानस्य अधिकप्राप्त्याशया इत्यर्थः विनिमयं कर्तुः चन्द्रगुप्तमौर्यस्य न शंसेन भवता वयम् एतेषाम् अलंकाराणां पणत्वेन निरूपिताः। एभिर्भूषणैर्वशीकृतस्त्वं मद्विनाशाय व्यवसितो सि इत्यर्थः।

राक्ष०— (स्वगतम्) अहो सुश्लिष्टो भूच्छत्रु प्रयोगः। कुतः—

लेखो यं ममेति नोत्तरमिदं मुद्रा मदीया यतः
सौहार्दं शकटेन खण्डितमिति श्रद्धेयमेतत्कथम्।
मौर्ये भूषणविक्रयं नरपतौ को नाम संभावयेत्
तस्मात्संप्रतिपत्तिरेव हि वरं न ग्राम्यमत्रोत्तरम्।।१८।।

अन्वय— अयं लेखः मम न इति इदम् उत्तरं न यतः मुद्रा मदीया, शकटेन सौहार्दं खण्डितम् इति एतत् कथं श्रद्धेयं मौर्ये नरपतौ भूषणविक्रयं को नाम सम्भावयेत्। तस्मात् अत्र सम्प्रतिपत्ति एव हि वरं ग्राम्यम् उत्तरं न।

सन्दर्भ— राक्षस शत्रु द्वारा बिछाए गए जाल में स्वयं को इतनी बुरी तरह जकड़ा हुआ पाता है कि मलयकेतु द्वारा लगाए गए आरोप को स्वीकार कर लेने के अतिरिक्त कोई अन्य मार्ग उसे नहीं सूझता क्योंकि अपने पक्ष में जो भी स्पष्टीकरण वह देता है, वह तर्कसंगत एवं विश्वसनीय प्रतीत नहीं होता।

हिन्दी अनुवाद—

राक्ष०— (अपने आप) अहो शत्रु की चाल सुनियोजित थी। क्योंकि -

यह पत्र मेरा नहीं है, यह (ठीक) उत्तर नहीं है कयोंकि (इस पर) मेरी मुद्रा है। 'शकटदास के द्वारा मित्रता तोड़ दी गई है' यह किस प्रकार विश्वसनीय हो सकता है। चन्द्रगुप्त राजा के विषय में आभूषणों को बेचना कौन स्वीकार करेगा। इसीलिए इस विषय में स्वीकार कर लेना ही श्रेयस्कर है, ग्राम्य जन की भाँति उत्तर देना नहीं।(१८)

स्पष्टीकरण— 'मम' का तात्पर्य यहाँ 'मेरा' नहीं है अपितु 'मेरी सम्मति से लिखा गया है' क्योंकि पत्र राक्षस ने नहीं शकटदास ने लिखा था। राक्षस उससे इन्कार नहीं कर सकता क्योंकि प्रमाण रूप में उसकी मुहर उस पर लगी है। यदि वह यह कहे कि शकटदास ने पुत्र और पत्नी के प्राण बचाने के लिए राक्षस से मित्रता तोड़ दी और अपनी इच्छा से ही वह पत्र लिख दिया तो इस बात पर भी कोई विश्वास नहीं करेगा क्योंकि राक्षस के पास इसका कोई प्रमाण नहीं है।

चन्द्रगुप्त जैसे महान् राजा द्वारा आभूषणों को बेचे जाने की बात भी कोई नहीं मानेगा। अतः अयुक्तियुक्त उत्तर देने की अपेक्षा पत्र के विषय में अपना दोष स्वीकार कर लेना ही अधिक श्रेयस्कर है। 'ग्राम्यम् उत्तरम्' का तात्पर्य यहाँ ऐसे उत्तर से है जो तर्कसंगत नहीं है।

प्रस्तुत श्लोक में काव्यलिंग अलंकार तथा शार्दूलविक्रीडित छन्द है।

संस्कृत भावार्थ—

एतत्पत्रं मम मतेन न लिखितम् इत्थं प्रतिवचनमयुक्तं यस्मात् एतत् मदीयमुद्रया मुद्रितम्। पुत्रदाराजीवनमिच्छता शकटदासेन मित्रत्वं भग्नम् इति एतद् अपि प्रमाणाभावे विश्वास्यं नैव। चन्द्रगुप्तराजनि अलंकारविक्रयणं कः जनः विश्वसेत् को पि न इत्यर्थः। तस्मात् हेतोः पत्रलेखनविषये स्वीकरणम् एवं श्रेष्ठम् असंगतं प्रतिवचनं न।

मल०— एतदार्यं प च्छामि।

राक्ष०— कुमार, य आर्यस्तं प च्छ। वयमिदानमिनार्याः संव त्ताः।

मल०—

> **मौर्यो सौ स्वामिपुत्रः परिचरणपरो मित्रपुत्रस्तवाहं**
> **दाता सोर्थस्य तुभ्यं स्वमतमनुगतस्त्वं तु मह्यं ददासि।**
> **दास्यं सत्कारपूर्वं ननु सचिवपदं तत्र ते स्वाम्यत्र**
> **स्वार्थे कस्मिन्समीहा पुनरधिकतरे त्वामनार्यं करोति।।१६।।**

अन्वय— असौ मौर्यः स्वामिपुत्रः अहं परिचरणपरः तव मित्रपुत्रः, अनुगतः स स्वमतं तुभ्यम् अर्थस्य दाता तु त्वं मह्यं ददासि। ननु तत्र ते सचिवपदं (यत्) सत्कारपूर्वं दास्यम् अत्र स्वामी, पुनः कस्मिन् अधिकतरे स्वार्थे समीहा त्वाम् अनार्यं करोति।

सन्दर्भ— मलयकेतु प्रत्येक द ष्टि से राक्षस को चन्द्रगुप्त की अपेक्षा अपने समीप रहने पर ही अधिक सुखी समझता है परन्तु फिर भी राक्षस चन्द्रगुप्त का आश्रय क्यों लेना चाहता है, यह बात मलयकेतु की समझ में नहीं आ पाती।

हिन्दी अनुवाद—

मल०— यह मैं आर्य से पूछता हूँ।

राक्ष०— कुमार, जो आर्य है उससे पूछिए। हम (तो) अब अनार्य हो गए।

मल०— वह चन्द्रगुप्त (तुम्हारे) स्वामी का पुत्र है (और) मैं (तुम्हारी) सेवा करने में तत्पर तुम्हारे मित्र का पुत्र हूँ। सेवा किए जाने पर वह (मौर्य) अपनी इच्छानुसार तुम्हें धन देने वाला है परन्तु (यहाँ) तुम मुझे देते हो। निस्सन्देह वहाँ तुम्हारे लिए अमात्यपद है (जो) सत्कारपूर्वक दासता है यहाँ (तुम) स्वामी हो। फिर किस अधिक स्वार्थपूर्ति की इच्छा तुम्हें अनार्य बना रही है।(१६)

स्पष्टीकरण— मलयकेतु चनद्रगुप्त के समीप राक्षस के रहने की और अपने समीप राक्षस के रहने की तुलना इस प्रकार करता है-

(१) चन्द्रगुप्त राक्षस के स्वामी नन्दों का पुत्र है अतः राक्षस को उसकी सेवा करनी पड़ेगी परन्तु मलयकेतु उसके मित्र पर्वतक का पुत्र है जो राक्षस की सेवा करेगा। वहाँ वह सेवक है परन्तु यहाँ सेव्य हैं अतः इस द ष्टि से उसका मलयकेतु के पास रहना अधिक श्रेयस्कर है।

(२) वहाँ चन्द्रगुप्त जब राक्षस की सेवा से प्रसन्न होगा तब अपनी इच्छानुसार जो चाहेगा वह देगा परन्तु यहाँ राक्षस स्वयं मलयकेतु को देने वाला है। दाता आदाता से हमेशा श्रेष्ठ होता है। अतः इस द ष्टि से भी राक्षस का मलयकेतु के पास रहना ही अधिक उचित है।

(३) वहाँ निस्सन्देह राक्षस को अमात्यपद मिल जाएगा जो सम्मानास्पद है परन्तु फिर भी है तो दासता ही और यहाँ वह स्वामी है क्योंकि मलयकेतु उसकी इच्छानुसार ही कार्य करता हैं स्वतन्त्रता परतन्त्रता से सदैव रुचिकर होती है अतः इस द ष्टि से भी राक्षस का मलयकेतु के पास रहना ही अधिक उचित है।

फिर भी राक्षस चन्द्रगुप्त के पास किस स्वार्थपूर्ति के लिए जाना चाहता है, यह मलयकेतु जानना चाहता है। वस्तुतः मलयकेतु अपने भ्रम के कारण ही ऐसा समझ रहा है। राक्षस तो सर्वथा सर्वात्मना मलयकेतु के साथ ही है।

प्रस्तुत श्लोक में यथासंख्य अलंकार तथा स्रग्धरा छन्द है।

संस्कृत भावार्थ—

असौ चन्द्रगुप्तः तव स्वामिनः राजानन्दस्य पुत्रः अस्ति अतः त्वया सेव्यः परमहं सेवानिरतः तव मित्रस्य पर्वतकस्य पुत्रो स्मि। तत्र त्वं सेवको सि परमत्र सेव्यो सि इत्यर्थः। सः मौर्यः त्वया सेवितः स्वेच्छया तुभ्यं वेतनरूपस्य धनस्य प्रतिपादयिता परमत्र मया सेवितः त्वं मह्यं धनं प्रतिपादयति। तत्र त्वं धनस्यादाता अतः परतन्त्रः असि परमत्र धनस्य दाता अतः' स्वतन्त्रो सि। तत्र त्वं नूनम् अमात्यपदं लप्स्यसे परं तत् सम्मानपुरस्सरं भ त्यत्वमेवास्ति परमत्र तव स्वामित्वं वर्तते। भूयः इतो पि अधिकतरं कं स्वार्थम् अवलम्ब्य एवम् अनार्यः जातो सि इति ननु अहं त्वां प्रष्टुम् इच्छामि।

राक्ष०— कुमार, एवमयुक्तव्याहारिणा भवतैव निर्णयो दत्तः। भवतु। तव को दोषः (मौर्यो सौ स्वामिपुत्र इति युष्मदस्मदोर्व्यत्येन पठति)

मल०— (लेखमलंकरणस्थगिकां च निर्दिश्य) इदमिदानीं किम्।

राक्ष०— (सवाष्पम्) विधिविलसितम्। कुतः?

हिन्दी अनुवाद—

राक्ष०— कुमार, इस प्रकार अनुचित बात कहने वाले आपके द्वारा ही निर्णय दे दिया गया है। ठीक है (इसमें) आपका क्या दोष है। (मौर्यो सौ स्वामिपुत्र इत्यादि १६वाँ श्लोक युष्मद और

अस्मद् शब्दों को अदल बदल कर पढ़ता है अर्थात् जहाँ युष्मद् का रूप कर देता है। यथा तव के स्थान पर मम, अहम् के स्थान पर त्वम् इत्यादि।)

मल०— (पत्र और आभूषणों की पेटी की तरफ इशारा करके) अब (बतलाओ) यह क्या है।

राक्ष०— (आँसू भरकर) भाग्य का खिलवाड़ है। क्योंकि -

स्पष्टीकरण— यद्यपि राक्षस 'यह मेरा पत्र है' इस प्रकार स्वीकार करके मलयकेतु के चंगुल से मुक्त होना चाहता है तथापि मलयकेतु इस बात पर बल देता है कि पत्र और आभूषण उसने चन्द्रगुप्त को किस प्रयोजन से भेजे। उसे ऐसा प्रतीत होता है कि राक्षस अपने उस गूढ़ प्रयोजन को उससे छिपाना चाहता हैं राक्षस इसका उत्तर देता है कि ''मैं'' इससे अधिक नहीं जानता, भाग्य से ही पूछो।

यह ध्यातव्य है कि इस स्थिति में भी राक्षस भद्रभट, भागुरायण, सिद्धार्थक इत्यादि पर कोई दोषारोपण नहीं करता यद्यपि अब तक वह यह समझ चुका होगा कि इन सबका हाथ भी इस योजना में अवश्य होगा और विशेष रूप से तब जबकि इनके शत्रुपक्ष का होने का संदेह वह इस प्रकार प्रकट भी कर चुका है 'पूर्णमस्मद्बलं चन्द्रगुप्तबलैः।

इसका कारण सम्भवतः यह हो कि राक्षस मलयकेतु के स्वभाव से सुपरिचित हो और वह यह अनुभव कर रहा हो कि मलयकेतु अब विपरीत दिशा में सोच रहा है अतः अब वह जो कुछ भी कहेगा, मलयकेतु उस पर विश्वास नहीं करेगा।

भ त्यत्वे परिभावधामनि सति स्नेहात्प्रभूणां सतां
पुत्रेभ्यः कृतवेदिनां कृतधियां येषां न भिन्ना वयम्।
ते लोकस्य परीक्षकाः क्षितिभ तः पापेन येन क्षताः
तस्येदं विपुलं विधेर्विलसितं पुंसां प्रयत्नच्छिदः।।२०।।

अन्वय— सतां कृतवेदिनां कृतधियां येषां प्रभूणां परिभावधामनि भ त्यत्वे सति वयं स्नेहात् पुत्रेभ्यः भिन्नाः न लोकस्य परीक्षकाः ते क्षितिभ तः येन पापेन क्षताः पुंसां प्रयत्नच्छिदः तस्य विधेः इदं विपुलं विलसितम्।

सन्दर्भ— मलयकेतु के प्रति पूर्ण निष्ठा होने पर भी जब शत्रुओं की चाल से मोहित मलयकेतु द्वारा राक्षस पर अनेक प्रकार के दोषारोपण किए जाते हैं तो उसकी असज्जनता, विवेकशून्यता, कृतघ्नता इत्यादि को देखकर राक्षस को सहसा ही राजा नन्दों का स्मरण हो जाता है जो मलयकेतु से सर्वथा भिन्न थे।

हिन्दी अनुवाद—

सज्जन, कृतज्ञ (और) परिष्कृत बुद्धि वाले जिन स्वामियों के लिए अपमान का विषय सेवक होने पर (भी) हम स्नेह के कारण (उनके) पुत्रों से भिन्न नहीं थे, मनुष्यों के (चरित्र के) परीक्षक वे राजा (नन्द) जिस पापी के द्वारा नष्ट कर दिए गए, मनुष्यों के प्रयत्नों को नष्ट करने वाले उस भाग्य का यह खिलवाड़ है। (२०)

स्पष्टीकरण— राक्षस राजा नन्दों के लिए चार विशेषणों का प्रयोग करता है जिससे ध्वनित होता 'है' कि मलयकेतु में उन सबका अभाव है। राजा नन्द सज्जन थे, अपने प्रति किये गए उपकार को समझते थे, परिष्कृत बुद्धि वाले थे तथा लोगों के चरित्र को परखने वाले थे। इसी कारण राक्षस के सेवक होने के पश्चात् भी वे स्नेहवश उसे अपने पुत्रों के समान समझते थे। दूसरी तरफ मलयकेतु न तो सज्जन है क्योंकि राक्षस के उपर मिथ्या

दोषारोपण कर रहा है, न कृतज्ञ है क्योंकि राक्षस द्वारा अपने प्रति किए गए उपकारों को समझ नहीं रहा, न ही कृतधी है क्योंकि उसमें अपनी बुद्धि नहीं है, प्रत्येक बात का स्पष्टीकरण भागुरायण से करवाता है और भागुरायण जैसी उल्टी सीधी पट्टी उसे पढ़ाता है वह सत्य मान लेता है और न ही वह लोगों के चरित्र का परीक्षक है। इसी कारण मित्र और शत्रु की परख नहीं कर पाता।

उक्त श्लोक में परिसंख्या अलंकार और शार्दूलविक्रीडित छन्द है।

संस्कृत भावार्थ—

सज्जनानां, कृतज्ञानां, परिष्कृतबुद्धीनां च येषां स्वामिनन्दानाम् अवमानस्य आस्पदे सेवकत्वे विद्यमाने अपि वयं प्रेम्णः तेषां सुतेभ्यः अन्याः न आस्म पुत्रवत् एव आस्म, मनुष्यस्य चरित्रवेदिनः ते राजानन्दाः येन दुराचारेण विनाशिताः, पुरुषाणाम् उद्योगनाशिनः तस्यैव दैवस्य इदं महत् चेष्टितम्।

मल०— (सरोषम्) किमद्यापि निह्नूयत एव? विधेः किलैतद्व्यवसितं न लोभस्येति। अनार्य-

कन्यां तीव्रविषप्रयोगविषमां कृत्वा कृतघ्न त्वया
विश्रम्भप्रवणः पुरा मम पिता नीतः कथाशेषताम्।
संप्रत्याहितगौरवेण भवता मन्त्राधिकारे रिपौ
प्रारब्धाः प्रलयाय मांसवदहो विक्रेतुमेते वयम्।।२१।।

अन्वय— कृतघ्न, पुरा त्वया तीव्रविषप्रयोगविषमां कन्यां कृत्वा विश्रम्भप्रवणः मम पिता कथाशेषतां नीतः। अहो सम्प्रति मन्त्राधिकारे आहितगौरवेण भवता एते वयं प्रलयाय रिपौ मांसवत् विक्रेतुं प्रारब्धाः।

सन्दर्भ— इस अंक के प्रारम्भ में क्षपणक जीवसिद्धि से राक्षस द्वारा अपने पिता पर्वतक को मारे जाने का समाचार पाकर तथा इस विषय में विश्वस्त हो जाने पर कि राक्षस अब उसे (मलयकेतु को) मरवाने की भी योजना बना रहा है, मलयकेतु अत्यधिक आगबबूला हो जाता है और राक्षस को खूब खरी खोटी सुनाता है।

हिन्दी अनुवाद—

मल०— (क्रोधपूर्वक) क्या अब भी छिपाया जा रहा है। यह भाग्य का खिलवाड़ है, लोभ का नहीं। अनार्य-

हे कृतघ्न तुम्हारे द्वारा पहले तीव्र विष का प्रयोग करने से भयंकर कन्या (विषकन्या) का प्रयोग करके (तुझ पर) पूर्ण विश्वास करने वाला मेरा पिता कथाओं में ही शेष कर दिया गया अर्थात् मार दिया गया और कष्ट की बात है कि अब (शत्रु के) मन्त्री पद की इच्छा करने वाले आपके द्वारा ये हम विनाश के लिए शत्रु को माँस के समान बेचने के लिए प्रारम्भ कर दिए गए हैं अर्थात् मारकर हमें तुम मास के समान शत्रु को बेचना चाहते हो। (२१)

स्पष्टीकरण— अभी तक मलयकेतु यही सोचता था कि उसका पिता पर्वतक चाणक्य के द्वारा मारा गया है परन्तु क्षणपक जीवसिद्धि से उसे इसी अंक के प्रारम्भ में पता चलता है कि वह राक्षस के द्वारा मारा गया है और राक्षस ऐसा ही कोई कार्य करने पुनः जा रहा है। यद्यपि यह सत्य नहीं है। चाणक्य का प्रणिधि होने के कारण राक्षस और मलयकेतु में फूट डलवाने के लिए ही उसने ऐसा कहा था तथापि मूढ़मति मलयकेतु उसे ही सच मान

लेता है। उसका यह सन्देह चाणक्य का ही दूसरा प्रणिधि सिद्धार्थक और भी अधिक पुष्ट कर देता है। उसके द्वारा ले जाए जाते हुए पत्र व आभूषण से मलयकेतु को यह विश्वास हो जाता है कि राक्षस मलयकेतु को मारकर चन्द्रगुप्त का अमात्पद स्वीकार करना चाहता है। यद्यपि यह भी सत्य नहीं है।

प्रस्तुत श्लोक में उपमा अलंकार तथा शार्दूलविक्रीडित छन्द है।

संस्कृत भावार्थ—

हे अकृतज्ञ राक्षस प्राक् त्वया तीक्ष्णस्य विषस्य प्रयोगेण घोरां विषकन्यां प्रयुज्य त्वयि अतिविश्वस्तः मम पिता पर्वतकः नाममात्रस्थितत्वं प्रापितः व्यापादितः इत्यर्थः। आश्चर्यम् अधुना मौर्यस्य मन्त्रित्वे ध ताभिलाषेण त्वया त्वयि कृतविश्रम्भाः वयं विनाशाय शत्रौ चन्द्रगुप्ते मांसमिव पणायितुं नियोजिताः। पुरा विश्वस्तं पितरं निपात्य अधुना विश्वस्तं पुत्रमपि निपातयितुम् उद्यतो सि इति भावः।

राक्ष०— **(स्वगतम्) अयमपरो गण्डस्योपरि स्फोटः। (प्रकाशम् कर्णौ पिधाय) शान्तं पापं शान्तं पापम्। नाहं पर्वतेश्वरे विषकन्यां प्रयुक्तवान्।**

मल०— **केन तर्हि व्यापादितस्तातः?**

राक्ष०— **दैवमत्र प्रष्टव्यम्।**

मल०— **(सक्रोधम्) दैवमत्र प्रष्टव्यम्। न क्षपणको जीवसिद्धि?**

राक्ष०— **(स्वगतम्) कथं जीवसिद्धिरपि चाणक्यप्रणिधिः। हन्त रिपुभिर्मे हृदयमपि स्वीकृतम्।**

मल०— **(सक्रोधम्) भासुरक, आज्ञाप्यतां शिखरसेनः। य एते राक्षसेन सह सुहृत्तामुत्पाद्यास्मच्छरीरद्रोहेण चन्द्रगुप्तमाराधयितुकामाः प च राजानः कौलूतश्चित्रवर्मा मलयनरपतिः सिंहनादः काश्मीरः पुष्कराक्षः सिन्धुराजः सिन्धुषेणः पारसीकाधिपो मेघनाद इति। एतेषु त्रयः प्रथमे मदीयां भूमिं कामयन्ते ते गम्भीरश्वभ्रमभिनीय पांशुभिः पूर्यन्ताम्। इतरौ तु हस्तिबलकामुकौ हस्तिनैव घात्येतामिति।**

पुरुष— **तथा। (तहा) (इति निष्क्रान्तः)**

मल०— **(सक्रोधम्) राक्षस राक्षस नाहं विश्रम्भघाती राक्षसो मलयकेतुः खल्वहम्। तद् गच्छ समाश्रीयतां सर्वात्मना चन्द्रगुप्तः। पश्य-**

हिन्दी अनुवाद—

राक्ष०— (अपने आप) फोड़े के ऊपर यह दूसरा फोड़ा हो गया। (स्पष्ट रूप से दोनों कानों को बन्द करके) पाप शान्त हो, पाप शान्त हो। मैंने पर्वतक पर विषकन्या का प्रयोग नहीं किया।

मल०— तो पिता किसके द्वारा मारे गए?

राक्ष०— इस विषय में भाग्य से पूछा जाना चाहिए।

मल०— (क्रोधपूर्वक) इस विषय में भाग्य से पूछा जाना चाहिए। क्षपणक जीवसिद्धि से नहीं?

राक्ष०— यह क्या जीवसिद्धि भी चाणक्य का गुप्तचर है। कष्ट की बात है शत्रुओं के द्वारा मेरे हृदय पर भी अधिकार कर लिया गया।

मल०— (क्रोधपूर्वक) भासुकर, शिखरसेन को आज्ञा दी जाए (कि) जो ये राक्षस के साथ मित्रता उत्पन्न करके हमारे शरीर के द्रोह से अर्थात् हमें मारकर चन्द्रगुप्त को प्रस्न्न करने की

इच्छावाले पाँच **राजा**— कुलूत देश का राजा चित्रवर्मा, मलयदेश का राजा सिंहनाद, काश्मीर का राजा पुष्कराक्ष, सिन्धु देश का राजा सिन्धुषेण और पारस देश का राजा मेघनाद हैं - इनमें से प्रथम तीन तो मेरी भूमि को चाहते हैं। वे गहरे गढढे में ले जाकर मिट्टी से ढक दिए जाएँ। बाकी दो हस्तिसेना के इच्छुक हाथी के द्वारा ही मरवा दिए जाएँ।

पुरुष— ऐसा ही करता हूँ। (ऐसा कहकर निकल जाता है)

मल०— (क्रोधपूर्वक) राक्षस राक्षस, मैं विश्वासघाती राक्षस नहीं हूँ। मैं तो मलयकेतु हूँ। तो जाओ और पूर्ण रूप से (सर्वात्मना) चन्द्रगुप्त का आश्रय ले लो। देखो-

स्पष्टीकरण— राक्षस के ऊपर मलयकेतु यह आरोप तो पहले ही लगा रहा था कि वह उसे मारकर चन्द्रगुप्त का अमात्यपद स्वीकार करनाचाहता है। अब अपने पिता पर्वतक को मारने का दूसरा आरोप भी लगा दिया। इसी कारण राक्षस कहता है कि एक फोड़े के ऊपर यह दूसरा फोड़ा हो गया।

राक्षस को यद्यपि यह पता है कि पर्वतक को चाणक्य ने ही मरवाया है तथापि कोई प्रमाण न होने के कारण वह चाणक्य का नाम न लेकर केवल यही कहता है कि भाग्य से पूछो। राक्षस का जीवसिद्धि के प्रति अत्यधिक विश्वास था। वह अपनी सब गुप्त बातें भी उसको बतला देता था। राक्षस को ऐसा लगता है कि यदि जीवसिद्धि भी चाणक्य का प्रणिधि है तब तो उसका कोई भी रहस्य चाणक्य से छिपा हुआ नहीं होगा। इसी कारण वह कहता है कि 'मेरे हृदय पर भी शत्रुओं का अधिकार हो गया।

चाणक्य ने प्रथम अंक में ही अपनी दूरदर्शिता के कारण यह योजना बना ली थी कि राक्षस के परम पाँच मित्र राजाओं को किस प्रकार मरवाया जा सकता है। इसी कारण वहीं पर वह निश्चयपूर्वक कहता है- 'नामान्येषां लिखामि ध्रुवमहमधुना चित्रगुप्तः प्रमार्ष्टु' (१.२०) प्रथम अंक की यह योजना प चम अंक में कार्यान्वित होती है जब मलयकेतु तीन राजाओं को गहरे गड्ढ़े में दबाकर तथा दो को हाथी के पैरों तले रौंद कर मरवा देता हैं 'नाहं विश्रम्भघाती राक्षसः' के द्वारा मलयकेतु कहना चाहता है कि तुमने (राक्षस ने) विश्वासघात करके मेरे पिता को मरवा दिया परन्तु मैं विश्वासघाती नहीं हूँ। तुम चन्द्रगुप्त के पास चले जाओं। मैं तुम्हें मरवाऊँगा नहीं।

विष्णुगुप्तं च मौर्य च सममप्यागतौ त्वया।
उन्मूलयितुमीशो हं त्रिवर्गमिव दुर्नयः।।२२।।

अन्वय— त्वया समम् आगतौ विष्णुगुप्तं च मौर्यम् अपि अहं त्रिवर्गं दुर्नयः इव उन्मूलयितुम् ईशः।

सन्दर्भ— मलयकेतु अपने पराक्रम का बखान करता हुआ कहता है कि मैं अकेला ही राक्षस, चाणक्य और चन्द्रगुप्त को पराजित करने में समर्थ हूँ।

हिन्दी अनुवाद—

तुम्हारे साथ आए हुए चाणक्य और चन्द्रगुप्त को भी मैं त्रिवर्ग (धर्म, अर्थ, काम) को दुर्नीति के समान नष्ट करने में समर्थ हूँ। (२२)

स्पष्टीकरण— उक्त श्लोक में मलयकेतु की मूर्खता स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है क्योंकि वह अपनी तुलना दुनीति से तथा राक्षस, चाणक्य और चन्द्रगुप्त की तुलना धर्म, अर्थ और काम से करता है।

उक्त श्लोक में उपमा अलंकार तथा अनुष्टुब छन्द है।

संस्कृत भावार्थ—

त्वया सह आगतौ चाणक्यं च चन्द्रगुप्तमपि अहं तथैव नाशयितुं समर्थः अस्मि यथा दुर्नीतिः धर्मार्थकामानां समूहं नाशयति।

भागु०— कुमार कृतं कालहरणेन। सांप्रतं कुसुमपुरोपरोधायाज्ञाप्यन्तामस्मद्बलानि।

गौडीनां लोध्रधूलीपरिमलबहुलान्धूम्रयन्तः कपोलान्
क्लिशनन्तः कृष्णिमानं भ्रमरकुलरुचः कुचितस्यालकस्य।
पांशुस्तम्बा बलानां तुरगखुरपुटक्षोभलब्धात्मलाभाः
शत्रूणामुत्तमांगे गजमदसलिलच्छिन्नमूलाः पतन्तु।।२३।।

अन्वय— गौडीनां लोध्रधूलीपरिमलबहुलान् कपोलान् धूम्रयन्तः, भ्रमरकुलरुचः कुचितस्य अलकस्य कृष्णिमानं क्लिश्नन्तः बलानां तुरखुरपुटक्षोभलब्धात्मलाभाः गजमदसलिलच्छिन्नमूलाः पांशुस्तम्बाः शत्रूणाम् उत्तमांगे पतन्तु।

सन्दर्भ— प्रस्तुत श्लोक में भागुरायण मलयकेतु से अपनी सेनाओं को कुसुमपुर पर आक्रमण करने की आज्ञा देने के लिए कहता है।

हिन्दी अनुवाद—

भागु०— कुमार, विलम्ब मत कीजिए। अब कुसुमपुर को घेरने के लिए हमारी सेनाओ को आज्ञा दीजिए।

गौड़ देश की स्त्रियों के लोध्र फूलों के पराग से सुगन्धित गालों को मलिन करते हुए (तथा) भौरों के समूह के समान शोभा वाले घुंघराले बालों की कालिमा को नष्ट करते हुए, सेना के घोड़ों के खुरों के अग्रभाग (पुट) को पटकने से (क्षोभ) उत्पन्न होने वाले (परन्तु) हाथियों के मदजल से नष्ट मूल वाले धूल के खम्भे शत्रुओं के सिरों पर गिरें। (२३)

स्पष्टीकरण— भागुरायण का आशय यह है कि हमारी सेना के घोड़े कुसुमपुर पर आक्रमण करने के लिए जब तीव्र गति से दौड़ेगें तो उनके खुरों को पटकने से धूल ऊपर उठेगी परन्तु सेना के हाथियों के मस्तक से टपकने वाले मदजल से नीचे की धूल जमीन पर बैठ जाएगी अतः वह धूल जड़ (मूल, निम्न भाग) से रहित धूल के स्तम्ब के समान प्रतीत होगी। जब वह धूल गौड़ देश की स्त्रियों के गालों व बालों पर पड़ेगी तो गालों को मलिन कर देगी तथा बालों की कालिमा नष्ट कर उन्हें धूल-धूसरित कर देगी। गौड़ उत्तरी बंगाल का प्राचीन नाम है।

प्रस्तुत श्लोक में स्वाभावोक्ति अलंकार तथा स्रग्धरा छन्द है।

संस्कृत भावार्थ—

गौडदेशस्त्रीणां लोघ्रपुष्पाणां परागेन व्याप्तान् कपोलान् मलिनयन्तः तथा तासामेव भंगव न्दस्य कान्तिरिव तरंगितस्य केशराशेः कृष्णत्वम् अभिभवन्तः प्रयाणोद्यतानां सैन्यानाम् अश्वानां खुरपुटानां संघट्टेन अधिगतः स्वरूपप्राप्तिः यैः ताद शाः तथा करीणां दानवारिभिः निरस्तभूमिसम्पर्काः सन्तः धूलिप्रकाण्डाः अरीणां शिरसि पतन्तु।

(सपरिजनो निष्क्रान्तो मलयकेतुः)

राक्ष०— **(सावेगम्) हा धिक्कष्टम्। ते पि घातिताश्चित्रवर्मादयस्तपस्विनः। तत्कथं सुहृद्विनाशाय राक्षसश्चेष्टते न रिपुविनाशाय। तत्किमिदानीं मन्दभाग्यः करवाणि।**

किं गच्छामि तपोवनं न तपसा शाम्येत्सवैरं मनः
किं भर्त ननुयामि जीवति रिपौ स्त्रीणामियं योग्यता।
किं वा खड्गसखः पताम्यरिबले नैतच्च युक्तं भवेच्
चेतश्चन्दनदासमोक्षरभसं रुन्यात्कृतघ्नं न चेत्।।२४।।

अन्वय— किं तपोवनं गच्छामि सवैरं मनः तपसा न शाम्येत् रिपौ जीवति किं भर्त न् अनुयामि इयं स्त्रीणां योग्यता वा खड्गसखः किम् अरिबले पतामि एतत् च युक्तं न चन्दनदासमोक्षरभसं चेतः रुन्यात् चेत् न कृतघ्नं भवेत्।

सन्दर्भ— मलयकेतु द्वारा निष्कासित कर दिए जाने पर राक्षस का कुसुमपुर पर आक्रमण कर शत्रु को पराजित करने का सपना तो चूर-चूर हो जाता हैं उसके सामने अब चन्दनदास व उसके परिवार को चाणक्य के चंगुल से मुक्त करवाना यही एक उद्देश्य है। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए वह कुसुमपुर जाने का निश्चय करता है।

हिन्दी अनुवाद—

(मलयकेतु सेवकों सहित निकल जाता है)

राक्ष०— (आवेग के साथ)हाय धिक्कार है। दुःख की बात है। वे बेचारे चित्रवर्मा आदि भी मार दिए गए। तो क्या राक्षस (अपने) मित्रों के नाश के लिए प्रयत्न कर रहा है शत्रु विनाश के लिए नहीं। तो अब मैं मन्दभागी क्या करूँ।

क्या (मैं) तपोवन चला जाऊँ (परन्तु) शत्रुता से युक्त (मेरा) मन तप से शान्त नहीं होगां शत्रु के जीवित रहने पर क्या (मैं) स्वामियों (नन्दों) का अनुसरण करूँ, यह स्त्रियों की योग्यता है। अथवा तलवार हाथ में लेकर क्या (मैं) शत्रुसेना पर टूट पड़ूँ परन्तु यह उचित नहीं है। चन्दनदास को मुक्त करवाने में उत्सुक (मेरा) मन (मुझे) रोक रहा है अन्यथा (यह) कृतघ्न हो जाएगा।(२४)

स्पष्टीकरण— राक्षस अत्यधिक निराश हो जाता है क्योंकि वह शत्रु को नष्ट करने की जो भी योजना बनाता है उससे शत्रु की तो लेशमात्र भी हानि नहीं होती अपितु उसके अपने ही मित्र नष्ट हो जाते हैं। जैसा कि दारुवर्मा, वर्वरक, अभयदत्त, प्रमोदक, बीभत्सक, चित्रवर्मा, सिंहनाद, पुष्कराक्ष, मेध तथा सिन्धुषेण इत्यादि के उदाहरण से स्पष्ट है।

मलयकेतु द्वारा निष्कासित कर दिए जाने पर राक्षस अब स्वयं को बिल्कुल अकेला पाता है तथा सोचता है कि वह क्या करे। वह तपस्या करने के लिए भी नहीं जा सकता क्योंकि अशान्त मन से तपस्या नहीं हो सकती। वह आत्महत्या भी नहीं करना चाहता क्योंकि दुःख से घबराकर आत्महत्या कर लेना स्त्रियों की विशेषता है। वह अकेला ही शत्रुसेना से लड़ते-लड़ते म त्यु को भी प्राप्त नहीं होना चाहता क्योंकि ऐसा करने से वह चन्दनदास व उसके परिवार को कारागार से मुक्त नहीं करवा पाएगा। चन्दनदास राक्षस के लिए अपना सर्वस्व न्यौछावर करने को तत्पर है अतः राक्षस भी चन्दनदास व उसके परिवार को कारागार से मुक्त करवा कर उसके प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करना चाहता है। अतः वह पाटलिपुत्र जाने का ही निश्चय कर लेता है।

उक्त श्लोक में काव्यलिंग अलंकार तथा शार्दूलविक्रीडित छन्द है।

संस्कृत भावार्थ—

एवं व्यपगते सर्वकर्त्तव्ये किम् अहम् (राक्षसः) तपश्चरणार्थं तपोवनं यामि परं सामर्षं मम मनः तपश्चरणेन शान्तिं न लभेत। शत्रौ चन्द्रगुप्ते विद्यमाने किम् अहं परलोकगतान् स्वामीः अनुगच्छामि परम् इयं तु स्त्रीणां कर्म अथवा असिलतामात्रः सन् अहम् किं शत्रुसैन्यै पतामि। एतद् अपि उचितं न। चन्दनदासं कारागारात् विमोचयितुं समुत्सुकः मम मनः एतत्कर्तुं माम् निवारयति अन्यथा इदं चन्दनदासं प्रति कृतघ्नं स्यात् अतः कुसुमपुरं गत्वा चन्दनदासस्यैव कृते प्रयते इति भावः।

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे)

इति प चमों क

सब निकल जाते हैं।

इस प्रकार प चम अंक समाप्त हुआ।

षष्ठोंकः

(ततः प्रविशत्यलंकृतः सहर्षः सिद्धार्थकः)

सिद्धा०—

जयति जलदनीलः केशवः केशिघाती
जयति च जनद ष्टिचन्द्रमाश्चन्द्रगुप्तः।
जयति जयनकार्यं यावत्कृत्वा च सर्वं
प्रतिहतपरपक्षा आर्यचाणक्यनीतिः।।१।।

जअदि जलदणीलो केसवो केसिघादी
जअदि अ जणदिटठीचन्दा चन्दउत्ते।
जअदि जअणकज्जं जाव काऊण सव्वं
पडिहदपरपक्खा अज्जचाणक्कणीदी।।१।।

अन्वय— जलदनीलः केशिघाती केशवः जयति च जनद ष्टिचन्द्रमाश्चन्द्रगुप्तः जयति च जयनकार्यं यावत् सर्वं कृत्वा प्रतिहतपरपक्षा आर्यचाणक्यनीतिः जयति।

सन्दर्भ— सिद्धार्थक चाणक्य द्वारा सौंपा गया सम्पूर्ण कार्य सफलतापूर्वक सम्पन्न करके पाटलिपुत्र वापस आ गया है। चन्द्रगुप्त से समुचित पुरस्कार पाने के कारण अत्यधिक प्रसन्न है अतः केशव, चन्द्रगुप्त और चाणक्य की नीति की विजयघोषणा करता हैं

हिन्दी अनुवाद—

बादल के समान कृष्ण वर्ण (और) केशी को मारने वाले केशव की जय हो और मनुष्यों के नेत्रों के लिए चन्द्रमा के समान चन्द्रगुप्त की जय हो और सेना के द्वारा किए जाने योग्य समस्त (कार्य को) करके शत्रुपक्ष को नष्ट करने वाली आर्य चाणक्य की नीति की जय हो।(१)

स्पष्टीकरण—

घोड़े का रूप धारण करके श्री कृष्ण को मारने के लिए आए हुए केशी नामक राक्षस को श्री कृष्ण ने मारा था। जो कार्य एक सेना द्वारा सम्पन्न किए जाने योग्य है, वह चाणक्य की नीति द्वारा ही सम्पन्न कर दिया गया क्योंकि चाणक्य की नीति ने युद्ध किए बिना ही शत्रुपक्ष को नष्ट कर दिया।

प्रस्तुत श्लोक में उपमा, रूपक तथा विभावना अलंकार के सम्मिश्रण से संस ष्टि अलंकार तथा मालिनी छन्द है।

संस्कृत भावार्थ—

अभ्रश्यामः केशिनामदैत्यविनाशकश्च कृष्णः उत्कर्षं लभते। लोकानां द ष्टेः इन्दुस्वरूपः चन्द्रगुप्तमौर्यश्च उत्कर्ष लभते। पुनश्च जयकारणेन सेनादिनैव यत्कार्यं तद्यावत्सर्वं स्वयमेव कृत्वा आर्यचाणक्यस्य नीतिः उत्कर्षं लभते।

तावच्चिरस्य कालस्य प्रियवयस्यं समिद्धार्थकं पश्यामि। (परिक्रम्यावलोकस्य च) एष मे प्रियवयस्यः समिद्धार्थक इत एवागच्छति। यावदेनमुपसर्पामि (दावचिरस्स कालस्स पिअवअस्सं समिद्धत्थं पेक्खामि। एसो मे पिअवअस्सओ इदो एव्व आअच्छदि। जाव णं उपसप्पामि।)

(ततः प्रविशति समिद्धार्थकः)

हिन्दी अनुवाद—

तो चिरकाल के पश्चात् प्रिय मित्र समिद्धार्थक को देखूँगा। (घूमकर और देखकर) यह मेरा प्रिय मित्र समिद्धार्थक इधर ही आ रहा हैं जब तक इसके पास जाता हूँ

(तब समिद्धार्थक प्रवेश करता है)

समिद्धार्थकः—

सन्तापे तारेशानां गेहोत्सवे सुखायमानानाम्।
हृदयस्थितानां विभवा विरहे मित्राणां दूनयन्ति।।२।।

संदावे तारेसाणं गहूसवे सुहाअत्ताणं।
हिअअठिठदाणं विहवा विरहे मित्ताणं दूणन्दि।।२।।

अन्वय— सन्तापे तारेशानां गेहोत्सवे सुखायमानानाम् हृदयस्थितानां मित्राणां विरहे विभवा दूनयन्ति।

सन्दर्भ— समिद्धार्थक भी अपने मित्र सिद्धार्थक से बहुत समय से न मिलने के कारण अत्यन्त दुःखी है।

हिन्दी अनुवाद—

समिद्धार्थक— दुःख में चन्द्रमा के समान (सन्ताप दूर करने वाले), घर के उत्सवों में सुख का अनुभव करने वाले (तथा) हृदय में विद्यमान मित्रों के विरह में ऐश्वर्य कष्टप्रद होते हैं। (२)

स्पष्टीकरण— समिद्धार्थक का अभिप्राय यह है कि सच्चा मित्र ही दुःख में दुःख कम करता है तथा घर के उत्सवों में द्वेषरहित होकर सुख अनुभव करता है। उसके वियोग में धन दौलत भी मनुष्य को प्रसन्न नहीं करते क्योंकि अकेला मनुष्य आनन्द प्राप्त नहीं कर पाता। स्पष्ट ही वह सिद्धार्थक की तरफ संकेत कर रहा है।

उक्त श्लोक में अप्रस्तुतप्रशंसा अलंकार तथा आर्या छन्द है।

संस्कृत भावार्थ—

क्लेशे चन्द्रवत्संतापहारिणां ग होत्सवे च सुखम् अनुभवतां सदैव चिन्त्यमानानां च मित्राणां वियोगे ऐश्वर्याणि दुःखायैव भवन्ति।

श्रुंत मया मलयकेतुकटकात्प्रियवयस्यः सिद्धार्थक आगत इति। तद्यावदेनमन्वेषयामि। (इति परिक्रामति। विलोक्य) एष सिद्धार्थकः। (सुदं मए मल अकेदु कडआदो पिअवअस्सओ सिद्धत्थओ आअदोत्ति। ता जाव णं अण्णेसामि। एसो सिद्धत्थओ।)

सिद्धा०— (उपस त्य) कथं समिद्धार्थकः। अपि सुखं प्रियवयस्यस्य? (कहं समिद्धत्थओ। अवि सुहं पिअवअस्सस्स।)

(इत्यन्योन्यमालिंगतः)

समिद्धा०—**वयस्य कुतो मे सुख येन चिरप्रवासप्रत्यागतो प्यद्य न मे गेहमागच्छसि। (वअस्स कुदो मे सुंह जेण तुमं चिरप्पवासपच्चागदो वि अज्ज ण में गेहं आअच्छसि।)**

सिद्धा०— प्रसीदतु वयस्यः। द ष्टमात्र एव आर्य चाणक्येनाज्ञाप्तो स्मि यथा सिद्धार्थक गच्छ इमं प्रियोदन्तं देवस्य चन्द्रश्रिये निवेदयेति। तत एतस्मै निवेद्यैवमनुभतपार्थिवप्रसादो हं प्रियवयस्यं प्रेक्षितुं तवैव गेहं चलितो स्मि। (पसीददु वअस्सो। दिठ्ठमेत्तो एव्व अज्जचाणक्केण आणतोह्मि जह सिद्धत्थअ गच्छ एदं पिओदन्तं देवस्य चन्दसिरिरणो णिवेदेहित्ति। तदो एदस्स णिवेदिअ एव्वं अणुभूदपथिवप्पसादो अहं पिअवअस्सं पेक्खिदुं तुह एव्व गेहं चलिदोह्मि)

समिद्धा०— वयस्य, यदि मे श्रोतव्यं भवति ततः कथय किं तत्प्रियं यत्प्रियदर्शनाय चन्द्रश्रिये निवेदितम्। (वअस्स जदि में सुणिदव्यं भोदि तदो कहेहि किं तं पिअं जं पिअदंसणस्य चन्दसिरिणो णिवेदिदं।)

सिद्धा०— वयस्य किं तवाप्यश्रोतव्यमस्ति तन्निशामय। अस्ति तावच्चाणक्यनीतिमोहितमतिना मलयकेतुहतकेन निष्कास्य राक्षसं हताश्चित्रवर्मप्रमुखाः प्रधानाः प चपार्थिवा। ततो समीक्ष्यकार्येषु दुराचार इत्युज्झित्वा मलयकेतुकटकभूमिं कुशलतायै भयविलोलशेषसैनिकपरिवारेषु स्वकं स्वकं विषयं सभयं प्रस्थितेषु पार्थिवेषु निर्विण्णह दयेषु सकलसामन्तेषु भद्रभटपुरुषदत्तडिगंरातबलगुप्तराजसेनभागुरायणलोहिताक्षविजयवर्मप्रमुखैः संयम्य ग हीतो मलयकेतुः। (व अस्स किं तुहवि असुणिदव्वं अत्थि ता णिवसामेहि। अत्थि दाव चाणक्कणीदिमोहिददिणा मलअकेदुहदएण णिक्कासिअ रक्खसं हदा चित्तवम्मप्पमहा प्पहाणा प च पत्थिवा। तदो असमिक्खकारी एसो दुराआरोत्ति अज्झिअ मलअकेदुकडअभूमिं कुसलदाए भअविलोलसे ससैणिकपरिवारेसु सकं सकं विसअं सभअं प्पत्थितेसु पात्थिवेसु णिव्विण्णहिअएसु सअलसामन्तेसु भद्दभटपुरिसदत्तडिगंरादवलउत्तराअसेणभागुराअणरोहिदक्खविज अवम्मप्पमुहेंहि संजमिअ गिहीदो मलयकेदु।)

समिद्धा०— वयस्य, भद्रभटप्रमुखाः किल देवाच्चन्द्रगुप्तादपरक्ता मलयकेतुं समाश्रिता इति लोके मन्त्र्यते। तत्किं निमित्तं कुकविकृतनाटकस्येवान्यमुखे न्यन्निर्वहणे। (वअस्स भद्दभटप्पमुहा किल देवस्स चन्दउत्तस्स अवरता मलअकेदुं ससस्सिदा त्ति लाए मन्ती आदि। ता किंणिमित्तं कुकविदिणाडअस्स विअ अणां मुहे अण्णं णिवव्वहेण।)

सिद्धा०— वयस्य दैवगत्या इवाश्रुतगत्यै नम आर्यचाणक्यनीत्यै। (व अस्स देवगदीए विअ असुणि दगदीए णमो अज्जाणक्क णीदीए।)

समिद्धा०—ततस्ततः। (तदो तदो।)

सिद्धा०— ततः प्रभूतसारसाधनसमेतेनेतो निष्क्रम्यार्यचाणक्येन प्रतिपन्नमराजलोकमशेषं म्लेच्छबलम्। (तदो पभूदसारसाहणसमेदेण इदो णिक्कमिअ इदो णिक्कमिअ अज्जचाणक्केण पडिवण्णं अराअलोअं असेसं मिलेच्छबलं।)

समिद्धा०— वयस्य, कुत्र तत्? (वअस्स कहिं तुं?)

सिद्धा०— यत्रैते - (जहिं एदे)—

हिन्दी अनुवाद—

मेरे द्वारा सुना गया है कि मलयकेतु के शिविर से प्रियमित्र सिद्धार्थक आ गया है। तो मैं इसे खोजता हूँ। (ऐसा कहकर घूमता है। देखकर) यह सिद्धार्थक है।

सिद्धार्थक— (पास जाकर) समिद्धार्थक कैसे हो? प्रिय मित्र सुखपूर्वक तो है? (ऐसा कहकर परस्पर आलिंगन करते है)

सिद्धा०— मित्र मुझे सुख कहाँ से (होगा) जो तम बहुत समय तक बाहर रह कर (चिरप्रवास) वापस आने पर भी मेरे घर नहीं आते हो।

सिद्धा०— मित्र प्रसन्न हो जाओ। देखते ही आर्य चाणक्य के द्वारा (मुझे) आदेश दिया गया कि सिद्धार्थक जाओ इस प्रिय समाचार को महारा चन्द्रगुप्त को बतलाओ। तो इन्हें (चन्द्रगुप्त) को बतला कर (निवेध) राजकीय उपहार (पार्थिवप्रसादः) प्राप्त करके (अनुभूत) मैं प्रिय मित्र को देखने के लिए तुम्हारे ही घर आ रहा था।

समिद्धा०— यदि मेरे सुनने योग्य है तो बतलाओ कि वह क्या प्रिय समाचार था जो प्रियदर्शी चन्द्रगुप्त को बतलाया गया है।

सिद्धा०— मित्र, क्या तुम्हारे न सुनने योग्य भी (कुछ) है अतः सुनो। बात ऐसी है कि चाणक्य की नीति से नष्ट बुद्धि वाले दुष्ट मलयकेतु के द्वारा राक्षस को निकाल कर चित्रवर्मा इत्यादि प्रमुख (रूप से) प्रधान पाँच राजा मरवा दिए गए। तत्पश्चात् यह बिना सोचे-समझे कार्य करता है अतः दुराचारी है ऐसा सोचकर मलयकेतु के शिविर को छोड़कर अपनी कुशलता के लिय, भय से काँपते हुए बचे हुए (शेष) सैनिक परिवारों वाले राजाओं के भयपूर्वक अपने-अपने राज्यों को वापस चले जाने पर (तथा) सभी सामन्तों के दुःखी ह्रदय होने पर भद्रभट, पुरुषदत्त, डिगंरात, बलगुप्त, राजसेन, भागुरायण, रोहिताक्ष और विजयवर्मा इत्यादि के द्वारा मलयकेतु बाँध कर पकड़ लिया गया।

समिद्धा०— मित्र, भद्रभट इत्यादि तो निश्चित रूप से महाराज चन्द्रगुप्त से विमुख होकर मलयकेतु के आश्रित हो गए थे, लोगों में तो ऐसा प्रसिद्ध है। तो किस कारण से एक अकुशल कवि द्वारा रचित (कुकविकृत) नाटक के समान मुखसन्धि (प्रारम्भ) में कुछ और निर्वहण सन्धि (अन्त) में कुछ और।

सिद्धा०— मित्र, भाग्य की गति के समान समझ में न आने वाली आर्य चाणक्य की नीति को नमस्कार है।

समिद्धा०— तत्पश्चातः

सद्धि० - तत्पश्चात् बहुत सी (प्रभूत) चुनी हुई सेना सहित यहाँ से (कुसुमपुर से) निकल कर आर्य चाणक्य के द्वारा राजाओं से रहित सम्पूर्ण म्लेच्छ सेना को अपने अधिकार में कर लिया गया।

समिद्धा०— वह कहाँ हुआ?

सिद्धा०— जहाँ ये -

स्पष्टीकरण— सिद्धार्थक और समिद्धार्थक के वार्तालाप से पाठकों को दो तीन मुख्य बातें ज्ञात होती हैं। राक्षस को निष्कासित करने के पश्चात् राक्षस के पाँच परम मित्र राजाओं को भी मलयकेतु द्वारा मरवा दिया गया। यह देखकर अन्य राजा भी मलयकेतु से विमुख होकर अपने-अपने देश वापस चले गये और जब मलयकेतु अकेला रह गया तो भद्रभट इत्यादि प्रधान पुरुषों ने मलयकेतु के हाथ पैर बाँधकर पकड़ लिया। ये भद्रभट इत्यादि वही प्रधान पुरुष हैं जो प्रथम अंक में चाणक्य की योजनानुसार ही यह दर्शाते हुए कि मानो वे चन्द्रगुप्त से अपरक्त हो गए है, मलयकेतु के आश्रित हो गए थे।

एक योग्य नाटककार की कशुलता इसी पर निर्भर करती है कि प्रारम्भ में उद्घोषित उद्देश्य की प्राप्ति ही अन्त मे हो। मुखसन्धि और निर्वहणसन्धि में एकरूपता होनी चाहिए समिद्धार्थक का आशय यह है कि जब भद्रभट इत्यादि पहले चन्द्रगुप्त को छोड़कर मलयकेतु के आश्रित हो गए थे तब उन्होने मलयकेतु को ही कैसे पकड़ लिया। इसका उत्तर देते हुए सिद्धार्थक कहता है कि जिस प्रकार भाग्य की चाल को कोई नहीं समझ सकता उसी प्रकार आर्य चाणक्य की नीति को भी कोई नहीं समझ सकता।

अतिशयगुरुकेण दानदर्पेण दन्तिनः
सजलजलदलीलामुद्वहन्तो नदन्ति।
कशाप्रहारभयेन जातकम्पोत्तरंगा
ग हीतजयनशब्दाः संपतन्ति संप्लवन्ते तुरंगा।।३।।

अदिसअगुरुएण दाणदप्पेण दन्ती
सजलजलदलीलामुव्वहन्तो णदन्ति।
कसपहरभएण जाअकम्पोतरंगा
गिहिदज अणसद्दा संपअन्ते तुरंगा।।३।।

अन्वय— अतिशयगुरुकेण दानदर्पेण सजलजलदलीलाम् उद्वहन्तः, दन्तिनः नदन्ति। कशाप्रहारभयेन जातकम्पोत्तरंगा ग हीतजयनशब्दाः तुरंगा संपतन्ति संप्लवन्ते।

सन्दर्भ— सिद्धार्थक समिद्धार्थक को उस स्थान के विषय में बतलाया है जहाँ चाणक्य ने समस्त म्लेच्छ सेना को अपने अधिकार में किया।

हिन्दी अनुवाद—

अत्यधिक महान् मदजल के घमण्ड से जल से युक्त बादलों की शोभा को धारण करने वाले हाथी गर्जना कर रहे हैं (और) चाबुक की मार के भय से काँपने के कारण च चल (जातकम्पोतरंग) घोड़े 'जय के' शब्द को सुनकर उछलते हैं और आगे बढ़ते हैं (३)

स्पष्टीकरण— हाथी कृष्ण वर्ण, मदजल टपकाने वाले व गर्जना करने वाले हैं और वर्षाकालीन बादल भी कृष्ण वर्ण, वर्षा करने वाले तथा गर्जना करने वाले हैं। अतः हाथियों की तुलना वर्षाकालीन बादल से की गई है। घोड़े विजयघोषणा को सुनकर जोश में उछलते हैं और आगे बढ़ते है।

उक्त श्लोक में निदर्शना, समासोक्ति, उपमा तथा काव्यलिंग अलंकारों का सन्निवेश है।

संस्कृत भावार्थ—

(यत्र) अतिमहता मदजलगर्वेण जलयुतां मेघानाम् इव चेष्टितम् अनुर्कुवन्तः हस्तिनः गर्जन्ति। तडिन्याः ताडनभयेन अत्यन्तं कम्पमानाः अतएव च चलाः अश्वाः विजयनादं श्रुत्वा सम्मिलन्ति च।

समिद्धा०— वयस्य, एतत्तावत्तिष्ठतु। तथा सर्वलोकप्रत्यक्षमुज्झिताधिकारः स्थित्वा आर्यचाणक्यः किं पुनरपि तदेव मन्त्रिपदमारूढ़ः। (वअस्स एदं दाव चिठ्ठदु। तहा सव्वलोअपच्चक्खं उज्झिआहिआरो चिठ्टअ अज्जचाणक्को किं पुणो वि तं एव्व मन्तिपदं आरूदो।)

सिद्धा०— अतिमुग्धो सीदानीं त्वं यदमात्यराक्षसेनाप्यनवगाहितपूर्वमार्यचाणक्यचरितम

वगाहितुमिच्छसि। (अदिमुद्धोसि दाणं तुम जो अमच्चरक्खसेण वि अणवगाहिदपुव्वं अज्जचाणक्कचरिदं अवगाहिदुं इच्छसि।)

समिद्धा०— वयस्य, अमात्यराक्षसः सांप्रतं कुत्र? (वअस्स अमच्चएत्वमो संपदं कहिं?)

सिद्धा०— तस्मिन्भयविलोले वर्धमाने मलयकेतुकटकान्निष्क्रम्योदुम्बरनामधेयेन चरेणानुसन्धीयमानं इदं पाटलिपुत्रमागत इत्यार्यचाणक्याय निवेदितम्। (तस्सि भअविलोल वढ्ढमाणे मलअकेदुकडआदो णिक्कमिअ उदुम्भरणामहेएण चरेण अनुसन्धिज्जमाणे इमं पाडलीउत्तं आअदोत्ति अज्जचणकस्स णिवेदिदं।)

समिद्धा०— वयस्य, तथा नामामात्यराक्षसो नन्दराज्यप्रत्यानयने कृतव्यवसायो निष्क्रम्य सांप्रतमकृतार्थः पुनरपीदं पाटलिपुत्रमागत एव। (व अस्स तहा णाम अमच्चरक्खसो णन्दरज्जपच्चाणअणे किदव्यवसाओ णिक्कमिअ संपदं अकिदत्थो पुणोवि इमं पाडलिउतं एव्व।)

सिद्धा०— वयस्य तर्कयामि चन्दनदासस्नेहेनेति। (वअस्स तक्केमि चन्दणदाससिणेहेणत्ति।)

सिद्धा०— कुतो स्याधन्यस्य मोक्षः। स खलु सांप्रतमार्यचाणक्यस्याज्ञया द्वाभ्यामावाभ्यां वध्यस्थानं प्रवेश्य व्यापादयितव्यः। (कुदो से अधणस्स मोक्खौ सो कुखं संपदं अज्जचाणकस्स आणत्तीए दुवेंहि अह्मेहिं वज्झट्ठाणं पवेसिअ वावादइदव्वो।)

समिद्धा०— (सक्रोधम्) किमार्यचाणक्यस्य घातकजनो न्यो नास्ति येनावामीद शेषु अतिन शंसेषु नियोगेषु नियोजयति। (किं अज्जचाणक्करस घादअजणो अण्णो णत्थि जेण अह्मे ईदिसेसु अदिणिसंसेसु णिओएसु णिओएदि।)

सिद्धा०— वयस्य को जीवलोके जीवितुकाम आर्यचाणक्यस्याज्ञप्तिं प्रतिकूलयति। तदेहि चण्डालवेशधारिणौ भूत्वा चन्दनदासं वध्यस्थानं नयावः। (वजस्स को जीवलोए जीविदुकामो अज्ज चाणक्कस्य आणतिं पडिऊलेदि। ता एहि चण्डालवेसधारिणा भविअ चन्दणदासं वज्झट्ठाणं णएम।) (इत्युभौ निष्क्रान्तौ)

(प्रवेशकः।)

हिन्दी अनुवाद—

समिद्धा०— मित्र, यह तो अभी रहने दो। उस प्रकार सारे लोगों के सामने अमात्यपद छोड़ कर रहने वाले आर्य चाणक्य क्या पुनः उसी मन्त्री पद पर स्थित हो गए?

सिद्धा०— तुम इस समय बहुत भोले हो रहे हो जो तुम आर्य चाणक्य के (उस) चरित को जान लेना चाहते हो जिसकी थाह पहले अमात्य राक्षस के द्वारा भी नहीं ली जा सकी।

समिद्धा०— अब अमात्य राक्षस कहाँ है?

सिद्धा०— वहाँ भय का साम्राज्य बढ़ने पर मलयकेतु के शिविर से निकल पर उदुम्बर नामक गुप्तचर के द्वारा अनुसरण किया जाता हुआ (राक्षस) यहीं पाटलिपुत्र में आ गया है इस प्रकार आर्य चाणक्य को बतलाया गया है।

समिद्धा०— मित्र, नन्दराज को वापस लेने के लिए इस प्रकार प्रयत्न करने वाला अमात्य राक्षस (पाटलिपुत्र से) बाहर जाकर अब असफल होकर दुबारा से यहीं पाटलिपुत्र में ही आ गया है।

सिद्धा०— मित्र, चन्दनदास के प्रेम कारण आया है (मैं) ऐसा सोचता हूँ।

समिद्धा०— मित्र, चन्दनदास की (कारगार से) मुक्ति (हुई) सी मैं देख रहा हूँ।

सिद्धा०— इस अभागे की मुक्ति कहाँ से है। वह तो अब निस्सन्देह आर्य चाणकय की आज्ञा से हम दोनों के द्वारा वध्यस्थल पर ले जाकर मारा जाना है।

समिद्धा०— (क्रोधपूर्वक) क्या आर्च चाणक्य के पास दूसरे चण्डाल नहीं हैं जो हम दोनों को इस प्रकार के अत्यन्त क्रूर कार्यों में नियुक्त करते हैं।

सिद्धा०— मित्र, इस प्रकार संसार में जीवित रहने की इच्छा वाला कौन आर्य चाणक्य की आज्ञा का उल्लंघन करेगा (प्रति)। तो आओ चण्डाल का वेष धारण करके चन्दनदास को वध्यस्थल ले चलते हैं। (ऐसा कहकर निकल जाते हैं)

(प्रवेशक)

स्पष्टीकरण— चाणक्य ने जानबूझ कर सिद्धार्थक और समिद्धार्थक को चण्डाल का रूप धारण करवा कर चन्दनदास को फाँसी लगाने के लिए नियुक्त किया है ताकि सप्तम अङ्क में उनके स्पर्श के कारण राक्षस स्वयं को दूषित न समझे।

पुरुषः—

षड्गुणसंयोगद ढा उपायपरिपाटिघटितपाशमुखी।
चाणक्यनीतिरज्जू रिपुसंयमनोद्यता जयति।।४।।

छग्गुणसंजोअदिढा उवाअपरिवाडिघडि अपासमुही।
चाणक्कणीतिरज्जू रिपुसंजम अज्ज आ जअदि।।४।।

अन्वय— षड्गुणसंयोगद ढा उपायपरिपाटिघटितपाशमुखी रिपुसंयमनोद्यता चाणक्यनीतिरज्जू जयति।

सन्दर्भ— चाणक्य का गुप्तचर जो जीर्णोद्यान में राक्षस को भ्रमित करने के लिए स्वयं को फाँसी लगाने का अभिनय करने के लिए रस्सी हाथ में लिए हुए आया है, चाणक्य की नीति की प्रशंसा करता है।

हिन्दी अनुवाद—

(तब रस्सी हाथ में लिए हुए पुरुष प्रवेश करता है)

पुरुषः— छः गुणों के संयोग से द ढ़, उपायों की परम्परा से निर्मित पाश रूपी मुख वाली और शत्रु को बाँधने में तत्पर चाणक्य की नीति रूपी रस्सी की जय हो। (४)

स्पष्टीकरण— प्रस्तुत श्लोक में पुरुष चाणक्य की नीति और रस्सी में साम्य बतलाता है। चाणक्य की नीति सन्धि, विग्रह, यान, आसन, द्वैधीभाव और समाश्रय इन छः गुणों के संयोग के कारण द ढ़ है जिसे शत्रु नहीं तोड़ सकते। साम, दान, दण्ड और भेद इन चार उपायों की परम्परा से इसका पाश बनाया गया है अतः शत्रु को निश्चित रूप से वश में करने में समर्थ है। दूसरी तरफ रस्सी छः धागों के संयोग से बनाई गई है अतः मजबूत है। इसका फंदा अत्यधिक कुशलता से बनाया गया है तथा यह शत्रुओं को बाँधने के लिए तत्पर है।

संस्क त भावार्थ—

संधिविग्रहयानासनद्वैधीभावसमाश्रयाख्यानाम् षण्णां गुणानां संयोगेन अतिद ढा दुर्भेद्या इत्यर्थः अपि च सामदानदण्डभेदाख्यानां प्रयोगचतुष्टयानां क्रमरचनया रचितः यःवागुरः तद्रूपम् मुखं यस्याः ताद शी शत्रुनियन्त्रणतत्परा चाणक्यस्य नीतिः एव दाम सा चाणक्यनीतिदाम जयति।

(परिक्रम्यावलोक्य च) एष स प्रदेश आर्यचाणक्याय उदुम्बरेण कथितो यत्र मया आर्यचाणक्याज्ञप्त्या अमात्यराक्षसः प्रेक्षितव्यः। (विलोक्य) कथमेष खल्वमात्यराक्षसः क तशीर्षावगुण्ठन इत एवागच्छति। तद्यावदेभिर्जीर्णोद्यानपादपैरन्तरितशरीरः प्रेक्षे कुत्रासनपरिग्रहं करोतीति। (एसो सो पदेसो अज्ज चाणक्कस्य उदुम्बरेण कहिदो जहि मए अज्जचाणक्काणत्तिए अमच्चरक्खसो पेक्खिदव्वो। कहं एसो क्खु अमच्चरक्खसो किदसीसावगुण्ठणो इदो एव्व आअच्छइ। ता जाव इमेहिं जिण्णुज्जाणपादवेहिं अततरिदसीरो पेक्खामि कहिं आसनपरिग्गहं करेदि त्ति। (परिक्रम्य स्थितः)

(ततः प्रविशति यथानिर्दिष्टः सशस्त्रो राक्षसः)

राक्ष०— (सास्त्रम्) कष्टं भोः कष्टम्।

हिन्दी अनुवाद—

(घूमकर और देखकर) उदुम्बर के द्वारा आर्य चाणक्य को बतलाया गया यह वही स्थान है जहाँ मेरे द्वारा आर्य चाणक्य की आज्ञा से अमात्य राक्षस को देखा जाना है। (देखकर) यह कैसे, निस्सन्देह यह अमात्य राक्षस सिर ढके हुए इधर ही आ रहे हैं। तो जब तक जीर्णोद्यान के इन पेड़ों में (अपना) शरीर छिपा कर देखता हूँ कि (यह) कहाँ आसन ग्रहण करते हैं अर्थात् बैठते हैं। (घूमकर खड़ा हो जाता है)

(तत्पश्चात् पूर्वोक्त राक्षस तलवार लेकर प्रवेश करता है)

राक्ष०— (आँसू भरकर) अरे दुःख है, दुःख है।

उच्छिन्नाश्रयकातरेव कुलटा गोत्रान्तरं श्रीर्गता
तामेवानुगता गतानुगतिकास्त्यक्तानुरागाः प्रजाः।
आप्तैरप्यनवाप्तपौरुषफलैः कार्यस्य धूरुज्झिता
किं कुर्वन्त्यवथवोत्तमाङ्गरहितैरङ्गैरिव स्थीयते।।५।।

अन्वय— उच्छिन्नाश्रयकातरा श्रीः कुलटा इव गोत्रान्तरं गता, गतानुगतिकाः प्रजाः त्यक्तानुरागाः तामेव अनुगताः, अनवाप्तपौरुषफलैः आप्तैः अपि कार्यस्य धूः उज्झिता अथवा किं कुर्वन्ति उत्तमाङ्रहितैः अङ्गैः इव स्थीयते।

सन्दर्भ— प्रस्तुत श्लोक में राक्षस राजा नन्दों के नष्ट हो जाने से वर्तमान परिस्थितियों पर द ष्टिपात करता हुआ उनका इस अवस्था में पहुँचता अवश्यम्भावी एवं न्यायसङ्गत बतलाता है।

हिन्दी अनुवाद—

आश्रय (नन्दों) के नष्ट हो जाने से डरी हुई राजलक्ष्मी वेश्या के समान अन्य वंश में चली गई। अन्धानुकरण करने वाली प्रजा (भी) अनुराग को छोड़कर उसी के पीछे चली गई। (अपने) पुरुषार्थ का फल प्राप्त न करने वाले विश्वसनीय व्यक्तियों के द्वारा भी कार्य का भार छोड़ दिया गया। अथवा (वे भी) क्या करते। (उनके द्वारा) सिर से रहित अङ्गों के समान स्थित होकर रहा जा रहा था। (५)

स्पष्टीकरण— राक्षस का अभिप्राय यह है कि जिस प्रकार अपने आश्रयदाता के मर जाने से एक वेश्या आश्रयरहित होने से भयभीत हो जाती है वही स्थिति अपने आश्रयदाता नन्दों की म त्यु हो जाने से राजलक्ष्मी की भी हो गई। अतः वह चन्द्रगुप्त के रूप में दूसरे आश्रय को प्राप्त कर तुरन्त उसके पास चली गई। इस प्रकार नन्दवंश से मौर्यवंश को प्राप्त हो

गई।प्रजा भी लक्ष्मी का ही अन्धानुकरण कर चन्द्रगुप्त के आश्रित हो गई। जो हमारे विश्वस्त पुरुष थे वे यद्यपि चन्द्रगुप्त के आश्रित तो नहीं हुए तथापि वे ज्यादा कुछ नहीं कर पाए। एक तो उनके सारे प्रयत्न विफल हो गए और दूसरे वे अपने नायक राजा नन्द के अभाव में उसी प्रकार निष्क्रिय हो गए जिस प्रकार सिर के बिना शरीर के शेष अङ्ग क्रियारहित हो जाते हैं।

उक्त श्लोक में उपमा, काव्यलिङ्ग तथ श्लेष के कारण संस ष्टि अलंकार तथा शार्दूलविक्रीडित छन्द है।

संस्क त भावार्थ—

नष्टालम्बनभीता राजलक्ष्मीः स्वैरिणी नारी इव नन्दवंशात् अन्यवंशं मौर्यवशम् इत्यर्थः समाश्रिता। पूर्वप्रस्थितानुगमनशीलाः जनाः स्वामिस्नेहं परित्यज्य तामेव श्रियम् अनुस त्य मौर्ये संसक्ताः। अनधिगतं पुरुषकारस्य फलं यैः ताद शैः हिततमैः अस्माभिः अपि मौर्यलक्ष्मीहरणरूपस्य कार्यस्य भारः त्यक्तः। अथवा ते आप्ताः अपि किं कर्तुं शक्नुवन्ति न कि चिदपि इत्यर्थः यतः ते शिरसा वियुक्ताः हस्तपादादय इव स्थिताः सन्ति।

अपि च—

पतिं त्यक्त्वा देवं भुवनपतिमुच्चैरभिजनं
गता छिद्रेण श्रीव षलमविनीतेव व षली।
स्थिरीभूता चास्मिन्किमिह करवाम स्थिरमपि
प्रयत्नं नो येषां विफलयति दैवं द्विषदिव।।६।।

अन्वय— भुवनपतिम् उच्चैरभिजनं पतिं त्यक्त्वा श्रीः अविनीता व षली इव छिद्रेण व षलं गता च अस्मिन् स्थिरीभूता इह किं करवाम येषां नः स्थिरं प्रयत्नम् अपि दैवं द्विषदिव विफलयति।

सन्दर्भ— उक्त श्लोक में राक्षस भाग्य को ही लक्ष्मी द्वारा समस्त प थ्वी के शासक उच्चवंशीय राजा नन्द को छोड़ कर निम्नवंशीय चन्द्रगुप्त का आश्रय लिए जाने का तथा वहीं पर स्थिर हो जाने का दोषी बतलाता है।

हिन्दी-अनुवाद—

और भी -

प थ्वी के स्वामी, ऊँचे कुल में उत्पन्न (अपने) पति महाराज (नन्द) को छोड़कर लक्ष्मी दुराचारिणी शूद्रा के समान एक दुर्बलता का लाभ उठाकर शूद्र (चन्द्रगुप्त) के पास चली गई और इसमें स्थिर हो गई। इस विषय में (हम) क्या करें जिन हमारे द ढ़ प्रयास को भी भाग्य शत्रु के समान विफल कर देता है। (६)

स्पष्टीकरण— राक्षस का अभिप्राय यह है कि राजा नन्द यद्यपि समस्त संसार के शासक थे, ऊँचे कुल में उत्पन्न हुए थे तथापि उनके द्वारा चाणक्य को आदर के आसन से हटाए जाने का एक अपराध किए जाने पर ही लक्ष्मी इस अवसर का लाभ उठाकर इस बहाने से निम्नवंशोत्पन्न चन्द्रगुप्त के पास एक दुराचारिणी स्त्री के समान चली गई और वहीं स्थिर हो गई। यदि वह सदाचारिणी होती तो उनके इस अपराध की उपेक्षा कर देती। हम उसे वापस लाने का जितना भी द ढ़ प्रयत्न करते हैं, भाग्य उसे विफल कर देता है। ऐसी परिस्थिति में हम कुछ भी नहीं कर सकते।

राक्षस यहाँ स्पष्टतः चन्द्रगुप्त से नन्दों की राजलक्ष्मी वापस लेने के लिए अपने द्वारा बनाई गई व पूर्ण रूप से असफल हुई योजनाओं की तरफ सङ्केत कर रहा है।

उक्त श्लोक में दीपक, उपमा तथा अतिशयोक्ति से संस ष्टि अलङ्कार तथा शिखरिणी छन्द है।

संस्क त भावार्थ—

समस्तलोकस्य भर्तारम् उच्चवंशोत्पन्नं राजानन्दं परित्यज्य राजलक्ष्मीः तेषां चाणक्यप्रतिक तम् अपमानम् इत्येकेन रन्ध्रेण दुराचारिणी शूद्रा इव निम्नकुलोत्पन्नं चन्द्रगुप्तम् आश्रिता एव न अपितु तत्र अचलता अपि संव ता। अस्मिन् विषये वयं किं विदधाम येषाम् अस्माकं द ढ़ं प्रयासमपि भाग्यं शत्रुरिव मोघीकरोति।

देवे गते दिवमतद्विधम त्युयोग्ये
शैलेश्वरं तमधिक त्य क तः प्रयत्नः।
तस्मिन्हते तनयमस्य तथाप्यसिद्धिर्
दैवं हि नन्दकुलशत्रुरसौ न विप्रः।।७।।

अन्वय— अतद्विधम त्युयोग्ये देवे दिवं गते तं शैलेश्वरम् अधिक त्य प्रयत्नः क तः तस्मिन्हते अस्य तनयं तथापि असिद्धिः दैवं हि नन्दकुलशत्रुः असौ विप्रः न।

सन्दर्भ— उक्त श्लोक में राक्षस चन्द्रगुप्त से नन्दों की राजलक्ष्मी वापस लेने के लिए अपने द्वारा किए गए प्रयत्नों का तथा भाग्य के द्वारा उन्हें नष्ट कर दिए जाने का उल्लेख करता है।

हिन्दी अनुवाद—

मेरे द्वारा निस्सन्देह -

उस प्रकार की म त्यु के अयोग्य महाराज (नन्द) के स्वर्ग चले जाने पर उस पर्वतक को आश्रय बनाकर प्रयत्न किया गया। उसके मर जाने पर इसके पुत्र (मलयकेतु) को (आश्रय बनाया गया)। तब भी असफलता ही मिली। निस्सन्देह भाग्य ही नन्द कुल का शत्रु है वह ब्राह्मण (चाणक्य) नहीं। (७)

पवर्तक उस समय का प्रसिद्ध राजा रहा होगा जिसकी सहायता राक्षस ने नन्दों की म त्यु हो जाने पर सर्वार्थसिद्धि को राजा बनाने की इच्छा से की होगी परन्तु चाणक्य द्वारा आधे राज्य का प्रलोभन देकर उसे अपने पक्ष में मिला लेने पर तथा विषकन्या द्वारा उसे मार दिए जाने पर राक्षस ने मलयकेतु का आश्रय लिया परन्तु तब भी वह सफल नहीं हुआ क्योंकि प्रबल भाग्य ही नन्दवंश का शत्रु है।

उक्त श्लोक में काव्यलिङ्ग अलङ्कार तथा वसन्ततिलका छन्द है।

संस्क त भावार्थ—

आत्माननुरूपः मरणयोगः यस्य ताद शे राजनि नन्दे स्वर्गं प्राप्ते सति तं प्रसिद्धं पर्वतकम् आश्रित्य सर्वार्थसिद्धिप्रतिष्ठापनार्थं प्रयासः विहितः परं चाणक्येन राज्यार्धपरिपणनप्रलोभनेन मत्तो विभेद्य स्वायत्तीक ते छद्मना विषकन्यया तस्मिन् पर्वतके हते अस्य पुत्रं मलयकेतुमधिक त्य प्रयत्नः क तः तथापि कार्यसिद्धिः न जाता। अतः इदं मन्ये यत् भाग्यं हि नन्दकुलविद्वेपी **असौ ब्राह्मणः चाणक्यः न।**

अहो विवेकशून्यता म्लेच्छस्य। कुतः –

यो नष्टानपि बीजनाशमधुना शूश्रूषते स्वामिनः
तेषां वैरिभिरक्षतः कथमसौ सन्धास्यते राक्षसः।
एतावद्धि विवेकशून्यमनसा म्लेच्छेन नालोचितं
दैवेनोपहतस्य बुद्धिरथवा सर्वा विपर्यस्यति।।८।।

अन्वय— यः अधुना अपि बीजनाशम् नष्टान् स्वामिनः शुश्रूषते असौ राक्षसः अक्षतः तेषां वैरिभिः कथं सन्धास्यते। हि एव्तद् विवेकशून्यमनसा म्लेच्छेन नालोचितम् अथवा दैवेन उपहतस्य बुद्धिः सर्वा विपर्यस्यति।

सन्दर्भ— उक्त श्लोक में राक्षस मलयकेतु की विवेकशून्यता पर आश्चर्य प्रकट करता है कि उस मूर्ख ने मेरे द्वारा चन्द्रगुप्त के साथ सन्धि की जाने की बात भी किस प्रकार सोच ली।

हिन्दी अनुवाद—

उस म्लेच्छ की मूर्खता आश्यचर्यजनक है। क्योंकि -

जो (राक्षस) अब भी बीजनाश की स्थिति तक अर्थात् समूल नष्ट हुए स्वामियों (नन्दों) की सेवा कर रहा है वह राक्षस अक्षत (स्वस्थ) रहते हुए उनके शत्रुओं के साथ किस प्रकार सन्धि कर लेगा। निस्सन्देह इतना सा भी विवेकशून्य मन वाले म्लेच्छ के द्वारा नहीं सोचा गया अथवा भाग्य के द्वारा मारे हुए की बुद्धि सर्वथा विपरीत हो जाती है। (८)

स्पष्टीकरण— राक्षस मलयकेतु की मूर्खता पर आश्चर्यचकित होता है उसने तथ्यों की खोज किए बिना ही राक्षस को विश्वासघाती समझ कर बाहर निकाल दिया और उसके पाँच परम मित्र राजाओं को भी मरवा दिया। उसने इतना-सा भी नहीं सोचा कि जो राक्षस नन्दों के वंशसहित नष्ट हो जाने पर भी दिवंगत उनको ही प्रसन्न करने के लिए प्रयत्नशील है वह जीते जी उनके शत्रुओं से किस प्रकार सन्धि कर सकता है। फिर वह कहता है इसमें मलयकेतु का कोई दोष नहीं है क्योंकि विनाश काल उपस्थित हो जाने पर मनुष्य की बुद्धि विपरीत हो जाती है । राक्षस ने मलयकेतु को यहाँ म्लेच्छ अपशब्द के रूप में कहा है।

प्रस्तुत श्लोक में अर्थान्तरन्यास अलङ्कार तथा शार्दूलविक्रीडित छन्द है।

संस्क त भावार्थ—

यः राक्षसः गते पि काले समूलं म तान् स्वामिनन्दान् परिचरति दिवंगतान् तानेव आराधयितुं प्रयत्नशीलः सः एव राक्षसः अभिन्नशरीरः सन् तेषां शत्रुभिः चन्द्रगुप्तादिभिः केन प्रकारेण सन्धिं करिष्यति, नूनम् एतन्मात्रमपि सदसद्विचारशून्यबुद्धिना मलयकेतुहतकेन न विचारितम्। अथवा व था एव तं निन्दामि वस्तुतस्तु भाग्येन विनाशितस्य जनस्य बुद्धिः सर्वथा विपरीता भवति।

तदिदानीमपि तावदरातिहस्तगतो विनश्येन्न तु राक्षसश्चन्द्रगुप्तेन सह सन्दधीत। अथवा मम काममसत्यसन्ध इति वरमयशो न तु शत्रुव चनपराभूत इति। (समन्तादवलोक्य सास्रम्) एतास्ता देवपादक्रमणपरिचयपवित्रीक ततलाः कुसुमपुरोपकण्ठभूमयः। इह हि -

हिन्दी अनुवाद— तो अब भी शत्रु के हाथ में पड़ जाने पर राक्षस नष्ट हो जाएगा परन्तु चन्द्रगुप्त के साथ सन्धि नहीं करेगा। अथवा 'यह असत्य प्रतिज्ञा वाला है' मुझे यह अपयश शत्रु

की चाल से पराजित होने की अपेक्षा अधिक रुचिकर है । (चारों तरफ देखकर आँखू सहित) महाराज नन्द के पैरों को रखने से पवित्र तल वाली ये कुसुमपुर की सीमान्त भूमियाँ है। यहाँ निस्सन्देह-

स्पष्टीकरण– राक्षस के ऊपर एक तरफ तो मलयकेतु ने यह आरोप लगाया है कि वह चन्द्रगुप्त से मिल गया है और मलयकेतु के प्रति उसने अपनी प्रतिज्ञा पूरी नहीं की। यह राक्षस के लिए अपयश की बात है परन्तु दूसरी तरफ शत्रु (चाणकय) के हाथों पराजित हो जाना भी उसके लिए अपयश की बात है। जब दोनों अपयशों में से एक को चुनना राक्षस के लिए अनिवार्य हो गया है ता तो वह प्रथम अपयश को कि 'राक्षस चन्द्रगुप्त के साथ मिल गया और उसने मलयकेतु के प्रति की गई प्रतिज्ञा को नहीं निभाया' स्वीकार करना इस अपयश की अपेक्षा अधिक श्रेष्ठ समझता है कि राक्षस शत्रु की चाल में फँसकर पराजित हो गया। इससे यह स्पष्ट है कि राक्षस पराजित राजनीतिज्ञ कहलाए जाने की अपेक्षा असत्यसन्ध कहलाया जाना अपेक्षाक त अधिक पसन्द करता है।

शाङ्र्गाकर्षावमुक्तप्रशिथिलकविकाप्रग्रहेणात्र देशे
देवेनाकारि चित्रं प्रजविततुरगं बाणमोक्षश्चलेषु।
अस्यामुद्यानराजौ स्थितमिह कथितं राजभिस्तैर्विनेत्थं
संप्रत्यालोक्यमानाः कुसुमपुरभुवो भूयसा दुःखयन्ति।।६।।

अवयव– अत्र देशे देवेन शाङ्र्गाकर्षावमुक्तप्रशिथिलकविकाप्रग्रहेण प्रजविततुरगं चलेषु चित्रं बाणमोक्षः अकारि। अस्याम् उद्यानराजौ स्थितम् इह राजभिः कथितं सम्प्रति तैः विना इत्थम् आलोक्यमानाः कुसुमपुरभुवः भूयसा दुःखयन्ति।

सन्दर्भ– कुसुमपुर की सीमान्त भूमियों को देखते ही राक्षस के मानसपटल पर राजा नन्द की स्म तियाँ एक बार पुनः नवीन हो जाती हैं और उसे उन स्थानों का स्मरण हो जाता है जहाँ राजा नन्द शिकार करते थे, विश्राम करते थे तथा अन्य राजाओं से वार्त्तालाप करते थे।

हिन्दी अुनवाद–

इस स्थान पर महाराज (नन्द) के द्वारा धनुष खींचते समय छोड़ी गई अतः ढीली लगाम की पकड़ के कारण तीव्र गति से भागते हुए घोड़े से च चल लक्ष्यों पर अद्भुत ढंग से बाण छोड़ा जाता था। इस व क्ष पंक्तियों में बैठा जाता था (और) यहाँ राजाओं के साथ बातचीत की जाती थी। अब उनके बिना इस प्रकार देखी जाने पर कुसुमपुर की भूमियाँ अत्यधिक पीड़ित करती हैं। (१)

स्पष्टीकरण– राक्षस राजा नन्दों की आश्चर्यजनक ढंग से बाण चलाने की प्रशंसा करता है। राजा नन्द धनुष खींचते समय लगाम छोड़ देते थे और लगाम की पकड़ ढीली होते ही उनके घोड़े तीव्र गति से भाग रह थे। दूसरी तरफ वह लक्ष्य (पशु) जिस पर बाण साधना है, वह भी तीव्र गति से भाग रहा है। परन्तु फिर भी राजा नन्द दोनों में तालमेल बिठा कर इस कुशलता से बाण चलाते थे कि वह सीधा निशाने पर जाकर लगता था। इस प्रकार निशाना लगाना वास्तव में आश्चर्यजकन है।

उक्त श्लोक में स्वाभावोक्ति अलङ्कार स्रग्धरा छन्द है।

संस्क त भावार्थ—

अस्मिन् प्रदेशे राजा नन्देन धनुषः आकर्षणकर्मणि हस्तात् पातितः अतएव अतिश्लथः खलीनवल्गा यस्य तथाविधेन सता प्रव द्धवेगः अश्वः यस्मिन् कर्मणि तद् यथा तथा गतिशीलेषु लक्ष्येषु महदाश्चर्यकारि शरनिक्षेपः क तः। अस्याम् उपवनानां व क्षाणाम् इत्यर्थः पंक्तौ स्थितम्। अस्मिन् स्थाने च न पैः सम्भाषितम्। अनेन प्रकारेण तत् तत् स्म तिपथम् आनीय इदानीं तैः सर्वैः शून्याः कुसुमपुरसीमान्तभूमयः द श्यमानाः आधिक्येन पीड्यन्ति।

तत्क्व नु गच्छामि मन्दभाग्यः। (विलोक्य) भवतु द ष्टमेतज्जीर्णोद्यानम्। अत्र प्रविश्य कुतश्चित्चन्दनदासप्रव ़तिमुप्लप्स्ये। अहो अलक्षितनिपाताः पुरुषाणां समविषमदशापरिणतयो भवन्ति। कुत-

हिन्दी अनुवाद—

तो मन्दभागी (मैं) कहाँ जाऊँ। (देखकर) ठीक है, यह जीर्णोद्यान देख लिया गया है। यहाँ प्रवेश करके (शायद) कहीं से (कुतश्ति्) चन्दनदास का समाचार प्राप्त कर लूँ। आश्यर्च है कि मनुष्यों की अनुकूल और प्रतिकूल अवस्थाओं के परिवर्तन बिना किसी पूर्वसूचना के होते हैं क्योंकि -

पोरैरंगुलिभिर्नवेन्दुवदहं निर्दिश्यमानः शनैर्
यो राजेव पुरा पुरान्निरगमं राज्ञां सहस्रैर्व तः।
भूयः संप्रति सो हमेव नगरे तत्रैव वन्ध्यश्रमो।
जीर्णोद्यानकमेष तस्कर इव त्रासाद्विशामि द्रुतम्।।१०।।

अन्वय— यः अहं पुरा पौरैः अङ्गुलिभिः नवेन्दुवत् निर्दिश्यमानः राज्ञां सहस्रैः व तः राजा इव पुरात् शनैः निरगमम् सः अहमेव संप्रति वन्ध्यश्रमः भूयः तत्रैव नगरे तस्कर इव त्रासात् द्रुतं जीर्णोद्यानकम् एषः प्रविशामि।

सन्दर्भ— राक्षस प्रस्तुत श्लोक में अपनी पूर्व समय की अनुकूल तथा वर्तमान समय की प्रतिकूल अवस्था में अन्तर स्पष्ट करता है।

हिन्दी अनुवाद—

जो मैं पहले नगरवासियों द्वारा अङ्गुलियों से नए चन्द्रमा के समान इशारा किया जाता हुआ, सैकड़ों राजाओं से घिरा हुआ, राजा के समान कुसुमपुर से धीरे धीरे निकलता था वह मैं ही अब निष्फल प्रयत्न वाला होकर पुनः उसी नगर में चोर के समान भय के कारण शीघ्रता से जीर्ण उद्यान में यह प्रवेश कर रहा हूँ। (१०)

स्पष्टीकरण— जब राजा नन्द जीवित थे तब उनका महामात्य होने के कारण राक्षस की शान भी निराली थी। जब वह अपने महल से बाहर निकलता था तो नगरवासी उत्सुकतावश बाहर आ जाते थे और नवोदित चन्द्रमा के समान ही उसकी तरफ इशारा करते हुए कहते थे कि देखो वह राक्षस जा रहा है।

पहले अनेक राजाओं से घिरा हुआ राक्षस धीरे धीरे राजा के समान जाता था परन्तु अब राक्षस की इतनी दयनीय अवस्था हो गई है कि वह नन्दराज को पुनः प्राप्त न कर सकने के कारण असफल प्रयत्न वाला है और इस भय से कि कहीं कोई उसे देख न ले, वह चोर के समान डरा हुआ जल्दी जल्दी जीर्णोद्यान में प्रवेश कर रहा है।

इसमें उपमा अलंकार तथा शार्दूलविक्रीडित छन्द है।

संस्क त भावार्थ—

पुरा राजानन्दे जीवति यः अहं राक्षसः पुरवासिभिः अङ्गुलिभिः नवोदितः चन्द्र इव (प्रतिपच्चन्द्र इव) अन्योन्यं प्रदर्श्यमानः, राज्ञां सहस्रैः परिवेष्टितः न प इव कुसुमपुरात् मन्दगतिः निर्गतवान् सः अहमेव विफलप्रयासः सन् अद्य पुनः तस्मिन्नेव नगरे चौर इव शीघ्रं कुत्सितमिदमुद्यानम् एषः प्रविशामि।

अथवा येषां प्रसादादिमासीत्त एव न सन्ति। (नाट्येन प्रविश्यावलोक्य च) अहो जीर्णोद्यानस्यारमणीयता। अत्र हि-

विपर्यस्तं सौधं कुलमिव महारम्भरचनं
सरः शुष्कं साधोर्हृदयमिव नाशेन सुहृदाम्।
फलैर्हीना व क्षा विगुणविधियोगादिव नयास्
त णैश्छन्ना भूमिर्मतिरिव कुनीतैरविदुषः।।११।।

अन्वय— महारम्भरचनं सौधं (महारम्भरचनं) कुलमिव विपर्यस्तं सरः स हृदां नाशेन साधोः ह दयमिव शुष्कं विगुणविधियोगात् (फलैर्हीनाः) नयाः इव व क्षाः फलैर्हीनाः भूमिः कुनीतैः (छन्ना) अविदुषः मतिः इव त णैः छन्ना।

सन्दर्भ— उक्त श्लोक में राक्षस जीर्णोद्यान की अरमणीयता का वर्णन करने के साथ-साथ नन्दवंश के विनाश, अपने हृदय की पीड़ा तथा मलयकेतु की मूर्खता की तरफ भी सङ्केत करता है।

हिन्दी अनुवाद—

अथवा जिनकी क पा से यह (सब) था वे नहीं है। (अभिनयपूर्वक प्रवेश करके और देखकर) अहो, जीर्णोद्यान की अरमणीयता (तो देखो)। यहाँ निस्सन्देह -

महान् प्रयत्नों से निर्मित यह महल महान् कार्य करने वाले वंश के समान नष्ट हो गया हे। तालाब मित्रों के विनाश से सज्जन के हृदय के समान सूख गया है। विपरीत भाग्य के कारण फलरहित (फलैर्हीनाः) नीतियों के समान व क्ष फलों से विहीन हैं (और) भूमि कुनीतियों से व्याप्त मूर्ख की बुद्धि के समान तिनकों से व्याप्त है। (११)

स्पष्टीकरण— 'महारम्भरचनं' महल तथा कुल दोनों का विशेषण है। महल के पक्ष में इसका अर्थ है 'महान् प्रयत्नों से निर्मित' परन्तु कुल के पक्ष में इसका अर्थ है 'महान कार्य करने वाला'। इससे राक्षस नन्दवंश की तरफ सङ्केत करता है।

तालाब के सूखने से राक्षस अपने हृदय की खिन्नता की तरफ सङ्केत करता है जो उसके मित्र चित्रवर्मा इत्यादि तथा अन्य लोगों के नाश से अत्यधिक दुःखी है। व क्षों के फलरहित होने से वह अपनी नीतियों की असफलता की तरफ सङ्केत करता हैं जो भाग्य की विपरीतता के कारण पूर्ण रूप से नष्ट हो गईं।

भूमि का तिनकों द्वारा आच्छादित होने से राक्षस मलयकेतु की बुद्धि की तरफ सङ्केत कर रहा है जो भागुरायण की कुनीतियों से मोहित है।

उक्त श्लोक में मालोपमा अलङ्कार तथा शिखरिणी छन्द है।

संस्क त भावार्थ—

विपुलोद्योगरचित् इदं हर्म्यं महारम्भरचना धर्मादिपुरुषार्थक्रिया यस्य ताद शं वंशम् इव विनष्टम्। एषः जलाशयः मित्राणां नाशेन सहृदयस्य इव निर्जलं नीरस च जातम्। अमी उद्यानपादपाः गुणहीनस्य राज्ञः मलयकेतोः सम्पर्कात् मम नीतिप्रयोगा इव फलरहिताः स्थिताः। अत्रत्या स्थली भागुरायणप्रयुक्तैः कपटोपदेशैः मूर्खस्य मलयकेतोः बुद्धिरिव घासादिभिः परिव्याप्ता।

अपि च—

क्षताङ्गीनां तीक्ष्णैः परशुभिरुदग्रैः क्षितिरुहां
रुजा कूजन्तीनामविरतकपोतोपरुदितैः।
स्वनिर्मोकच्छेदैः परिचितपरिक्लेशक पया
श्वसन्तः शाखानां व्रणमिव निबन्धन्ति फणिनः।१२।।

अन्वय— तीक्ष्णैः उदग्रैः परशुभिः क्षताङ्गीनां क्षितिरुहां रुजा अविरतकपोतोपरुदितैः इव कूजन्तीनां शाखानां व्रणं परिचितपरिक्लेशक पया श्वसन्तः फणिनः स्वनिर्मोकच्छेदैः निबन्धन्ति।

सन्दर्भ— उक्त श्लोक में कवि विशाखदत्त ने राक्षस के मुख से जीर्णोद्यान के व क्षों को परशुओं द्वारा काटे जाने का, कबूतरों की कूज द्वारा उनके दुःख को प्रकट किए जाने का तथा सर्पों की केंचुली द्वारा उनके घावों को बाँधे जाने का अत्यधिक काव्यात्मक वर्णन किया है।

हिन्दी अनुवाद—

और भी - तेज धार वाले कठोर परशुओं के द्वारा नष्ट शरीर वाले व क्षों की पीड़ा से निरन्तर कबूतरों की कूज के द्वारा (मानों) विलाप करती हुई शाखाओं के घाव को निरन्तर साथ रहने से परिचित होने के कारण उनके दुःख से द्रवीभूत लम्बी आहें भरते हुए साँप अपनी केंचुली के टुकड़ों से बाँध रहे हैं। (१२)

स्पष्टीकरण— कवि ने एक वास्तविकता का अत्यन्त काव्यात्मक वर्णन करके अपनी प्रतिभा को प्रदर्शित किया है। वास्तविकता यह है कि उद्यान के व क्षों की शाखाएँ परशुओं द्वारा काट दी गई हैं, कबूतर उन पर कूज रहे हैं व साँप की केंचुली उन शाखाओं पर लिपटी हुई है। परन्तु कवि ने इसका काव्यात्मक वर्णन इस प्रकार किया है कि व क्षों का वह स्थान जहाँ से शाखाओं को काट दिया गया है, व क्षों का घाव है। उन घावों में होने वाली पीड़ा को ये व क्ष कबूतरों की कूज के द्वारा प्रकट कर रहे हैं और चूंकि साँप उन व क्षों पर बहुत दिनों से रह रहे हैं अतः परिचित होने के कारण उनके घाव की व्यथा को सहन नहीं कर पा रहे। परिणामतः लम्बी लम्बी दुःखभरी आहें भर रहे हैं और साथ ही साथ उन घावों पर अपनी केंचुली रूपी पट्टी भी बाँध रहे हैं।

प्रस्तुत श्लोक में उत्प्रेक्षा तथा शिखरिणी छन्द है।

संस्क त भावार्थ—

निशितैः कठोरैश्च कुठारैः छिन्नावयवानां व क्षाणां पीडया शाखाश्रितानां पारावतानां अजस्राणि यानि कूजनानि तैः शब्दं कुर्वन्तीनां शाखानां यत् कुठारक तं क्षतं तत् शाखाश्रयाः सर्पाः सततसङ्गितया क तपरिचयानां क्लेशदर्शनेन या दया तया हेतुना दीर्घनिःश्वासं त्यजन्तः आत्मनः क चुकरूपस्य खण्डैः वेष्टयन्ति इव।

एते च तपस्विन–

अन्तः शरीरपरिशोषमुदग्रयन्तः
कीटक्षतिं शुचमिवातिगुरुं वहन्तः।
छायावियोगकमलिना व्यसने निमग्ना
व क्षाः श्मशानमुपगन्तुमिव प्रव त्ताः।।१३।।

अन्वय– अन्तःशरीरपरिशोषम् उदग्रयन्तः कीटक्षतिम् अतिगुरुम् इव वहन्तः छायावियोगमलिना व्यसने निमग्ना व क्षाः श्मशानम् उपगन्तुं प्रव त्ताः इव।

सन्दर्भ– उक्त श्लोक में राक्षस जीर्णोद्यान के व क्षों की अत्यन्त शोचनीय अवस्था का वर्णन काव्यात्मक ढंग से करता है।

हिन्दी अनुवाद–

और ये बेचारे -

शरीर के अन्दर के शोषण को प्रकट करते हुए, कीड़ो (द्वारा किए गए) छिद्रों को अत्यधिक महान् कष्ट के समान धारण करते हुए, छायारहित होने से कान्तिहीन (तथा) दुःख में डूबे हुए (ये) व क्ष श्मशान को जाने के लिए तत्पर से हो रहे हैं। (१३)

स्पष्टीकरण– प्रस्तुत श्लोक में कवि ने कल्पना की है कि मानों शाखाओं के कट जाने से तथा सिंचाई इत्यादि द्वारा उनकी देखभाल न होने के कारण सूर्य की तेज किरणों का प्रकाश सीधा व क्षों पर पड़ रहा है जिसमें व क्ष अन्दर से भी सूखने प्रारम्भ हो गए हैं। कीड़ों के द्वारा खाए जाने से व क्षों में स्थान-स्थान पर छिद्र हो गए हैं। कवि ने कल्पना की है कि मानो दुःख से उन व क्षों का हृदय छलनी-छलनी हो रहा है। वे छाया से रहित है। छाया पत्तों के द्वारा होती है। जब पत्ते नहीं है तो हरियाली का भी अभाव है। हरियाली प्रसन्नता की सूचक है अतः प्रसन्नता से रहित होने के कारण वे व क्ष कान्तिहीन हैं तथा दुःख में निमग्न से प्रतीत हो रहे हैं। इन सब से ऐसा लगता है कि मानों उनका अन्त काल समीप हो। उक्त श्लोक में कवि कल्पना अनुपम है।

उक्त श्लोक में उत्प्रेक्षा अलङ्कार तथा वसन्ततिलका छन्द है।

संस्क त भावार्थ–

जलसेकाभावात् शरीरस्य अभ्यन्तरं शोषणम् उपदर्शयन्तः इव कीटक्षतिरन्ध्रनिर्यासैः अश्रूणि मु चन्त इव, शाखासु छिन्नासु छायावियोगेन आतपपीडिताः अतएव विपदि पतिताः इव एते दीनाः व क्षाः पित वनम् आश्रयितु मर्त्तुम् इत्यर्थः तत्परा इव।

यावदस्मिन्विषमदशापरिणामसुलभे भिन्नशिलातले मुहूर्त्तमुपविशामि। (उपविश्याकर्ण्य च) अये किमयमाकस्मिकः पटुपटहशङ्खमिश्रो नान्दीनाद श्रूयते। य एषः -

हिन्दी अनुवाद–

जब तक विषम दशा के फलस्वरूप (परिणाम) सुलभ इस टूटे हुए (भिन्न) चबूतरे पर क्षण भर के लिए बैठता हूँ। (बैठकर और सुनकर) अरे तेज (पटु) नगाड़ों और शङ्ख की ध्वनि से मिश्रित असामयिक यह कैसी मङ्गलध्वनि सुनी जा रही है। जो यह -

प्रम द्ग छ्रोत णां श्रुतिपथमसारं गुरुतया
बहुत्वात्प्रासादैः सपदि परिपीतोज्झित इव।

असौ नान्दीनादः पटुपटहशङ्खध्वनियुतो
दिशां द्रष्टुं दैर्घ्यं प्रसरति सकौतूहल इव।।१४।।

अन्वय— गुरुतया श्रोत णाम् असारं श्रुतिपथं प्रम द्ग्न्, बह त्वात् प्रासादैः सपदि परिपीतोज्झित इव, पटुपटहशङ्खध्वनियुतः असौ नान्दीनादः इव सकौतूहलः दिशां दैर्घ्यं द्रष्टुं प्रसरति।

सन्दर्भ— उक्त श्लोक में चबूतरे पर बैठते ही राक्षस द्वारा सुने गए नगाड़ों और शङ्खों की ध्वनि से मिश्रित नान्दीनाद का काव्यात्मक वर्णन किया गया है।

हिन्दी अनुवाद—

अत्यधिक भारी (तेज) होने के कारण श्रोताओं के सङ्कुचित कर्णविवरों को पीड़ित करता हुआ, बहुत अधिक होने कारण महलों द्वारा पीकर तुरन्त ही उगला गया, तेज नगाड़ों और शङ्खों की ध्वनि से मिश्रित वह मंगलनाद मानों उत्सुकतावश दिशाओं के विस्तार को देखने के लिए फैल रहा है। (१४)

स्पष्टीकरण— मङ्गलनाद का वर्णन करने में कवि की कल्पना निस्सन्देह प्रशंसनीय है। तेज बजते हुए नगाड़ों और शङ्खों की मङ्गल ध्वनि पहले श्रोताओं के कान में प्रवेश करती है परन्तु अत्यधिक तेज होने के कारण श्रोता उसको सहन नहीं कर पाते तथा तथा कान पर हाथ रख लेते हैं। इस तथ्य का वर्णन करने में कवि ने कल्पना की है कि जिस प्रकार कोई बड़ी वस्तु छोटे से छेद से प्रवेश करवाई जाने पर कष्ट पहुँचाती है उसी प्रकार विशाल (तेज) मङ्गलगान सङ्कुचित कर्ण पथ को पीड़ित कर रहा है। तत्पश्चात् वह मङ्गलगान महलों में पहुँचता है और महलों की दीवारों से टकरा कर प्रतिध्वनित होता है। इसमें कवि ने कल्पना की है कि जिस प्रकार बहुत अधिक मात्रा में पी गई कोई भी वस्तु उगल दी जाती है उसी प्रकार महल भी मानों प्रतिध्वनि के रूप मे ंउस मङ्गलगान का वमन कर रहा है और अन्त में वह मङ्गल गान चहुँ दिशा में व्याप्त हो जाता है मानों यह देखना चाहता हो कि दिशाओं का विस्तार कहाँ तक है।

शत्रु देश में किया जाता हुआ मङ्गलगान शत्रु की प्रसन्नता का सूचक है अतः उसे सुनकर राक्षस द्वारा कष्ट का अनुभव किया जाना स्वाभाविक ही है।

उक्त श्लोक में उत्प्रेक्षा अलङ्कार तथा शिखरिणी छन्द है।

संस्क त भावार्थ—

प्रभूततया आकर्णयित णां सङ्कुचितं कर्णविवरं पीडयन्, बाहुल्यात् राजभवनैः पूर्व परिपीतः परं पश्चात् झटिति एव प्रतिध्वनिव्याजेन उद्वान्त इव, ढक्कानां शङ्खाना च ध्वनिभिः युतः असौ मङ्गलतूर्यध्वनिः कौतुकवान् इव ककुभां विस्तारम् अवलोकयितुं सर्वत्र व्याप्नोति।

(विचिन्त्य) आः ज्ञातम् एष हि मलयकेतुसंयमनसंजातो राजकुलस्य (इत्यर्द्धोक्ते सासूयम्) मौर्यकुलस्याधिकपरितोषं पिशुनयति। (सवाष्पम्) कष्टं भोः कष्टम्।

श्रावितो स्मि श्रियं शत्रोरभिनीय च दर्शितः।
अनुभावयितुं मन्ये यत्नः संप्रति मां विधेः।।१५।।

अन्वय— शत्रै : श्रियं श्रावितः अस्मि अभिनीय च दर्शितः मन्ये संप्रति विधेः यत्नः माम् अनुभावयितुं (वर्तते)।

सन्दर्भ— मलयकेतु के पकड़े जाने की प्रसन्नता को अभिव्यक्त करने के लिए चन्द्रगुप्त के राजभवन में किए गए मङ्गलनाद को सुनकर राक्षस शत्रु के ऐश्वर्य से अत्यधिक ईर्ष्यायुक्त हो जाता है। वह भाग्य को कोसते हुए कहता है।

हिन्दी अनुवाद—

(सोचकर) अच्छा पता चल गया। यह निस्सन्देह मलयकेतु को पकड़ने से उत्पन्न राजकुल की (इस प्रकार आधा कह कर ईर्ष्यासहित) मौर्यवंश की अत्यधिक प्रसन्नता को सूचित कर रहा है। (आँसू भरकर) कष्ट है, हाय कष्ट है।

भाग्य के द्वारा शत्रु का ऐश्वर्य (मुझे) सुना दिया गया है और यहाँ लाकर दिखा दिया गया है। मैं समझता हूँ कि अब भाग्य का प्रयास मुझे अनुभव करवाने का है। (१५)

स्पष्टीकरण— निम्न मौर्यकुल को राजकुल कहने के कारण राक्षस ईर्ष्या से युक्त हो जाता है। द्वितीय तथा प चम अङ्क में राक्षस ने शत्रुओं की अभूतपूर्व सफलता के विषय में सुना था फिर पाटलिपुत्र आकर मलयकेतु को पकड़ लिए जाने में उसने देख भी लिया। दर्शन श्रवण से अधिक कष्टप्रद है और अब उसे प्रतीत होता है कि चन्दनदास को मुक्त करवाने के लिए उसे शत्रुओं के ऐश्वर्य का अनुभव भी करना पड़ेगा।

उक्त श्लोक में अनुष्टुब् छन्द और अनुप्रास अलङ्कार है।

संस्क त भावार्थ—

(विधिना) रिपोः चन्द्रगुप्तमौर्यस्य राज्यलक्ष्मी तत्सम्बन्धिनी कथाम् इत्यर्थः प्राक् आकर्णितः अस्मि। श्रवणात् कष्टतरं दर्शनमिति प्रतिकूलो विधिः मामद्य सुखसम द्विदर्शनार्थम् इह आनितवान्। एतावताप्यसौ अतुष्टः। शङ्के अधुना मां शत्रोः श्रियं बोधयितुं दैवहतकस्य प्रयासः वर्तते।

पुरु०— **आसीनो यम्। यावदार्यचाणक्यादेशं संपादयामि। (आसीणो अअ।। जाव अज्जचाणक्कदिसं संपादेमि।) (राक्षसमपश्यन्निव तस्याग्रतो रज्जुपाशेन कण्ठमुद्बध्नाति)।**

राक्ष०— **(विलोक्य) अये कथमात्मानमुद्बध्नात्ययम्। अहमिव दुःखितस्तपस्वी। भवतु प च्छाम्येनम्। (उपस ज्य) भद्र किमिदमनुष्ठीयते?**

पुरु०— **(सवाष्पम्) आर्य यत्प्रियवयस्यविनाशदुःखितो स्माद शो मन्दभाग्यो नुतिष्ठति। (अज्जं जं पिअवअस्सविणासदुःखिदो अह्मारिसो मन्दभाग्गो णुचिठ्ठदि।)**

राक्ष०— **(आत्मगतम्) प्रथममेव मया ज्ञातं नूनमहमिवार्त्तस्तपस्वीति। (प्रकाशम्) हे व्यसनब्रह्मचारिन्यदि न गुह्यं नातिभारिकं वा ततः श्रोतुमिच्छामि।**

पुरु०— **आर्य, न रहस्यं नातिगुरुकं किं तु न शक्नोमि प्रियवयस्यविनाशदुःखितहृदय एतावन्मात्रमपि मरणस्य कालहरणं कर्तुम्। (अज्ज ण रहस्यं णदि गुरुअं किंदु ण सक्णोमि पिअवअस्सविणासदुक्खिदहिअओ एत्तिअमेतं वि मरणस्य कालहरणं कादुं।**

राक्ष०— **(निःश्वस्यात्मकगतम्) कष्टमेते स हृद्व्यसनेषु परवदुदासीनाः प्रत्यादिश्यामहे वयमनेन। (प्रकाशम्) भद्र, यदि न रहस्यं नातिगुरु वा तच्छ्रोतुमिच्छामि।**

पुरु०— **अहो निर्बन्ध आर्यस्य। का गतिः। निवेदयामि। अस्ति तावदत्र नगरे मणिकारश्रेष्ठी विष्णुदासो नाम। (अहो णिब्बन्धो अज्जस्स। का गई। णिवेदेमि। अत्थि दाव एत्थ णअरे मणिआरसेठ्ठी विह्णुदासो णाम।)**

राक्ष०— (आत्मगतम्) अस्ति विष्णुदासश्चन्दनदासस्य परमसुह त्। (प्रकाशम्) किं तस्य?

पुरु०— स मम प्रियवयस्यः (सो मम पिअवअस्सो)।

राक्ष०— (सहर्षमात्मगतम्) अये प्रियवयस्य इत्याह। अत्यन्तसन्निक ष्टः संबन्धः। हन्त ज्ञास्यति चन्दनदासस्य व त्तान्तम्।

पुरु०— संप्रति दीनजनदत्ताभरणादिविभवो ज्वलनं प्रवेष्टुकामो नगरन्निष्क्रान्तः। अहमपि यावत्तस्याश्रोतव्यं न श णोमि तावदात्मानमुद्बध्य व्यापादयितुमिदं जीर्णोद्यानमागतः। (संपदंदीणजणदिण्णाभरणादिविहवो जलणं पवेसिदुकामो णअीरादो णिक्कन्तो। अहं वि जाव तस्स असुणिदव्वं ण सुणेमि ताव अत्ताणं उब्बन्धिअ वावादइदुं इमं जिण्णुज्जाणं आअदो।)

राक्ष०— भद्र, अग्निप्रवेशे सुह दस्ते को हेतुः।

हिन्दी अनुवाद—

पुरुष— यह बैठ गया है। जब तक आर्य चाणक्य की आज्ञा का पालन करता हूँ।।

(राक्षस को न देखते हुए से उसके सामने रस्सी के फँदे से गला बाँधता है)

राक्षस— (देखकर) अरे यह क्या। यह स्वयं को फाँसी लगा रहा है। बेचारा मेरे समान ही दुःखी है। ठीक है इससे पूछता हूँ। (पास जाकर) भद्र, यह क्या किया जा रहा है?

पुरुष— (आँसू भरकर) आर्य, जो प्रिय मित्र के विनाश से दुःखी हमारे जैसा मन्दभाग्यशाली करता है।

राक्षस— (अपने आप) मेरे द्वारा तो पहले ही जान लिया गया था कि (यह) बेचारा निस्सन्हेद मेरे समान दुःखी है। (स्पष्ट रूप से) हे विपत्ति में (मेरा) साथ देने वाले (हे व्यसनब्रह्मचारिन्) यदि गुप्त अथवा बड़ी बात नहीं है तो मैं सुनना चाहता हूँ।

पुरुष०— आर्य, न गुप्त (और) न ही बड़ी बात है परन्तु प्रियमित्र के विनाश से दुःखी ह्रदय (मैं) मरने में इतना सा भी विलम्ब करने में समर्थ नहीं हूँ।

राक्षस— (लम्बी साँस लेकर अपने आप) कष्ट की बात है कि मित्र की विपत्ति में पराए के समान उदासीन रहने वाले ये हम इसके लज्जित किए जा रहे हैं। (स्पष्ट रूप से) भद्र, यदि न ही गुप्त है और न ही बड़ी बात है तो (मैं) सुनना चाहता हूँ।

पुरुष— अहो आर्य की ज़िद है। क्या उपाय है। बतलाता हूँ। इस नगर में विष्णुदास नाम का जौहरी हे।

राक्षस— (अपने आप) विष्णुदास चन्दनदास का परम मित्र है। (स्पष्ट रूप से) उसका क्या हुआ।

पुरुष— वह मेरा प्रिय मित्र है।

राक्षस— (हर्षपूर्वक अपने आप) अरे 'प्रियमित्र' ऐसा (इसने) कहा है। अत्यन्त घनिष्ठ सम्बंध है। प्रसन्नता की बात है कि (यह) चन्दनदास का समाचार जानता होगा।

पुरुष— आभूषण इत्यादि सम्पत्ति निर्धनों को देकर (वह) अब अग्नि में प्रवेश करने की इच्छा से कुसुमपुर से निकल गया है। मैं भी जब तक उसके न सुनने योग्य (समाचार) को अर्थात् म त्यु के बारे में नहीं सुनता तब तक स्वयं को बाँधकर मारने के लिए इस जीर्णोद्यान में आ गया हूँ।

राक्षस— भद्र, तुम्हारे मित्र का अग्नि में प्रवेश करने का क्या कारण है?

स्पष्टीकरण— अपने मित्र विष्णुदास के कारण स्वयं को फाँसी लगाते हुए पुरुष को देखकर राक्षस अपने मन में अत्यधिक लज्जित होता है। क्योंकि वह समझता है कि अपने उस मित्र चन्दनदास को बचाने के लिए भी वह उदासीन है जिसने उसके (राक्षस के) लिए अपना सर्वस्व न्यौछावर कर दिया।

राक्षस को ज्ञात है कि विष्णुदास चन्दनदास का परम मित्र है और वह पुरुष स्वयं को विष्णुदास का परम मित्र बतला रहा है। अतः मित्र का मित्र होने के कारण उस पुरुष को चन्दनदास के विषय में अवश्य पता होगा।

किमौषधपथातिगैरुपहतो महाव्याधिभिः

पुरु०— न हि न हि (णाहि णाहि।)

राक्ष०— किमग्निविषकल्पया नरपतेर्निरस्तः क्रुधा।

पुरु०— आर्य, शान्तं पापं शान्तं पापम्। चन्द्रगुप्तस्य जनपदे न न शंसा प्रतिपत्तिः। (अज्ज सन्तं पावं सन्तं पावं। चन्द्रउत्तस्स जणवदे ण णिसंसा पडिवत्ती।)

राक्ष०— अलभ्यमनुरक्तवान् किमयमन्यनारीजनम्।

पुरु०— (कर्णौ पिधाय) शान्तं पापम्। अभूमिः खल्वेषो विनयस्य। (सन्तं पापम्। अभूमी क्खु ऐसो अविणअस्स।)

राक्ष०— किमस्य भवतो यथा सुहृद एव नाशो वशः।।१६।।

अन्वय— किमौषधपथातिगैः महाव्याधिभिः उपहतः किम् अग्निविषकल्पया परपतेः क्रुधा निरस्तः किम् अयम् अलभ्यम् अन्यनारीजनम् अनुरक्तवान् किम् अस्य भवतः यथा अवशः स हृदः नाशः एव।

सन्दर्भ— प्रस्तुत श्लोक में राक्षस विष्णुदास द्वारा अग्नि में प्रवेश किए जाने के कई विकल्प पुरुष के सामने रखता है।

हिन्दी अनुवाद—

क्या औषधियों के मार्ग का अतिक्रमण करने वाली अर्थात् औषधियों द्वारा इलाज न की जा सकने वाली महामारियों से पीड़ित था।

पुरुष— नहीं नहीं।

राक्षस— क्या अग्नि और विषय के तुल्य राजा के क्रोध से ग्रस्त था?

पुरुष— आर्य, पाप शान्त हो, पाप शान्त हो। चन्द्रगुप्त के राज्य में क्रूरता नहीं है।

राक्षस— क्या यह प्राप्त न होने वाली किसी दूसरे की स्त्री में आसक्त हो गया था।

पुरुष— (दोनों कानों को बन्द करके) पाप शान्त हो। यह निस्सन्देह उद्दण्डता का स्थान नहीं है।

राक्षस— क्या इसका आपकी तरह कुछ न किए जा सकने योग्य मित्र का नाश ही (अग्नि प्रवेश का कारण है।) (१६)

स्पष्टीकरण— राक्षस प्रत्येक पंक्ति में एक विकल्प पुरुष के सामने रखता है जिसका उत्तर वह गद्य में देता है।

उक्त श्लोक में प थ्वी छन्द है।

संस्क त भावार्थ–

किं सः विष्णुदासः औषधानां पन्थानम् अतिगच्छन्तीति ताद शैः औषधाप्रतिविधेयैः महारोगैः प्रपीडितः येन सः प्राणान् परित्यज्य रोगयन्त्रणां परिहर्तुम् इच्छति। किं सः अग्नितुल्यया विषतुल्यया च दुरात्मनः चन्द्रगुप्तस्य कोपेन ग्रस्तः येनात्मानं व्यापाद्य राजरोषं परिहर्तुम् इच्छति। अथवा किं सः दुर्लभम् अन्यस्त्रियम् आसक्तवान् येन तदप्राप्तौ निर्विण्णः प्राणान् त्यक्तुमुद्यतः। किम् अस्य अपि भवत इव अप्रतीकार्यः मित्रस्य नाशः स जातः। भवानिव सो पि किं मित्रनाशाद् एव म्रियते।

पुरु०— आर्य, अथ किम्? (अज्ज अह इं?)

राक्ष०— (सावेगमात्मगतम्) चन्दनदास प्रियसुह दिति तद्विनाशो हुतभुक्प्रवेशहेतुरिति यत्सत्यं चलितमेवास्ते युक्तस्नेहपक्षपाताद्ध दयम्। (प्रकाशम्) तद्विनाशं च प्रियसुह द्वत्सलतया मर्तव्ये व्यवसितस्य सुचरितं च विस्तरेण श्रोतुमिच्छामि।

पुरु०— आर्य, अतो परं न शक्नोमि मन्दभाग्यो मरणस्य विघ्नमुत्पादयितुम्। (अज्ज अदो अवरं ण सक्णोमि मन्दभाग्गो मरणस्स विघ्नमुत्पादेदुं।)

राक्ष०— भद्र, श्रवणीया कथां कथय।

पुरु०— का गतिः? किं कर्तव्यम्? एष खलु निवेदयामि। श णोत्वार्यः। (का गई। किं कादव्वम्। एसो क्खु णिवेदेमि। सुणादु अज्जो।)

राक्ष०— भद्र, अवहितो स्मि।

पुरु०— अस्ति इह नगरे मणिकारश्रेष्ठी चन्दनदासो नाम। (अत्थि एत्थ णअरे मणआरसेठ्टी चन्दणदासो णाम।)

राक्ष०— (सविषादमात्मगतम्) एतत्तदपाव तमस्मच्छोकदीक्षाद्वारं दैवेन। ह्रदय स्थिरीभव। किमपि ते कष्टतरमाकर्णनीयमस्ति। (प्रकाशम्) भद्र, श्रूयते मित्रवत्सलः साधुः। किं तस्य?

पुरु०— स एतस्य विष्णुदासस्य प्रियवयस्यो भवति। (सो एदस्य विह्णुदासस्स पिअवअस्सो होदि।)

राक्ष०— (स्वगतम्) सो यमभ्यर्णः शोकवज्रपाथो ह्रदयस्य।

पुरु०— ततो विष्णुदासेन वयस्यस्नेहसद शमद्य विज्ञप्तश्चन्द्रगप्तः (तदो विहणदासेण व अस्ससिणेहसरिसं अज्ज विण्णविदो चन्दउत्तो)

राक्ष०— कथय किमिति?

पुरु०— देव, अस्ति मम गेहे कुटुम्बभरणपर्याप्तोर्थः तस्य विनिमयेन मुच्यतां प्रियवयस्यश्चन्दनदास इति। (देव अत्थि मम गेहे कुटुम्बभरणपज्जत्तो अत्थो। तस्स विणिमएण मुचिज्जदु पिअवअस्सो चन्दणदासो त्ति।)

राक्ष०— (स्वगतम्) साधु भो विष्णुदास साधु। अहो दर्शितो मित्रस्नेहः। कुतः ? -

हिन्दी अनुवाद–

पुरुष– आर्य, और क्या ?

राक्ष०– (आवेगपूर्वक अपने आप) (विष्णुदास) चन्दनदास का प्रिय मित्र है। उसकी (चन्दनदास की) म त्यु (विष्णुदास के) अग्नि में प्रवेश करने का कारण है। इसी कारण निस्सन्देह उचित स्नेह के प्रति पक्षपात होने के कारण मेरा ह्रदय काँप रहा है । (स्पष्ट रूप से) उसकी

(चन्दनदास की) म त्यु के और प्रिय-मित्र पर प्रेम होने के कारण मरने का निश्चय करने वाले (विष्णुदास) के सुचरित के विषय में विस्तार से सुनना चाहता हूँ।

पुरु०— आर्य, मैं मन्दभागी मरने में इससे अधिक (अतो परं) विघ्न उत्पन्न करने में समर्थ नहीं हूँ।

राक्ष०— भद्र, सुनने योग्य (श्रवणीयां) कथा सुनाओ।

पुरुष— क्या उपाय है? क्या करूँ? यह (मैं) बतलाता हूँ। आर्य सुनें।

राक्षस— भद्र, मैं सावधान हूँ।

पुरुष— इस नगर में चन्दनदास नाम का जौहरी है।

राक्षस— (दुःखसहित अपने आप) भाग्य के द्वारा यह हमारा शोक में दीक्षित होने का द्वार खोल दिया गया है हृदय स्थिर हो। तुम्हें इससे भी अधिक कष्टदायक कुछ सुनना है। (स्पष्ट रूप से) भद्र, वह सज्जन मित्रों पर स्नेह करने वाला सुना जाता है। उसका क्या हुआ?

पुरुष— वह इस विष्णुदास का प्रिय मित्र है।

राक्षस— मेरे हृदय पर होने वाला यह शोक रूपी वज्रपात समीप (ही) है।

राक्षस— तत्पश्चात् विष्णुदास के द्वारा मित्र के स्नेह के अनुरूप आज चन्द्रगुप्त से कहा गया।

राक्षस— बतालाओ, क्या कहा गया?

पुरुष— महाराज, मेरे घर में एक कुटुम्ब का भरण पोषण करने के लिए पर्याप्त धन है। उसे लेकर प्रिय मित्र चन्दनदास को छोड़ दिया जाए।

राक्षस— (अपने आप) शाबाश हे विष्णुदास, शाबाश। अहो तुम्हारे द्वारा मित्र स्नेह दिखला दिया गया है। क्योंकि -

स्पष्टीकरण— राक्षस पुरुष के मुख से जैसे ही सुनता है कि विष्णुदास के अग्नि में प्रवेश करने का कारण मित्रव्यसन ही है वैसे ही राक्षस की हृदय काँप उठता है क्योंकि उसे पता है कि चन्दनदास विष्णुदास का परम मित्र है अतः चन्दनदास की म त्यु का समाचार सुनकर ही विष्णुदास ने अग्नि में प्रवेश करने का निश्चय किया होगा।

शोक रूपी दीक्षा का द्वार खोल देने से राक्षस का तात्पर्य यह है कि दुःखद बातें मेरे कानों में पड़नी प्रारम्भ हो गई हैं। चन्दनदास की म त्यु के विषय में सुना जाना ही शोक रूपी वज्रपात है।

पित न्पुत्राः पुत्रान्परवदभिहिंसन्ति पितरो
यदर्थं सौहार्दं सुहृदि च विमु चन्ति सुहृदः
प्रियं मोक्तुं तद्यो व्यसनमिव सद्यो व्यवसितः
कृतार्थोयं सोर्थस्तव सति वणिक्त्वेपि वणिजः।।१७।।

अन्वय— यदर्थं पुत्राः पित न् पितरः पुत्रान् परवदभिहिंसन्ति च सुहृदः सुहृदि सौहार्दं विमु चन्ति तत् प्रियं यः व्यसनमिव सद्यः मोक्तुं व्यवसितः सः अयं तव अर्थः वणिजः वणिक्त्वे सति अपि कृतार्थः

सन्दर्भ— पुरुष के मुख से यह सुनकर कि अपने प्रिय मित्र चन्दनदास के जीवन की रक्षा के लिए विष्णुदास किस प्रकार तुरन्त अपना सारा धन चन्द्रगुप्त को देने के लिए तत्पर हो गया, राक्षस विष्णुदास की भूरि-भूरि प्रशंसा करता है।

हिन्दी अनुवाद—

जिस (धन) के लिए पुत्र पिताओं को (और) पिता पुत्रों को शत्रु के समान मार देते है और मित्र से मित्रता छोड़ देते हैं उसी प्रिय (धन) को जो (तुम) व्यसन के समान तुरन्त छोड़ने के लिए तत्पर हो गए, वह धन हे वणिक्! (तुम्हारे) वणिक् होने पर भी कृतार्थ हो गया।(१७)

स्पष्टीकरण— वणिकों की धन के प्रति आसक्ति स्वाभाविक ही है। अर्थ का अर्थ है- अर्थ्यते स्वप्रियाय इति अर्थः अर्थात् जिसकी अपना प्रिय करने के लिए इच्छा की जाती है। परन्तु विष्णुदास ने अपना अर्थ स्वहित के लिए नहीं अपितु मित्रहित के लिए देने का निश्चय कर लिया अतः वह सार्थक हो गया।

उक्त श्लोक में काव्यलिंग अलंकार तथा शिखरिणी छन्द है।

संस्कृत भावार्थ—

अस्य अर्थस्य हेतोः सुताः जनकान् जनकाश्च सुतान् रिपव इव निहन्ति यदर्थं च मित्राणि मित्रे स्नेहं त्यजन्ति तत् प्राणादपि इष्टं धनं यः त्वं विष्णुदासः स्त्रीद्यूतपानादिव्यसनमिव झटिति एव त्यक्तुम् उद्यतः तद् इदं धनं पण्यजीविनः भवतः वणिक्त्वे सति अपि सफलं जातम्। अर्थलुब्धा हि वणिजो भवन्ति, वणिक् च त्वमसि तथापि तद् धनं त्यजसि अतः सफला ते अर्थवत्ता इति भावः।

(प्रकाशम्) भद्र, ततस्तथाभिहितेन किं प्रतिपन्नं मौर्येण?

पुरु०— **आर्य, तत एवं भणितेन चन्द्रगुप्तेन प्रतिभणितः श्रेष्ठी विष्णुदास न मयार्थस्य कारणेन चन्दनदासः, संयमितः किन्तु प्रच्छादितोनेनामात्राक्षस्य ग हजनो बहुशो याचितेनापि समर्पितः। तद्यदि तं समर्पयति तदस्त्यस्य मोक्षः अन्यथा प्राणहरोस्य दण्ड इति भणित्वा वध्यस्थानामानायितश्चन्दनदासः। ततो यावद्वयस्यचन्दनदासस्याश्रोतव्यं न श्र णोमि तावज्ज्वलनं प्रविशामीति श्रेष्ठी विष्णुदासो नगरान्निष्क्रान्तः। अहमपि विष्णुदासस्याश्रोतव्यं यावन्न श्र णोमि तावदुद्वध्यात्मानं व्यापादयामीतीदं जीर्णोद्यानमागतः। (अज्ज तदो एवं भणिदेण चन्दउत्तेण पडिभणिदो सेट्ठी विह्णुदासो ण मए अत्थस्य कालणेण चन्दनदसो संजिमतो किंदु पच्छादिदो अपेण अमच्चरक्खस्स घरअणो बहुसो जचिदेण वि ण समप्पिदो। ता जदि तं सम्प्पेकदि मदो अत्थि से मोक्खो। अण्णहा पाणहरो से दण्डो त्ति भणिअ वज्जट्ठाणं आणिपिवदो चन्दणदासो। तदो जाव वअस्सचन्दणदासस्स असुणिदव्वंण सुणोमि ताव जलणं पविसामिति सेट्ठी विह्णुदासो णअरादो णिक्कन्दो। अहं वि विह्णुदासस्स असुणिदव्वं जाव ण सुणोम ताव उब्बन्धिअ अत्ताणं वावादे त्ति इदं जिण्णुज्जाणं आ अदो।)**

राक्ष०— **भद्र, न खलु व्यापादितश्चन्दनदासः।**

पुरु०— **अद्य तावद्वयापाद्यते। स खलु सांप्रतं पुनः पुनरमात्यराक्षसस्य ग हजनं याच्यते। न खलु स मित्रवत्सलतया समर्पयति। तदेतेन कारणेन न करोमि मरणस्य कालहरणम्। (अज्ज दाव वावादीअदि। सो खु संपदं पुणो पुणो अमच्चरक्खसस्स घर अणं जाचीअदि। णखु सो मित्तवत्सलदाए समप्पेदी ता एदिणा कालणेण करेमि मरणस्य कालहरणम्।)**

राक्ष०— **(सहर्षमात्मगतम्) साधु वयस्य चन्दनदास, साधु।**

हिन्दी अनुवाद—

(स्पष्ट रूप से) भद्र तत्पश्चात् उस प्रकार कहे गए मौर्य के द्वारा क्या कहा गया।

पुरुष— आर्य, तत्पश्चात् इस प्रकार कहे गऐ चन्द्रगुप्त के द्वारा सेठ विष्णुदास से कहा गया मेरे द्वारा धन के कारण चन्दनदास नहीं पकड़ा गया परन्तु इसके द्वारा अमात्य राक्षस का परिवार छिपाया गया है। बार-बार मांगे जाने पर भी नहीं सौंपा गया है। तो यदि उसे सौंप देता है तो इसकी मुक्ति हैं नहीं तो इसके लिए म त्युदण्ड है इस प्रकार कह कर चन्दनदास वध्यस्थल पर लाया गया है। तो जब तक मित्र चन्दनदास की म त्यु के बारे में नहीं सुनता तब तक आग में प्रवेश कर जाता हूँ ऐसा कहकर सेठ विष्णुदास नगर से निकल गया। मैं भी जब तक विष्णुदास की म त्यु के बारे में सुनता हूँ तब तक स्वयं को फाँसी लगा कर मारता हूँ ऐसा सोचकर इस जीर्णोद्यान में आया हूँ।

राक्षस— भद्र, चन्दनदास कहीं मार तो नहीं दिया गया।

पुरुष— आज मारा जाएगा। उससे अब (भी) निस्सन्देह अमात्य राक्षस का परिवार माँगा जा रहा है (और) वह मित्र पर स्नेह होने के कारण सौंप नहीं रहा। तो इस कारण (मैं) मरने में विलम्ब नहीं करूँगा।

राक्ष०— (हर्षपूर्वक अपने आप) शाबाश मित्र चन्दनदास, शाबाश।

स्पष्टीकरण— चाणक्य की योजना इति सुनियोजित है कि पुरुष, विष्णुदास और चन्दनदास तीनों में से अभी तक कोई भी म त्यु को प्राप्त नहीं हुआ परन्तु राक्षस के ऊपर इसकी वही प्रतिक्रिया हुई जो चाणक्य चाहता था। और इसी कारण राक्षस चन्दनदास को बचाने के लिए कुछ भी करने को उद्यत हो जाता है।

शिवेरिव समुद्भूतं शरणागतरक्षया।
निचीयते त्वया साधो यशो पि सुह दा विना।।१८।।

अन्वय— साधो शरणागतरक्षया समुद्भूतं शिवेः इव यशः त्वया सुह दा विना अपि निचीयते।

सन्दर्भ— प्रस्तुत श्लोक में राक्षस चन्दनदास द्वारा शरणागत की रक्षा करने में अर्जित यश को राजा शिवि के द्वारा अर्जित यश से भी प्रशस्यतर बतलाता है।

हिन्दी अनुवाद—

हे सज्जन शरणागत की रक्षा करने से उत्पन्न (राजा) शिवि के समान यश तुम्हारे द्वारा मित्र के न होने पर भी स चित किया जा रहा है। (१८)

स्पष्टीकरण— राक्षस का अभिप्राय यह है कि राजा शिवि ने शरणागत की रक्षा उस समय की थी जब शरणागत उनके सामने था परन्तु चन्दनदास ने अपने मित्र राक्षस के न होने पर भी उसके परिवार की रक्षा के लिए अपने प्राणों का त्याग करना सहर्ष स्वीकार कर लिया। अतः चन्दनदास का त्याग राजा शिवि के त्याग से भी अधिक प्रशंसनीय हे।

संस्कृत भावार्थ—

हे सज्जन शरणागतस्य रक्षणेन उत्पन्नं राज्ञः शिवेः इव यशः त्वया मित्रेण विना अपि संपाद्यते। अतस्त्वं राज्ञः शिवेः प्रशस्यतरः।

(प्रकाशम्) भद्र, गच्छेदानीं शीघ्रं विष्णुदासं ज्वलनप्रवेशान्निवारय। अहमपि चन्दनदासं मरणान्मोचयामि।

पुरु०— अथ पुनः केनोपायेनार्यश्चन्दनदासं मरणान्मोचयति। (अह उण केण़ अवाएण अज्जो चन्दणदासं मरणादो मोचेदि।)

राक्ष०— (खड्गमाक ष्य) नन्वनेन व्यवसायसुह दा निस्त्रिंशेन। पश्य—

हिन्दी— (स्पष्ट रूप से) भद्र, अब जल्दी से जाओ और विष्णुदास को अग्नि में प्रवेश करने से रोको। मैं भी चन्दनदास को म त्यु से मुक्त करवाता हूँ।

पुरुष— अच्छा, परन्तु आप किस उपाय से चन्दनदास को म त्यु से मुक्त करवाएंगे।

राक्षस— (तलवार खींचकर) निस्सन्देह कार्यों में (मेरा) साथ देने वाली इस तलवार से। देखो-

निस्त्रिंशो यं सजलजलदव्योमसंकाशमूर्तिर्
युद्ध श्रद्धापुलकित इव प्राप्तसख्यः करेण।
सत्त्वोत्कर्षात्समरनिकषे द ष्टसारः परैर्मे
मित्रस्नेहाद्विवशमधुना साहसे मां नियुंक्ते।।१६।।

अन्वय— सजलजलदव्योमसङ्काशमूर्तिः करेण प्राप्तसख्यः युद्धश्रद्धापुलकित इव सत्त्वोत्कर्षात् परैः समरनिकषे द ष्टसारः मे अयं निस्त्रिंशः अधुना मित्रस्नेहात् विवशं मां साहसे नियुङ्क्ते।

सन्दर्भ— राक्षस अपनी तलवार की सहायता से शत्रुओं से युद्ध करके चन्दनदास व उसके परिवार को कारागार से मुक्त करवाने का निश्चय करता है। प्रस्तुत श्लोक में वह युद्ध करने के लिए पुलकित अपनी तलवार का काव्यात्मक वर्णन करता है।

हिन्दी अनुवाद—

जल से युक्त बादलों तथा आकाश के समान आक ति वाली, हाथ के साथ प्राप्त मित्रता वाली अर्थात् हाथ में धारण की गई, युद्ध करने की उत्सुकता में रोमा चित हुई सी, उत्क ष्ट बल के कारण शत्रुओं द्वारा युद्ध रूपी कसौटी पर परखे गए पराक्रम वाली मेरी यह तलवार अब मित्र के स्नेह के कारण विवश मुझको साहसिक कार्य करने के लिए प्रेरित कर रही है। (१६)

स्पष्टीकरण— तलवार जलयुक्त बादल के समान क ष्ण वर्ण और आकाश के समान निर्मल है व युद्ध करने की आशा से रोमा चित सी हो रही है।

उक्त श्लोक में उपमा, उत्प्रेक्षा अलंकार तथा मन्दाक्रान्ता छन्द है।

संस्क त भावार्थ—

जलधारासहितैः मेघैः युक्तं यत् आकाशं ताद शं रूपं यस्य ताद शः अथवा सजलमेघव्योम सद शं च रूपं यस्य ताद शः, करेण धारितः, सङ्ग्रामादरेण रोमा चित इव, बलातिशयात् शत्रुभिः संग्रामक्षणोपले द ष्टशक्तिः यस्य ताद शः एषः मम खड्गः सम्प्रति मित्रस्य चन्दनदासस्य अनुरागात् अवशं मां युद्धव्यापारे प्रेरयति।

पुरु०— आर्य, एवं श्रेष्ठिचन्दनदासजीवितप्रदानपिशुनितं विषमदशाविपाकनिपतितं साधु न शक्नोमि त्वां निर्णीय प्रतिपत्तुं किं सुग हीतनामधेया अमात्यराक्षसपादा यूयं दिष्ट्या द ष्टा इति। तत्कुरु मे प्रसादं सन्देहनिर्णयेन। (इति पादयोः पतति) (अज्ज एवं सेठ्ठिचन्दणदासजीविदप्पदाणपिसुणिदं विसमदसाविपाकणिपडिदं साधु ण सक्णौमि तुमं णिण्णीअ पडिवत्तुं किं सुगिहीदणामहेआ अमच्चरक्खसपादा तुह्मे दिठ्ठिआदिठ्ठात्ति। ता करेहि म पसादं सन्देहणिण्णएण।)

राक्ष०— सो हमनुभूतभर्तवंशविनाशः सुह द्विपत्तिहेतुरनार्यो दुर्ग हीतनामधेयो यथार्थो राक्षसः।

पुरु०— (सहर्षं पुनः पादयोः पतित्वा) आश्चर्यं दिष्ट्या द ष्टो सि। (ही हीमाणहे दिठ्टिआदिठ्ठोसि।)

राक्ष०— भद्र, उत्तिष्ठोत्तिष्ठ अलमिदानीं कालहरणेन। निवेद्यतां विष्णुदासाय एष राक्षसश्चन्दनदासं मरणान्मोचयतीति। (इति निस्त्रिंशोयमिति पठन्नाक ष्टखड्गः परिक्रामति।)

पुरु०— (पादयोर्निपत्य) प्रसीदन्त्वमात्यपादाः। अस्ति तावदत्र प्रथमं चन्द्रगुप्तहतकेनार्यशकटदासो वध्यस्थानमाज्ञप्तः। स च वध्यस्थानात्केनाप्यपह त्य देशान्तरं नीतः। ततश्चन्द्रगुप्तहतकेन कस्मादेष प्रमादः क त इति आर्यशकटदासे समुज्ज्वलितः कोपवह्निर्घातकजननिधनेन निर्वापितः। ततः प्रभ ति घातका तं कमपि ग हीतशस्त्रमपूर्वं पुरुषं प ष्ठतो वा ग्रतो वा प्रेक्षन्ते तदात्मनो जीवितं परिरक्षन्तो प्रमत्ता वध्यस्थाने वध्यं व्यापादयनिन्त। तस्मादेवं ग हीतशस्त्रैरमात्यपादैर्गच्छद्भिः श्रेष्ठिचन्दनदासस्य वधस्त्वरायितो भवति। (निष्क्रान्तः) (पसीदन्दु अमच्चापादाः। अत्थि दाव एत्थ पढ़मं चन्दउत्तहरएण अज्ज सअडदासो वज्झट्टणं आणत्तो। सो अ वज्झट्टाणादो केणवि अवहरिअ देसन्तरं णीदो। तदो हच्नदउत्तहदएण कीस एसो प्पमादो किदोत्ति अज्जसअडदासे समुज्जलिदो कोववह्नी घाद अज्ञणणिहणेण निव्वाविदो। तदो पहुदि घादआ जं कंवि गिहिदसत्यथं अपुव्वं पिठ्टदो वा अग्गदो वा पेक्खन्ति तदो अत्तणो जीविदं परिदक्खन्तो अप्पमत्ता वज्झठ्टाणे वज्झं वावादेन्ति। ता एवं गिहिदसत्थेहिं वहो तवराइदो होदि।)

राक्ष०— (स्वगतम्) अहो दुर्बोधश्चाणक्यबटोर्नीतिमार्ग। कुतः? -

हिन्दी अनुवाद—

पुरुष— आर्य, इस प्रकार सेठ चन्दनदास के लिए जीवन देने से सूचित होने वाले (पिशुनितं), विपरीत अवस्था की विवशता में निमग्न आपके विषय में निश्चित रूप से (साधु) निर्णय करके (यह) जानने में समर्थ नहीं हूँ कि क्या सौभाग्य से (मेरे द्वारा) शुभ नाम वाले अमात्य राक्षस देख लिए गए हैं। अतः सन्देह का निवारण कर मेरे ऊपर कृपा कीजिए। (ऐसा कह कर पैरों पर गिर जाता है)

राक्ष०— स्वामिकुल का विनाश अनुभव करने वाला, मित्र की विपत्ति का कारण, अनार्य अशुभ नाम वाला वह मैं अर्थ के अनुरूप अर्थात् वास्तव में राक्षस हूँ।

पुरुष— (हर्षपूर्वक पुनः पैरों पर गिर कर) आश्चर्य है सौभाग्य से (मेरे द्वारा आपके) दर्शन कर लिए गए हैं।

राक्षस— भद्र, उठो, उठो। अब समय व्यर्थ मत करो। विष्णुदास से कहो कि यह राक्षस चन्दनदास को म त्यु से मुक्त करवाता है। (ऐसा कह कर 'निस्त्रिंशो यम्' यह श्लोक पढ़ता हुआ तलवार खींच कर घूमता है)

पुरुष— (पैरों पर गिरकर) अमात्य प्रसन्न हों। पहले यहाँ अर्थात् कुसुमपुर में दुष्ट चन्द्रगुप्त के द्वारा आर्य शकटदास को वध्यस्थल पर ले जाने की आज्ञा दी गई थी और वह वध्यस्थल से किसी के द्वारा भगाकर दूसरे स्थान पर ले जाया गया। तत्पश्चात् दुष्ट चन्द्रगुप्त के द्वारा यह लापरवाही किस कारण से की गई ऐसा कहकर आर्य शकटदास के प्रति प्रज्ज्वलित क्रोध रूपी अग्नि घातकों को मार कर शान्त की गई तब से लेकर घातक शस्त्र लिए हुए जिस किसी भी अपरिचित (अपूर्व) व्यक्ति को पीछे अथवा आगे देखते

हैं तो अपने जीवन की रक्षा करते हुए सावधान होकर वध्यस्थल पर मारे जाने वाले व्यक्ति को मार डालते हैं। इस कारण इस प्रकार शस्त्र लिए हुए जाते हुए अमात्य के द्वारा सेठ चन्दनदास का वध और भी अधिक जल्दी कर दिया जाएगा।

राक्षस— अहो दुष्ट चाणक्य का नीतिमार्ग समझना कठिन है। क्योंकि? —

स्पष्टीकरण— पुरुष को यद्यपि पहले ही ज्ञात है कि वह अमात्य राक्षस है तथापि राक्षस को चाणक्य की योजना के विषय में किसी प्रकार का सन्देह न हो अतः वह अत्यन्त कुशलतापूर्वक अभिनय करता हुआ यह प्रदर्शित करता है कि उसने राक्षस की चन्दनदास को बचाने की उत्सुकता को देखकर ही उसके अमात्य राक्षस होने का अनुमान लगाया है।

अपने लिए प्रयुक्त विशेषणों से राक्षस की आत्मग्लानि का आभास होता है।

इस प्रसंग में पुनः चाणक्य के राजनीतिपटु होने का संकेत मिलता है। राक्षस यदि तलवार की सहायता से चन्दनदास को बचाने का प्रयत्न करता तो व्यर्थ ही रक्तपात होता। पुरुष ने यह कह कर कि तलवार लेकर जाने से तो चन्दनदास का वध निर्धारित समय से पहले ही कर दिया जाएगा, राक्षस को वध्यस्थल पर शस्त्र रहित होकर जाने के लिए बाध्य कर दिया।

यदि च शकटो नीतः शत्रोर्मतेन ममान्तिकं
किमिति निहतस्तेन क्रोधवधाधिकृतो जनः।
अथ न कृतकं ताद क्कष्टं कथं नु विभावयेद्
इति मम मतिस्तर्कारूढा न पश्यति निश्चयम्।।२०।।

अन्वय— यदि शकटः शत्रोः मतेन मम अन्तिकं नीतः तेन क्रोधवधाधिकृतः जनः किमिति निहतः अथ कृतकं न (तदा) ताद क् कष्टं कथं नु विभावयेत् इति तर्कारूढा मम मतिः निश्चयम् न पश्यति।

सन्दर्भ— प्रस्तुत श्लोक में राक्षस चाणक्य की नीति की दुर्बोधता के विषय में आश्चर्य प्रकट करता है।

हिन्दी अनुवाद—

यदि शकटदास शत्रु (चन्द्रगुप्त) की सलाह से मेरे पास लाया गया (तो) उसके (चन्द्रगुप्त के) द्वारा क्रुद्ध होकर वध करने के लिए नियुक्त व्यक्तियों को क्यों मार दिया गया। और यदि (यह) मिथ्या नहीं है अर्थात् वह शत्रु की सलाह से मेरे पास नहीं लाया गया तो वह उस प्रकार के कुत्सित कार्य के बारे में किस प्रकार सोच सका। इस प्रकार तर्क पर आरूढ हुई मेरी बुद्धि निश्चय नहीं कर पा रही। (२०)

स्पष्टीकरण— पुरुष के मुख से जैसे ही राक्षस को पता चलता है कि शकटदास को मारने के लिए नियुक्त घातकों को क्रोधित चन्द्रगुप्त द्वारा मरवा दिया गया तो वह अत्यधिक आश्चर्यचकित होता है। वह सोचता है कि यदि शकटदास को शत्रु की योजनानुसार उसके पास लाया गया था तो उसे मारने के लिए नियुक्त घातकजन चन्द्रगुप्त के द्वारा क्यों मरवा दिए गए और यदि सिद्धार्थक के कथनानुसार सिद्धार्थक ही उसे वध्यस्थल से भगाकर ले गया था तो फिर शकटदास ने राक्षस के विरुद्ध पत्र लिख कर उसकी मुद्रा से ही उसे मुद्रित करने जैसा कुत्सित कार्य करके स्वामिद्रोह और मित्रद्रोह क्यों किया। इसी तर्क वितर्क के कारण वह कोई निश्चय नहीं कर पा रहा।

उक्त श्लोक में काव्यलिंग अलंकार तथा शिखरिणी छन्द है।

संस्कृत भावार्थ—

यदि शत्रोः मौर्यस्य अनुमत्या शकटदासः वध्यस्थानादपवाह्य मम समीपं प्रापितः तदा क्रोधाभिभूतेन चन्द्रगुप्तेन तस्य हनने नियोजितः घातकजनः किमर्थं निहतः। नेदमुपपद्यते। तन्नासौ शत्रोर्मतेन नीतः। पक्षान्तरे यदि शकटदासः परमार्थत एव सिद्धार्थकस्य ताव्विकसाहसोपकारेण पलाय्य गतः स्यात्तदा ताद क् कुत्सितं स्वहस्तलेखमुद्रांकनादिरूपं स्वामिद्रोहं शकटदासः कर्तव्यत्वेन कथं चिन्तयेत्। चिन्तनमपि तस्यानुचितं किमुताचरणमिति भावः। इत्थम् ऊहे प्रव त्ता सती मम बुद्धिः निर्णयं न प्रप्नोति।

(विचिन्त्य)

नायं निस्त्रिंशकालः प्रथममिह कृते घातकानां विघाते
नीतिः कालान्तरेण प्रकटयति फलं किं तया कार्यमत्र।
औदासीन्यं न युक्तं प्रियसुहृदि गते मत्कृते चातिघोरां
व्यापत्तिं ज्ञातमस्य स्वतनुमहमिमां निष्क्रयं कल्पयामि।।२१।।

अन्वय— इह घातकानां प्रथमं विघाते कृते अयं निस्त्रिंशकालः न नीतिः कालान्तरेण फलं प्रकटयति तया अत्र किं कार्यम् च प्रियसुहृदि मत्कृते अतिघोरां व्यापत्तिं गते औदासीन्यं न युक्तं ज्ञातम् अहम् इमां स्वतनुम् अस्य निष्क्रयं कल्पयामि।

सन्दर्भ— चन्दनदास को बचाने के लिए प्रत्येक सम्भव विकल्प पर विचार करने पर राक्षस को एकमात्र उपाय यही सूझता है कि वह चन्दनदास की मुक्ति के लिए आत्मसमर्पण कर दे।

हिन्दी अनुवाद—

(सोचकर)

इस विषय में अर्थात् चन्दनदास को बचाने के विषय में घातकों द्वारा पहले ही (उसका) वध कर दिए जाने पर यह तलवार का समय नहीं है। नीति कुछ समय बाद फल प्रकट करती है उसका यहाँ क्या लाभ (कार्यम्) और प्रिय मित्र (चन्दनदास) के मेरे लिए अत्यन्त भयंकर विपत्ति को प्राप्त होने पर उदासीनता उचित नहीं है। मुझे पता चल गया मैं इस अपने शरीर को इसके बदले में दे दूँगा। (२१)

स्पष्टीकरण— राक्षस चन्दनदास को बचाने के लिए तलवार का प्रयोग नहीं कर सकता क्योंकि घातक दूर से ही उसे तलवार हाथ में लिए देखकर चन्दनदास को और भी अधिक जल्दी मार देंगे। नीति का प्रयोग भी उचित नहीं है क्योंकि वह कुछ समय के बाद ही फल प्रदान करती है जबकि चन्दनदास को फाँसी आज ही लगाई जानी है। राक्षस के लिए चन्दनदास के प्रति उदासीनता दिखलाना भी उचित नहीं है क्योंकि चन्ददास उसी के कारण आज म त्युदण्ड भी भोगने के लिए तैयार है। अब राक्षस को एक ही मार्ग सूझता है और वह यह है कि चन्दनदास को छुड़ाने के लिए वह आत्मसमर्पण कर दे। यही उपाय उसे सबसे अधिक रुचिकर प्रतीत होता है।

उक्त श्लोक में काव्यलिंग अलंकार तथा स्रग्धरा छन्द है।

संस्कृत भावार्थ—

चन्दनदासमोचनविषये घातकैः पूर्वमेव चन्दनदासस्य वधे त्वरिततरं कृते सति अयं खड्गस्य समयः नास्ति। राजनीतिः किंचित् कालान्तरमेव सिद्धिं दर्शयति अतः चन्दनदासमोचनविषये तया किमपि फलं न। प्रियवयस्ये मदर्थम् एव दारुणां प्राप्ते सति तटस्थतया वस्थानम् उचितं न। मया निश्चितम् अहम् इदं स्वशरीरं चन्दनदासस्य मोचनमूल्यं सम्पादयामि।

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे)

इति षष्ठों कः

(ऐसा कह कर सब निकल जाते हैं)

षष्ठ अंक समाप्त हुआ।

सप्तमो ऽकः

(ततः प्रविशति चण्डालः)

चण्डालः— अपसरत आर्या अपसरत। अपेत मनुष्या अपेत। (ओसलेह अज्जा ओसलेह। अवेह माणहे अवेह।)

यदि इच्छत रक्षितुं स्वान् प्राणान् विभवान्कुलं कलत्रं च।
तत्परिहरत विषमं राजापथ्यं सुदूरेण।।१।।

जइ महह लक्खिदुं शे प्पाणे विहवे कुलं कलत्तं अ।
ता पलिहलेह विसमं लाआपत्थं सुदूलेण।।१।।

अन्वय— यदि स्वान् प्राणान् विभावान् कुलं कलत्रं च रक्षितुम् इच्छत तत् विषमं राजापथ्यं सुदूरेण परिहरत।

सन्दर्भ— चण्डाल का वेष धारण किए हुए सिद्धार्थक चन्दनदास को फाँसी लगाने के लिए ले जाते हुए चाणक्य के आदेश से लोगों को दूर हटाते हुए राजद्रोह से बचने की सलाह देता है।

हिन्दी अनुवाद—

(तत्पश्चात चण्डाल प्रवेश करता है)

चण्डाल— दूर हटो सज्जनों दूर हटो। दूर हटो मनुष्यों दूर हटो।

यदि अपने प्राणों, ऐश्वर्य, वंश और पत्नी की रक्षा करना चाहते हो तो भयंकर राजद्रोह से बचो। (१)

संस्कृत भावार्थ—

यदि यूयम् स्वकीयं जीवनं धनं, वंशं, पत्नीं च त्रातुं वा छत तदा भयंकरं राजद्रोहम् अतिदूरात् परित्यजत।

अपि च (अवि अ)—

भवति पुरुषस्य व्याधिर्मरणं वा सेविते पथ्ये।
राजापथ्ये पुनः सेविते सकलमपि कुलं म्रियते।।२।।

होदि पुलिसस्य वाही मलणं वा सेविदे अपत्थम्मि।
लाआपत्थे उण सेविदे सअलं विकुलं मलदि।।२।।

अन्वय— अपथ्ये सेविते पुरुषस्य व्याधिः मरणं वा भवति पुनः राजापथ्ये सेविते सकलं कुलम् अपि म्रियते।

सन्दर्भ— उक्त श्लोक में चण्डाल का वेष धारण किए हुए सिद्धार्थक राजापथ्य का सेवन करना अपथ्य के सेवन से भी अधिक भयंकर बतलाता है।

हिन्दी अनुवाद—

और भी—

अहितकारी वस्तु का सेवन करने पर मनुष्य को बीमारी अथवा म त्यु होती है परन्तु राजद्रोह का सेवन करने पर तो सम्पूर्ण वंश ही नष्ट हो जाता है। (२)

स्पष्टीकरण— विष इत्यादि अहितकारी वस्तु का सेवन करने से तो सेवन करने वाला एक ही व्यक्ति रोगग्रस्त होता है अथवा म त्यु को प्राप्त होता है परन्तु राजा का विरोध करने पर तो सारा वंश ही राजा की क्रोधाग्नि में भस्म हो जाता है।

उक्त श्लोक में व्यतिरेक एवं प्रतीप अलंकार तथा आर्या छन्द है।

संस्कृत भावार्थ—

अहितकरे वस्तुनि भुक्ते सति जनस्य व्याधिः म त्युर्वा जायते राजद्रोहे कृते सति सम्पूर्णं वंशः अपि विनश्यति।

तद्यदि न प्रतीथ तदत्र प्रेक्षध्वमेनं राजापथ्यकारिणं श्रेष्ठिचन्दनदासं सपुत्रकलत्रं वध्यस्थानं नीयमानम्। (आकाशे श्रुत्वा) आर्याः किं भणथ। अस्त्यस्य को पि मोक्षोपाय इति। आर्या अस्त्यमात्यराक्षसस्य ग हजनं यदि समर्पयति। (पुनराकाशे) किं भणथ। एष शरणागतवत्सल आत्मनो जीवितमात्रस्य कारणेनेद शमकार्यं न करिष्यतीति। आर्याः तेन हि अवधारयतास्य सुखां गतिम्। किमिदानीं युष्माकमत्र प्रतीकारविचारेण। (ता जणि ण पदिज्जह ता एह पक्खह एअं लाआपत्थकालिणं सेष्ठिचन्दणदासं सउत्तकलत्तं वज्झट्ठाणं णीजमाणं। अज्जा किं भणह। अस्थि से कोबि मोक्खोवाओ त्ति। अज्जा अत्थि अमच्चरक्खसस्स घरअणं चइ समप्पेदि। किं भणह। एसे सलणागदवच्छले अत्तणो जीविदमेतस्स कालणे ईदिसं अकज्जं ण कलिस्सदि त्ति। अज्जा तेण हि अवधालेह से सुहां गदिं। किंदाणि तुह्माणं एत्थ पडिआरविआरेण।)

(ततः प्रविशति द्वितीयचण्डालानुगती वध्यवेशधारी शूलं स्कन्धेनादाय कुटुम्बिन्या पुत्रेण चानुगम्यमानश्चन्दनदासः)

चन्द०— (सवाष्पम्) हा धिक् हा धिक्। अस्माद शानामपि नित्यं चारित्रभंगभीकणां चोरजनोचितं मरणं भवतीति नमः कृतान्ताय। अथवा न न शंसानामुदासीनेष्वितरेषु वा विशेषो स्ति। तथाहि—(हद्दी हद्धी अह्मारिसाणं वि णिच्चं चारित्तभंगभीरूणं चोरजणोचिदं मरणं होदि त्ति णमो किदन्तस्स। अह वाण णिसंसाणं उदासीणेसु इदरेसु वा विसेसोत्थि (तह हि।)—

हिन्दी अनुवाद—

तो यदि (तुम) विश्वास नहीं करते तो यहाँ राजद्रोह करने वाले सेठ चन्दनदास को पुत्र और पत्नी सहित वध्यस्थल पर ले जाए जाते हुए देखो। (आकाश में सुनकर) सज्जनों, क्या कह रहे हो। क्या इसकी मुक्ति का कोई उपाय है। सज्जनों, है यदि (यह) अमात्यराक्षस के परिवार को सौंप देता है। (पुनः आकाश में) क्या कह रहे हो। यह शरणागतवत्सल केवल अपने जीवन (को बचाने) के लिए इस प्रकार का अनुचित कार्य नहीं करेगा। सज्जनों तब तो (इसकी) सद्गति निश्चित समझो अब इस विषय में तुम्हारे उपाय करने के विषय में विचार करने से क्या लाभ।

(तत्पश्चात् दूसरे चण्डाल द्वारा अनुसरण किया जाता हुआ, वध्य के वेष को धारण किए हुए, शूल को कन्धे पर रखकर पत्नी और पुत्र द्वारा अनुसरण किया जाता हुआ चन्दनदास प्रवेश करता है)

चन्दनदास— (आँसू भरकर) हा धिक्कार है, हा धिक्कार है। चरित्र भंग से सदैव डरने वाले हम जैसों की भी चोरों के योग्य म त्यु होती है, इस कारण यमराज को नमस्कार है। अथवा क्रूर व्यक्तियों के लिए उदासीन अथवा दूसरों में अन्तर नहीं होता। क्योंकि—

मुक्त्वा आमिषाणि मरणभयेन त णैर्जीवन्तम्।
व्याधानां मुग्धहारिणं हन्तुं को नाम निर्बन्धः।।३।।

मोत्तूण आमिसाइं मरणभरण तिणेहिं जीवन्तम्।
वाहाणं मुद्धहरिणं हन्तु को प्राण णिब्बन्धो।।३।।

अन्वय— मरणभयेन आमिषाणि मुक्त्वा त णैः जीवन्तं मुग्धहारिणं हन्तुं व्याधानां को नाम निर्बनः।

सन्दर्भ— चन्दनदास न शंस व्यक्ति द्वारा एक अपराधी और एक निरपराधी में भेद न किए जा सकने का स्पष्टीकरण प्रस्तुत श्लोक में व्याध द्वारा भोले-भाले म ग को मारे जाने का उदाहरण देकर करता है।

हिन्दी अनुवाद—

म त्यु के भय से माँस छोड़कर तिनकों के द्वारा जीवित रहने वाले भोले-भाले हरिण को मारने के लिए शिकारियों का कौन-सा आग्रह होता है। (३)

स्पष्टीकरण— हरिण अपनी म त्यु के भय से नहीं अपितु दूसरों की हिंसा करने के भय से माँस नहीं खाते। घास इत्यादि खाकर ही अपना जीवन निर्वाह करते हैं। फिर भी क्रूर शिकारी किसी का अहित न करने वाले उन्हीं को मार डालते हैं। इसी प्रकार दुष्ट चाणक्य भी मुझ निर्दोषी को म त्यु दण्ड दे रहा है।

उक्त श्लोक में अप्रस्तुतप्रशंसा अलंकार तथा आर्या छन्द है।

संस्कृत भावार्थ—

कस्यचित् प्राणिनः हिंसा न भवेत् इत्यनेन भयेन माँसानि वर्जयित्वा शष्पैः प्राणान् धरयन्तं सरलप्रकृतिं म गं व्यापादयितुं न शंसानां लुब्धकानां कुत्सितः आग्रहातिशयः वर्तते।

(समन्तादवलोक्य) भो प्रियवयस्य विष्णुदास, कथं प्रतिवचनमपि न मे प्रतिपद्यसे। अथवा दुर्लभास्ते खलु मनुष्या एतस्मिन्काले द ष्टिपथे अपि तिष्ठन्ति। (सवाष्पम्) एते स्माकं प्रियवयस्या अश्रुपातमात्रेण कृतप्रतीकाराः स्वशरीरैः कथमपि निवर्तमानाः परिवर्धमानशोकदीनवदना वाष्पगुरुकथां द ष्ट्या मामनुगच्छन्ति। (भो पिअवअस्स विह्णुदास कहं पडिवअणं वि ण मे पडिवज्जसि। अह वा दुल्लहा ते क्खु माणुसा जे एदर्स्सि काले दिठ्ठिपथे वि चिट्ठिन्ति। एदे एन्हपिअवअस्सा अंसुपादमेत्तकेण किदपदी आरा स्वसरीरेहिं कहंवि णिवत्तमाणा परिवढ्ढमाणसो अदीणवअणा वाहगुरुआए दिट्टीए मं अणुगच्छन्दि।) (इति परिक्रामति)

हिन्दी अनुवाद—

(चारों तरफ देखकर) हे प्रिय मित्र विष्णुदास, क्या मुझे उत्तर भी नहीं देते। अथवा वे मनुष्य निस्सन्देह दुर्लभ हैं जो इस समय आँखों के सामने भी विद्यमान हों। (आँसू भरकर) ये हमारे प्रिय मित्र केवल आँसू बहाकर (मेरी मुक्ति का) उपाय करते हुए अपने शरीरों के साथ जैसे तैसे) अर्थात् बड़ी कठिनाई से लौटते हुए बढ़े हुए दुःख से मलिन मुख हुए (दीनवदना) व आँसुओं के कारण भारी आँखों से मेरा अनुसरण कर रहे हैं।

स्पष्टीकरण— ऐसा प्रतीत होता है कि चन्दनदास का परम मित्र विष्णुदास अग्नि में प्रवेश करने चला गया था अतः चन्दनदास को दिखाई नहीं दे रहा था। चन्दनदास को इस बात का पता नहीं था इसी कारण शोकावेग में वह उसे उलाहना देता है कि ऐसे मनुष्य दुर्लभ होते हैं जो विपत्ति में साथ दें।

परन्तु पुरुष के मुख से राक्षस द्वारा चन्दनदास को मुक्त करवाए जाने की बात सुनकर विष्णुदास सम्भवतः वापस आ गया होगा। चन्दनदास ने दूर से उसे आते हुए देखा होगा और स्वयं आत्मग्लानि का अनुभव कर अश्रुपूरित नेत्र होकर कहा होगा कि दुःख के कारण मलिन मुख वाला तथा आँसुओं के बहने से भारी आँखों वाला प्रिय मित्र विष्णुदास उसके पीछे आ रहा है। बहुवचन का प्रयोग विष्णुदास के प्रति चन्दनदास का सम्मान प्रदर्शित करने के लिए किया गया होगा।

चण्डा०— आर्य चन्दनदास, आगतोसि वध्यस्थानं तद्विसर्जय ग हजनम्। (अज्ज चन्दणदास आअदोसि वज्झट्ठाणं ता विसज्जेहि धरजणम्।)

चन्द०— कुटुम्बिनि, निवर्तस्व सांप्रतं सपुत्रा। न युक्तं खल्वतः परमनुगन्तुम्। (कुटुम्बिणि णिवत्तेहि संपदं सपुत्ता। ण जुत्तं क्खु अदोवरं अणुगच्छिदुम्।)

कुटु०— (सवाष्पम्) परलोकं प्रस्थित आर्यो न देशान्तरम्। (परलोअं पत्थिदो अज्जो ण देसन्तरं।)

चन्द०— आर्ये, अयं मित्रकार्येण मे विनाशो न पुनः पुरुषदोषेण तदलं विषादेन। (अज्जे अअं मित्तकज्जेण मे विणासो ण उण पुरिसदोसेण ता अलं विसादेण।)

कुटु०— आर्य, यद्येवं तदिदानीमकालः कुलजनस्य निवर्तितुम्। (अज्ज जइ एवं ता दाणिं अकालो कुलजणस्स णिवट्टिदुम्।)

चन्द०— अथ किं व्यवसितं कुटुम्बिन्या। (अह किं ववसिदं कुडुम्बिणीए।)

कुटु०— भर्तुश्चरणावनुगच्छन्त्या आत्मानुग्रही भवत्विति। (भत्तुणो चलणे अणुगच्छन्तीए अप्पाणुग्गहो होदुत्ति।)

चन्द०— आर्ये, दुर्व्यवसितमिदम्। त्वयायं पुत्रको श्रुतलोकसंव्यवहारो बालो नुग हीतव्यः। (अज्जे दुव्ववसिदं एदं। तुए अअं पुत्तओ असुणिदलोअसंववहारो बालो अणुगोह्णिदव्वो।)

कुटु०— अनुग ह्ण्न्त्वेनं प्रसन्ना देवताः। जात पुत्रक, पत पश्चिमयोः पितुः पादयोः। (अणुगिह्ण्न्दु णं पसण्णाआ देवदाओ। जाद पुअत्त पत पच्चिमेसु पिदुणो पादेसु।)

पुत्रः— (पादयोर्निपत्य) तात, किमिदानीं मया तातविरहितेनानुष्ठातव्यम्। (ताद किं दाणिं मए तादविरहिदेण अणुचिट्ठिदव्वम्।)

चन्द०— पुत्र, चाणक्यविरहिते देशे वस्तव्यम्। (पुत्त चाणक्कविरहिदे देसे वसिदव्वम्।)

चण्डा०— आर्य चन्दनदास, निखातः शूलस्तत्सज्जो भव। (अज्ज चन्दणदास णिखादे शूले ता सज्जो होहि।)

कुटु०— आर्याः, परित्रायध्वं परित्रायध्वम्। (अज्जा परित्ताअध परित्ताअध।)

चन्द०— आर्ये, अथ किमाक्रन्दसि। स्वर्गगतानां तावद्देवा दुःखितं परिजनमनुकम्पन्ते। अन्यच्च मित्रकार्येण मे विनाशो नायुक्तकार्येण। तत्किं हर्षस्थाने पि रुद्यते। (अज्जे अह किं एत्थ आक्कन्दसि। सग्गं गदाणं दाव देवा दुक्खिअं परिअणं अणुकम्पन्दि। अण्णं अ मित्तकज्जेण मे विणासो ण अजुत्तकज्जेण। ता किं हरिसट्ठाणे वि रोदीअदि।)

प्रथमश्चण्डालः— अरोबिल्वपत्र, ग हाण चन्दनदासम्। स्वयमेव ग हजनो गमिष्यति। (अलेबिल्लपत्त गेह्ण चन्दणदासं। सअं एव्व घलजणो गमिस्सदि।)

द्वितीयश्चण्डालः— अरे वज्रलोमन्, एष ग ह्णामि। (अले वज्जलोमा एसे गेह्णामि।)

चन्द०— भद्र, मुहूर्तं तिष्ठ यावत्पुत्रकं सान्त्वयामि। (पुत्रं परिष्वज्य मूर्ध्याघ्राय) जात, अवश्यं भवितव्ये विनाशे मित्रकार्यं समुद्वहमानो विनाशमनुभवामि। (भद्द मुहुत्तं चिट्ठ जाव पुत्तअं सन्तआमि। जाद अवस्सं भविदव्वे विणासे मित्तकज्जं समुव्वहमाणो विणासमणुभवामि।)

पुत्रः — तात, किमिदमपि भणितव्यम्। कुलधर्मः खल्वेषो स्माकम्। (इति पादयोः पतति) (ताद किं एदं वि भणिदव्वं। कुलधम्मो क्खु एसो अह्माणं।)

चण्डा०— अरे ग हाणैनम्। (अले गेह्ण एणं।) (चण्डालौ ग हीतश्चन्दनदासम्।)

कुटु०— (सोरस्ताडम्) आर्याः, परित्रायध्वं परित्राय्ध्वम्। (अज्जा परित्ताअध परित्ताअध।)

(प्रविश्य पटाक्षेपेण राक्षसः) भवति, न भेतव्यम्। भोः भोः शूलायतनाः न खलु व्यापादयितव्यश्चन्दनदासः।

हिन्दी अनुवाद—

चण्डा०— आर्य चन्दनदास, वध्यस्थल पर आ गए हो। अपने परिवार को भेज दो।

चन्द०— हे कुटुम्बिनि, अब पुत्र सहित वापस चली जाओ। इससे आगे (मेरा) अनुसरण करना उचित नहीं है।

कुटु०— (आँसू भरकर) आर्य परलोक जा रहे हैं परदेस नहीं।

चन्द०— आर्ये, मेरी यह म त्यु मित्रकार्य से हो रही है पुरुषदोष से नहीं अर्थात् पुरुष में प्राप्त होने वाले किसी दोष के कारण नहीं। अतः शोक मत करो।

कुटु०— आर्य यदि ऐसा है तो यह परिवारजन के वापस जाने का समय नहीं है।

चन्द०— अच्छा, पत्नी के द्वारा क्या निश्चय किया गया है।

कुटु०— पति के चरणों का अनुसरण करती हुई स्वयं को अनुग हीत करूँ।

चन्द०— आर्ये, यह निश्चय उचित नहीं है। तुम्हारे द्वारा लौकिक व्यवहार से अनभिज्ञ यह बालक पुत्र अनुग हीत किया जाना चाहिए अर्थात् पाला जाना चाहिए।

कुटु०— प्रसन्न हुए देवता इसे अनुग हीत करेंगे अर्थात् पालेंगे। बालक (मेरे) पुत्र पिता के चरणों में अन्तिम प्रणाम कर लो।

पुत्र— (पैरों पर गिर कर) तात, पिता से रहित अब मेरे द्वारा क्या किया जाना चाहिए।

चन्द०— पुत्र, चाणक्य से रहित स्थान में निवास करना।

चण्डा०— आर्य चन्दनदास, शूली गाड़ दी गई है अतः तैयार हो जाओ।

कुटु०— सज्जनों रक्षा करो, रक्षा करो।

चन्द०— आर्ये, अब इस विषय में क्यों रो रही हो। स्वर्ग गए हुए व्यक्तियों के दुःखी परिवार पर देवता कृपा करते हैं। और फिर मेरी म त्यु मित्रकार्य से (हो रही है) अनुचित कार्य से नहीं। फिर भी प्रसन्न होने के स्थान पर क्यों रोया जा रहा है।

प्रथम चण्डाल— अरे बिल्वपत्र, चन्दनदास को पकड़ लो। परिवार के लोग स्वयं ही चले जाएगे।

द्वितीय चण्डाल— अरे वज्रलोमन्, यह पकड़ता हूँ।

चन्द०— भद्र, क्षण भर के लिए रुको जब तक पुत्र को सान्त्वना देता हूँ। (पुत्र का आलिंगन करके मस्तक पर सूँघकर अर्थात् चुम्बन करके) पुत्र म त्यु के अवश्यंभावी होने पर मित्र कार्य को करता हुआ (मैं) म त्यु को प्राप्त कर रहा हूँ।

पुत्र— तात, क्या यह भी कहने योग्य है अर्थात् क्या यह भी कहने की आवश्यकता है। यह निस्सन्देह हमारा कुलधर्म है। (ऐसा कह कर पैरों पर गिर पड़ता है)

चण्डा०— अरे इसे पकड़ लो। (दोनों चण्डाल चन्दनदास को पकड़ लेते हैं)

कुटु०— (वक्षस्थल पीटती हुई) सज्जनों रक्षा करो, रक्षा करो। (पर्दे को हटाने के साथ राक्षस प्रवेश करके) आदरणीये, डरो नहीं। हे हे फाँसी लगाने वालों, चन्दनदास को निश्चित रूप से नहीं मारा जाना चाहिए।

येन स्वामिकुलं रिपोरिव कुलं दुष्टं विनश्यत्पुरा
मित्राणां व्यसने महोत्सव इव स्वस्थेन येन स्थितम्।
आत्मा यस्य वधाय वः परिभवक्षेत्रीकृतोपि प्रियस्
तस्येयं मम म त्युलोकपदवी वध्यस्रगाबध्यताम्।।४।।

अन्वय— येन पुरा स्वामिकुलं रिपोः कुलम् इव विनश्यत् द ष्टं येन मित्राणां व्यसने महोत्सव इव स्वस्थेन स्थितं परिभवक्षेत्रीकृतः अपि यस्य आत्मा वः वधाय प्रियः तस्य मम इयं म त्युलोकपदवी वध्यस्रगाबध्यताम्।

सन्दर्भ— प्रस्तुत श्लोक में राक्षस अपने प्रति ग्लानि प्रकट करते हुए कहता है कि तिरस्कार का विषय होने पर भी मैं अपने शरीर से प्रेम करता रहा और चन्दनदास जैसे महान् पुरुषों का वध करवाता रहा परन्तु अब चन्दनदास को छोड़ दिया जाए और मुझे फाँसी पर लटका दिया जाए।

हिन्दी अनुवाद—

जिसके द्वारा पहले (अपने) स्वामियों (नन्दों) का वंश शत्रुवंश के समान नष्ट होते हुए देखा गया, जिसके द्वारा मित्रों की विपत्ति में महान् उत्सव (होने) के समान स्वस्थ रहा गया। तिरस्कार का विषय होने पर भी जिसकी आत्मा आपके वध के लिए (मुझे) प्रिय थी, उस मुझे यह म त्यु को प्राप्त करवाने वाली म त्यु माला बाँध दी जाए। (४)

स्पष्टीकरण— राक्षस अत्यधिक आत्मग्लानि का अनुभव करता है क्योंकि उसकी आँखों के सामने नन्दों का वंश नष्ट हो गया परन्तु वह इस प्रकार उदासीन बना रहा जैसे कि स्वामिवंश नहीं अपितु शत्रुवंश नष्ट हुआ हो। कौलूताधिपति चित्रवर्मा इत्यादि मित्रों को मार डाला गया परन्तु फिर भी वह महान् उत्सव होने की भाँति निर्विकार भाव से स्थित रहा। इस प्रकार अपमान का पात्र होने पर भी राक्षस अपने प्राणों को बचाने के लिए ही चन्दनदास इत्यादि जैसे महान् पुरुषों का वध करवाता रहा परन्तु अब म त्यु को प्राप्त करवाने वाली यह म त्युमाला चन्दनदास के गले से उतार कर मुझे पहना दी जाए।

उक्त श्लोक में उपमा तथा विरोध अलंकार तथा शार्दूलविक्रीडित छन्द है।

संस्कृत भावार्थ— येन मया पूर्वं स्वामिनन्दस्य वंशः शत्रोः वंश इव विनाशं गच्छत् अवलोकितं न तत्र प्रतिकृतम् इत्यर्थः। येन मया कौलूतादीनां सुहृदां वधे आनन्दावसरे इव निर्विकारभावेन

स्थितं साहाय्यं न कृतमित्यर्थः। स्वामिमित्रनाशादिना यस्य शरीरं अनादरास्पदीभूतमपि त्वाद शानां वधार्थं प्रार्थनीयं तस्य मम राक्षसस्य कण्ठे यमलोकगमनमार्गरूपा वध्यस्य चिह्नभूता चन्दनदासस्य कण्ठे निबद्धा इयं माला आबध्यताम्।

चन्द०— (सवाष्पं विलोक्य) अमात्य किमिदम्। (अमच्च किं एदं।)

राक्ष०— त्वदीयसुचरितैकदेशस्यानुकरणं किलैतत्।

चन्द०— अमात्य, सर्वमपीमं प्रयासं निष्फलं कुर्वता त्वया किमनुष्ठितम्। (अमच्च सव्वं वि इमं पआसं णिप्फलं करन्तेण तुए किं अणुचिट्ठिएं।)

राक्ष०— सखे, स्वार्थ एवानुष्ठितः। कृतमुपालम्भेन। भद्रमुख, निवेद्यतां दुरात्मने चाणक्याय।

वज्र०— किमिति। (किं त्ति।)

हिन्दी अनुवाद—

चन्द०— (आँसू सहित देखकर) अमात्य यह क्या है।

राक्ष०— यह निस्सन्देह तुम्हारे सच्चरित के एक अंश का अनुकरण है।

चन्द०— अमात्य (मेरे) इस सारे ही प्रयास को निष्फल करने वाले आपके द्वारा (यह) क्या कर दिया गया।

राक्ष०— मित्र, स्वार्थ ही सिद्ध किया गया है। उलाहना मत दो। भद्रमुख, दुष्ट चाणक्य से कह दो।

वज्र०— क्या।

स्पष्टीकरण— 'स्वार्थ एवानुष्ठितः' यह कहने से राक्षस का अभिप्राय यह है कि मैं अत्यधिक आत्मग्लानि का अनुभव कर रहा था क्योंकि मैंने स्वामिकुल का नाश, चित्रवर्मादि परम मित्रों का विनाश देखा परन्तु प्रतीकार रूप में कुछ भी नहीं किया। मैं अपने कारण तुम्हारी (चन्दनदास की) भी म त्यु करवा देता तो मेरे लिए जीवित रहना अत्यन्त दुष्कर हो जाता। अतः मैं तुम्हारे स्थान पर आत्मसमर्पण करके आत्मग्लानि से कुछ सीमा तक मुक्त हो कर स्वार्थ सिद्धि ही करूँगा।

राक्ष०—

दुष्काले पि कलावसज्जनरुचौ प्राणैः परं रक्षतां
नीतं येन यशस्विनातिलघुतामौशीनरीयं यशः।
बुद्धानामपि चेष्टितं सुचरितैः क्लिष्टं विशुद्धात्मना
पूजार्हो पि स यत्कृते तव गतो वध्यत्वमेषो स्मि सः।।५।।

अन्वय— असज्जनरुचौ दुष्काले कलौ अपि प्राणैः परं रक्षतां येन यशस्विना औशीनरीयं यशः अतिलघुतां नीतम् (येन) विशुद्धात्मना सुचरितैःबुद्धानां चेष्टितम् अपि क्लिष्टं पूजार्हः अपि सः यत्कृते तव वध्यत्वं गतः सः एषः अस्मि।

सन्दर्भ— दुष्टप्रव त्तिप्रधान इस कलियुग में भी चन्दनदास द्वारा किए गए अनुपम त्याग की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुए राक्षस उसे राजा शिवि के त्याग और बुद्धों के सच्चरित से भी अधिक श्रेष्ठ बतलाता है।

हिन्दी अनुवाद—

दुष्ट प्रव त्ति वाले पापी कलियुग में भी (अपने) प्राणों से दूसरों की रक्षा करने वाले जिस यशस्वी के द्वारा उशीनर के पुत्र शिवि के यश को अत्यधिक तुच्छ कर दिया गया (और जिस) पवित्रात्मा के द्वारा अपने सच्चरितों से बुद्धों के आचरण को भी तिरस्कृत कर दिया गया, पूजनीय होने पर भी वह (चन्दनदास) जिसके लिए तुम्हारे हाथों म त्यु को प्राप्त हुआ है वह यह (मैं राक्षस) हूँ। (५)

स्पष्टीकरण— चन्दनदास ने ऐसे कलियुग में अपने प्राण देकर अपने मित्र की रक्षा की है जिसमें सभी दुष्ट प्रव त्ति वाले व स्वार्थपरायण होते हैं जब कि राजा शिवि ने ऐसे सतयुग में शरणागत कपोत की रक्षा की थी जब सब सज्जन प्रव त्ति व परार्थ परायण थे। अतः चन्दनदास का त्याग राजा शिवि की अपेक्षा कहीं अधिक महान है।

बौद्धधर्मानुयायियों का त्याग, अनासक्ति, सर्वभूतदया इत्यादि प्रधान आचरण भी चन्दनदास के श्रेष्ठ आचरण की तुलना में कुछ नहीं है।

उक्त श्लोक में व्यतिरेक अलंकार तथा शार्दूलविक्रीडित छन्द है।

संस्कृत भावार्थ—

असाध्वी लोकप्रव त्तिः यस्मिन् काले तस्मिन् पापे कलियुगे आत्मजीवनेन अन्यं त्रायमाणेन येन कीर्तिमता चन्दनदासेन औशीनरस्य राज्ञः शिवेः इत्यर्थः कपोतपरित्राणजा कीर्तिः अत्यन्ततुच्छतां प्रापिता यतः शिविना पुण्ये कृतयुगे तत्कृतमिति नात्र चित्रम् परं चन्दनदासेन ईद शं कर्म पापे कलियुगे कृतम्। येन पवित्रात्मना च पुण्यकर्मभिः आर्हत्तानां चरितम् अपि तिरस्कृतम्। सत्कारपात्रमपि असौ चन्दनदासः यस्य राक्षसस्य निमित्तं तव वध्यत्वं प्राप्तः सः एषः अहम् राक्षसः अस्मि।

प्रथमः— अरे बिल्वपत्रक, त्वं तावच्चन्दनदासं ग हीत्वेहैतस्य श्मशानपादपस्य छायायां मुहुर्तं तिष्ठ यावदहमार्यचाणक्याय निवेदयामि ग हीतो मात्यराक्षस इति। (अले बिल्वपत्तअ तुमं दाव चन्दनदासं गेह्णिअ इह एदस्स मसाणपादपस्स छाआए मुहुत्तं चिट्ठ जाव अहं अज्जचाणवकस्स णिवेदेमि गिहीदो अमच्चरक्खसो त्ति।)

द्वितीयः— अरे वज्रलोमन् एवं भवतु। (अले वज्रलोमा एवं होदु।)

(इति सपुत्रदारेण चन्दनदासेन सह निष्क्रान्तः)

प्रथमः— एत्वमात्यः। (राक्षसेन सह परिक्रम्य) अस्त्यत्र कोपि निवेदयत तावन्नन्दकुलनगकुलिशस्य मौर्यकुलप्रतिष्ठापकस्यार्यचाणक्यस्य। (एदु अमच्चो। अस्थि एत्थ कोवि णिवेदेह दाव णन्दकुहणकुलिसस्स मौलिअकुलपडिट्ठावकस्स अज्जचाणक्कस्स।)

राक्ष०— (स्वगतम्) एतदपि नाम श्रोतव्यम्।

चण्डा०— एष आर्यनीतिसंयमितबुद्धिपुरुषकारो ग हीतो मात्यराक्षस इति। (एसो अज्जणीदिसंजमिद्बुद्धिपुलिस आले गिहीदे अमच्चरक्खसेत्ति।)

(ततः प्रविशति जवनिकाव तशरीरो मुखमात्रद श्यश्च चाणक्यः)

चाणक्यः— भद्र, कथय कथय।

हिन्दी अनुवाद—

प्रथम— अरे बिल्वपत्रक, तुम तब तक चन्दनदास को लेकर यहीं श्मशान के इस व क्ष की छाया

में क्षण भर के लिए ठहरो जब तक मैं आर्य चाणक्य को निवेदन करता हूँ कि अमात्य राक्षस पकड़ लिए गए हैं।

द्वितीय— अरे वज्रलोमन् ऐसा ही हो।

(ऐसा कहकर पुत्र और पत्नी सहित चन्दनदास के साथ निकल जाता है।)

प्रथम— अमात्य आएँ। (राक्षस के साथ घूमकर)क्या यहाँ कोई है जो नन्दवंशरूपी पर्वत के लिए वज्र के समान (और) मौर्य वंश के प्रतिष्ठापक आर्य चाणक्य को सूचित करे।

राक्षस— (अपने आप) यह नाम भी सुनना था।

चण्डा०— आर्य (चाणक्य) की नीति से विवश बुद्धि (और) पराक्रम वाले यह अमात्य राक्षस पकड़ लिए गए हैं।

(तब शरीर को पर्दे से ढककर जिसमें केवल मुख ही दिखाई पड़ रहा है, चाणक्य प्रवेश करता है)।

चाणक्य— भद्र, बताओ बताओ।

केनोत्तुंगशिखाकलापकपिलो बद्धः पटान्ते शिखी
पाशैः केन सदागतेरगतिता सद्यः समासादिता।
केनानेकपदानवासितसटः सिंहो र्पितः प जरे
भीमः केन च नैकनक्रमकरो दोर्भ्यां प्रतीर्णो र्णवः।।६।।

अन्वय— केन उत्तुंगशिखाकलापकपिलो शिखी पटान्ते बद्धः, केन पाशैः सदागतेः अगतिता सद्यः समासादिता। केन अनेकपदानवासितसटः सिंहः प जरे अर्पितः च केन नैकनक्रमकरो भीमः अर्णवः दोर्भ्यां प्रतीर्णः।

सन्दर्भ— प्रस्तुत श्लोक में चाणक्य आत्मप्रशंसा करने के साथ साथ राक्षस की भी प्रशंसा करते हुए कहता है कि राक्षस को वश में करना अत्यन्त दुष्कर कार्य था परन्तु उसने वह कर दिखाया है।

हिन्दी अनुवाद—

किसके द्वारा ऊँची लपटों के समूह से लाल अग्नि वस्त्र के अन्दर बाँध ली गई है। किसके द्वारा पाशों (रस्सियों) से सतत गतिशील वायु को शीघ्र ही गतिहीनता को प्राप्त करवा दिया गया है। किसके द्वारा अनेक हाथियों के मदजल से सुगन्धित जटा वाले शेर को पि जरे में बन्द कर दिया गया है और किसके द्वारा अनेक घड़ियाल और मगरमच्छों वाले भयंकर समुद्र को दोनों भुजाओं द्वारा पार कर लिया गया है। (६)

स्पष्टीकरण— जिस प्रकार धधकती हुई लाल अग्नि को वस्त्र के अन्दर बाँधना, वायु को रस्सियों की सहायता से गतिहीन बनाना, हाथियों का मदजल पीने से घमण्डी शेर को पि जरे में बन्द करना तथा मगरमच्छों के कारण भयंकर समुद्र को दोनों भुजाओं से पार करना अत्यन्त कठिन कार्य है उसी प्रकार राक्षस को वश में करना भी दुष्कर कार्य था परन्तु चाणक्य ने अपनी नीति द्वारा यह कर दिखाया है। चाणक्य के इस कथन से यह भी स्पष्ट है कि वह राक्षस को कितना अधिक योग्य व सर्वगुणसम्पन्न समझता था।

उक्त श्लोक में अतिशयोक्ति अलंकार तथा शार्दूलविक्रीडित छन्द है।

संस्कृत भावार्थ—

उन्नतानाम् ऊर्ध्वस्थितानाम् इत्यर्थः ज्वालानां समूहेन पिंगलः अग्निः केन वस्त्रान्ते ध तः। केन रज्जुभिः सततगमनशीलस्य वायोः अचलतां झटिति प्रापिता। गजानां मदजलेन सुरभीकृताः जटाः यस्य ताद शः सिंहः केन प जरे नियन्त्रितः। असंख्याः नक्राःग्राहाश्च यत्र तथाभूतः भयंकरः सागरः केन बाहुभ्याम् उत्तीर्णः। एवं दुष्करो राक्षसवशीकारः केन कृत इति अतिशयोक्तया स्वात्मगुणश्लाघा।

चण्डा०— ननु नीतिनिपुणबुद्धिनार्येण। (णं णीदिणिउण बुद्धिणा अज्जेण।)

चाण०— मा मैवम्। नन्दकुलविद्वेषिणा दैवेनेति ब्रूहि।

राक्ष०— (स्वगतम्) अयं दुरात्मा अथवा महात्मा कौटिल्यः।

हिन्दी अनुवाद—

चण्डा०— निस्सन्देह नीतिनिपुण बुद्धि वाले आर्य के द्वारा।

चाण०— नहीं नहीं ऐसा नहीं है। नन्दवंश से द्वेष रखने वाले भाग्य के द्वारा—ऐसा कहो।

राक्ष०— (अपने आप) यह दुष्टात्मा अथवा महात्मा कौटिल्य है।

आकरः सर्वशास्त्राणां रत्नानामिव सागरः।
गुणैर्न परितुष्यामो यस्य मत्सरिणो वयम्।।७।।

अन्वय— रत्नानां सागरः इव सर्वशास्त्राणाम् आकरः यस्य गुणैः मत्सरिणः वयं न परितुष्यामः।

सन्दर्भ— चाणक्य के मुख से यह सुनते ही कि राक्षस को वश में किए जाने का दुष्कर कार्य उसके द्वारा नहीं अपितु नन्दवंश से द्वेष रखने वाले भाग्य के द्वारा किया गया है, राक्षस के मन में चाणक्य के प्रति समस्त कटुता दूर हो जाती है और वह प्रथम बार उक्त श्लोक में उसकी प्रशंसा करता है।

हिन्दी अनुवाद—

रत्नों के सागर के समान (यह चाणक्य) सब शास्त्रों का कोष है जिसके गुणों से द्वेष रखने वाले हम प्रसन्न नहीं होते। (७)

स्पष्टीकरण— राक्षस का अभिप्राय यह है कि जिस प्रकार समुद्र सभी रत्नों का खजाना होता है उसी प्रकार यह चाणक्य सर्वशास्त्रवित् है। परन्तु हम इससे द्वेष करते थे अतः इसके गुणों को पहचान नहीं पाए और इसकी प्रशंसा नहीं कर पाए।

राक्षस ने जब प्रथम बार चाणक्य के मुख से विनम्रता प्रकट करने वाला कथन सुना तो वह अत्यधिक प्रभावित हुआ और उसे अपने प्रति ग्लानि सी हुई कि यह चाणक्य तो महात्मा ही है परन्तु हम ही इसके प्रति द्वेष रखने के कारण इसके गुणों को पहचान नहीं पाए।

उक्त श्लोक में उपमा अलंकार तथा अनुष्टुब् छन्द है।

संस्कृत भावार्थ—

अयं चाणक्यः समस्तशास्त्रज्ञानानाम् तथैव कोषः वर्तते यथा समुद्रः रत्नानां भवति। परम् अस्य गुणैः विद्वेषवन्तः वयं प्रीतिं न प्राप्नुमः। अतएव अस्मान् अयं दुरात्मा इव प्रतिभाति स्म वस्तुतस्तु एषः महात्मा।

चाण०— (विलोक्य सहर्षं स्वगतम्) अये अयमसावमात्यराक्षसः। येन महात्मना—

गुरुभिः कल्पनाक्लेशैर्दीर्घजागरहेतुभिः।
चिरमायासिता सेना व षलस्य मतिश्च मे।।८।।

अन्वय— दीर्घजागरहेतुभिः गुरुभिः कल्पनाक्लेशैः व षलस्य सेना च मे मतिः चिरम् आयासिता।

सन्दर्भ— उक्त श्लोक में चाणक्य राक्षस की बुद्धि और पौरुष की प्रशंसा करता है जिनसे भयभीत हुई चन्द्रगुप्त की सेना व चाणक्य की बुद्धि को महान् कष्ट का अनुभव करना पड़ा।

हिन्दी अनुवाद—

चाण०— (देखकर हर्षपूर्वक अपने आप) अरे, यह वह अमात्य राक्षस है जिस महात्मा के द्वारा—

लम्बे जागरण की कारणभूत महान् योजनाओं के कष्टों द्वारा व षल की सेना और मेरी बुद्धि चिरकाल तक पीड़ित की गई। (८)

स्पष्टीकरण— व षल की सेना तो इस भय से कि पता नहीं कब राक्षस हम पर आक्रमण कर दे, रात दिन निरन्तर आक्रमण करने के लिए तैयार रहती थी और चाणक्य राक्षस द्वारा बनाई गई योजनाओं का प्रतीकार करने के उपाय और उसको वश में करने के उपायों के विषय में ही रात दिन सोचता रहता था। इस प्रकार चिरकाल तक न तो व षल की सेना निश्चिन्त होकर सो पाई और न ही मैं।

उक्त श्लोक में तुल्ययोगिता अलंकार तथा अनुष्टुप् छन्द है।

संस्कृत भावार्थ—

चिरनिद्रोच्छेदकारणैः महद्भिः कर्त्तव्याकर्त्तव्योपायरचनोत्पन्नदुःखैः चन्द्रगुप्तस्य सेना मम बुद्धिश्च बहुकालपर्यन्तं क्लेशिता। सेनायां कल्पनाक्लेशाः सदासन्नहनादयः। मतौ कल्पनाक्लेशाः ऊहापोहादयः।

(जवनिकामपनीयोपस त्य च) भो अमात्यराक्षस, विष्णुगुप्तो हमभिवादये।

राक्ष०— (स्वगतम्) अमात्य, इति लज्जाकरमिदानीं विशेषणम्। (प्रकाशम्) विष्णुगुप्त न मां चाण्डालस्पर्शदूषितं स्प्रष्टुमर्हसि।

चाण०— अमात्यराक्षस, नेमौ चाण्डालौ। अयं खलु दुष्टपूर्व एव भवता सिद्धार्थको नाम राजपुरुषः। योप्यसौ द्वितीयः सो पि समिद्धार्थको नाम राजपुरुषः एव। शकटदासो पि तपस्वी तं ताद शं कपटलेखमजानन्नेव मया लेखितः।

राक्ष०— (स्वगतम्) दिष्ट्या शकटदासं प्रत्यपनीतो विकल्पः।

चाण०— किं बहुना। एष संक्षेपतः कथयामि—

हिन्दी अनुवाद—

(पर्दा हटाकर और पास जाकर) हे अमात्यराक्षस, मैं विष्णुगुप्त अभिवादन करता हूँ।

राक्ष०— (अपने आप) अमात्य, यह तो अब लज्जित करने वाला विशेषण है। (स्पष्ट रूप से) विष्णुगुप्त चाण्डालों के स्पर्श से दूषित मुझे मत छुओ।

चाण०— अमात्यराक्षस, ये दोनों चाण्डाल नहीं है। यह निस्सन्देह आपके द्वारा पहले ही देखा गया सिद्धार्थक नामक राजसेवक है। जो वह दूसरा है वह भी समिद्धार्थक नामक राजसेवक ही है। बेचारे (तपस्वी) शकटदास से भी उस प्रकार का वह कपट लेख (उसके) जाने बिना ही मेरे द्वारा लिखवाया गया।

राक्ष०— (अपने आप) सौभाग्य से (दिष्ट्या) शकटदास के प्रति मेरा सन्देह दूर हो गया।

चाण०— अधिक क्या कहूँ। संक्षेप से यह कहता हूँ—

भ त्या भद्रभटादयः स च तथा लेखः स सिद्धार्थकस्
तच्चालंकरणत्रयं स भवतो मित्रं भदन्तः किल।
जीर्णोद्यानगतः स चापि पुरुषः क्लेशः स च श्रेष्ठिनः
सर्वं मे (इत्यर्धोक्ते लज्जां नाट्यन्)
व षलस्य वीर भवता संयोगमिच्छोर्नयः।।६।।

अन्वय— भद्रभटादयः भ त्याः तथा सः लेखः च सः सिद्धार्थकः च तत् अलंकरणत्रयं किल भवतः सः मित्रं भदन्तः च जीर्णोद्यानगतः पुरुषः अपि च श्रेष्ठिनः सः क्लेशः सर्वं वीर व षलस्य भवता संयोगम् इच्छोः मे नयः।

सन्दर्भ— चाणक्य प्रस्तुत श्लोक में मुख्य मुख्य उन उपायों का संक्षेप से वर्णन करता है जिनका प्रयोग उसने राक्षस को चन्द्रगुप्त का अमात्य बनाने की इच्छा से किया है।

हिन्दी अनुवाद—

भद्रभट इत्यादि सेवक और वह पत्र और वह सिद्धार्थक और वे तीन आभूषण, निस्सन्देह आपका वह मित्र भदन्त (क्षणपक) और जीर्णोद्यान में गया हुआ पुरुष भी और सेठ (चन्दनदास) का वह कष्ट ये सब (ऐसा आधा कहने पर लज्जा का अभिनय करता हुआ) हे वीर, व षल का आपके साथ सम्बन्ध चाहने वाले मेरी नीतियाँ थीं। (६)

स्पष्टीकरण— प्रथम अंक में भद्रभट इत्यादि प्रधान पुरुषों का उल्लेख आया है जो चन्द्रगुप्त से विमुख होकर मलयकेतु के पास चले गए थे। यहाँ उसी पत्र का उल्लेख है जो प्रथम अंक में चाणक्य ने सिद्धार्थक द्वारा शकटदास से लिखवाया था और राक्षस की मुद्रा से मुद्रित कर दिया था और प चम अंक में जो राक्षस के प्रति मलयकेतु के अविश्वास को द ढ़ करने का कारण बना। सिद्धार्थक चाणक्य का अत्यन्त विश्वसनीय गुप्तचर था जो चाणक्य की योजनानुसार ही शकटदास को वध्यस्थल से लेकर भाग गया था। और प चम अंक में जिसने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। तीन आभूषण पर्वतक के वही आभूषण थे जो चाणक्य ने विश्वावसु इत्यादि तीन भाइयों के द्वारा राक्षस के पास बिकवा दिए थे, क्षपणक जीवसिद्धि वस्तुतः इन्दुशर्मा नामक चाणक्य का सहाध्यायि था जिसने राक्षस का परम मित्र होने का सफल अभिनय किया तथा अन्त में मलयकेतु को राक्षस के विरुद्ध भड़का दिया। पुरुष वही पुरुष था जिसने जीर्णोद्यान में स्वयं को फाँसी लगाने का अभिनय किया तथा राक्षस को आत्मसमर्पण द्वारा ही चन्दनदास को मुक्त करवाने के लिए विवश कर दिया। चन्दनदास राक्षस का परम मित्र था जिसे चाणक्य ने राक्षस का परिवार न सौंपने के कारण राजद्रोह करने के अभियोग में परिवार सहित कारागार में डलवा दिया था और अन्त में फाँसी लगाने का आदेश भी दिलवा दिया था।

इन सब उपायों का आश्रय चाणक्य को राक्षस को चन्द्रगुप्त का अमात्यपद स्वीकार करवाने के लिए ही लेना पड़ा क्योंकि राक्षस को पराक्रम से वश में किया जाना सम्भव नहीं था।

प्रस्तुत श्लोक में काव्यलिंग अलंकार तथा शार्दूलविक्रीडित छन्द है।

संस्कृत भावार्थ—

भद्रभटभागुरायणडिंगरातादयः सेवकाः, तेन प्रकारेण छलेन रचितं तत् कपटपत्रं, शकटदासस्य त्राता सिद्धार्थको नाम राजपुरुषः, वणिग्भिः विक्रीतानि पर्वतकस्य तानि त्रीणि भूषणानि, भवतः मिथ्या मित्रं क्षपणकः, देहत्यागे मिथ्या व्यवसितः जीर्णोद्यानगतः सः पुरुषः, श्रेष्ठिनः चन्दनदासस्य दुःखं सकलमिदम् उपायजातम् हे शूर, चन्द्रगुप्तस्य त्वया सह सन्धि कामयमानस्य मम नीतिप्रयोगः आसीत्।

तदयं व षलस्त्वां द्रष्टुमिच्छति। पश्यैनम्।

राक्षस— (स्वगतम्) का गति। एष पश्यामि।

(ततः प्रविशति राजा विभवतश्च परिवारः)

राजा— (स्वगतम्) विनैव युद्धादार्येण जितं दुर्जयं परबलमिति लज्जित एवास्मि। मम हि—

हिन्दी अनुवाद—

तो यह व षल आपको देखना चाहता है। इसे देखो।

राक्ष०— (अपने आप) क्या उपाय है। यह देखता हूँ।

(तत्पश्चात् राजा और उसके ऐश्वर्य के अनुसार सेवक प्रवेश करते हैं।)

राजा— (अपने आप) आर्य के द्वारा युद्ध के बिना ही दुर्जेय शत्रु सेना को जीत लिया गया है ऐसा सोच कर (मै) लज्जित ही हूँ। क्योंकि मेरे—

फलयोगमवाप्य सायकानामनियोगेन विलक्षतां गतानाम्।
स्वशुचेव भवत्यधोमुखानां निजतूणीशयनव्रतप्रतिष्ठा।।१०।।

अन्वय— फलयोगमवाप्य अनियोगेन विलक्षतां गतानां स्वशुचा इव अधोमुखानां सायकानाम् निजतूणीशयनव्रतप्रतिष्ठा भवति।

सन्दर्भ— चाणक्य की नीति द्वारा युद्ध किए बिना ही राक्षस को जीत लिए जाने पर चन्द्रगुप्त लज्जित सा होता है क्योंकि उसे अपना पराक्रम दिखलाने का अवसर ही नहीं मिलता। प्रस्तुत श्लोक में वह अपनी लज्जा को बाणों पर आरोपित कर अभिव्यक्त करता है।

हिन्दी अनुवाद—

शल्ययोग को प्राप्त करके (भी) प्रयोग न किए जाने के कारण लज्जा को प्राप्त हुए अपने दुःख से मानों नीचा मुख किए बाणों की अपने तरकश में शयन रूपी व्रत लेने की प्रतिष्ठा (प्रतिज्ञा) हो गई है। (१०)

स्पष्टीकरण— चन्द्रगुप्त का आशय है कि बाणों के अग्रभाग पर लोहे की कील लगाकर उन्हें युद्ध में प्रयोग करने के लिए तैयार कर लिया गया था परन्तु उनको प्रयोग करने का अवसर ही प्राप्त नहीं हुआ। अतः वे लज्जित से हो गए तथा दुःखी होकर उन्होंने नीचा मुख कर लिया अब उन्होंने यह व्रत भी ले लिया कि वे तरकश में ही शयन करेंगे, कभी भी बाहर नहीं निकलेंगे। वास्तव में जब बाणों को तरकश में रखा जाता है तो उनका अग्रभाग नीचे की तरफ होता है। इस पर कवि ने कल्पना की है कि मानो दुःख के कारण उन्होंने अपना मुख नीचे की तरफ कर लिया। इसके अतिरिक्त अब चन्द्रगुप्त का कोई शत्रु बचा ही नहीं अतः युद्ध करने की आवश्यकता उसे भविष्य में होगी ही नहीं। इस पर कवि ने कल्पना की है कि मानों बाणों ने सदा तरकश में रहने का ही व्रत धरण कर लिया।

उक्त श्लोक में उत्प्रेक्षा अलंकार तथा मालभारिणी छन्द है।

संस्कृत भावार्थ—

लौहमयाग्रकीलसम्बन्धं प्राप्य अपि तेषां युद्धादौ विनियोगस्याभावेन लज्जितानां, दुःखेन इव अवनताननानां बाणानां स्वशरधौ यत् निश्चेष्टभावेनावस्थानं तदेव व्रतं जातम्।

अथवा—

विगुणीकृतकार्मुको पि जेतुं भुवि जेतव्यमसौ समर्थ एव।
स्वपतो पि ममेव यस्य तन्त्रे गुरवो जाग्रति कार्यजागरूकाः।।११।।

अन्वय— विगुणीकृतकार्मुकः अपि असौ मम इव स्वपतः अपि भुवि जेतव्यं जेतुं समर्थ एव यस्य तन्त्रे कार्यजागरूकाः गुरवः जाग्रति।

सन्दर्भ— उक्त श्लोक में चन्द्रगुप्त अपने गुरु चाणक्य की अपने राज्य के प्रति जागरूकता की प्रशंसा करते हुए अपनी सफलता का श्रेय उन्हीं को देता है।

हिन्दी अनुवाद—

अथवा—

धनुष को प्रत्य चा पर चढ़ाए बिना भी वह (राजा) मेरे समान सोते हुए भी संसार में जीतने योग्य (सब) को जीतने में समर्थ है जिसके राज्य में राज्य स चालन में सतत सावधान गुरु जागरूक रहते हैं। (११)

स्पष्टीकरण— चन्द्रगुप्त तुरन्त ही अपनी लज्जित होने की भावना को दूर कर देता है तथा अपने गुरु चाणक्य की सफलता पर प्रसन्नता अभिव्यक्त करता है। चन्द्रगुप्त का आशय यह है कि जिस राजा के राज्य का संचालन उसके गुरु सावधानीपूर्वक करते हैं वह राजा धनुष का प्रयोग किए बिना भी और राज्य की चिन्ता से विमुख होकर भी सब कुछ प्राप्त कर सकता है। और इसका ज्वलन्त उदाहरण मैं स्वयं हूँ।

उक्त श्लोक में विभावना अलंकार तथा मालभारिणी छन्द है।

संस्कृत भावार्थ—

निद्रितस्य अपि राज्यचिन्तापराङ्मुखस्येति अर्थः मम इव यस्य राज्ञः राज्ये राजकार्येषु अवहिताः आर्यचाणक्यः इव मन्त्रिणः अनिशं सततं प्रयत्नं कुर्वन्ति सः न पः मौर्वीहीनशरासनो पि अस्यां प थिव्यां जेतुं योग्यं सर्वं पराभवितुं शक्तः एव।

(चाणक्यमुपस त्य) आर्य, चन्द्रगुप्तः प्रणमति।

चाण०— **व षल, संपन्नास्ते सर्वाशिषः। अयममात्यराक्षसः प्राप्तः। तदभिवादयस्वात्रभवन्तममात्यमुख्यम्।**

राक्ष०— **(स्वगतम्) योजितो नेन संबन्धः।**

राजा— **(राक्षसमुपस त्य) आर्य, चन्द्रगुप्तो भिवादयते।**

राक्ष०— **(विलोक्य स्वगतम्) अये चन्द्रगुप्तः! य एषः—**

हिन्दी अनुवाद—

(चाणक्य के पास जाकर) आर्य, चन्द्रगुप्त प्रमाण करता है।

चाणक्य— व षल, तुम्हारी सब इच्छाएँ पूरी हो गई हैं। यह अमात्य राक्षस प्राप्त हो गए हैं। अतः आदरणीय मुख्य अमात्य का अभिवादन करो।

राक्ष०— (अपने आप) इसके द्वारा सम्बन्ध स्थापित कर दिया गया है।

राजा— (राक्षस के पास जाकर) आर्य, चन्द्रगुप्त अभिवादन करता है।

राक्ष०— (देखकर अपने आप) अरे चन्द्रगुप्त। जो यह—

बाल एव हि लोकेस्मिन्संभावितमहोदयः।
क्रमेणारूढवान् राज्यं यूथैश्वर्यमिव द्विपः।।१२।।

अन्वय— बाल एव हि अस्मिन्लोके संभावितमहोदयः यूथैश्वर्यं द्विपः इव क्रमेण राज्यम् आरूढवान्।

सन्दर्भ— चिरकाल के पश्चात् चन्द्रगुप्त को देखकर राक्षस अपने मन में सोचता है कि यह बचपन से ही अपने भावी महोदय को सूचित कर रहा था और अब युवावस्था में ही कालक्रमसे इसके द्वारा राज्य प्राप्त कर लिया जाना आश्चर्यजनक नहीं है।

हिन्दी अनुवाद—

बचपन से ही इस संसार में सूचित किए गए अभ्युदय वाला (यह चन्द्रगुप्त) हाथियों के समूह का आधिपत्य प्राप्त करने वाले हाथी के बच्चे के समान क्रमशः राज्य पर आरूढ़ हो गया है। (१२)

स्पष्टीकरण— राक्षस का आशय यह है कि चन्द्रगुप्त को बाल्यावस्था में ही देखकर प्रतीत होता था कि यह भविष्य में महोदय को प्राप्त करेगा क्योंकि यह राजलक्षणों से युक्त था और कालक्रम से अब यह राज्य पर आरूढ़ भी हो गया।

उक्त श्लोक में उपमा अलंकार है।

संस्कृत भावार्थ—

बाल्यादारभ्यैव अस्मिन् संसारे उत्प्रेक्षिताभ्युदयः अयं चन्द्रगुप्तः हस्तीव गजयूथस्य नेत त्वम् इव कालक्रमेण राज्यम् आप्तवान्।

(प्रकाशम्) राजन्विजयस्व।

राजा— **आर्य !**

जगतः किं न विजितं मयेति प्रविचिन्त्यताम्।
गुरौ षाड्गुण्यचिन्तायामार्ये चार्ये च जाग्रति।।१३।।

अन्वय— गुरौ आर्ये च आर्ये षाड्गुण्यचिन्तायाम् जाग्रति मया जगतः कि न विजितम् इति प्रविचिन्त्यताम्।

सन्दर्भ— चन्द्रगुप्त द्वारा प्रणाम किए जाने पर जब राक्षस उसे विजयी होने का आशीर्वाद देता है तो चन्द्रगुप्त अपनी विनम्रता प्रकट करते हुए कहता है कि आप दोनों गुरुओं के द्वारा मेरी चिन्ता किए जाने के कारण मेरे द्वारा तो सभी कुछ प्राप्त कर लिया गया है।

हिन्दी अनुवाद—

(स्पष्ट रूप से) राजन्! विजयी हो।

राजा— आर्य

गुरु आर्य (चाणक्य) और आर्य (राक्षस) के छः गुणों की चिन्ता में जागरूक रहने पर मेरे द्वारा संसार में क्या नहीं जीत लिया गया है—यह (जरा) सोचिए। (१३)

स्पष्टीकरण— चन्द्रगुप्त राक्षस के प्रति अमात्यरूप में व्यवहार करता है। सन्धि, विग्रह, यान, आसन, द्वैधीभाव और समाश्रय ये छः गुण हैं।

उक्त श्लोक में तुल्ययोगिता और समुच्चय अलंकार तथा अनुष्टुब् छन्द है।

संस्कृत भावार्थ—

गुरौ चाणक्ये मान्ये भवति राक्षसे च सन्धिविग्रहयानादीनां षण्णां विधानभावनायां जागरूके सति मया प थिव्याः किं वस्तु न लब्धम् एतत् विभाव्यताम्। सर्वमेव जितम्।

राक्ष०— (स्वगतम्) स्प शति मां भ त्यभावेन, कौटिल्यशिष्यः। अथवा विनय एवैष चन्द्रगुप्तस्य मत्सरस्तु मे विपरीतं कल्पयति। सर्वथा स्थाने यशस्वी चाणक्यः। कुतः?—

हिन्दी अनुवाद—

राक्ष०— (अपने आप) कौटिल्य का शिष्य मेरे साथ सेवकभाव से व्यवहार कर रहा है। अथवा यह चन्द्रगुप्त की विनम्रता ही है परन्तु ईर्ष्या मुझे विपरीत भाव का (विपरीत) ज्ञान करवा रही है। सब प्रकार से चाणक्य उचित ही यशस्वी है। क्योंकि—

स्पष्टीकरण— चन्द्रगुप्त द्वारा राक्षस को अमात्य रूप में स्वीकार कर लिए जाने पर राक्षस के मन में प्रथम प्रतिक्रिया यह होती है कि चन्द्रगुप्त उसे सेवक समझकर उसके साथ सेवक जैसा व्यवहार कर रहा है। ऐसा समझने का एक कारण तो सम्भवतः यह हो सकता है कि मलयकेतु पहले कह चुका है कि तुम्हें वहाँ यद्यपि चन्द्रगुप्त का अमात्य पद मिल जाएगा तथापि वह है तो दासता ही। सम्भवतः राक्षस के अवचेतन मन में यही बात घर कर गई हो। और दूसरे जब राक्षस ने चन्द्रगुप्त को विजयी होने का आशीर्वाद दिया तो उसने कहा कि मेरे द्वारा तो क्या नहीं जीत लिया गया ऐसा आप सोचें। राक्षस को चन्द्रगुप्त का यह कहना भी बुरा लगा होगा क्योंकि 'इति प्रविचिन्त्यताम्' पद राक्षस का बुद्धिहीन होना ध्वनित करता है। वैसे भी राक्षस भावुक प्रकृति का है। अतः पहले तो वह सोचता है कि चन्द्रगुप्त उसके साथ सेवकों जैसा व्यवहार कर रहा है परन्तु अगले ही क्षण वह सोचता है कि नहीं ऐसा नहीं है। चन्द्रगुप्त तो अपनी विनम्रता के कारण ऐसा कह रहा है परन्तु वस्तुतः मैं उससे द्वेष रखता हूँ अतः उसके कथन को अन्यथा समझ रहा हूँ।

पुनः वह प्रत्येक द ष्टि से चाणक्य को ही यशस्वी मानता है।

द्रव्यं जिगीषुमधिगम्य जडात्मनो पि
नेतुर्यशस्विनि पदे नियता प्रतिष्ठा।
अद्रव्यमेत्य तु विशुद्धनयो पि मन्त्री
शीर्णाश्रयः पतति कूलजव क्षव त्त्या।।१४।।

अन्वय— द्रव्यं जिगीषुम् अधिगम्य जडात्मनः नेतुः अपि यशस्विनि पदे प्रतिष्ठा नियता तु अद्रव्यम् एत्य विशुद्धनयः अपि मन्त्री शीर्णाश्रयः कूलजव क्षव त्त्या पतति।

सन्दर्भ— प्रस्तुत श्लोक में राक्षस मन्त्री की सिद्धि राजाधीन बतलाते हुए अपनी तुलना चाणक्य से करता है।

हिन्दी अनुवाद—

योग्य और विजय के इच्छुक (राजा) को प्राप्त करके मन्दबुद्धि वाले अमात्य की भी यशस्वी पद पर प्रतिष्ठा होना निश्चित है परन्तु अयोग्य (राजा को) प्राप्त करके शुद्धनीति वाला मन्त्री भी नष्ट आश्रय वाला होकर किनारे पर उत्पन्न व क्ष की भाँति गिर पड़ता है। (१४)

स्पष्टीकरण— उक्त श्लोक में राक्षस सब तरह से चाणक्य को ही यशस्वी बतलाता है क्योंकि उसे चन्द्रगुप्त जैसा योग्य राजा मिला है दूसरी तरफ राक्षस को मलयकेतु जैसा अयोग्य राजा मिला अतः केवल विजय प्राप्ति ही होते होते नहीं रह गई अपितु मलयकेतु का भी अनिष्ट हुआ और उसका आश्रय लेने वाले राक्षस का भी अनिष्ट हुआ जिस प्रकार नदी का तट स्वयं तो नदी की धारा के प्रवाह से गिरता ही गिरता है परन्तु किनारे पर उत्पन्न व क्ष को भी अपने साथ ले डूबता है।

इस प्रकार सत्पात्र चन्द्रगुप्त का आश्रय लेने से चाणक्य की कार्यसिद्धि हुई परन्तु असत्पात्र मलयकेतु का आश्रय लेने से राक्षस की कार्यसिद्धि तो दूर, पतन ही हो गया।

उक्त श्लोक में अप्रस्तुतप्रशंसा तथा निदर्शना अलंकार तथा वसन्ततिलका छन्द है।

संस्कृत भावार्थ—

श्रेयः प्राप्तियोग्यं जयोद्योगिनं पुरुषं प्राप्य मन्दबुद्धेः अमात्यस्य अपि कीर्तिप्रापके स्थाने स्थितिः निश्चित एव भवति किमुतोदारबुद्धेरमात्यस्य परन्तु अयोग्यप्रभोराश्रयेण अनवद्यः नीतिप्रयोगः यस्य ताद शः अमात्यः अपि अहमिव उच्छिन्नानवलम्बनः सन् नदीतटजातस्य व क्षस्य व्यवहारेण पतति।

चाण०— अमात्य राक्षस, अपीष्यते चन्दनदासस्य जीवितम्।

राक्ष०— भो विष्णुगुप्त, कः सन्देहः।

चाण०— अमात्यराक्षस, अग हीतशस्त्रेण भवतानुग ह्यते व षल इत्यतः सन्देहः। तद्यदि सत्यमेव चन्दनदासस्य जीवितमिष्यते ततो ग ह्यतामिदं शस्त्रम्।

राक्ष०— भो विष्णुगुप्त, मा मैवम्। अयोग्य वयमस्य विशेषतस्त्वया ग हीतस्य ग्रहणे।

चाण०— अमात्य राक्षस, योग्योहमयोग्यो भवानिति कथमेतत्। पश्य—

हिन्दी अनुवाद—

चाण०— अमात्य राक्षस, क्या चन्दनदास का जीवन चाहते हैं?

राक्ष०— हे विष्णुगुप्त, (इसमें) क्या सन्देह हैं।

चाण०— अमात्य राक्षस, (राजकीय चिन्ह) शस्त्र को धारण किए बिना आपके द्वारा व षल अनुग हीत किया जा रहा है इसीलिए (मुझे) सन्देह है। तो यदि वास्तव में ही चन्दनदास का जीवन चाहते हैं तो इस शस्त्र को धारण कीजिए।

राक्ष०— हे विष्णुगुप्त, नहीं ऐसा नहीं है। हम इसके अयोग्य हैं विशेष रूप से तुम्हारे द्वारा धारण किए गए को धारण करने में।

चाण०— अमात्य राक्षस, मैं योग्य हूँ (और) आप अयोग्य यह कैसे है। (आप) देखें—

स्पष्टीकरण— चाणक्य चन्दनदास को सशर्त मुक्त करना चाहता है और शर्त यह है कि राक्षस चन्द्रगुप्त के अमात्य पद के प्रतीक शस्त्र को धारण कर ले क्योंकि जब तक वह शस्त्र

धारण नहीं करता तब तक चाणक्य यह विश्वास नहीं कर पाएगा कि वह (राक्षस) चन्द्रगुप्त का अमात्यपद स्वीकार करेगा भी अथवा नहीं। परन्तु एक बार शस्त्र धारण कर लिए जाने पर उसके द्वारा अमात्य पद अस्वीकार किया जाना असम्भव हो जाएगा।

अश्वैः सार्द्धमजस्रदत्तकविकैः क्षामैरशून्यासनैः
स्नानाहारविहारपानशयनस्वेच्छासुखैर्वर्जितान्।
माहात्म्यात्तव पौरुषस्य मतिमन्द प्तारिदर्पच्छिदः
पश्यैतान्परिकल्पनाव्यतिकरप्रोच्छूनृवंशान्गजान्।।१५।।

अन्वय— मतिमन्, द प्तारिदर्पच्छिदः तव पौरुषस्य माहात्म्यात् अजस्रदत्तकविकैः अशून्यासनैः क्षामैः अश्वैः सार्धं स्नानाहारविहारपानशयनस्वेच्छासुखैर्वर्जितान् परिकल्पनाव्यतिकरप्रोच्छून्वंशान् एतान् गजान् पश्य।

सन्दर्भ— राक्षस द्वारा यह कहे जाने पर कि 'मैं चन्द्रगुप्त के अमात्पद के योग्य नहीं हूँ, चाणक्य प्रस्तुत श्लोक में उसके पौरुष और प्रताप का वर्णन करते हुए उसे चन्द्रगुप्त के अमात्यपद के सर्वथा योग्य बतलाता है।

हिन्दी अनुवाद—

हे बुद्धिमान (और) घमण्डी शत्रुओं के घमण्ड को नष्ट करने वाले तुम्हारे पराक्रम के प्रभाव के कारण निरन्तर लगाम से युक्त, अशून्य आसन वाले अर्थात् सदैव पीठ पर बैठे हुए सैनिक वाले (और इस कारण) दुर्बल घोड़ों के साथ अपनी इच्छानुसार स्नान, भोजन, भ्रमण, पान (और) सोने के सुखों से व चित, पीठ पर गद्दी इत्यादि (हौदा) रखने से सूजे हुए प ष्ठभाग वाले इन हाथियों को देखो। (१५)

स्पष्टीकरण— चाणक्य का आशय यह है कि हम सदैव आपके (राक्षस) के आक्रमण से भयभीत रहते थे अतः उसका प्रतीकार करने के लिए स्वयं भी हमेशा तैयार रहते थे, अपने अश्वों तथा हस्तियों को भी तैयार रखते थे। घोड़ों पर हमेशा सवार सैनिक बैठे रहते थे, घोड़े सदैव लगाम से युक्त रहते थे अतः अत्यधिक दुर्बल हो गए और हाथियों के ऊपर भी हमेशा हौदे कसे रहते थे जिससे उनके प ष्ठभाग सूज गए। अतः आप स्वयं को अमात्यपद के अयोग्य कदापि नहीं कह सकते।

उक्त श्लोक में अतिशयोक्ति अथवा तुल्ययोगिता अलंकार तथा शार्दूलविक्रीडित छन्द है।

संस्कृत भावार्थ—

हे बुद्धिमन्! गर्वितानां शत्रूणां गर्वहारिणः तव शौर्यस्य प्रभावात् अपनीतपर्याणैः अनवरतयोजितवल्गैः कृशैः अश्वैः सह निमज्जनभोजनभ्रमणपानविश्रामात्मकयथेच्छाव्यापारैः रहितान् सदा सन्नाहप्रसंगेन पल्याणापनयाभावात् जातशोफाः प ष्ठास्थिभागाः येषां ताद शान् एतान् गजान् पश्य। एवं साचिव्याय भवान् योग्यः एव।

अथवा किं बहुना। न खलु भवतः शस्त्रग्रहणमन्तरेण चन्दनदासस्य जीवितमस्ति।

राक्ष०— (स्वगतम्)

नन्दस्नेहगुणाः स्प शन्ति हृदयं भ त्यो स्मि तद्विद्विषां
ये सिक्ताः स्वयमेव व द्धिमगमंच्छिन्नास्त एव द्रुमाः।

शस्त्रं मित्रशरीररक्षणकृते व्यापारणीयं मया
कार्याणां गतयो विधेरपि न यन्त्याज्ञाकरत्वं चिरात्।।१६।।

अन्वय— नन्दस्नेहगुणाः हृदयं स्प शन्ति तद्विद्विषां भ त्यो स्मि। स्वयमेव सिक्ताः ये द्रुमाः व द्धिमगमंस्ते एव छिन्नाः। मित्रशरीररक्षणकृते मया शस्त्रं व्यापारणीयं कार्याणां गतयः चिरात् विधेरपि आज्ञाकरत्वं न यान्ति।

सन्दर्भ— चाणक्य द्वारा राक्षस को स्पष्ट रूप से यह कह दिए जाने पर कि चन्द्रगुप्त का अमात्यपद स्वीकार किए बिना चन्दनदास के जीवन की रक्षा नहीं होगी, राक्षस अन्य कोई उपाय न देखकर चन्द्रगुप्त का अमात्यपद स्वीकार करने के लिए विवश हो जाता है।

हिन्दी अनुवाद—

अथवा अधिक क्या कहूँ। निस्सन्देह आपके शस्त्र धारण किए बिना चदनदास का जीवन नहीं है।

राक्षस— (अपने आप)

नन्दों के स्नेह के गुण (मेरे) हृदय को छू रहे हैं (परन्तु अब मैं) उनके शत्रुओं का सेवक हूँ। स्वयं ही सींचे (पाले) गए जो व क्ष व द्धि को प्राप्त हुए थे, वे ही कट गए। मित्र (चन्दनदास) के शरीर की रक्षा के लिए मेरे द्वारा शस्त्र स्वीकार कर लिया जाना चाहिए। कार्यों की गति चिरकाल से ब्रह्मा की भी आज्ञाकारिता को प्राप्त नहीं होती। (१६)

स्पष्टीकरण— राक्षस का आशय यह है कि एक तरफ तो राजा नन्दों ने मेरे प्रति जो स्नेह, अनुग्रह इत्यादि दिखलाया था वे मेरे हृदय को अभिभूत कर रहे हैं। परन्तु दूसरी तरफ अब मैं उनके ही शत्रुओं का सेवक हूँ क्योंकि मित्र चन्दनदास को बचाने के लिए मुझे उनका आमात्यपद स्वीकार करना ही पड़ेगा। निस्सन्देह मनुष्य के कर्मों की गति भाग्य के सामने भी नहीं झुकती। इसका तात्पर्य यह है कि मनुष्य के कर्म उसके भाग्य से भी अधिक प्रबल होते हैं।

उक्त श्लोक में रूपक, काव्यलिंग, तथा अर्थान्तरन्यास अलंकार तथा शार्दूलविक्रीडित छन्द है।

संस्कृत भावार्थ—

नन्दस्य स्वामिनः मयि यः स्नेह आसीत् तस्य सुभगतादयः गुणाः मम चेतः समावर्जयन्ति अद्यापि तान् स्म त्वा शोचामि तथापि अहं तेषां शत्रूणां सेवकः जातः। ये नन्दरूपाः व क्षाः स्वहस्तेन जलसेचनादिना परिपालिताः सन्तः वर्द्धिताः बभूवुः त एव द्रुमाः निकृत्ताः। चन्दनदासस्य प्राणरक्षणार्थं मया अमात्यपदं स्वीकर्त्तव्यम् अन्यथा तस्य जीवनं नास्ति। कृत्यानां परिणतयः बहुकालात् दैवस्य (विधेः) अपि आज्ञाकरत्वं न यन्ति। अतिप्रबलो पि विधिः कार्यगतिवैचित्र्यात्कार्यगतिकिंकर इव भवतीत्यर्थः।

(प्रकाशम्) विष्णुगुप्त, नमः सर्वकार्यप्रतिपत्तिहेतवे सुहृत्स्नेहाय। का गतिरेष प्रह्वो स्मि।

चाण०— (सहर्ष शस्त्रमर्पयित्वा) व षल व षल, अमात्यराक्षसेनेदानीमनुग हीतो सि। दिष्ट्या वर्द्धते भवान्।

राजा— आर्यप्रसाद एष चन्द्रगुप्तेनानुभूयते।

(प्रविश्य)

पुरुषः— जयत्वार्यः। एष खलु भद्रभटभागुरायणप्रमुखैः संयमितकरचरणो मलयकेतुः प्रतीहारभूमिमुपस्थापितः। इदं श्रुत्वा आर्यः प्रमाणम्। (जेदु अज्जो। एसो क्खु भद्दभटभाउराअणप्पमुहेहिं संजमिदकलचलणो मलअकेदू पडिहारभ्भूमिं उवठ्ठाविदो। एदं सुणिअ अज्जो प्पमाणम्।)

चाण०— भद्र, निवेद्यताममात्यराक्षसाय। सोयमिदानीं जानीते।

राक्ष०— (स्वगतम्) कथं दासीकृत्य मामिदानीं विज्ञापनायां मुखरीकरोति कौटिल्यः। का गतिः। (प्रकाशम्) राजन् चन्द्रगुप्त, विदितमेव ते यथा वयं मलयकेतौ कंचित्कालमुषितास्तत्परिरक्ष्यन्तामस्य प्राणाः।

राजा— (चाणक्यमुखमवलोकयति)

चाण०— व षल, प्रतिमानयितव्यो मात्यराक्षसस्य प्रथमः प्रणयः। (पुरुषं प्रति) भद्र, अस्मद्वचनादुच्यन्तां भद्रभटप्रमुखा अमात्यराक्षसेन विज्ञापितो देवश्चन्द्रगुप्तः प्रयच्छति मलयकेतवे पित्र्यमेव विषयम्। ततो गच्छन्तु भवन्तः सहानेन। प्रतिष्ठिते चास्मिन्पुनरागन्तव्यमिति।

पुरु०— यदार्य आज्ञापयति। (जं अज्जो आणवेदि।) (इति परिक्रामति)

चाण०— भद्र, तिष्ठ तिष्ठ। अपरं च वक्तव्यो दुर्गपालो विजयपालः। अमात्यराक्षसलाभेन सुप्रीतश्चन्द्रगुप्तः समाज्ञापयति य एष श्रेष्ठी चन्दनदास स पथिव्या सर्वनगरश्रेष्ठिपदमारोप्यतामिति। अपि च विना हस्त्यश्वं क्रियतां सर्वमोक्ष इति। अथवामात्यराक्षसे नेतरि किमस्माकं प्रयोजनमिदानीम्।

हिन्दी अनुवाद—

(स्पष्ट रूप से) विष्णुगुप्त, सभी कार्यों को स्वीकार करने के कारणभूत (प्रतिपत्तिहेतवे) मित्रस्नेह के लिए नमस्कार है। यह (मैं) झुक गया हूँ अर्थात् आप जो कह रहे हैं वह मुझे मान्य है।

चाणक्य— (हर्षपूर्वक शस्त्र देकर) व षल व षल, अब (तुम) अमात्य राक्षस के द्वारा अनुग हीत कर दिए गए हो। सौभाग्य से तुम्हारी व द्धि हो रही है अर्थात् तुम्हें बधाई हो।

राजा— यह आर्य की कृपा (प्रसाद) (ही) चन्द्रगुप्त के द्वारा अनुभव की जा रही है।

पुरुष— आर्य विजयी हों। निस्सन्देह भद्रभटभागुरायणादि प्रमुख (व्यक्तियों) के द्वारा बँधे हुए हाथ पैर वाला यह मलयकेतु द्वारा पर उपस्थित कर दिया गया है। इसे सुनकर आर्य प्रमाण हैं अर्थात् आप आज्ञा दें कि क्या करना है।

चाणक्य— भद्र, अमात्य राक्षस से निवेदन करो। अब वे ये (राक्षस ही) जानते हैं (कि क्या करना है)।

राक्षस— (अपने आप) यह कैसे, मुझे दास बना कर अब कौटिल्य आज्ञा देने के लिए मुखर बना रहा है। क्या उपाय है। (स्पष्ट रूप से) राजन् चन्द्रगुप्त, आपको ज्ञात ही है कि हम कुछ समय मलयकेतु पर आश्रित रहे हैं अतः इसके प्राणों की रक्षा की जाए।

राजा— (चाणक्य के मुख को देखता है)

चाणक्य— व षल, अमात्य राक्षस की प्रथम प्रार्थना मानी जानी चाहिए। (पुरुष के प्रति) भद्र, हमारी तरफ से भद्रभट इत्यादि प्रमुख (व्यक्तियों) से कहो कि 'अमात्य राक्षस के द्वारा निवेदन किए गए राजा चन्द्रगुप्त मलयकेतु को (उनके) पिता का ही राज्य देते हैं। अतः आप सब इनके साथ जाएँ और इनके (राज्य पर) प्रतिष्ठित हो जाने पर वापस आएँ।

पुरुष— जैसी आर्य आज्ञा देते हैं। (ऐसा कह कर घूमता है)

चाणक्य— भद्र, ठहरो ठहरो। और दूसरा दुर्गपाल विजयपाल से कहना। अमात्यराक्षस की प्राप्ति से अत्यन्त प्रसन्न चन्द्रगुप्त आदेश देते हैं (कि) जो यह सेठ चन्दनदास है वह संसार में सभी शहरों में 'श्रेष्ठी' पद पर नियुक्त कर दिया जाए और भी हाथी घोड़ों के अतिरिक्त सब को मुक्त कर दो। अथवा अमात्य राक्षस के नेता होने पर अब हमारा क्या प्रयोजन।

स्पष्टीकरण— राक्षस द्वारा अमात्यपद स्वीकार करते ही पुरुष, भद्रभट, भागुरायण इत्यादि के द्वारा मलयकेतु को पकड़ कर लाने की सूचना चाणक्य को देता है। चाणक्य राक्षस को ही इस विषय में आदेश देने के लिए कहता है। राक्षस अपने हृदय की उदारता का परिचय देते हुए मलयकेतु को क्षमा कर देने को कहता है। यह सुन कर चन्द्रगुप्त स्तब्ध रह जाता है क्योंकि राजनीति का नियम है 'शत्रुशेषं न शेषयेत्' अर्थात् शत्रु को समूल नष्ट कर दो। वह आर्य चाणक्य की प्रतिक्रिया जानने के लिए उनके मुख की तरफ देखता है। चाणक्य चन्द्रगुप्त का अभिप्राय समझ जाता है और कहता है कि अमात्य राक्षस की प्रथम प्रार्थना राजनीति विरुद्ध होने पर भी स्वीकार की जानी चाहिए।

यह ध्यातव्य है कि चाणक्य साभिप्राय 'अमात्यराक्षसेन विज्ञापितः' पद का प्रयोग करता है ताकि मलयकेतु यह अनुभव कर सके कि जिस राक्षस को उसने इतने कटु अपशब्द कहे थे और उसके साथ इतना अभद्र व्यवहार किया था वही राक्षस अपनी सज्जनता के कारण उस पर उपकार कर उसके पिता का राज्य उसे वापिस दिलवा रहा है।

विना वाहनहस्तिभ्यो मुच्यतां सर्वबन्धनम्।
पूर्णप्रतिज्ञेन मया केवलं बध्यते शिखा।।१७।।

अन्वय— वाहनहस्तिभ्यः विना सर्वबन्धनं मुच्यताम् पूर्णप्रतिज्ञेन मया केवलं शिखा बध्यते।

सन्दर्भ— उक्त श्लोक में चाणक्य राक्षस की प्राप्ति की प्रसन्नता से सबके बन्धन खोलने के लिए आदेश देता है परन्तु अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण कर लेने पर केवल अपनी शिखा बाँध लेता है।

हिन्दी अनुवाद—

घोड़े और हाथियों के अतिरिक्त सबके बन्धन खोल दो। पूर्ण प्रतिज्ञा वाले मेरे द्वारा केवल (अपनी) चोटी बाँधी जाती है। (१७)

स्पष्टीकरण— यद्यपि चाणक्य ने सब लोगों के सामने केवल नन्दवंश को समूल नष्ट करने की ही प्रतिज्ञा की थी तथापि चन्द्रगुप्त की राज्यलक्ष्मी स्थिर किए बिना वह अपनी प्रतिज्ञा को पूर्ण नहीं मानता था और चन्द्रगुप्त की राज्यलक्ष्मी की स्थिरता तभी सम्भव थी जब राक्षस उसका अमात्यपद स्वीकार कर ले। इसी कारण नन्दों का नाश हो जाने पर भी वह अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण हुई नहीं मानता था। परन्तु अब राक्षस द्वारा चन्द्रगुप्त का अमात्य पद स्वीकार कर लिए जाने पर वह अपनी प्रतिज्ञा को पूर्ण हुआ समझता है और अपनी खुली हुई शिखा को बाँध लेता है।

उक्त श्लोक में अनुष्टुब् छन्द है।

संस्कृत भावार्थ—

अश्वेभ्यः गजेभ्यश्च विना सर्वेषां संयमनम् अपनीयताम्। पूर्णा प्रतिज्ञा येन ताद शेन मया केवलं शिखा संयम्यते।

पुरु०— यदार्य आज्ञापयति। (जं अज्जो आणवेदि) (इति निष्क्रान्तः)

चाण०— **भो राजन् चन्द्रगुप्त, भो अमात्य राक्षस, उच्यतां किं वा भूयः प्रियमुपकरोमि?**

राजा— **किमतः परमपि प्रियमस्ति?**

हिन्दी अनुवाद—

पुरु०— जैसी आर्य आज्ञा देते हैं। (ऐसा कहकर निकल जाता है)

चाणक्य— हे राजा चन्द्रगुप्त, हे आमात्य राक्षस, बोलो तुम दोनों का और क्या प्रिय मैं कर सकता हूँ?

राजा— क्या इससे भी अधिक प्रिय (कुछ) हो सकता है?

स्पष्टीकरण— यह ध्यातव्य है कि यहाँ प्रथम बार चाणक्य ने चन्द्रगुप्त को व षल के स्थान पर 'राजन्' कहा है क्योंकि उसकी द ष्टि में राक्षस द्वारा अमात्यपद ग्रहण कर लिए जाने पर ही चन्द्रगुप्त की राजलक्ष्मी स्थिर रह सकती थी। अतः वास्तव में अब ही चन्द्रगुप्त राजा कहलाने योग्य हुआ है।

मलयकेतु को पराजित कर तथा राक्षस को चन्द्रगुप्त का आमत्य बना कर चाणक्य ने चन्द्रगुप्त का उपकार किया है और मलयकेतु को प्राणदान देकर तथा उसे पुनः राज्य पर स्थापित करके तथा चन्दनदास को प्राणदान देकर और सम्पूर्ण संसार के नगरों का 'नगरसेठ' बना कर राक्षस का प्रिय किया है।

राक्षसेन समं मैत्री राज्ये चारोपिता वयम्।
नन्दाश्चोन्मूलिताः सर्वे किं कर्त्तव्यमतः प्रियम्।।१८।।

अन्वय— राक्षसेन समं मैत्री च वयं राज्ये आरोपिताः च सर्वे नन्दाः उन्मूलिताः अतः प्रियं किं कर्त्तव्यम्।

सन्दर्भ— चन्द्रगुप्त पूर्ण सन्तुष्टि के साथ चाणक्य के प्रति हार्दिक आभार प्रकट करता है।

हिन्दी अनुवाद—

राक्षस के साथ मित्रता हो गई और हम राज्य पर प्रतिष्ठित कर दिए गए और सभी नन्दों को समूल नष्ट कर दिया गया। इससे अधिक प्रिय क्या किया जा सकता है। (१८)

संस्कृत भावार्थ—

अमात्यराक्षसेन सह सुहृदत्वं जातं च वयं राज्ये स्थिरीकृताः च सर्वे नन्दा अपि उत्खाताः। अस्मात् परं प्रियं करणीयम्।

राक्ष०— तथापीदमस्तु (भरतवाक्यम्)—

वाराहीमात्मयोनेस्तनुमवनविधावास्थितस्यानुरूपां
यस्य प्राग्दन्तकोटिं प्रलयपरिगता शिश्रिये भूतधात्री।
म्लेच्छैरुद्विज्यमाना भुजयुगमधुना संश्रिता राजमूर्तेः
स श्रीमद्बन्धुभ त्यश्चिरमवतु मही पार्थिवश्चन्द्रगुप्तः।।१६।।

अन्वय— प्राक् प्रलयपरिगता भूतधात्री अवनविधौ अनुरूपां वाराहीं तनुम् आस्थितस्य यस्य आत्मयोनेः दन्तकोटिं शिश्रिये अधुना म्लेच्छैः उद्विज्यमाना राजमूर्तेः भुजयुगं संश्रिता, श्रीमद्बन्धुभ त्यः सः पार्थिवः चन्द्रगुप्तः चिरं महीम् अवतु।

सन्दर्भ— प्रस्तुत श्लोक में राक्षस भरतवाक्य के रूप में चन्द्रगुप्त के लिए यह आशीर्वाद प्राप्त करना चाहता है।

हिन्दी अनुवाद—

तब भी यह हो। (भरतवाक्य)—

पहले प्रलय को प्राप्त हुई प थ्वी ने रक्षा करने में समर्थ वराह रूप शरीर को धारण करने वाले जिस भगवान विष्णु के दाँतों के अग्रभाग का आश्रय लिया (उसी प थ्वी ने) अब म्लेच्छों के द्वारा पीड़ित किए जाने पर राजा चन्द्रगुप्त के शरीर को धारण करने वाले (भगवान विष्णु) की दोनों भुजाओं का आश्रय लिया है। ऐश्वर्यसम्पन्न सम्बन्धियों तथा सेवकों वाला वह (विष्णु रूप) राजा चन्द्रगुप्त चिरकाल तक प थ्वी की रक्षा करें। (१६)

वराहावतार विष्णु का तीसरा अवतार है। पौराणिक कथा के अनुसार पहले प्रलय के समय प थ्वी के रसातल को चले जाने पर भगवान विष्णु ने वराह का रूप धारण करके उसे अपने दोनों दाँतों के अग्रभाग पर उठाकर डूबने से बचाया था।

और अब भगवान विष्णु ने राजा चन्द्रगुप्त के रूप में शरीर धारण किया है और इस समय प थ्वी ने विष्णु रूप चन्द्रगुप्त की दोनों भुजाओं का आश्रय लिया है।

भगवान विष्णु का पहले वराह रूप शरीर और अब राजा चन्द्रगुप्त रूप शरीर क्रमशः जल में डूबी हुई और म्लेच्छों द्वारा पीड़ित प थ्वी की रक्षा करने में पूर्ण रूप से समर्थ है।

उक्त श्लोक में अतिशयोक्ति अलंकार तथा स्रग्धरा छन्द है।

संस्कृत भावार्थ—

प्राक् कल्पादौ प्रलयेन निमग्ना सती प थ्वी जगद्रक्षणविधाने समर्थां शूकरीं मूर्तिम् आश्रितस्य यस्य स्वयंभुवः भगवतः विष्णोः दंष्ट्राग्रम् आश्रिता अभूत् सम्प्रति पुनः कलियुगे यवनैः उत्पीड्यमाना सती प थ्वी तस्यैव राजमूर्तेः राजा चन्द्रगुप्तः एव शरीरं यस्य तथा भूतस्य भगवतः विष्णोः बाहुद्वयं समालम्बमाना तिष्ठति। सः राजा चन्द्रगुप्तः सम द्धाः स्वजनाः सेवकाश्च यस्य ताद शः सन् तामेव महीं सततं रक्षतु। अस्माकं राजा दीर्घजीवी भूयात् सम्बन्धिनः सम द्धाः भवन्तु भ त्याश्च वर्द्धन्ताम् इत्यर्थः।

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे)

इति सप्तमो ंकः समाप्तः।

इति विशाखदत्तविरचितं मुद्राराक्षसं नाटकं समाप्तम्।

(ऐसा कहकर सब निकल जाते हैं)

इस प्रकार सातवाँ अंक समाप्त हुआ।